॥ श्री ॥

49/46

पंचमहाभृतत्रिदोषचर्चापरिषद्

[काश्यां संजाता १९३५]

तदितिवृत्तम्.



[पूर्वपीठिकापरिशिष्टाऽयन्ययपत्रकसहितस्

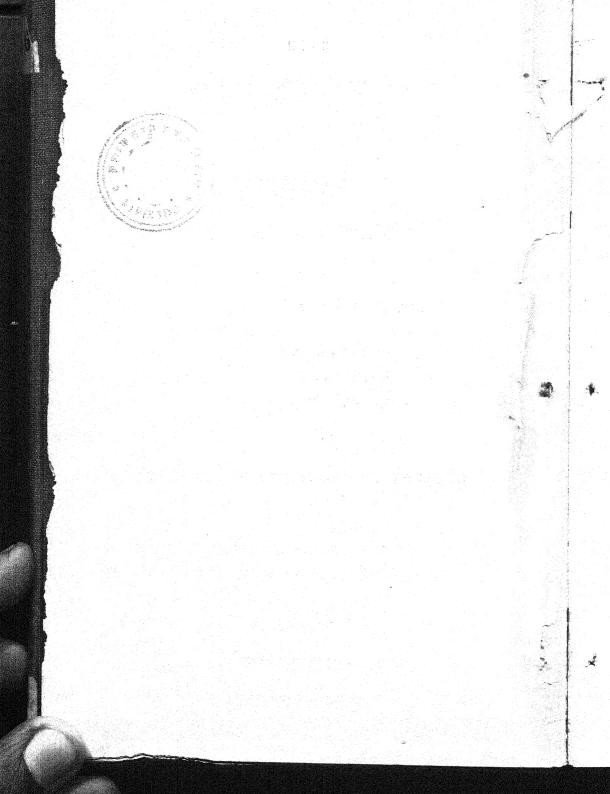
नि. भा. व. १९ विंशवैद्यकसंमेळनस्वागतसमित्यनुज्ञया

वैद्यभूषण वामनशास्त्री दातार मंत्री १९ वैद्यसंमेळन (नासिक.) सहमंत्री-पं. त्रि. परिषद् इस्वनेन प्रथितम्

प्रकाशक:-वैद्यभूषण वामनशास्त्री दातार, जनस्थानम् (नासिक)

सुद्रकः — जयराम लक्ष्मण करमरकर श्री समर्थमुद्रणालय, ५९ मेनरोड, नासिक.

सन १९४०.



विषयाऽनुक्रमणिः।

45,5

विषयः

| । निवेदनम् | • • • • | | -0-0 # -0 | 3-4 |
|---------------------|-------------------------------|--------------|--------------|-------|
| | पूर्वपी | ठिका- | | |
| त्रिदोषविषयकाणि | गे मतानि विषय प्रवे | शः | 60 80 | ?? |
| डा. गर्दे महाभा | | **** | .0000 | 3-4 |
| तदुःपन | मांदोलनम्, योजना | च, | 0000 | E-0 |
| श्री. अवधूत वा | सुदेव वैद्यानां अभिप्र | ायः ७-११ | तथा १२ | ₹-१३० |
| | दाचार्य कुंभारे इस्वेष | | | 88 |
| | णछोडदास कीर्तिकर | | 0.00 | 88 |
| सर डॉ. भालचं | द्र कृष्ण भाटवडेकरा | णां मतम् | **** | १२ |
| | लागवणकराणां मतम | Į | 00-00 | १२-१३ |
| | तकाराणां मतम् | *** | 0-0-0 | १३ |
| श्री. विञ्चलशार्स्व | ो गाडगीळानां मतम् | | **** | 83-88 |
| वैद्यरःन दोरयास | वामी आयंगाराणां म | तम् | | 18-14 |
| वैद्यभूषण वामन | ाशास्त्री दाता राणां म | तम् | 0000 | १५ |
| | रराम परांजपे महाश | | 0000 | १६–१७ |
| | ज लक्ष्मण दीक्षित इ | त्येषां मतम् | **** | 29-65 |
| वैद्यरन कडेगांव | | **** | | 96-18 |
| वैद्यभूषण हिर्छे | कराणां मतम् | **** | | १९–२० |
| | निवासमूर्ति महाराया | नां मतम् | 0.00 | २०–२४ |
| म. म. डॉ. गण | ानाथसेनानां मतम् | | 4-9 4-9 | २४-२५ |
| , | वारीयर इत्येतेषां मत | म् | **** | २६ |
| ,, पं. हरिप्रप | | •••• | ••• | २६–२८ |
| ,, म. वि. आ | पटे इत्येतेषां मतम् | • • • • | | २८-३० |

| विषयः | | | पृष्ठम् |
|--|-------|---------|-----------------------|
| श्री. ' डबङ्. डी. ' नामकानां मतम् | | | 38-33 |
| ,, पं. सुरेन्द्र मोहनानां मतम् | •••• | | 33-38 |
| ,, पं. कृष्णप्रसाद त्रिवेदीनां मतम् | | | 34-30 |
| ,, प्रो. हरदयाळानां मतम् | **** | | ₹८-86 |
| ,, क. उपेन्द्रनाथदासानां मतम् | **** | | 80-80 |
| ,, पं. ठाकूरदत्तरार्मणां मतम् | ••• | •••• | 80-86 |
| ,, डॉ. आशानंद पंचरत्नानां मतम् | **** | **** | 89-40 |
| ,, कविराज नानकचंदशास्त्रीणां मतम् | | •••• | 40-48 |
| ,, क. रामेश्वरासिंह वैद्यानां मतम् | • • • | | ५१-५३ |
| ,, क. भुवनेश्वरदत्तरार्मणां मतम् | •••• | | ५२-५३ |
| ,, क. रघुनन्दन प्रसादानां मतम् | •••• | *** | ५३ |
| ,, क. खजानचंद्रानां मतम् | **** | • • • • | ५३ |
| ,, क. पं. दीनानाथशर्मणां मतम् | •••• | •••• | 43-40 |
| " पूर्णानन्दपंतानां मतम् | •••• | | ५९-६० |
| ,, वैद्यभूषण गणेशशास्त्री जोशी इत्येते | | | ६०-६१ |
| ,, डॉ. बाळकृष्ण अमरजी पाठकानां | मतम् | | ६१-६४ |
| ,, पं. शाळग्राम शास्त्रीणां मतम् | •••• | •••• | ₹8- ७ १ |
| ,, डॉ. मो. ना. आगाशे इत्येतेषां मत | म् | •••• | ७१-७२ |
| ,, पं. दुर्गादत्तशास्त्रीणां मतम् | | •••• | ७२-७४ |
| ,, वंशीधर जोशी इत्येतेषां मतम् | | • • • | ७५ |
| ,, वैद्यचैतन्य देसाई इत्यंतेषां मतम् | | | ७५-८३ |
| ,, क. द्वारकानाथसेनानां मतम् | ८३-९० | तथा १० | 9-112 |
| ,, अनत भास्कर कडिले इत्येतेषां मत | Į | | ८४-९० |
| ,, पं. टक्ष्मीराम स्वामीनां मतम् | •••• | • • • | ९०-९२ |
| ,, पं. केशव लक्ष्मण दक्षरीनां मतम् | | | २ २– ९३ |
| | | | |

| विषय: | पृष्ठम् |
|---|------------|
| श्री. डॉ. सुरेन्द्रनाथदास गुप्तानां मतम् | ९३-९६ |
| ,, डॉ. के. एस्. हासकर महाशयानां मतम् | ९६-९८ |
| ,, डॉ. दा. मा. जळगांवकर महारायानां मतम् | 99900 |
| ,, दा. म. भोसेकराणां मतम् | १००-१०२ |
| ,, पं. दिगंबरजी बक्षी महाशयानां मतम् | १०२-१०६ |
| ,, वैद्यरन पं. त्रिवकशास्त्री जोशी महाशयानां मतम् | २०६ |
| ,, वै. अप्पाशास्त्री साठे महाशयानां मतम् | १०६-१०७ |
| ,, पं. नंबसेनानां मतम् | 309-009 |
| ,, वै. नारायणशंकर देवशंकराणां मतम् | १०८-१०९ |
| ,, व्ही. नारायण अय्यराणां मतम् | १०९ |
| ,, पं. सी. व्ही. सुब्रह्मणिशास्त्रीणां मतम् | १०९ |
| | १२ तथा १३५ |
| ,, वै. पं. कृष्णशास्त्री कवडे महाशयानां मतम् | ११३ |
| ,, वै. लक्ष्मीशंकर नरोत्तम भट्टानां मतम् | ११३-११४ |
| 🥠 पं. शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्याणां मतम् | ११५-११६ |
| ,, पं. एम्. व्ही. शास्त्रीणां मतम् | ११६११९ |
| ,, पं. गणपतीचंद्र केला महारायानां मतम् | ११९१२३ |
| ,, डॉ. फामरोज माणेकजी सेटना महाशयानां मतम् | |
| ,, पं. वैद्यरत रामप्रसादानां मत्तम् | १३६-१३७ |
| ,, पं. गोवर्धनरामी छांगाणी महाभागानां मतम् | १३७-१३८ |
| ,, डॉ. पोपट प्रभुराम बैद्यानां मतम् | १३८-१३९ |
| ,, वैद्य त्रिंबकलाल मुनीनां मतम् | १३९-१४० |
| ,, क. हाराणचंद्र चक्रवर्तीनां मतम् | 880 |
| | 680-686 |
| ,, पं. भिकाजी विनायक डेग्वेकराणां मतम् | १४१-१४७ |

| विषयः | वृष्ठम् |
|---|---------|
| श्री. पं. गंगाधरशास्त्री गुणे महाभागानां मतम् | १४७-१५० |
| भिन्नभिन्नमतानां पौर्वात्यपाश्वात्यशास्त्रकल्पनारूढानां | |
| पंचपंचारात् प्रकाराः | १५१-१५७ |
| एकोनविंश नि. भा. व. वैद्यू संमेळन स्वागतसमित्या | |
| आकारितस्य त्रिधातु सर्वस्व निबंधस्य उद्गमः | १५७ |
| ' त्रिधातु सर्वस्व ' निबंध पत्रकम् | १५८-१६० |
| त्रिधातु सर्वस्व निवंध परीक्षण वृत्तम् | १६१-१६८ |
| त्रिदोषचर्चापरिषक्तल्पनाया उद्गमः | १६८ |
| पनवेल परिषद्. | |
| , परिषदश्चतुर्थं पत्रकम् तथा चर्चापद्धतेः पत्रकम् | १६९-१७२ |
| / पनवेलित्रदोषचर्चापरिषद् | १७२-१७४ |
| 🏅 श्रिदोषचर्चापरिषदि सभापीत भाषणम् | १७४-१८० |
| ित्रिदोषचर्चापरिषदि चर्चितुं योग्या विषयांशाः | १८१-१८६ |
| चर्चितप्रश्नानां उत्तराणि | १८६-१९० |
| निरीक्षक न्यायरत्न वार्डाकराणां मतम् | १९०-१९४ |
| िनिरीक्षक वै. नानल तथा वै. पुराणीक एतयोर्मतम् | १९४-१९६ |
| चर्चापद्धतिः | १९६-१९७ |
| परिषद्प्रस्तावाः | १९७-२०० |
| त्रिदोषचर्चापरिषदि निमंत्रितानां तथा समुपस्थितानां | |
| वैद्यविदुषां नामानि | २०१२०४ |
| स्वामी हरिशरणानन्दकृत त्रिदोषमीमांसा सारोद्धारः | २०५२१५ |
| वाराणसीय पञ्चमहाभूतत्रिदोषपरिषन्मूलम् योजनाच | २१५-२१७ |
| आधुनिक प्रमाणुवाद पुस्तिकाविषयतात्पर्यम् | २१७२३१ |
| परिषदः पूर्वपत्रकाणि | २३२२४२ |
| परिषद्धे समाहूतानां सभ्यानां नामानि | २४३२६१ |
| परिषदिसमागतानां सभ्यानां नामानि | २६२२६८ |
| | |

| विषयः ूपंचमहाभूतपरिषद्. | | पृष्ठम् |
|--|----------|---------|
| पंचमहाभूतित्रदोषचर्चापरिषद् | | 8 |
| निरीक्षकाणां नामानि | •••• | ₹₹ |
| पंचभूतपरिषत्प्रारंभः | **** | ₹—-8 |
| स्वागतसुमनांजिलः | **** | 84 |
| स्वागतसभापति पं. मालवीयाणां भाषणम् | | ६८ |
| सभापति महामहोपाध्याय प्रमथनाथानां भाषणम् | *** | 6-90 |
| पंचमहाभूतपरिषदि संजातो विचारः | **** | १०२१ |
| श्री. महामहोपाध्याय गिरिधररार्मणां वक्तृता | | २१-२८ |
| कविराज उपेन्द्रनाथदासानां वक्तृता | **** | २८-३० |
| पं. बीरमणीप्रसादोपाध्यायानां भाषणम् | **** | 38-38 |
| पं. रुद्रदेवशास्त्रीणां भाषणम् | •••• | 38-80 |
| संकलितो वृत्तान्तः | | 86-48 |
| निरीक्षकाणां अभिप्रायः | | 48-48 |
| त्रिदोषचर्चापरिषद्. | | |
| त्रिदोष चर्चापरिषत्प्रारंभः | | 8 |
| त्रिदोषचर्चापरिषदो विचारः | | 8-4 |
| पं. रुद्रदेवशास्त्रीणां भणितिः | | ५-१६ |
| पं. जगन्नाथरामी वाजपेयीनां वक्तृता | *** | १६-१७ |
| कविराज उपेन्द्रनाथदासानां भाषणम् | | १८-१९ |
| श्री. पं. नागरलाल मोहनलाल पाठकाणां वक्तृत्व | FL | 19-20 |
| ,, पं. गोपालशास्त्री गोडवोले महाशयानां भाषण | ाम् | 21-78 |
| ,, आचार्य पांडुरंग हरी देशपांडे इत्येषां भाषणा | Ę | 28-20 |
| ,, निरीक्षकाणां, सभापतेश्च निर्णयः | | 20-26 |
| ,, घनानन्दपंतानां (देहली) मतम् | | 29 |
| त्रिदोषचर्चापरिषद् वृत्तम् | •••• | २९-३२ |
| इतिवृत्तम् परिशिष्टं [अ | | |
| वाराणसीगीर्वाणवाग्वर्धिनीसभाया मतपत्रिका | • | १-७६ |
| इतिवृत्तं परिाद्यिष्टं [आ] मत् | पत्रिका. | |
| पंचभूतचर्चापरिषदि विचारार्ह | विषयाः | |
| पं. गोपालशास्त्री गोडबोले एषां मतम | | ٥ يو |

| विषयः | पृष्ठम् |
|--|----------------|
| पं. नागरलाल मोहनलाल पाठकाणां मतम् | 8-80 |
| कविराज लक्ष्मीकांत पुराणीकानां मतम् | 88-83 |
| पं. मदन गोपाळानां मतम् | १२-१३ |
| कविराज पं. भैरविगरीणां मतम् | 88-58 |
| पं. दामोदरशास्त्री कोनकराणां मतम् | १५ |
| पं. गणेशदत्त सारखतानां मतम् | १६-१७ |
| पं. श्रीकान्तरार्मणां मतम् | १७-२१ |
| पं. महादेवशास्त्रीणां मतम् | २२ |
| पं. देशपांडे महाभागानां मतम् | २३-२६ |
| पं. नारायणदत्तशास्त्रीणां मतम् | २७-२८ |
| पं. दामोदरशर्मा गौडानां मतम् | २८-३१ |
| पं. विश्वेश्वरम् इत्येतेषां मतम् | 38-33 |
| अनिश्चितनाम्नो कस्यचन वैद्यवरस्य मतम् | ३३३६ |
| कविराज उपेन्द्रनाथदासानां मतम् | 36-39 |
| वैद्यराज अमृतलाल प्राणशंकराणां मतम् | 3980 |
| पं. जगन्नाथरामी वाजपेयीनां मतम् | 88-88 |
| न्यायरत्न वाडीकर् तथा वैद्य दातारशास्त्री इस्येतयोर्मतम् | 88-85 |
| वैद्य बद्रीदत्त मिश्राणां मतम् | ४९-६५ |
| वैद्यराज नारायणशंकर देवशकराणां मतम् | ६६-८२ |
| पं. हरीप्रसाद सी. भट्टानां मतम् | ८२-८४ |
| अधुनिकं त्रिदोषविषयकं वाङ्मयम् | १-२ |
| कर्नाटक त्रिदोषचर्चापरिषद् | \$ 2 |
| एकोनविंशवैद्यकसंमेळनस्वागतसमित्याकृतो आयव्ययः | १६ |
| छायाचित्राणां सूचिः | |
| परिषत्कियकारि मंडलम् पृष्ठ १ पू | र्वपीठिका |
| | पूर्वपीठिका |
| महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्कभूषणाः पृष्ठ ५ प | . भू प. वृ. |
| | ने. प. वृत्तम् |



श्रीमन्तो माननीया महाभागाः सविनयं प्रार्थ्यते-यत् वाराणस्यां संजातयोः पंचमहाभूतत्रिदोषपरिषदोः समारंभो इतः पंचवर्षासूर्वमेव संवत इति विदितमेव श्रीमताम् । तयोः परिषदोस्साम्रिमिति वृत्तं सत्वरमेव मुद्राप्य श्रीमतां सेवाये देयमिति आसीत् सर्वेषामाकांक्षा, ममापि च मनीषा। तथापि अनेकैः कारणैः [यानि कानि चित्-इतिवृत्तलेखनसामुग्रीप्रदातृणां काला-तिपातात्मकानि, कानिचित् राष्ट्रीयांऽदोलनकार्यव्यापृतत्वात्मकानि, कानि च रारीरप्रकृतेरस्वास्थ्यरूपाणि, एतादशान्येवेतराणि] एतावान् महान् पंचवर्षात्मकः कालातिपातः संजातो येन परिषत्, तथा परिषदकार्यं च केषांचन विस्मृतपथमेव गतं भवेत् । अथापि सुमहत्प्रयासेन, यावत् शक्लाऽचे-दमिति वृत्तं श्रीमनिकटे चक्षुर्वर्तीकरणाय समर्थोऽहमभवम् । केवलं परिषदिति-वृत्तं तु एतस्मात्कालात्पूर्वमेव सुसजं ऋत्वा उपायनीकरणायऽलं भविष्यत् । तथापि त्रिदोषविषयकांदोलनस्य प्रारंभकालादारम्य अद्यायावत् पर्यंतम् साद्यः न्तोऽदन्तो यदि भवदवलोकनार्थ प्रदातुं समर्थोऽहं स्याम् , तदा सफलमना-रथोऽहं भवेय इति समागतोऽभूनमे मनासि विचारः । तदर्थं प्रयतमानेन मया नानाविधानि पुस्तकानि, निवन्धान्, भाषणानि, इतिवृत्तानि, लेखान्, संप्राह्म, संकल्लय, गीवार्णवाण्या परिणाम्य, यावत् शक्यं संपूर्णः त्रिदोष-विषयकान्दोलनप्रदर्शकः, त्रिदोषविषयस्य विचाराणां क्रमेणोत्कान्तिनिदर्शको इतिहास एव पंचमहाभूतित्रदोषपरिषादितिवृत्तरूपेण संप्रध्य श्रोमःसेवायै समर्पते ।

जनस्थाने संजातस्येकोनविंशतितमस्य नि. भा. व. आ. वैद्यसंमेळनस्य खागतसामित्या [सन १९२९] महाराष्ट्रीयाणां सहाय्येन संकल्पितस्यांगी-कृतस्य त्रिदोषविषयककार्यस्य एतावत् कालपर्यन्तम् [१९४०] अनेकरूपेण परिणतिरभवत् । १ पंचरातरुप्यकपारितोषकदानपूर्वकं त्रिदोषसर्वस्वनामक-प्रबन्धानां द्विवारं याचनम् , २ समागतप्रबन्धानां द्विवारं परीक्षणम् , उत्तेजनार्थं किंचित् पारितोषकदानं च [१५० रुप्यकमितम्] । ३ श्रीमतां गंगाधर विष्णु पुराणिक महोदयानां धनन्ययादिसंपूर्णसहाय्येन पनवेलग्रामे महाराष्ट्र-वैद्यविदुषां त्रिदोपचर्चापरिषत्करणम् , ४ तेषामेव महाभागानां धनव्ययेन तस्याः परिषद इ।तेवृत्तस्य प्रसिद्धीकरणम्, ५ त्रिदोषविषयकप्रथनिर्माणार्थं ग्रंथनिर्माणसमित्याः स्थापनम् , ६ तस्याः समितेर्प्रथययनार्थं विविधानां विचा-राणां चर्चाकरणाय १ पुण्यपत्तने, २ जनस्थाने, १ अहमदनगरे, १ पनवेलम्रामे इति समित्याः पंचषडाधिवेशनानि । ७ त्रिधातुत्रिदोषनामकप्रथस्य-महाराष्ट्र-भाषया निर्माणं (यस्य गर्विाणवाण्या-त्रिदोषविषयकसंपूर्णवाङमयावलोडनसहित रूपांतरं भूत्वा प्रकाशनं भविष्यति) ८ वाराणसीयं पंचमहाभूतित्रदेशिषपरिषत्कार्यं, ९ इदं चेतिवृत्तप्रकाशनम् इति सर्वमिषकार्यजातम् स्वागतसमित्याः सकाशादेवाभवत् । अस्मिनितिवृत्ते मया नामूलं किमपि केवलं मनोगतं वा लिखितं, न वा केषांचन मतविपर्यासः कृतः । तथापि संस्कृतवाणिवेषमूषा-दानावसरे ममाऽज्ञानाद्वा, अपाटवाद्वा, अनवधानाद्वा, लेखनकौशल्याऽभावाद्वा, यानिकानि चित्रखलनानि संपन्नानि वा दोषास्समुत्पन्नास्तदर्थः क्षंतव्योऽयं मम मंतुः, तस्योत्तरदायित्वं ममैव न तेषां महाभागानाम्।

अस्येतिवृत्तस्य संकलने, मुद्रणे, प्रथने, प्रेषणे च सार्धसहस्रस्य-कादप्यधिको भवेद्ययः, अतः सर्वेभ्य एव विनामूल्यं प्रेषितुमिदं नैव शक्यम् । सर्वेरिप आभारतीयैः पंडितैर्वेद्यवरैः, वैद्यकवृत्तपत्रमासिकपत्रसंपादकैः, तत्तस्था-नस्थापितायुर्वेदिविद्यालयमहाविद्यालयादिसंस्थाचालकैः, अनेकविधायुर्वेदसंस्था-चालकैः प्रान्तीयप्रामीयवैद्यमंडलैः, सार्वजनिनवाचनालयसंचालकैः, आयु-वेदिविषये प्रेमादरदृष्ट्याऽवलोकियतृभिरुदारैर्धनिकैः अस्येतिवृत्तस्य मूल्यदानेन, सहाय्यदानेनैव खांकारः कर्तव्यः, यस्य विक्रयप्राप्तद्रव्येण मुद्रणादिनिमत्तो-त्पन्नं ऋणं विगतं भवेत्। तथा त्रिधातुत्रिदोषमीमांसाप्रंथस्याऽपि मुद्रणादिकरणे सामर्थ्यं छभेत ।

अस्मिन्नितिवृत्ते यावज्ज्ञातानि त्रिदोषविषयकाणि वैद्यविदुषां दक्षतराणामथचान्येषामिप पंडितानां मतानि परिषरपूर्वकालाविन्छन्नानि संगृहीतानि ।
परिषत्कालानंतरं समागतानि मतानि न संगृहीतानि । केवलं मुद्रितपुस्तकानां
निवन्धानां नामाविलस्तु अग्ने प्रदत्ता । अस्मिविषये पंडितानां सांप्रतं प्रतिदिनं
आलक्ष्यते चेतः। अनेकै प्रथक्तेषण संपाद्यते प्रथसंपितः। सातारानगरवास्तव्या
डॉ. मो. ना. आगाशे महोदयाः, वैद्य पंचानन गुणेशाक्षिणः, पंडितप्रवरा
डेग्वेकरमहाभागाः खलोकं गता मालवणस्था श्रीराम महादेव पुराणिकाः
अस्मिन्वषये प्रवन्धलेखका इति तु सुविज्ञातमेव । नेते प्रवन्धादि पुराणिकाः
अस्मिन्वषये प्रवन्धलेखका इति तु सुविज्ञातमेव । नेते प्रवन्धादि पुराणिकाः
अस्मिन्वषये प्रवन्धलेखका इति तु सुविज्ञातमेव । नेते प्रवन्धादि पुराणिकाः
स्वाधारिणस्तथापि पूर्णावस्थां गता इति । आरोग्यदर्शननामक एको लघुः
प्रवन्धः संमेलनपित्रकायां प्रकाशित एव । निवेदनस्य तार्थ्यमिदमेव यत् अयं
विषयः साप्रतं एकोनिवश्वेद्यसंभेलनसमयादूर्धं पंडितप्रवराणां विचारकक्षागतः
संवृत्त इति तु स्पष्टमेव । अस्मात्कालात्परमेव त्रिदोषविषयभवाधिकृत्य १ पैठणप्रामे
त्रिदोषचर्चापरिषद् २ रद्दीहळ्ळी [कर्नाटक] त्रिदोषचर्चापरिषद् ३ विजयनगरे त्रिदोषचर्चापरिषद् इति बभूदुरन्या अपि चर्चापरिषदः । तथा स्थले स्थले
वेद्यमंडलेषु आयुर्वेदविद्यालयेषु अस्वैव चर्चाप्रमृततरा प्रचिल्ताऽवलोक्यते ।

अथचाऽयं विषयो शास्त्रीयिनिर्णयस्यान्तिमामवस्थां सांप्रतं धारयति । त्रिदोषाः केवछं ऋषीणा कल्पनेव न किमपि वस्तुतस्विमस्यारम्य विचाराणा मुक्तमणं त्रिदोषा नैव केवछमशास्त्रीया कल्पना किंतु अनिर्णातस्वरूपं शास्त्रीय-संशोधनिनकषे निकषणयोग्यं विद्यते किमपि द्रव्यमिति पाश्चात्यविद्याविभूषि-तानां तज्ज्ञानां मतानि प्रकटीभवंति । वाराणस्यां संजातयोः परिषदोस्तु महत्कार्यमिदमेव संपन्नम्-यत्-पंचमहाभृततस्वप्रणालिस्तथा तन्मूलि ष्रिता-त्रिदोषतस्वप्रणालिर्यद्यपि पाश्चात्यतत्तत्त्वप्रणाल्याः सकाशादत्यन्तं भिन्नको-टीमधिरुढाऽधुना दृश्यते, तथापि काल्वशात्, संशोधनसहाय्येन, चर्चा-परिषद्ध संधायसंभाषापद्धसा च द्वे अपि प्रणाल्यो एकरूपं गमिष्यत एवः

इति पिंडतानां संशोधकानां समुत्पन्ना श्रद्धा मनिस । न चेऽयं प्रणािलः । पिरह्यासस्य विषयः । (त्रिदोषास्तु नैव कल्पना, नैवाऽचिन्त्यानुमेयशक्तिरूपा, वा नैव सर्वथा अदृश्याः किंतु त्रिदोषास्तु नित्योत्पत्तिमंति, वृद्धिक्षयशीलािन, अवस्थािविशेषात् स्थूलमूक्ष्मसूक्ष्मतररूपािण, जीवप्रकृत्यनुबद्धािन, शरीरभाग- रूपाणि, संशोधनप्रणाल्या संशोधनाह्याणि द्रव्याणि इति विश्वासस्समुत्पन्नो विद्यते। त्रिवित च शीव्रमेव रसायनशास्त्रप्रयोगालये संशोधनकक्षायां समेत्य संशोधन- कर्मणा प्रत्यक्षतः स्थूलरूपेण, काचनिलकासु, सूक्ष्मदर्शकयंत्रे च इमे त्रिदोषास्स्वीयं रूपं प्रकटीकरिष्यन्तीति । समागताऽयं कालो नातिदूरतरः किंतु निकटवर्तिरेव वर्तते ।) भवतु ।

अनयोः परिषदोः सर्वथा साफल्याय यैर्यैः कायेन, वाचा, मनसा, अर्थेन, बुध्या, विद्यया, परिश्रमेण च सुमहत्साहाय्यं प्रदत्तम् , येन च परिषदाः कार्यं सुचारु संपन्नं तेषां सर्वेषां अभिनन्दनं करोमि । विशेषतस्तु प्रात:-स्मर्णीया महामना पंडित मदनमोहनमालवीयाः, महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्कभूषणाः महामहोपाध्याय गणनाथसेन सरस्वतयः, पंडितप्रकाण्डराजेश्वर शााक्षिद्राविडाः, विद्वद्रत्न देवनायकाचार्याः, महामहोपाध्याय गिरिधरशर्मा चतुर्वेदिनः, कविराज उपेन्द्रनाथदासाः, कविराज प्रतापींसहरसायनाचार्याः प्रो. दत्तात्रेय अनंत कुळकर्णीमहामागाः, डा. घाणेकरमहारायाः, आयुर्वेदा-चार्या दुर्गादत्तशास्त्रिणस्तथा, आयुर्वेदाचार्या जगन्नाथप्रसाद वाजपेयिनः, पंडितप्रवरा हरिनाथशास्त्रिणस्तथा प्रामुख्येण आयुर्वेदमार्तण्डा जादवजी आचार्या इमेपरमं संमानाहीस्तथा अभिनन्दनाही एव, यैः सर्वथा परिषत्साफ-ल्याय अवर्णनीयागणनीयश्रमपूर्वकं प्रयतितम् । तथा च परिषदर्थे विद्या-वाचरपतयो मधुसूदनसरस्वतयो, आयुर्वेदमार्तण्ड टक्ष्मीरामस्वामिनो श्रीशंकर तर्करत्नाः श्रीफणिभूषणतर्करत्नाः वैद्यश्रेष्ठाः सत्यनारायणशास्त्रिणो प्रा. एस्. एस्. जोशी महाभागाः कॅ. जी. श्रीनिवासमूर्तयः डॉ. पाठक महाभागाः यैः परिषदोर्निरीक्षककार्यं स्वीकृत्य सर्वोत्कष्टत्वेन पारितम् । अथ च ये दूराद्दूरतरम् प्रवासं कृत्वा परिषद्धें समागताः पंडितश्रेष्ठा दक्षतरा दार्शानेका वैद्यवराश्च सभास्तारस्तथा सर्वेश्रेष्ठाः कार्यकर्तारो द्रव्यसाहाय्यकास्तथा स्वयंसेवकास्तान्

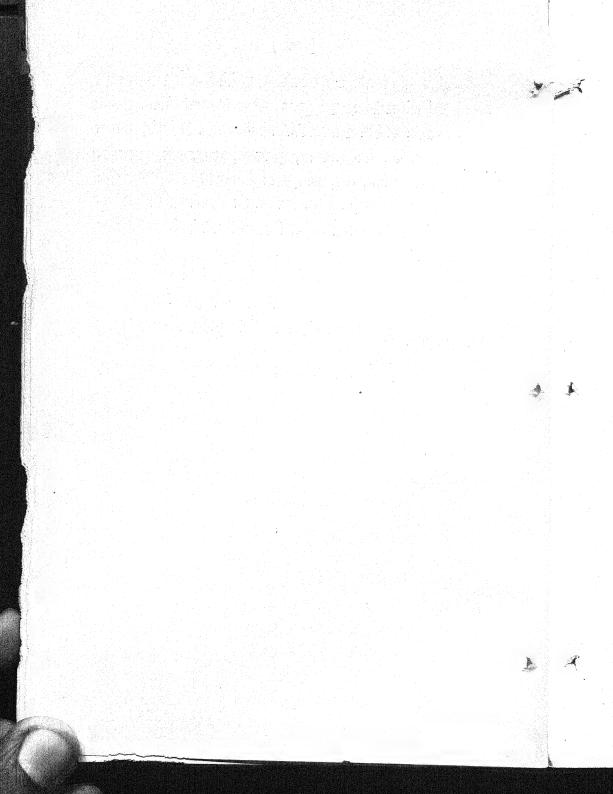
सर्वान् सिवनयमिमनन्दामि येषां सर्वेषामेव साहाय्येनेदं कार्यं सफलमभवत् । अन्ततो दिविकालेनऽपीदं इतिवृत्तं मुद्राप्य सर्वेषां सज्जनानां सेवाये समर्धते तत् सदयहृदयेः स्वीकृत्य कृपाकटाक्षीकीयतामयं जनइति विज्ञाप्यते, तथा च इतिवृत्तरचनायां येषां येषां प्रबन्धाः, पुस्तकानि, व्याख्यानानि, भाषणानि, साहाय्यभूतानि जातानि, तान् सर्वान् सादरं संभावयामि । विश्वासिमि मदीयः त्रिदोषिवमर्शनामको अपूर्णः प्रवन्धस्तथा प्रंथनिर्माणसिन्यास्त्रिधातुत्रिदोष-मीमांसा इति द्वाविष प्रबन्धौ संपूर्णो विद्वद्वराणां द्विष्टेगोचरौ नातिचिरात् समागद्येतामिति ।

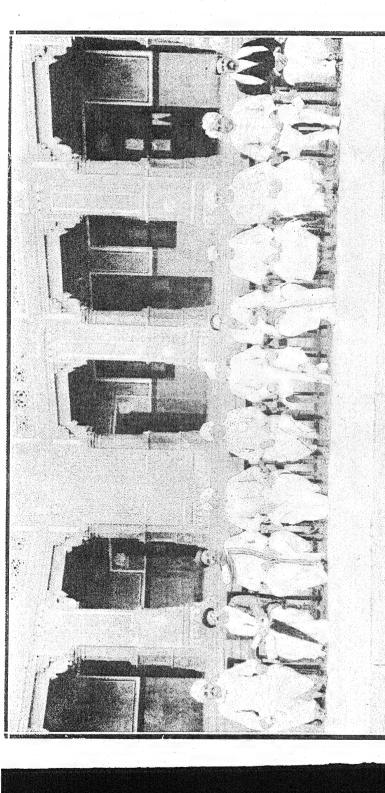
श्रीमतां वशंवदः

वामनशास्त्री दातारः

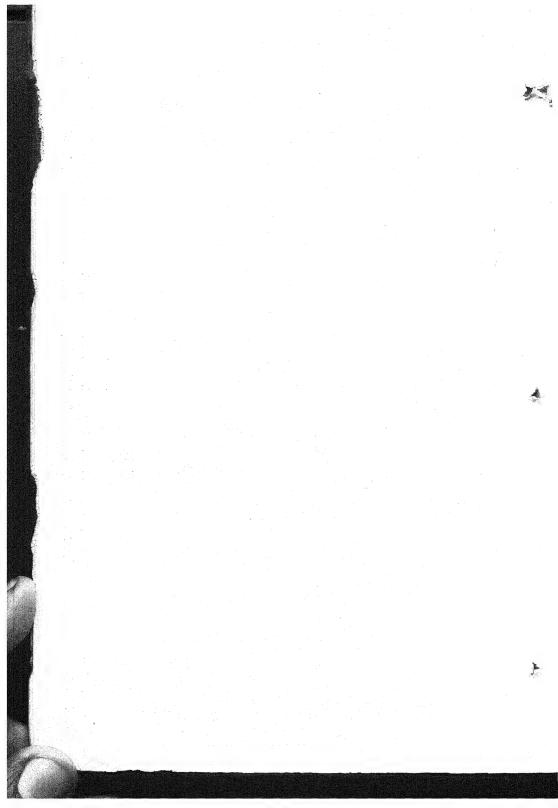
ता. १८।४०.

सहाय्यमंत्री, वाराणसी-पंचभूतित्रदोषचर्चा-परिषद्. तथा मंत्री, एकोनविंशवैद्यसंमेळनस्वागतसमितिः, जनस्थानम्.





पं. मदन मोहन माळवीयंत्री, म. म. कविराज गणनाथ सेन, पं. त्रजबिहारी चतुर्वेदी, पं. त्रश्मीराम स्वामी, कविराज प्रतापासिंह, पं. त्र्यंबक्रज्ञास्त्री आपटे. डाबीकड्रन—पं. जगन्नाथप्रसाद वाजपेयी, पं. वामनशास्त्री दातार, पं. कृष्णशास्त्री कवडे, पं. जादवजी आचार्य, कॅ. जी. श्रीनिवाससूर्ति,



काशी पंचमहाभूतित्रदोषचर्चापरिषद् तिवृत्तम्।

पूर्वपीठिका

अयि भारतीया प्राच्यविद्याविज्ञानबद्धादरा महाभागाः सुविदितमेव तत्र भवतां भवतां यदतीते कार्तिके मासि आंग्छ शाके १९३५ तमे बत्सरे नोव्हेंबरमासे द्वितीयवारिकामारभ्याष्ट्रमतारिकापर्यंतम् वाराणस्यां श्री हिंदूविश्व-विद्यालये सप्ताहमेकिमयं परिषन्महता समारेहेण संवृत्ता । यस्यां भारतीयसर्व-दार्शनिकानुमतपंचमहाभूतविषये तथाच भारतीयायुर्वेदीयित्रदेषिविषये संबभूव विचारः । अस्यां परिषदि एतयो द्वयोविषययोः प्राचीनशास्त्रसंगृहीतयोगत-शताद्वपर्यंतम् निरपवादयोः कोनाम चर्चावकाश इति सविस्मयांतःकरणानां विदुषामवबोधाय दीयतेऽत्राल्पीयसी गतसप्ततिमितस्य कालस्य एतद्विषयिकी पूर्वपीठिका । यया सर्वेऽपि श्रेष्ठा अधिगतार्था भवेयः ।

वेदकालादारम्य सनातनस्वरूपं प्राप्तानां भिन्नभिन्नतत्वैकिनिष्ठानां, भिन्नभिन्नतावलंबिनां खमंतव्यसिष्यै तर्ककर्कराबुष्या सदाप्रहेण विवदतां सर्वासां विद्यानां अस्या सर्वस्याः जडाऽजडसृष्ट्याः सर्जने उपादानकारणं पंचमहाभूता एवेति अभिन्नो विषयः तऐव पंचभूताः त्रिदोपत्वेन परिणताः संतो सर्जीवसृष्टिसर्जने उपादानत्वं जग्मुरिति च । एतादृशे निरपवादे प्रचलति सिद्धांते कियमाणे च तन्मूले व्यवहारे आयुर्वेदीयचिकित्साव्यापारे च पाश्चात्यानां राज-कीयसत्ताक्रमणेन साकं प्रादुर्वभूवाऽक्रमणं तदीयानां विद्यानां भारतीये प्रदेशे। राजशासकानां च स्वकीयविद्याधमीदीनां भारतीयासु प्रजासु संक्रामणे बभूवा-विरतः प्रयत्नः । स्थाने स्थाने आंग्लविद्याप्रदानार्थं निष्कासिता विद्याल्याः ।

1

यथैव सर्वप्रकाराणां विद्यानां वितरणे बद्धादरास्तथैव पाश्चात्यवैद्यकविद्याप्रदानेऽपि उत्साहभरितास्त कुर्वंति स्म गभीरं प्रयत्नभरम् । इयं हि खलु पाश्वात्यशासकानां विशेषतो आंग्ळानां शासनपद्धतौ तथा सर्वस्मिन्नपि व्यवहारे सविशेषा सरणिवि-द्यते यया शासिताः नैकेनापि प्रकारेण स्वावलंबिनो भवितुमईति सर्वथा परावलंबिन एव खर्जीवनन्यवहारे भूत्वा खर्जीवनं नयेयुः । अथ च मदं मदं इमे हि शासिता निश्चयेन खर्कायविद्यासु, धर्मे, संस्कृत्यां च अधीतान्यविद्या-संस्कारेण नष्टादरा खाँयेनैव प्रयत्नेन खकीयसारसर्वखनाशे प्रोद्यताः संतो, '' बुध्वाहतास्तु नितरां सुहता भवंती ''त्येतस्या उत्तया सार्थकतां प्रत्याययंति । अयमेव परिणामः अस्मिन्भारते वर्षेऽपि दृष्टिपथमनुभवपथं च समायातः । नव्यविद्याशिक्षिताः प्रायः सर्वेऽपि भारतीयविद्याकलाकौशलशास्त्रधर्मव्यवहारा-दीन् उपहसंतो सर्वथा तान् अज्ञानपूरतं जल्पितमिति वदंतो परशोर् ड इव स्वीयसर्वस्वच्छेदने प्रोयुक्ता दरयंते । आयुर्वेदशास्त्रविषयेऽपि इदमेवालकै र्सवतः प्रसक्तमभूत् । अस्मन्महाराष्ट्रदेशीयाः प्रथिता दक्षतराः डा. गणेश कृष्ण गर्दे महाशयाः अष्टांगद्भदयमाधवनिदानयोर्महाराष्ट्रभाषानुवादं चक्रः। तैस्तदा तद्ग्रंथयोभूमिकालेखनं कृतम् । तयोभूमिकायाः आयुर्वेदीयसिद्धांत-मूलभूताः त्रिदोषाः न वस्तुगम्यानि द्रव्याणि शरीरे वर्तमानानि किंतु ऋषिभिः केवलं कल्पिता एव इति अधिक्षेपः कृतः । (ऐशवीये १८९० तथा १९०४ अद्धे) " अष्टांगहृदयभूमिकायां आर्यवैद्यकस्य मूलतत्वानि " इत्य-स्मिन् प्रकरणे, " मनुष्यस्य शरीरे रोगावस्थायां वा निरुग्णावस्थायां सर्वेऽपि व्यापाराः घटनात्मका वा विघटनात्मका वातिपत्तकफनामकेभ्य एव सिध्वंति इति यन्मतं वा कल्पना आर्यवैद्यकस्य तस्यैव त्रिदोपवाद इति अस्माभिः पूर्वं संज्ञा प्रदत्ता "। " व्रणप्रश्नाध्याये सौशुतीये यद्वर्णनं दश्यते तेन तथा चरकस्य वातकलाकलीयाध्याये च यद्दर्णनं वर्तते तेन आद्यायाः सृष्टेर्घटना-यास्तथा विघटनायाश्च यानि वायुः सूर्यः चंद्रश्च कारणानि इति यथा तैरवलेकितं तथैव शरीरेऽपि साक्षात् वायुः सूर्यः चंद्रमाच रूपांतरिता वर्तते इति ऋषिभिः कल्पन। कृता ''। ' वातिपत्तकफानां अयमिप व्यापकोऽर्थः सुदीर्घात्कालाद-

नंतरमेव व्यवहारे आगत इति भाति । प्रथमतस्तु वायुर्नाम उदरानाहशूलादीनां कारणं, पित्तं तु वमने यदम्छं हारितं पतित तदेव, कफस्तु मुखानिसृत-श्वेतवर्णोस्रावः इस्येव अर्थः प्रचिति । भाव्य इति "। " मानवसमाजस्य बाल्यावस्थायां रागास्तावत् ज्वरकासातिसारवांतिशूळकामळाशोफा एते एव । इमे विकारास्तेषां लक्षणैः कारणैः वातादिना भवंतीति कथितं चेत् तेषां निदानं जातमिति तदानीं विश्वास आसीत्। प्रकृष्टवातयुक्ते देशे वा काले पर्यटतः शिरःशूलोत्पतिर्जाता चेजाता शरीरे वायुवृद्धिः । आतपे आहिंडमानस्य शिरःशूळे संजाते कुपितं पित्तं । शीतयुक्ते स्थळे गच्छतः प्रतिस्यायोत्पत्ती वृद्धः कफः । एतेषु केषुचिद्दिकारेषु पतंतौ पित्तकफौ प्रत्यक्षतया दृश्येत एव । अतस्तयोरेव वृद्धिरींगकारणमिति कथिते न काऽपि हानिः। एतयोरन्यतरकारणेषु दृष्टिक्षेपस्य वा जिज्ञासायाः किं कारणम् ? ' । ''अन्यद्पि शरीरे दोषत्रयाणामेवा-स्तित्वकल्पनायां कारणं, यत्तदा धर्मविचारे वा तत्त्वविचारे 'त्रि' इति संख्याया महत्वमितरायितमभूत् । यथा लोकत्रयं, अग्नित्रयं, वेदत्रयं, गुणत्रयं, देवत्रयं, देहत्रयं इत्यादि । तेन आत्रेयादीनामपि शरीरे शुभाशुभप्रवर्तकस्य देशपत्रयस्य कल्पनायामपि मनः प्रवृत्तं भवेदिति संगच्छते "। " चरकस्य सत्रस्थानस्य तिस्नैषणीयाध्याये पर्यालोचिते इदमनुमानं युक्ततरं प्रतिभाति । अस्मिन्नध्याये प्राणैषणा, धनैषणा, परलोकेषणा इति तिस्तेषणायाः वर्णनानंतरं सप्ताष्टान्य-न्त्रिपुटिवर्णनं कृतं इति दश्यते "। " एवं शारीरेद्रियविज्ञानशास्त्राणां रुधिराभिसराणाद्यर्वाचीनज्ञानाभावात् शारीराणां व्यापाराणां जिज्ञासोपशमनार्थं एतेषां व्यापकानां अतएव काल्पनिकानां वातिपत्तकफानां प्राचीनैः ऋषिभिः संयोजना कृता । पाश्चिमात्यवैद्यकशास्त्रस्य तथा रसायनपदार्थविज्ञानशास्त्रयो-स्तथा इंद्रियविज्ञानशास्त्रस्य ज्ञानं यथावद्यस्य भवेत् तस्मै इयं ऋषीणां कल्पना सर्वथा मिथ्या तुच्छा इति प्रतिभासिता स्यात् तथा स आयुर्वेदे आस्तिक्य-बुद्धिं पूज्यबुद्धिं च जह्यादिति नात्र संदेहः इति "।

तथाच महाराष्ट्रभाषानुवादितमाधवनिदानस्योपोद्धाते त एव महाभागाः—

यत्र प्रत्यक्षप्रामाणमिकंचित्करं तत्रानुमानप्रमाणस्याऽवकाशः । अदृश्यानां घटनानां कल्पना दृश्येरेव भवितुमर्हति । अतः रागोत्पत्तौ शरीरे बाह्यतः परिदृश्यमानाः याः प्रतिक्षणं भिन्ना घटनाः समवलोक्य प्राचीनैः त्रयाणामेव प्रकाराणामनुभवः कृतः। १ शरीरे उष्णतायाः वर्धनं, २ शैत्यस्यापि वर्धनं, ३ तथा शरीराद्वहिः केषामपि पदार्थानां गमनमिति । सर्वेष्वपि रोगेषु प्रधानतयाऽस्मिन्देशे हिमञ्बरस्यैव तै: प्रथमतः पर्यालोचनं कृतं भवेदिति गम्यते । तस्मिन् शीतज्वरे प्रथमं शैत्यस्य प्रादुर्भावः । तदनु शरीरतापाधिक्यं । द्वयोरपि शीतोष्णकालयोः पित्ताद्वमनं, तृष्णावृद्धिः, शिरःशूलं इत्यादयो विकाराः प्रादुभवंति । तदनंतरं स्वेदोद्गमो भूत्वा ज्वरः प्रशांतिमधिगच्छति । एतेषु लक्षणेषु परस्परलक्षणानां वैभिन्यं समवलोक्य तेषां कारणस्याऽपि वैभिन्य-मावश्यकमिति तेषां कल्पनाप्रादुर्भावो युक्त एव। तानि तु कारणानि उष्णता शैत्यमिति तैः कल्पितानि । उरसो विदाहः, पित्तोद्रमनं, तृष्णा, हस्त-पादनेत्रादीनां ज्वलनं, घर्मः इत्यादीनि लक्षणानि ज्वरसजातीयानीति निश्चित्य ऊष्णवर्गे, तथा मुखस्रावः कफोद्रमनं इत्यादीनां हिमसजातीयःवात् शीतवर्गे, तै: समावेशः कृतः । तथैव हिमज्वरे शीघ्रोच्छ्यसितत्वं, जृंभाधिवयं, प्रलपनं, अंगविक्षेपणं, अंगमर्दः इस्यादीनि अवस्यं भावीनि लक्षणानि तापहिमयोर्वि-भिन्नजातीयत्वात् एतेषां अन्यदेव कारणं स्यात् इति वितक्यं श्वासादिभ्यः प्रस्यक्षोपलम्य वायुरेव कारणमिति च मत्वा वातवर्गे तेषां प्रक्षेपणं कृतम्। अंततः बाह्यसृष्टौ शैत्यं औष्ण्यं वायुरिति त्रयं शक्तिमत् कार्यकरं यथा दृश्यते तैरेव शारीरोऽपि व्यापारः संपत्स्यति इति तैः कल्पना कृता । याच हिमज्वर-विषयिका कल्पना तस्या एवान्येष्वपि रोगेषु लक्षणवर्गीकरणं कृत्वा विस्तारः कृतः। बाह्यसृष्टो समुपलभ्यमानाः शैलोष्णवाताः चंद्रसूर्यवायुरूपेण यथा दरयंते तथा शरीरे वातवित्तकफरूपेण शैल्याण्णवाताः प्रतिवसंति । यथा [ब्रह्मांडे] बाह्यमुष्टै। चंद्रः शीतस्य खनिः, सूर्य उष्णस्य खनिः, वायुः सर्वगतेः कारणं, तथैव पिंडे (शरीरे) कफः शीतवीर्यस्य खनिः, पित्तं ऊष्णवीर्यस्य खनिः, बायुः सर्वशरीरगतेः कारणमिति प्राचीनानां कल्पनासिद्धांतः । ऊर्ध्वं कृतेन 4

विवेचनेन वाचकानां बुद्धो इदमागतमेवस्याचत् रागोत्पत्तिमीमांसायां पाश्चास्य-वैद्यकगतसिद्धांतैः संशोधनैश्च आयुर्वेदीयोऽयं त्रिदोषवादः सर्वथा मिथ्यैव "। तथैव इमे गर्देमहाशया एव पुण्यपत्तनीयवसंतन्याख्यानमालायां खन्याख्याने '' आयुर्वेदीयं रसशास्त्रं सर्वथा नैव रसायनशास्त्रसंज्ञां प्राप्नोति । अस्मत्प्राचीन-ऋषीणां ज्ञानं सर्वथा अबलाज्ञानवत् तुच्छं । इंद्रियविज्ञानशास्त्रे तु ऋषीणां नैव प्रवेशोऽपि विद्यते । म्त्रोत्पत्तिविषये चरकाचार्यास्सर्वथा अज्ञा एव । त्रिश-तषष्ठिदिनात्मकं संवत्सरं, यज्ञीयकुंडनिर्माणे त्रिशतषष्ठयात्मकानां इष्टिकानां आवश्यकता, अतः शरीरे त्रिशतपष्टिमितानामस्थामावश्यकतेति तैः प्रतिपादितं । मस्तुलुंगे ज्ञानास्तित्वस्य ज्ञानं नैव तेषां तदा आसीत् । पारदस्य वर्णनं सर्वथा जुगुप्सावहं तैः कृतम् । महाराष्ट्रभाषायां संगजिरा इत्युपाव्हं द्रव्यं संगेजिराइत इति युनानशद्वापभंश इति सत्वे तैः शंखजीरकमिति तस्मै नाम दत्तमिति। ऋषीणां सर्वथा मौर्स्यम् इ. इ. '' [वसंतन्याख्यानमालान्याख्यानं हों. गर्दे-महारायानामध्यक्षीयं भाषणं ता. २४।५।१९१२] इति तैस्तत्सदृशैः अन्येश्वानेकैः समुत्पादिते विवादे, आयुर्वेदे च अशास्त्रतां नीयमाने सर्वस्मिन् भारते वर्षे महान् संभ्रमस्समुत्पनः । आयुर्वेदीयप्रथेषु तत्पारिपाट्यां अनेकषाम-श्रद्धा चोत्पना । शासका अपि भारतीयानामेव दक्षतराणामेतादशान् आक्षेपान् पुरस्कृत्य आयुर्वेदोन्नत्यै किमपि कार्यं कर्तुं नैवाऽनुमताऽद्यापि संपन्नाः। अथ च तेऽपि वारंवारं उद्घोषयंति आयुर्वेदस्य अशास्त्रीयत्वं, उत्तेजनानर्हत्वं, अज्ञानप्रचुरत्वं, सर्वथा विज्ञजनाश्रयाऽयोग्यत्वं । साधयंति चास्मिन्देशे स्वर्का-यवैद्यकज्ञानप्रसरणं, तद्वारा खकीयचिकित्सापद्धत्याः पोषणं, तदर्थं पाश्चात्य-सिद्धौषधीनां विक्रयं। नयंति च कोटिशो रूप्यकााणि स्वदेशे क्रीतौषधिमूल्यद्वारा। प्रतिदिनं च ऱ्हासमायाति आरुर्वेदीया चिकित्सा । भिषजश्च स्वोदरपूरणेऽध्य-समर्थास्सहाय्यहीनाः सहस्रशः संजाताः । छप्तप्रायमस्मदीयं आयुर्वेदीयशा-स्त्रज्ञानं सर्वथा नारामुखं समापतितं । एवं विधायामवस्थायामुत्पन्नायां, क्रियायाः प्रतिक्रियोत्पतिर्भवस्येवेति ।नियमात् , डा. गर्देमहाशयानां प्रजल्पितं समाकण्यं मोहनिद्रां त्यक्त्वा जागृताः केचन आयुर्वेदपारीणास्तथा आयुर्वेदाभिमानिनो-

दक्षतराश्च केचित् आयुर्वेदोपिर गृहीतानां आक्षेपाणामसत्यखरूपं दिदर्शयिषवो आक्षेपखंडनाय संनद्धा बभूवुः । अथ च एषामाक्षेपिनरासकाणामि प्रकारदेविध्यं वर्तते । एकश्च आयुर्वेदीयशास्त्रपादश्चनां आयुर्वेदोक्तवचनैरेवाक्षेपखंडनप्रकारकः । अपरश्च आयुर्वेदीयत्रिदोषाणां पाश्चात्यपद्धत्यां दिशतस्य कस्यचिदिप क्रियाखरूपस्य साम्यप्रदर्शनपरश्च । एतिसम्त्रिप प्रकारद्वेविध्ये प्रयतमानानां भिषजां दक्षतराणामिष अस्मिन्विषये प्रत्येकशो मतान्यत्वं प्रदर्शितमभूत्, भवित चैतावत्कालपर्यंतमिष । अस्य भिन्नभिन्नाभिप्रायप्रपूरितस्य प्रकारद्वेविध्यत्य क्रियते सारसंग्रहः । येनैतावत्समयं का स्थितिर्विद्यतेऽस्य त्रिदोषवादस्थेति तथा एतेनैव त्रिदोषपरिषदोद्धमोऽपि सम्यक् ज्ञातो भविष्यति । अयं
सारसंग्रहस्तावत् यथा प्रयत्नं समधिगतमतानां दर्शनपर एव । अस्मिन् सुविस्तृते
भारतदेशे तत्तत्प्रांतीयपंडितैः कदा, किस्मिन् काले अस्मिन् विषये किं मतं
कुत्र प्रकाशितमिति नैव साकल्येन विज्ञातुं शक्यम् । अथाप्यस्मिन्मतसारोद्धारे
आभारतीयपंडितानां का का विचारपद्धतिरिति ओदनसिक्थन्यायेन परिज्ञातं
भवेत् ।

महाराष्ट्रे वादस्यास्योत्पन्नत्वात् महान् किल वादप्रतिवादः प्रारब्धोभूनाद्यापि समाप्ति गतः इति लक्ष्यते । ऐश्वाये १८९० मिते वत्सरे आयुर्वेदमहोपाध्यायेति बिरुदं धारयद्भिः सुविख्यातनामधेयैः शंकर दाजीशास्त्री पदे
महाश्रायैः आर्यभिषक् संज्ञकं मासिकं पत्रं आयुर्वेदविषयोहापोहाय निष्कासितम् । तस्य पत्रस्य ऐश्वाय १९०१ वत्सरस्य प्रथमांके त्रिदोषवादमधिकृत्य
" त्रिदोषकिमिशन " शीर्षके निम्नगतो लेखः प्रसिद्धिं नीतो वर्तते ।
" मोहमय्यां त्रिदोषविषयस्य प्रत्यक्षशारीरशास्त्रं विचार्य का सत्या वर्तते
स्थितिरिती निश्चेतुं इदं त्रिदोषकिमिशनं स्थापितं वर्तते अस्मिन् विद्वांसो वैद्याः
दक्षतराः [डॉक्टर्स] हिकमाश्र नियुक्ताः संति अन्यान्यस्थानस्थविद्वद्वराणामिप साहाय्यं गृहीतं भविष्यति । [किमिशनेन] त्रिदोषविचारकमंडलेन
अस्य विषयस्य निश्चितस्वरूपप्रदर्शकः प्रस्तावः पश्चात् प्रस्तोष्यते । सांप्रतं

तत्प्रस्तावसाहाय्यभूतान् प्रश्नान् निर्माय भारतीयेषु सुप्रसिद्धवैद्यडॉक्टर्-हिक्सेषु प्रहीयते । तेषां समागतानि उत्तराणि पर्यालोच्य पश्चान्निर्णयो भविष्यति इति '' । मंडलेन निष्कासितानां प्रश्नानां यैर्थैर्यानि यानि दत्तान्युत्तराणि तान्यध्स्तात्संगृह्यन्ते ।

श्रीमतां अवधूत वासुदेव वैद्यानां अभिप्रायः

(एरंडोल पूर्वखानदेश, ऐशवीयाद्व २२।१।१९०१)
" देहोऽयं वाताधिष्टानः ":—

- (अ) वायोः (हवा) भारविषये (प्रेशर) पदार्थविज्ञानशास्त्रगत-विचारेणैतिसिद्धं भवति यदेहोऽयं वाताधिष्ठान इति ।
- (आ) जलेऽप्यंतर्लीनो वायुर्वर्तते। अतः शरीरगतेषु रक्तादिद्रव-द्रव्येषु वर्तते वातस्य व्याप्तिरिति। यतः शोणितस्य सहस्रमिते अंशे ७९५ अंशमितं जलं२०५ अंशमिता अन्ये देहघटकद्रव्यकणा वर्तते। अतः कियता-प्यल्पांशेन विद्यते शोणिते वायुरिति।
- (इ) सृष्टिशास्त्रे २६९ पृष्ठे (१४१) नियमे द्रवद्रव्यमिव केचित्सच्छिद्रपदार्था (वस्त्नि) अपि कुर्वंति वायोः शोषणम्। इदं शरीरं अंततः सच्छदं वर्तते । अतः तिस्मिन् वायोश्वलनिक्रयायाः प्रतिवंधो नैव कदापि मिवता। अतः सर्वेषु स्रोतरसु वातव्याप्तिर्वर्तते । तथैव घनरूपास्थिसिहतशेष-द्रव्येष्विप वातव्याप्तिर्वर्तते एव । रक्ते विद्यते वातरय व्याप्तिः । तत्तु यिसम् यिसम् शरीरभागे संचरित तिसम् तिसम् शरीरभागे अस्थिषु मञ्जासु अपि वातव्याप्तिस्सिद्धैव । अत्र साक्षिणो ज्ञानतंतव एव । ज्ञानतंतवस्तु रंभास्तंबत्विगव जालगृहयुता वर्तते । अतस्तेषां सिच्छदेषु भागेषु वायोरेव स्थितिः । तथैव तेषां तंत्नां घटनाकारणमि विद्यते शोणितम् । तथैव ' नर्व्हज् ' इत्येतेषां वातवाहिनीति संज्ञाकरणमि कृतं कैश्चिद्दक्षतरैः ।

(उ) एतेषु ज्ञानतंतुषु वर्तेते द्वौ भेदौ । बोधकश्वालक इति। शरीरे बोधकत्वचालकत्वकृत्यानि वाताधिष्ठितमञ्जैव संभवंतीति पाश्चिमात्य शास्त्रणापि सिध्यति ।

पूर्णतया विचारिते, इमानि चालकबोधककर्माण्यपि वायुत एव भवंतीति दश्यते । तत्कर्मसाहाय्यं तु ज्ञानतंतुभिर्मज्ञातंतुभिर्भवति । यथा सर्वं प्रकाशः वलनादिकं कर्म विद्युता भवति । विद्युद्वहनार्थं ताम्रमयीनां निक्रमानां (ताराणां) साहाय्यमावस्यं वर्तते । तद्वत् तासु निक्रमासु कार्य-कर्तृत्वं विद्यत एव । तथैव मज्जातंतुषु कार्यकर्तृत्वं वायोः । इदमेव वायोः कर्म चरके वातकलाकलीये सूपवार्णितम् । बुद्धेश्च स्नायूनां रोगास्सर्वेपि वातवि-कृत्यैव भवंति । यथा स च विकृतो वायुः (भिन्ना भिन्नाः 'ग्यास' संज्ञकाः) स्वीयेन मार्गेण (मञ्जातंतुरूपेण) गच्छन् , स्वप्रमाणबाहुल्यात् इतरेष्वपि धातुषु प्रविद्यो भवति । अथवा भिन्नभिन्नभयो ज्ञानतंतुभयो भिन्नभिन्नशारीर-स्थलेषु गच्छन् तानि च विकृतिं नयन् स्वकमिपराङ्मुखानि कुर्यादिति । एवं वातस्तु एको दोषः स सर्वस्मिन् शरीरे संचरन् स्थाने स्थाने दुष्टिकरणसमर्थी विद्यते । सर्वस्मिन्नपि शरीरे ज्ञानतंतूनां व्याप्तिर्वर्तत एव । न हि कश्चिदिल्प-यानप्यंशो शरीरस्य यस्मिन् ज्ञानतंतोर्नेव विद्यतेऽस्तित्वमिति । अतः वातस्यापि व्यक्तिर्यस्मिन्नास्तीति नैव विद्यते शरीरस्याल्पोप्यंशः । एवं च रक्ता-दिसप्तधातवो वाताधिष्ठिता एव । प्रकृतौ विकृतौ स सर्वथा समर्थ एव । इदं सामर्थं विबुदादिशक्तया वा प्राणतत्वस्य न्यूनाधिकत्वेन तस्मिन् समागच्छेदिति । मानवशरीरगतं शोणितं यदि " वाताकर्षकयंत्राधः स्थापितं चेत् तस्मिन्वायो-र्बुद्बुदा उद्दमंति । तथैव अ<u>र्धप्रस्थात्मके शोणिते कु</u>डवप्रमाणको वायुर्निर्गच्छतीति पाश्चाच्यानामनुभवः । शुद्धशोणितिसरासु तद्गतशोणितादर्धप्रमाणो वायुरशुद्ध-शोणितसिरास्ववतिष्ठते । शोणिते तदर्धप्रमाणकस्य वायोर्व्याप्तिर्विद्यते । सामान्ये मानवरारि षट् प्रस्थात्मकं रोणितं विद्यते । अतः त्रिप्रस्थात्मकस्य वायोस्तास्मि-न्नवस्थितिर्विचतेति सिद्धं भवति । मानवशरीरस्थकोष्टे (स्थानान्यामाग्निपकानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुंदुकः फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिर्धायते) ये च भिन्नाः

भिना अवयवाश्च वर्तते, तेषु तेषु अन्यान्यानि द्रव्याणि तिष्ठति । तत्तद्रव्यानुषंगित्वेन पृथक् पृथक् भिना वायवे।ऽपि विद्यंते (ग्यासेस्) । तथैव
स्वीयम्वीयघटनायाः स्थानावकाशेन तेषां कार्यकर्तृत्वमपि भिनं भिन्नं विद्यते ।
अत एव वायोः पंचभेदाः संति । अतः प्राणवायोव्याप्तिः उरोदरमध्यपटलस्योध्वं
वर्तते । तथा मुखमन्योध्वंभागे शिरोस्थिनिम्नतो नासापर्यंतं गतस्य कंठिववरस्य
च्छिद्रेऽपि वर्तते । तथा श्वासनिलकाद्वारे (ट्रॅकिया) तथा फुफ्फुसयोस्तथा
द्वदये च शोणितेऽपि अस्य वायोविद्यते व्याप्तिः । स च वायुः प्राणतत्वघटितो
विद्यते । अत एवास्य प्राणवायुरिति संज्ञा । स च नासास्थितया मस्तिष्के
संलग्नया नासोध्वंभागवर्तमानया सच्छिद्रया नाड्या मूर्धगोऽपि भवति ।

समानः:—अन्ननिष्ठका अमारायः पकारायश्चेति त्रितयं पोषणनिष्ठति संज्ञां लभते । अस्मिनले द्वे अत्रे विद्यते । ययोरेकस्मिन् उंदुकस्सलग्नः (अस्मिनुंदुके 'कोलन्' मलधारकमलोत्सर्जक इति चापि संज्ञा विद्यते) ? इदमुंदुकं यत्र लखंत्रे संयुक्तं तास्मिन्खले एकं विद्यते द्वारम् [इलिओसिक-ल्व्हाल्व्ह] येन उंदुकस्यं द्रव्यं पुनरिप पकाराये न प्रस्रेति । अनेनैव द्वारण पकारायस्थादकस्थयोविशुरूपद्रव्याणि भिनानि भवति । अयमेव पकाराय-स्थितो वायुरस्माकं समानः ।

अस्य व्याप्तिः :—आमाशयस्य कश्चिद्भागमारभ्य पकाशयपर्यंतं विद्यते इति । [कार्डियाक आरिफासा आरभ्य इलियोसिकल्व्हाल्व्हपर्यंतं]

अपानः: — उंदुकस्य पृष्ठतो दक्षिणतो वामभागे गुदपर्यंतं यश्चभागः यस्मिन् जळसंचयो विद्यते तत् 'सीकम्' इत्याख्ये तथाच 'पेल्व्हिस् ' इत्याख्ये तथा गुदकांडे च वर्तते । रेक्टम् डिसेंडिंग कोळनस्य अधोभाग एव अपानस्य मुख्यस्थानं । अन्यान्यानिष वृद्धौ, [िकडनी] म्त्राहायः, [ब्ळंडर] मृत्रनिळका, मृत्रद्वारं, शुक्राहायः, गर्भाहायः, गर्भपुष्पप्रदेशः, अंडकोशाः, अंतःफळानि अंडवहनाळिकाश्च इत्यादीन् अवयवान् व्याप्यापानिस्तष्ठति । तथैव पृष्ठवंशरुज्जः, त्रिकतंतवः, गुदारिथतंतवः अस्मिन् प्रदेशे स्वीयाभिर्विपुळाभि शाखाभिर्विद्यंते ।

तासु कटितंतवो पादांगुष्ठपर्यंतमिप प्रसृता वर्तते । अत एतेषु सर्वेषु वाातन्याप्तिस्तु अपानजातीयैव भवेत् । अत एव <u>पातंजले</u> " अपनयनादपान आपादतल्बुत्तिः " वा " नााभिदेशात् पादांगुष्ठपर्यंतमपनयनादपान् " इति लिखितमस्ति ।

उदानः :—मानुषकंठे गिल्नद्वारमारम्याऽमाशयपर्यंतं या वायोविद्यते व्याप्तिः । तथैवाऽयमन्ननलिकामार्गः पृष्ठवंशे सल्लग्नो विद्यते । अस्मिन्नेव पृष्ठवंश-विभागे उरोस्थीनि सल्लग्नानि नलिकागतवायुना पृष्ठवंशकशेरुका उपिर उच्चिलता भवंति । तथैव उरोस्थीन्यपि उर्ध्वं चलितानि भवंति, सोयं व्यापारो उदानस्य ।

च्यानः :—त्विगिद्विये, मितिष्के, ज्ञानतंतुम्ले, सर्व शरीरेऽपि (मोटर नर्व्हज्) ज्ञानतंतुद्वाराऽस्य व्याप्तिर्विद्यते । अतः शरीरे मिन्निमिनस्थलेषु भिन्निमिन्नवायूनां अस्तित्वं विद्यतेति सिद्धं भवति । इमे हि वायवो पृथक् पृथक् भिन्नधर्माणो [गॅसेस्] वायुत्व सामान्येपि विद्यतेति ज्ञेयम् ।

पित्तम् :--देहे पित्तस्य व्याप्तिर्विद्यते ।

अन्नरसे जठराधोमुखात् स्नेहपाचिनींगते सित रंजकिपत्तं पित्ताशयात् पित्तसचययुतया पित्तवहनाड्या निर्याति । तच्च अग्रे तया नाड्या स्थूळांत्रे समायाति । एवं गच्छित्पत्तिमिश्रितान्नरससारो रक्तजनकसमर्थो रसवाहिनींभिः शोषितो भवति । स च मुख्यायां शोणितवहायां नाड्यां समाविष्टो भवति । तस्मिन् शिराभिरानीतं रक्तं संयुक्तं भवति । तच्च हृदयात् फुफ्फुसमिधिगच्छिति । हृदयात् शिराभिः सर्वस्मिन्शरीरे प्रसृतं भवति । एवं रक्तं पित्ताधारभूतं भवति वा पित्तघटितं भवति । एविमदं पित्तं भिन्ने भिन्ने शरीरावयवे स्वन स्वेन स्वरूपण वा रूपांतरेण तिष्ठतीति प्रतीयते। एवं पित्तस्य मार्गी रक्तविहन्यस्खेदविहन्यः । उत्पत्तिस्थानं यकृत् । रक्तद्वारा सर्वशरीरव्यापी भूत्वा तस्मिन् तस्मिन्स्थाने भिन्नं भिन्नं कार्यं करोति, त्विच भाजिष्णु च भवति ।

कफः: —सर्वस्मिन् देहे अन्ततः श्लेष्मण उपलेपो विद्यते । आधुनिक-वैद्यकमतेन त्वचित्तिस्रो भेदा विद्यंते । तासु या अंतस्त्वग् (म्युकस् मेंब्रेन) विद्यंते सा मसुणा रक्ता वर्तते । तस्यां श्लेष्मोत्पादकपिंडेम्यः कफोत्पित्तिभवति । अस्यास्त्वचोऽधिष्ठानं नास्तीति नैतादृशं शरीरे स्थलं । नासानयनादिषु फुफ्फस-कोष्ठांत्रादिषु यथा अस्या व्याप्तिर्विद्यते तथा शरीरस्थं प्रत्येकमस्थ्यपि अनया व्याप्तं वर्तते ।

भाऊ गोविंदाचार्य कुंभारेशास्त्री (माहुळी क्षेत्र, ता. ८।२।१९०१)

त्रिदोषकमिशनस्य प्रश्नौः—

प्रश्नः प्रथमः :— त्रिदोषाः प्रत्यक्षा वा अप्रत्यक्षाः ? प्रत्यक्षाश्चेत्रयोगैर-नुभवेश्व साधियतुं शक्याः ? अप्रत्यक्षाश्चेत्रिदानव्यवस्था कीटशी भवेत् ? शारीर-विकृतिषु त्रिदोषाणां संबंधः परिणामश्च प्रत्यक्षतया कथं सिद्धो भवेत् ?

उत्तरमः प्रत्यक्षा दोषा इत्यस्य अर्थी दश्या इति चेत् ते दोषा दश्या अदृश्याश्चेत्युभयविधा वर्तते । शृक्तिरूपेण अदृश्याः कार्यरूपेण परिणामरूपेण ? च दश्यास्मंति । निदानव्यवस्था च तदनुरोधत एव कृतेत्यनुभविसद्धं वर्तते ।

प्रश्नो द्वितीयः — नाडीपरीक्षया रोगनिदानं शक्यं न वा १ यदि त्रिदोषा नाड्यां स्पष्टतया ज्ञायमाना भवेयुस्तदा सूक्ष्मरोगाणां ज्ञानं कति प्रमाणतः शक्यम १

उत्तरम्ः—नाडीपरीक्षया दोषज्ञानं भवति । रोगपरीक्षासाधनै रोगाणां ज्ञानं भवति ।

मथुरावैद्यसंमेलनाध्यक्षाः कॅप्टन् कान्होचा रणछोडदास कीर्तिकरा स्वीये सभापतिपदीये भाषणे वदंति ।

पाश्चात्यवैद्यके प्रकृतिमानं चतुर्विधं प्रमाणीकृतम्- १ सँगबाईन,

२ नर्व्हस्, ३ बिर्छायस्, ४ लिपॅरिक इति। तच्च वातिपत्तकफसमानं विद्यते।

मोहमय्यां सुप्रथितनामधेयाः सर भालचंद्र कृष्ण भाटवडेकरोपाव्हा दक्षतराः (डॉक्टर)

स्रीये ' आर्यांग्छवैद्यकतुछना ' इत्याख्ये व्याख्याने प्राहुः।

"ऋषिभियोंगशास्त्रं, स्वरशास्त्रं, वैद्यशास्त्रं च पंचमहाभूतसंबद्धमिति गृहीतम् । वातादिदोषाणां रसादिधातुभिस्तथा रोगलक्षणसंसंबंधस्य परिज्ञाने तैः कितविधः परिश्रमः कृतः । तथा तैस्स संबंधः कथं संयुक्त इति वक्तुं नैव शक्यते । आर्याणामियं पद्धती रोगविज्ञाने अतीवोपयुक्ता । वातकार्याणा नर्व्हस् सिस्टिम् इति पद्धत्या संगच्छंति । मस्तिष्कं ज्ञानतंतव इत्यादि नर्व्हस् सिस्टिम इति उच्यते । रुधिराभिसरणं, शोषणमन्नस्य तथा पोषणमिप पित्तक्रियया संयुज्यते । लोहिते यश्च द्रवांशो यम् "सीरम् " इति वदंति तस्य, तथा स्नेहरूपाणामितरद्रव्याणां कफकार्येण साम्यं वर्तते ।

पुण्यपत्तनीय प्राणाचार्य बाळशास्त्री लागवणकराणां मतम्। [ता. ४।६।१९१२, २१।४।१९१३]

शरीरिवकृती, शरीरखास्थ्ये च मुख्यं कारणं कफिपत्तवाताः । इमे हि अविकृताः शरीरं अविकृतं तिष्ठति, इमे हि विकृताः शरीरं विकृतं भवित । शरीर-स्योत्पित्तिर्ज्यः विकृतिः स्वास्थ्यं केन भवित इति प्रश्ने, कफिपत्तवातेभ्य इति एकमे-वोत्तरम् । अस्माकं शरीरे चालकास्त्रयो [सिस्टिम्स्] विद्यंते । नर्व्हस् सिस्टिम्, ब्लंड सिस्टिम्, लिफेटिक सिस्टिम् इस्रेता अपि तिस्न एव । विकृतिरिप त्रिधा भवित—इरिटेशन, इन्क्रमेशन, अल्सरेशन। नर्व्हस्, ब्लंड, लिफेटिक इस्रेतासां [फोर्स एव] वातिपत्तकफा इति उक्ते ।क्षे भवेत् १ । क्षोभः, अभिताप, अभिष्यंद इस्रेतेषु त्रिषु रोगपरिणामो भवित । पाश्चात्यवैद्यके " इरेग्युलॅरिटी ऑफ दि नचरल् फंक्शन " इति रोगाणां व्याख्या कृता । शरीरस्य स्वाभाविकेषु प्राकृतिकेषु व्यापारेषु या विकृतिस्स एव रोग इति । शरीरस्य नैसर्गिके

4

व्यापारे कथं विकृतिर्भवतीति प्रश्ने तिस्मिन्तिस्मिन्निद्विये वाऽवयवे जीवशक्त्याः [व्हायटेलिटी] नाश इति आमनंति । इयं हि जीवशक्तिः (व्हायटेलिटी) अनुमानप्राह्मेव न प्रत्यक्षा । अस्या एव आयुर्वेदे अग्निनाम्नाप्रहणं कृतम् 'तथा स लभते शर्म सर्वपावकपाटवम् ' इत्यनेन । पाश्चिमाल्यवैद्यके ' फॉरेन् मॅटर,' या गदिता सा एव अस्मदायुर्वेदे '' आम '' शद्धेन संबोधिता । आमोपि त्रिविधः १ रुक्षगुणविशिष्टः २ आर्द्रगुणविशिष्टः ३ स्निग्धगुणविशिष्टश्च । एतेभ्य आमेभ्यस्त्रिभ्यः शर्रारेदियेषु परिणामः पृथित्वधो भवति । स च परिणामोऽपि आर्यवैद्यके पाश्चात्यवैद्यके च समान एव वर्णितः । क्षोभः [इरिटेशन्] अभितापः [इन्क्षमेशन्] अभिष्यंदः [अल्सरेशन्] इत्यादिना ।

वैद्यकपत्रिकाकाराः

[पुण्यपत्तनीयाः] निजे १०।१०।१९१२ मिते साप्ताहिकेंऽके 'दोषित्रज्ञान' इत्यस्मिन्प्रमुखे छेखे छिखंति ।

"बाह्यस्य जगतोऽत्पत्तिस्तु पंचमहाभूतेभ्यो वर्तते। तेषु पंचसु मध्येत्रीण्येव बायुतेजाऽपः कार्यकराणि विद्यंते। वायुर्गत्या, तेज औष्ण्येन [अग्नो वा सूर्ये वर्त-मानं] पदार्थानां [द्रव्याणां] रूपांतरत्वं विद्धाति, शीतेन तेषु दार्ब्यमागच्छिति। एतेभ्य एव त्रिभ्यो भूतेभ्य इदं जगत् चलित अन्याहतम् । पंचमहाभूतात्मकेऽ-स्मिन्निप शरीरे इमान्येव त्रीणि भूतानि कार्यकरणसमर्थानि संतीति निश्चित्य तेषां त्रयाणां शारीरकार्येणैव वातिपत्तकफेति संज्ञा प्राचीनैः प्रदत्ता।

वैद्यराज विञ्ठलशास्त्री गाडगीळ, कुरुंदवाडकरस्थाः स्वीये त्रिदोपविज्ञान नामके प्रबंधे (महाराष्ट्रभाषया लिखितः प्रबंधः ऐ. शा. १९१७ वत्सरे मुद्रितः) लिखंति।

" एवं जीवतत्वं, छिंगरारीरम्, स्थूलरारीरं, जीवतत्वस्य क्रियाज्ञाने-च्छास्तिस्रः राक्तय इत्यादीनां विषये सांख्योत्तरमीमांसाराख्नेभ्यश्वरकादिभिः खीकृतं मतम् । (पृष्ठ ३०) मनोवहस्रोतांसि, रक्तवहस्रोतांसि, रसवहस्रोतांसि तुल्हनया नर्व्हस्, सर्क्युलेटरी, लिप्पॅटिक, इति तिसृणां संस्थानां [सिस्टिम्स्] साम्यमादधंति [पृष्ठ २१]। सत्वगुणप्रधानमाकाशं, तमोगुणप्रधाना पृथ्वी इति सृष्टौ वायुतेजजलानामेव सर्वे व्यापाराः प्रचलेति । शरीरेपि एतेभ्य एव त्रिभ्यो वातिपत्तकमा इति संज्ञा पूर्वाचार्यैः प्रदत्ता (पृष्ठ ३०)। यथा इंद्रियाणि अप्रत्यक्षाणि, तथैव वातिपत्तकमा अप्रत्यक्षास्तथापि इंद्रियाणां व्यवहारा इव वातादीनां व्यवहारास्तथा तेषां न्यूनाधिक्यं प्रत्यक्षम् । वातिपत्तकमा अप्रत्यक्षा अपि शरीरे नैव संति इति न । किमिप वस्तु अदृश्यमप्रत्यक्षनिस्त्रेतेन तस्यास्तित्वं नैव भवतीति वक्तुमयुक्तम् । यस्य वस्तुन उपपत्तिनीन्यतिस्त्रद्धा भवति अत एव तस्याऽस्तित्वं सिध्यति । अत अदृश्याणां वातादीनां कार्याणां प्रत्यक्षमनुभूयमानानामुपपत्तिनीन्यथा सिद्धा भवति अत एव वातादीनां सिद्धत्यस्तित्वम् । इमास्तिस्तः शक्तयो [व्हायटल् फोर्स] सर्वजीवनव्यापारे कारणभूता वर्तते । तेषां कार्याणि इष्टानिष्टपरिणामैर्ज्ञातव्यानि । वैद्यशास्तस्य देहं मर्यादिकृत्य व्याप्तिर्वर्तते । देहस्य पोषणाय, हानौ वा इमान्येव वायुतेज-जलिन (अदृश्यशक्तयः) कारणानि । (पृष्ठ १०४)

वैद्यरत्न दोरास्वामी आयंगार, मद्रास

स्वीये वातिपत्तकपतत्वेनाम्नि निबंधे (कलकत्ता षष्टवैद्यसम्मेलनप्रसंगाहिखिते)

' आवापोद्वापादिभिरालोच्यमाने त्रयोऽपि दोषास्सुस्पष्टमेवावधार्यमाणा तिस्नः शरीरशक्तय इति । आधुनिकेश्व आंग्लवेद्याविद्धिः प्रकृतीनां निर्धाराव-सरे वातपित्तकपानां स्थाने क्रमशो नर्व्हस्, बिलियस्, क्रेग्मॅटिक इति तादशीरेव प्रकृतीस्तिस्रश्वामिधाय रक्तप्रकृतिरिति चतुर्थीमप्यंगीकृत्वेव ' सँग्विन ' इति अन्याप्येकास्ति पिटतेति प्रतिभात्यस्माकम् । शरीरस्थाः सप्तापि धातवः पृथिवी-भूतस्याशैरेव प्रायेण समुत्पादिताः । धनैर्भदैश्व पार्थिवांशैराविर्भूतानां धातूनां प्राकृतवैकृतस्वकीयकर्माणि निर्वर्तयितुं व्यापद्भ्यस्संरिक्षतुं च तदीयानां कर्मणां निर्वाहणाय च आप्यैस्तेजसैर्वायव्येश्व पार्थक्येन त्रिभिरंशै-क्रमशः कपः पित्तं वात इति दोषनाग्न्यस्तिस्नः संति शक्तयः समुत्पादिताः ।

1

" अतो वातिपत्तकमा इति एते त्रयोऽपि दोषाः वास्त्रिजलाख्यानां मूतानां अंशैराविर्भवानिति विषयेऽस्मिन् न हि कोऽपि विद्यते विषयावकाशः "। नाडींमंडलद्वारा [नर्व्हस् सिस्टिम्] अखिलानि ज्ञातानि अज्ञातानि निर्वर्त्यंते कार्याणि । तानि सर्वाण्यपि क<u>्याचन वायनाम्न्या शक्त्येव</u> संभावयामः '।

अभ्यवर्हीयमाणान्नस्य पाचनार्थमंतरात्रमाविर्भवति जाठराग्निर्नाम क्शिद्भा । शोणितद्वारा सर्वाण्यप्यंगानि समिभव्याप्य कोष्यस्ति उष्णः शारीरः (अनिमल् हीट) । अनयोर्द्वयोरुष्मणोर्व्यवहारः पित्तमिति । अंतः शरीरमने-केषु स्नोतस्सु प्रवहत् वर्णरहितं अथवा पांडुरं लसीकानामा व्यवस्हीयमाणंयत् किल विद्यते द्वद्वयं तदेव त<u>स्यैव शक्ति</u>भवित कफ इति कारणैर्बहुभिर्निश्चिनुमः ।

वामनशास्त्री दातार, नासिक

तस्मिनेव संमेळने मयाऽपि त्रिदोषतत्वेति निवंधो व्यळेखी।तस्मिन्
"तत्र दोषा वातपित्तकप्ताः कृत्सनदेहचरा देहाधिष्ठानाः संति।तस्माद्देहसंभूतिरेवादौ विचार्या। सर्वदर्शनकारैः पंचानां पृथ्व्यपतेजे।वाय्वाकाशानां शरीराभिनिर्वृत्तौ जगत्संभृत्यां कारणत्वं सर्वेंस्खीकृतम्। आयुर्वेदेऽपि इयमेवोपपित्तरंगिकृता। जीवशरीरिध्यतानि इमानि पंचमहाभूतानि बाह्यब्रलपेक्षाणि
आहारादिरूपेण। तस्मादाहारायत्तिदं जीवितम्। स च आहारः पंचमहाभूतोत्पन्नायाः सृष्टेः सकाशादाप्तव्यः। अत्र आहार इत्यनेन यस्य यस्य द्व्यस्य
शरीरयंत्रे न्यूनता तस्य तस्य आहरणं, तेन न्यूनतायाः पूरणिमिति विक्नेयम्।
स आहारो दव्यायत्त्वात् द्व्यमेव श्रेष्ठम्। तत्र द्व्यं पृथ्व्यिष्ठानं, जळयोनि,
अवांतरभूतोपसृष्टं षड्ससंयुक्तं भवित। भक्षिते आहारे कि भवित ? येन
तदेहोपयौगिकं स्यात्। तस्य भक्षणानंतरं द्वावस्था भवित मधुरो रसश्च।
तदेव दवद्वं, मधुरो रसो वा कप्तसंज्ञया सामान्योक्तम्। तद्वावस्थाप्राप्तमेव
मधुररसयुक्तं द्व्यं अभिनाऽम्छतां ऊष्मतां च नीतं अम्छोष्णसंयुक्तं
पित्तमिति कथ्यते। अस्मिन् पित्ते द्वतोष्णता च दृश्यते। तथापि अभिगुणत्वात्सोभिरेव। ततः सोन्नरसः कटुरसात्नकः, शुष्कः, पिंडितो वातकार्येण

.

बातमेव करोति । अयमेव कफः, इदमेव पित्तं, चायमेव वातः सर्व शरीरस्थि-तवातिपत्तकफानां सामध्ये ददाति ''।

डॉ. नरहर शिवराम परांजपे (बाबासाहेब परांजपे) इत्येतैरैशवीये १९१८ वत्सरे 'अकोला वैद्यमंडले' एको निबंधः पठितः।

तस्मिन्, " शरीरघटकानां सूक्ष्मपिंडानां पोषणार्थं यश्च शारीरव्यापारः प्रचलति, शरीरे स पाश्चल्यशास्त्रे प्रोसेस् ऑफ ॲनॅबोलिझम् इति निगद्यते "। एतेषामेव पिंडानां स्वभावानुरूपाः शारीरव्यापाराः ' टिश् फंक्शन् ' इत्युच्यंते । एतेषां पिंडानां शरीरे व्यापारं कुर्वतां यश्च संभवति मळः तस्य शरीराद्वहिप्रक्षेपणार्थं या च संचलित क्रिया सा " प्रोसेस् ऑफ कॅटबोलिझम् " इति संज्ञिता । एवं पाश्चात्यवैद्यके यथा सूक्ष्मप्रकृतिशरीर-विषयो वर्णितस्तथैवायुर्वेदेपि त्रिम्लं दोषधातुमलानां वर्णनं कृतम् । त्रिदोषाः (ॲनबोली प्रॉडक्ट्स्)। पाश्चात्यैः शरीरघटकसृक्ष्मपिंडानां त्रयो वर्गाः कृताः । १ श्रेष्ठाः (हायली डेन्हलप्ड टिश्रू) धमन्यो, मांसपेशीपिंडवर्गाः, २ मध्यमाः ग्रंथिपिंडवर्गाः [टिशू ऑफ मिड्ल् डेव्हलप्मेंट], ३ सामान्यपिंडवर्गाः (टिशू ऑफ लो डेव्हलप्मेंट)। श्रेष्टैः शरीरे गलादि कार्यं भवति । मध्यमाः शोणितात्य द्रव्येभ्यः पृथक् पृथक् गुणयुक्तान् रासायनिकान् पदार्थानुत्पादयंति । कनिष्ठाः शरीरे साधारणकर्माणि धारकपूरकपराणि कार्याणि कुर्वैति। एताद्दगेव वर्णनं वातिपत्तकफानां कार्यरूपेणायुर्वेदे कृतम् । वातिपत्तकफास्तु उपिर-निर्दिष्टश्रेष्ठमध्यमकनिष्ठपिंडानां पोषकाः अतएव ते त्रिधातव इति भण्यंते। त्रिधातव एव त्रिदोषाः । शरीरपिंडास्सप्तधातवः । पोषकास्त्रिधातवः (प्रॉडक्टस् ऑफ ॲनबोली) । पोष्यास्सप्तधातवः [टिशुज्] । पाश्चात्यैः शरीरकार्याणां संग्रहः सप्तधातुवर्णने कृतः पौरस्स्यैः पोषका ये त्रिधातवस्तेषां वर्णने कृत इत्येव भिन्नत्वमुभयास्मिन् । यस्मात् त्रिधातवः [इलेक्ट्रान्स्, फरमेंट्स्, कोलाइड्स्] सप्तधातुपोषकास्तरमात्पौरस्लैः खस्थवृत्तविषये अन्न-पानव्यवहारस्य पथ्यापथ्ये सूक्ष्मत्वेन समावेशः कृतः । पाश्चात्या धातुकार्येषु

[टिशूज्] बाह्यद्रव्यगुणसहाय्येन युध्यंति । पौरस्त्या धातुपोषकदोषेषु द्रव्यगुणपोषकपथ्यापथ्यविचारणया युध्यंति । पाश्चात्यास्तु धातुचिकित्सकाः पौरस्त्यास्तु धातुपोषकदोष—(प्रॉडक्टस् ऑफ ॲनबोली)—चिकित्सकाः, दोषास्तु स्वयं दुष्टा भवंति धात्न् मलांश्च दूषयंति । अत एव चिकित्सायाः प्रारंभो दोषानारभ्यायुवेंदेंऽगीकृतः''। तथाच तैरेव डा. परांजपे महाभागः 'दोषिवज्ञान ' नामके प्रबंधे आयुवेंदीयवचनानि दत्वा दोषाणां १ देहम् लतं, २ देहम् लिन्सत्वं, ३ परिमेयत्वं, ४ स्वास्थ्यावश्यकसाम्यत्वं, ५ शाण्यम्, ७ षड्रसपोष्यत्वं, ८ सामत्वं, ९ पच्यमानत्वं, १० निरामत्वं, ११ गुणकर्मम् लकसाम्यक्षयवृद्धिशीलत्वं धातुमलेस्सममेव स्पष्टतया प्रतिभातीति लिखित्वा "शरीरं चेदं पांचभौतिकं षड्मात्मकं, सेंद्रियम् सर्जीवमिति सुप्रियतम्, तस्मिश्च संप्रहात्मको, वर्धनात्मको, विशरणात्मकश्च व्यवहारः कायतनुशरीरशद्धप्रयोगेणावगम्यते । तस्मादवयिवनो देहस्य संप्रहवर्द्धनविशरणात्मकव्यापारस्य चालका ये आवयवा देषधातुमलास्तेऽपि पांचभौतिकाः सेंद्रियाः सजीवा इति वक्तं न कोऽपि संशयोऽविष्ठते "। इति उपसंहारः कृतः ।

प्रोफेसर धुंडिराज लक्ष्मण दीक्षित (फर्ग्यूसन कॉलेज) इमे हि वैद्यवंशीयाः पठितायुर्वेदाः प्राण्युद्भिदशास्त्रानिष्णाताः लिखंति।

"त्रिदोषा नाम के इति वक्तुं निश्चयेन अशक्यमिष तेषामस्तित्वं नैवेति वक्तु-मिष दुःशकम्। प्रथमं वातिषत्तकफानां कल्पनं कृत्वा पश्चाद्रोगेषु दृष्टानि छक्षणानि तेषु प्राचीनैर्विभज्य निविष्टानि तदा आयुर्वेदमंदिरं काल्पनिक-त्रिदोषोऽपरिनिर्मितमिति मंतुं शक्यम् । परं प्रयोगसिद्धशास्त्रस्येव आयुर्वेद-स्यापि उत्पत्तिजीतेति दृश्यते । किमिष प्रयोगसिद्धं शास्त्रं पुरतो गृह्यतां-तिस्मन् आदौ भिन्नानां कार्याणां, कृतीनां गुणानां च निरक्षिणं क्रियते । अनंतरं निरक्षिणजज्ञानेन तेषु कार्यकारणभावस्य शोधनं कृत्वा विषयस्य उपपत्ति-स्स्थाप्यते । तद्नतरं तदेव शास्त्रमित्युच्यते । आयुर्वेदेषि एषेव विहितक्रमा- पद्धतिः स्वीकृता । गर्भोपचयवेलायां तस्मिन् त्रयोभागा दृष्टिपथमायांति । तान् बीजावरणानीति भण्यते (प्रेमिनल लेअसं) । बाह्यावरणं ' उपरिकललं ' (एपिन्लास्ट), तद्योवरणं ' मध्यकललं ' (मीसोन्लास्ट), अंतस्थमावरणं तृतीयं (हैपोन्लास्ट), ' अधःकललं मिती विज्ञातं भवति । एतेषु त्रिष्वावरणेषु कमशो भिन्नत्वं भूत्वा संभवति शरीरम् । उपरिकललजन्यो यः शारीरभागस्य वातस्थानम् । मध्यकललजन्यो यः शारीरभागस्य पित्तस्थानम् । अधःकललजन्यो यः शारीरभागस्य कितस्थानम् । उपरिकललेन मस्तिष्कं,सुपृष्ठा-कांडं, वातवाहिन्यो, बाह्या त्वक्, नासामुखत्वक्सितप्रंथीनामवतानिका, धर्मपिंडाः प्रादुर्भूताः । मध्यमकललात् रक्तं, मांसं, अस्थीनि, हृदयं, रक्तवहाः शिरा, जननेदियं, वृक्को, गर्वान्यो इत्यादि निष्पन्नम् । अधःकललं महास्रोतस्थतां-तत्वक्यकृत्प्रीहावक्रगंडानाम्-(पॅकियाज्)—अंतस्वक् फुप्कुसांतत्वक् इस्रेतेषामुत्पादकम् । ''

वैद्यरत्न वासुदेवशास्त्री कडेगांवकर, (सातारा)

' स्वीयार्यांग्टशारीरविज्ञानं तथा आर्यांग्टस्वस्थवृत्तं ' इत्यनयोर्प्रथयोर्टिखंति।

" आर्यवैद्यके तथाच आंग्टवेद्यके वर्णितानां अस्यंतं श्रेष्ठकार्यकरणां, सूक्ष्मदर्शकयंत्रेणेव दृश्यानां आर्यवैद्यके त्रिदोषगुणैरुपवर्णितानां पदार्थानां वर्तते त्रिदोष इति संज्ञा । तेन शरीरे मस्तिष्कं, सुषुम्नाकांडं, पृष्ठवंशरज्जुः, इडापिंगले नाड्यौ— सहकारिमज्जातंतुत्वेनोपवर्णिते इत्येतानि शरीरे कार्य-समर्थानि शक्तिस्थानानि वर्तते तेष्वेव वयं वातदोष इति वदामः । सर्वे शारीरं बलं अग्नौ उपतिष्ठति । अग्निरेव पित्तं अतएव पित्तमित्येको दोषोऽथवा शक्तिरिति अभिमतः । अग्नौ विकृते पचनिक्रयायां विकृतिर्जायते तेन सर्वमिप शरीरं विकृतं भवति । आर्यवैद्यके आंग्लवैद्यके च अन्यपाचनकरा ये भिन्न-भिन्ना रसास्तेषामुत्पादका ये सूक्ष्मिपंडास्तान् पित्तदोष इति वक्तुं शक्यत । असंख्यानि स्रोतांसि, तेभ्यो ये द्वपदार्था वहंति तेन स्रोतस्सु मस्रणचिक्रणो-

द्रवः प्रादुर्भवति । जलवाहककेदारेषु यथा मसृणचिक्कणं शैवालमभिजायते तद्दत् स्रोतरसु पदार्थः प्रादुर्भवति । तस्य तावदनेके प्रकारास्त्रोतसां विविधत्वाज्ञायंते तथापि जातिरेकैव । एतेषां कार्याणि अनेकानि । एतान् पदार्थानेव वयं कफदोष इति वदामः । इमे वर्णितास्त्रिदोषाः सूक्ष्मदर्शक- यंत्रादिसाधनैर्दश्याः । "

वैद्यभूषण पुरुषोत्तमशास्त्री हेर्लेकर, (अमरावती) महाभागैः १९२५ वत्सरे महाराष्ट्रभाषया 'त्रिदोष ' अथवा 'आयुर्वेद-मूलतत्वानि ' इति ग्रंथो व्यलेखि ।

तस्मिन् " शरीरस्य सर्वप्रकारकाणां क्रियाणां प्रवंतकाः सामर्थ्य-संपन्नाः सर्वशरीरव्यापकास्मूक्ष्मा अणवरित्रदोषाः । त्रिदोषाः सूक्ष्मघटकां-तर्गतास्स्क्ष्मा इति उक्ते ते दृश्या इति वक्तुं नैव पार्यते । ते <u>त्रिदोषाः</u> अदृश्यास्तर्कानुमेया वर्तते । शरीरं पांचभौतिकघटकसमुदायभूतम् वर्तते । घटका नित्यं क्षीयमाणास्तथाच नित्यमुत्पद्यमानास्संति । एतेषां घटकानां सर्वोशेने।त्पत्तिक्षयौ निस्यं नैव भवतः । अत <u>प्तादश एकोभा</u>ग १ आवड्यमेव कल्पनीयो य एतेषु घटकेषु नित्योभद्तजननमरणपरिणामं नोपगच्छति, तिष्ठति च शतसंवत्सरपर्यंतम् । अतः प्रतिघटके एकः सूक्ष्मो अवयवः कर्तृत्वसंपन्नो विद्यतेति तर्कस्सुप्रतिष्ठः । एतादृशस्सूक्ष्मो अव-यवः स्थूलदृष्ट्या यदि नैव दृश्यते तथापि तार्किकदृष्ट्या तत्स्वरूपं आवश्यमेव दृश्यं, अतएवं त्रिदोषा अदृश्या अपि तेषामरितत्वं सर्वथा मंतव्यमेव । त्रिदोषाः पदार्थाः । त्रिविधाया जीवनशक्तया आधारभूता ये अणवस्ते शरीरस्थाः त्रिदोषाः । शरीरघटकेषु कार्यकर्तारस्स्का अणवस्त्रिदोषा इति विज्ञेयम् । इमे अणवः शरीरघटकानां अविनाशिनः स्थिरा भागारतेषां खतंत्रमस्तित्वं नास्ति। सर्वास्मन् शरीरे वातापत्तकफा दोषा मुख्याश्वालकशक्तयः। यस्या अभावे शरीरे शरीरत्व-मेन नैव यास्यति एतादशा श्लेषकशक्तिरस्त्रीयश्लेषकधर्मेण परमाणूनां पररपरं श्लेषिका, संयोजका, इदमेकं मुख्य तत्वं विद्यते । आर्द्रतामूला इयं श्लेषक-

शक्तिः शरीरस्योत्पत्तौ वृद्धौ आरोग्ये च कारणिमिति आयुर्वेदे गणिता। श्रेष्मा शद्धेन तस्या निर्देश आयुर्वेदे कृतः, सएव आयुर्वेदीयः श्रेष्मा वा कफ इति विज्ञेयम् । उपिरवर्णितः श्रेष्मा कफो वा श्रेषकशाक्तिर्वा तस्या आयुर्वेदे " क्लिग्धः शीतो गुरुर्मदः श्रक्षणो मृत्कः स्थिरः कफः " इति गुणिनिर्देशः । शरीरे एतेषां गुणानां कफ इति संज्ञा वर्तते । गुणो वा धर्मी कस्यचन पदार्थस्य आश्रयं कृत्वैब प्रतीयते । अतो वर्णनावसरे गुणयुक्तपदार्थानामेव वर्णनं क्रियते ।

शारीरे पाचनकार्यं कुर्वाणा या एका शक्तिस्तदेव पित्तम्। का चन शक्तिरथवा गुणः पदार्थं विहाय नापैति प्रत्ययम्। अतः शास्त्रीयव्यवहार-सौक्तर्याय केवलस्य गुणस्यव केवलायाः शक्त्यास्तात्विकं वर्णनं अकृत्वा यस्मिन्पदार्थे तस्याः शक्त्या वा गुणस्य वा बाहुल्येन प्रमाणं वर्तते, तथा च शक्त्या उपयोगो वेन पदार्थेन भवति, एतादृशस्य पदार्थस्य वर्णनं क्रियते। आयुर्वेदीयं पित्तवर्णनमपि एतादृशमेव। पाचककार्यं कुर्वाणायाः शक्त्या येन पदार्थेनायाति प्रत्ययस्तस्य पदार्थस्य वर्णनमेव पित्तवर्णनम्। आयुर्वेदमूल-तत्वेभ्यः प्रधानतमं तत्वं वायुः। अस्य वायुशब्द्रस्य गतिमान् पदार्थ इति अर्थो वर्तते। गतिरिति तत्वं गत्याश्रयीभूतपदार्थस्यदं स्वरूपं विषद्यितुं आयुर्वेदवातवर्णनं 'तत्र रुक्षो लघुः शितः खरः मृक्ष्मश्रलोनिलः' इति कृतम्। गत्त्यास्तु नेदं वर्णनं परं गतिमत्पदार्थस्य। गतिरिति धर्मो वा गुणः । गुणेषु गुणारोपो नैव भवति। गुणास्तु नैव गुणयुक्ताः किंतु पदार्था गुणवंतो विद्यते। पित्तकफाविव वायुः सूक्ष्मस्सन्निप पदार्थ एव विद्यते"।

एकोनविंशति वैद्यसंमेलनाध्यक्षाः कॅ. जी. श्रीनिवासमूर्ति महाभागाः

स्वीये प्रबंधे लिखंति।

१ वातिपत्तकफाः केवछं बाह्यो वायुः, वमनिर्नगतं पित्तं, ष्टीवने पतन् कफ इति न । २ ते तु पांचभौतिकद्रव्याण्येव (मॅटर्)। ३ ते तु

सर्वशरीरस्य वा शारीरभागस्य मूलघटकारसंति, अतएव ते धातवो धारणाकार्य-कर्तार इति निगद्यंते । यत्र ते न संति नास्ति तच्छरीरम् । ४ तेषां साम्यमेव आरोग्यम् । वैषम्यमेवानारोग्यं । ५ धातव एव दोषा निगद्यंते तेम्य एव शरीरे दोषप्रादुर्भावः तस्माद्रोगोत्पात्तिर्भवति । ६ धातूनां प्रसादावस्था = आरो-ग्यम् । ७ धात्नां मलावस्था = रागाः । ८ धातवो दोषा मलाश्च इति यद्यप्येकान्येव द्रव्याणि तथापि तेषां इमानि नामानि भिन्नावस्थया पतितानि । धातुरूपदोषरूपमलरूपवातादीनां कदा केनार्थेन ग्रहणं कार्यमिति आयुर्वेदप्रंथपरिचयस्य, संस्कृततत्वज्ञानस्यात्यंतमावश्यकता, तयोर्निगृहाभ्या-सस्य चात्यंतमावस्यकता वर्तते । १ त्रिदोषा द्रव्याणि २ तेषु स्थूळस्का इति भेदो वर्तते । ३ सूक्ष्मत्वेन अतींद्रियत्वं प्राह्मं, तेषां परिणामेरेव ज्ञानं भवति । ४ धातूनां कार्याणि काथिकमानिसकानि विद्येते । पाश्चात्यमतेन कायिकमान-सिककार्याणि तेषां शास्त्राणि च परस्परं भिन्नानि । परं अधुना प्रादुर्भूतमे-तस्मिन् मतातरम् । पाश्चात्यानां मतेन मन इति न किंचित् द्रव्यम् । तथाप्येतस्मिन् विषयेऽपि संदेहः प्रादुरासीदधुना । पौरस्त्यानां मतं ' मन'स्तु सूक्ष्मं द्रव्यमेव । अतो मानसिकशारीरकार्याणि विशिष्टद्रव्याणामेव परिणामः । ५ पाश्चात्यसिद्धांतेन 'सेल' एव शारीरो मूलघटकावयवः, अनेन यो हचूमर्स-बुइंड्, बाइङ्, फ्रेग्म इत्याख्या ९व शरीरमूळमिति ग्रीकसिद्धांतः पराभूतः । परं च आयुर्वेदीयास्त्रिधातवः परेपारे वर्तते । यत्र पाश्चास्यैवद्यकस्य विश्रामः ' सेल्द्रव्ये, ' तत एव आयुर्वेद सिद्धांतस्य प्रारंमः । ६ केचन शार्रा-रद्रवास्तथा काश्वन मनोभावनाः परस्परं संबद्धति इति वदंति (कॅनन्)। यथा-क्रोधप्रादुर्भावे ९ड्नियालिन् नामक प्रंथौ स्नावो वर्द्धते । तथा केनाप्युपायेन उत्तेजिते तस्मिन् प्रंथौ क्रोधनो भवति नरः । इत्येतःसस्यं चेद्वातादिधातूनां मनोभावनात्मका ये विशेषा उक्तास्तेषु किमसत्यम् ?। ७ पाश्चात्यसिद्धांता ये केवळं पदार्थविज्ञानात्नकास्तथा रसायनशास्त्राक्षात्मकास्तेषु आयुर्वेदस्साम्येन न संगच्छते इति भाति । तथापि पाश्चात्यसिद्धांतैस्खीयामिमां संकुचितां दृष्टि-मुल्लंघ जीवनपदार्थविज्ञानजीवनरसायनशास्त्रयोः पदक्षेपः कर्तुं उद्योग प्रारम्यः

एतस्मिन्नुद्योगं भवेदायुर्वेदसाम्यमिति दृश्यते । ८ पाश्चात्यामिदियविज्ञानं शास्त्रमद्यापि वर्तते बाल्यावस्थायां, अतस्तेन आयुर्वेदीयास्सिद्धांतास्सिद्धा असिद्धा वा न भवेयुः । ९ वातिपत्तकका इतीयं परिभाषा सेदियद्वव्याण्यधिकृत्योपयुक्ता, जडद्रव्याणां कृते पांचभौतिकी परिभाषा व्यवहृता, यथा सजीवशरीरघटकास्तु वातिपत्तककाः, निर्जीवशरीरस्य तु पंचमहाभूतानि । सारांशस्तु आयुर्वेदीय-मिदियविज्ञानशास्त्रमित्येतैः शास्त्रस्तंबद्धम् । केवछं जडयोः पदार्थरसायन-शास्त्रयोनिव संबद्धमिति ।

१ वातघटकाः।

१ घटकौ-वायुः, आकाशः ।

२ स्वभावः -राजसः।

३ कार्यम्--उत्साहः एकाम्रचित्तत्विमित्यादि ।

पाश्चात्यसिद्धांतैः – सेरेब्रोस्पायनल् तथा सिंपथाँटिक् सिस्टिम्।

२ पित्तघटकाः।

१ घटकं-तेजः।

१ २ स्वभावः -साद्विकं ।

३ कार्यम्-बुद्धिकार्यम्, पचनं, सात्मीकरणं, ऊष्णतोत्पादनं ।

४ अंतःम्नावीप्रंथिप्रणाली, अनपचनप्रणाली, ऊष्णतोत्पादनं, पोषणम्।

३ कफघटकाः।

१ घटकौ-पृथ्वी, आपः।

'३ कार्यम्-वैर्यं, शक्तिः, घटकानां रचना, संधिकर्म ।

४ **पाश्चात्यानां**—स्केलेटल् सिस्टिम् ।

१० पाश्चात्यरसायनशास्त्रज्ञो — लव्हायसीयर —'' शरीरोष्णता, ३०० सेंटिग्रेड मिता वर्तमानाऽपि तया रासायनिकित्रया (ऑक्सडायझेशन) शीघं कथं भवतीति आश्वर्यावहमेव । यतः ताविन्मतयैवोण्णतया शरीराद्वहिः सा क्रिया नैव भवति शीघं किंतु मंदमेव इति वदति ''। आयुर्वेदे इदं कार्ये पित्तेन भवतीति कथितम्।

तथैव तै: स्वीये अध्यक्षस्थानीये भाषणे उक्तम् " त्रिधातूनां त्रिदोषाणां सत्यार्थस्यापरिज्ञानेन पाश्चात्यवैद्यकाध्येतृणां इमे आयुर्वेदीया भागा हास्यस्थानीयास्संवृत्ताः । विश्वस्यायं मूलतो विस्तारः प्रादर्भावश्व पंचभूतेभ्योऽजनीति समामनंति भारतीया हिंदवः । अद्ययावत् पाश्चाख-तत्वज्ञा विश्वरचनां द्विनवतितत्त्वैर्विश्वमूलस्थिते (एलिमेंट्स्) रासायनिकैः परमाणुवादेनाविष्कुर्वति । परमाणवस्ते चाविभाज्या इति च मन्यते स्म । अधुनैव परमाणवो विभाज्या इति तैर्ज्ञातम्। इयंच परमाणुनां संख्या द्विनवतितो द्वितयपर्यंतमानिता (इलेक्ट्रान् प्रोटान्) । परमाणुवादस्तु भारतीयाभिमत एव, परं परमाणवोऽविभाज्या इति नैव तेषामभिमतम् । परमाणुषु अन्येषामपि तत्वानां संकरो वर्तत इति तैर्वणितम् । पंचमहाभूतेभ्यो विश्वघटना घटितेति तेषां सिद्धांतः । तथापि पृथ्वपतेजसां यश्चमूलार्थस्तेषामिमतस्सोऽधुना विपर्यस्त एव । अधुना जलं, मृत्तिका, बायुः, प्रकाश इति विपरीतोऽर्थस्तस्य प्रचारं समुपगतः । प्रत्येकस्य महाभू-तस्य प्रातिमिकः परमाणुरिती पंचप्रकारकाः परमाणवो विद्यंते । एते एव तन्मात्रा इति व्यपदिष्ठाः । तन्मात्राभिः इलेक्ट्रान्-संज्ञकपरमाणुनामति-शयेन साम्यं वर्तते । इलेक्टान्-संज्ञकाः परमाणवा न मानाहीः । भूत-परमाणवस्तु पाश्चात्यानां रासायनिकपरमाणवो ज्ञेयाः । अनया पद्धत्या तुलना दृष्ट्या च आधुनिकाधिभौतिकशास्त्रांतिमतत्वैस्सह भारतीयतत्वसिद्धांतास्समन्वयं प्रायो गच्छंतीति लक्ष्यते । पंचमहाभूतानां सत्यार्थं न्याप्ति चावगत्य त्रिधातुत्रिदोषाणां ज्ञाने सौकर्यं समागच्छति । त्रिदोषत्रिधातुज्ञाने रोगिवज्ञा-निमिद्धियविज्ञानं च समाविष्टं वर्तते । कफपित्तवातानां त्रिधातुरूपाणां विकार-रूपेण प्रत्ययं समागच्छतां कफापित्तवातानां नान्योन्यसंबंधः। कफापित्तवातित्र-धातूनां आधारभूतानि पंचमहाभूतानि।पंचमहाभूतेभ्यःशरीरोत्पात्तभेवतीति सखं। परं शरीरधारणार्थं पंचमहाभूतान्येव त्रिधातुरूपेण शरीरे वसंति । त्रिधातव एव

शरीरस्य सजीवता । त्रिधातूनामभाव एव शरीरनाशः । एवमनयोरन्योन्याव-छंबित्वं वर्तते । यावत्काछमेषां त्रयाणां धातूनां निसर्गतस्साम्यं शरीरे विद्यते तावत्काछं शरीरस्य नैरोग्यम् । एतेषां त्रयाणां प्रमाणबद्धताभंगः संपन्नस्तदा रोगाणां प्रादुर्भावः । इमे एव त्रिधातवो आयुर्वेदे त्रिदोषसंज्ञया संज्ञिता इति" ।

म. म. पा. कविराज गणनाथसेनाः [कलकत्ता]

र्खाये "अभिद्धांतनिदाने "े लिलिखुः

"अथादौ द्विविधा एते प्रसादमलभेदतः ।
सारभूताः प्रसादाः स्युः किष्टभूता मलाः स्मृताः ॥ ६ ।
उत्साहोन्द्वासिनश्चासचेष्ठा धातुगतिः समा ।
समो मोक्षो गतिमतां वायोः कर्माऽविकारजम् ॥ ७ ॥
दर्शनं पक्तिरूष्मा च क्षुद् तृष्णा देहमार्दवं ।
प्रमा प्रसादो मेथा च पित्तकर्माऽविकारजं ॥ ८ ॥
स्रेहो बंधः स्थिरत्वं च गौरवं वृषता बल्ण् ।
क्षमा वृतिरलोभश्च कप्तकर्माऽविकारजम् ॥ ९ ॥
एवं विभिन्नकर्माणः प्रत्येकं पंचाधारिस्थताः ।
प्रसादभूता वाताबास्तैः शरीरं प्रधायते ॥ १० ॥
ते च प्रसादाद्विविधा स्थूलसूक्ष्मविभेदतः ।
तत्र वायुरसदा सूक्ष्म इतरौ तु द्वयात्मकौ ॥ ११ ॥
मल्भूतौ तु नियतं स्थूलौ पित्तकप्तौ स्मृतौ ।
ते प्राकृताः प्रसादास्युवैकृता मल्संज्ञकाः' ॥ १२ ॥

"एवंविधश्ववायुरचित्यातीद्रियशक्तिस्वरूप एव। एवंविधं च पित्तं धातुभूतं मूर्तामूर्तस्वरूपं स्यात् । सचायं सौन्यश्लेष्मा धातुभूतो मूर्तामूर्तस्वरूपः स्यात् । ननु एते वातादयो मूर्ता अमूर्ता वा इत्याशंकां निरस्यति । ते च पूर्वीक्तकर्माणः प्रसादाः प्रसादरूपा वाताचा द्विविधाः सूक्ष्मस्थूलवि-भेदतः सूक्ष्मरूपेण स्थूलरूपेण विशिष्टभेददर्शनात् । सूक्ष्मत्वं नामेह

अतीदियत्वं। रथूरुत्वं तु इंद्रियगोचरत्वं दश्यत्वं वा । तत्र वायुः सदा-सर्वाखवस्थासु सूक्ष्मो अप्रत्यक्षोविद्युच्छाक्तिवत् अचित्यातीदियशक्तिरूपः क्रियामात्रानुमेयः । इतरौ तु पित्तश्लेष्माणौ द्यात्मकौ स्थूलरूपतः सूक्ष्मरूप-तश्च बर्तते शरीरे । तत्र वायोः सूक्ष्मत्वं चरके वातकलाकलीये अध्याये प्रतिपादितमेव । सुश्रुतेप्युक्तं " स्वयंभुरेष भगवान् " । " अन्यक्ते।न्यक्त-कर्माचेत्यादि " ।। पित्तस्यापि सर्वत्रातीद्वियत्वमन्यत्र पाचकपित्तात् । पाचक- ? पित्तं ह्यामाराये अम्ल्रूपमग्रतश्च पच्यमानारायात्रमृतिकटुरसमुपलभ्यते । दृश्यं च तत् स्वाभाविकं सद्यो विपाटितोदरस्य शरीरे, विकृतं च मुखादि-निर्गतं प्रच्छर्दतः पुरुषस्य । तदेतत्स्थूल्रूपं पित्तस्य । सूक्ष्मा तु—रसरक्तादि धातुपरिणामिनी क्रिया, संतापशोषणाऽदानादिक्रिया च सूक्ष्मरूपस्यैव पित्तस्य । तदपि पाचकपित्तस्यैव सूक्ष्मरूपेण चरतश्चरकमते धात्वग्निसंज्ञस्य कर्मेति आचार्याः । सुश्रुते तत्रस्थमेवात्मशक्तया शेषाणां पित्तस्थानानां शरीर-स्य चाग्निकर्मणा अनुप्रहं करेति । '' जाटरो भगवानग्निरीश्वरोनस्य पाचकः । सौक्ष्म्याद्रसानाददानो विवेक्तुं नैव शक्यते " ॥ अथ श्लेष्मा पुनः स्थूल प्रायोऽदकगुणभू येष्ठः । किंतु तर्पकाख्यश्लेष्मा सूक्ष्मप्रायः । यश्च आमा-हाये क्रेदकाख्यः श्लेष्मा स्थ्रहस्तस्याऽपि सूक्ष्मो भागः सर्वेद्दारीरचरः सर्वे धातुष्वाप्यभागप्रयोजकः । वस्तुतस्तु अवलंबकरसकक्षेषकाख्याः श्लेष्मभेदाः स्थ्रेटा एव सर्वजनदृश्याः । तत्रावटंबकश्वासपथादेरभ्यंतरतः खामाविका-र्द्रताप्रदः । रसको जिन्हादेरार्द्रतासंपादकः खाभाविकलालारूपः खादप्र-हणसहायः । श्लेषकः संध्यस्त्रंतस्त्रेइवत् पिच्छिलपदार्थमयः । तर्पकोऽपि श्लेष्मा नासाचक्षुरादीनामाईताप्रदः स्थूलभ्यिष्ठ एवेलेके । अन्ये तु सोयं इंद्रियाणां आत्मवीर्येण अनुग्रहं करोतीति कृत्वा शिरसि सीम्यगुणाधानकरः सूक्ष्म एवेत्यामनंति । वस्तुगत्या तु तस्याऽपि द्वैरूप्यमेवेति तत्वम् । किंच स्थिरत्वगौरववृषताबळक्षमादिकमाणि पूर्वोक्तानि प्राकृतस्य सूक्ष्मस्यैव सर्व-शरीरचरस्य श्लेष्मणः कार्याणि स्युः । नहि तत्तत्स्थानमात्रव्यापकैरवलंब-कादिस्थूलसुक्ष्मभेदैः सुकराणि तानि कार्याणि कयाऽपि कल्पनया ॥ (तत्वदर्शनी टीका पृष्ठ ६।११)

पूर्वपीठिका-श्री. टी. एस् वारीयर व पंडित हरिप्रपन्न

' अष्टांगद्यारीरस्य ' कर्तारो श्री. टी. एस्. वारीयर (कोट्टकल)

र्खीये प्रथे अस्मिन्बिषये चाहुः।

पंचभूतैः सर्जावैर्यत् शरीरं जायते नृणाम् ।
अतः षट्धातुकं प्रोक्तं तद्भूयो भिद्यते त्रिधा ॥
ततिस्विधातुकं तत्स्यात् आयुर्वेदे विशेषतः ।
श्वायुर्मायुर्वेद्यासश्च प्राकृतास्ते त्रिधातवः ॥
त एव देहधातारः सूक्ष्मबीजात्मना स्थिताः ।
रजः सत्वाधिको वायुर्मायुरसत्वरजोधिकः ॥
बट्टासस्तु तमःसत्वाधिको गुणविनेचने ।
सूक्ष्मस्य गर्भबीजस्य बट्टासो मूर्तिरुच्यते ॥
पाचकांशस्तु मायुः स्याचालको वायुरत्र च ।
संकीर्णत्वात्पृथकर्तुं शक्यते नैवतान् कचित् ॥
शरीरे वर्धमाने तु तेषामंशाश्च भूरिशः ।
वृद्धाः प्रस्यक्षतां यांति दोषधात्वादिरूपतः ॥
(अष्टांगशारीरं अंगविभागाध्यायः ४८ पृष्ठम्)

मोहमयीस्थाः परमविद्वांसः पंडित हरिप्रपन्न महाभागाः

रसयोगसागरस्योपोद्धाते सुविस्तृते (ऐ. १९२७ अब्दे प्रकाशित) आंग्ळसंस्कृतद्विविधरूपे संस्कृतविभागे ' त्रिदोषविवरणमिति ' पृष्ठ ४८–७२ पर्यंतम् विषये स्वमतं ऊहापोहपुरस्सरं ददुः ।

" अत्र सत्वरजस्तमांसि विश्वरूपेण समग्रव्रह्मांडस्वरूपेण अवस्थितं दृश्याऽदृश्यरूपेण स्थितं समग्रमपि विकारजातं मृदोघटादिवत् खखरूपाऽभिन्नं सत्वरजस्तमांसि समस्तसृष्टेः कारणभूतानि न व्यतिरिच्यंते, खखरूपतस्तानि षृथगभूत्वा न दृश्यंते। खखरूपस्यैव आकारविशेषेण विकारजातस्य परिणतत्वात् मृद्घटस्य मृदभिन्नत्वेनैव जायमानत्वात् इयत्परिणाममृद्भागेन घटउत्पन्नस्तत्वतो-

भागस्य पृथग्वर्तमानत्वं घटं विहाय न दश्यते, दश्यते तु तस्मिन् घटे एव । मृत्यिडस्य घटरूपेण परिणतत्वादाकारमात्रस्यैव विशेषत्वम् । वस्तुतस्तु येऽयंमृत् पिंडरूपें आसीत् सैव घटेऽप्यास्ति । उपादानकारणस्य कार्यात्पृथग्दर्शनं न भवस्येवेति सार्वजनीनः सिद्धांतः । एवमनेनैव प्रकारेण इदं पुरतो दश्यमानं विश्वरूपेण शरीराऽरंभकस्क्मातिस्क्मावयवानारभ्य स्थूलशरीररूपमवस्थितं प्रकारेण वर्तमानं व्यतिरिच्य पृथक् स्थापियत्वा वातिपत्त स्ठेष्माणो न वर्तते । अयमत्राभिसंधिः--यथा विश्वरूपं जगत् सत्वरजस्तमसां परिणाममस्ति तथेदं शरीरं वातिपत्ति स्टब्मणां परिणामरूपं । शरीरस्योपादानकारणान्येते । न च वाच्यमन्योऽन्याश्रयोदोष इति । मातापित्रोः शुक्रशोणितयोरेव तद्वपत्वात् सृष्टि-प्रपंचे सत्वरजस्तमोभिर्थथा विश्वोत्पतिर्विर्णितास्ति तथा चिकित्साशास्त्रे पंच-महाभूतेभ्यः शरीरवर्णनं कृतमस्ति तावन्मात्रे चिकित्साशास्त्रस्याऽधिकारत्वात् (पृष्ठ ४९) । शोणितस्य रसरूपत्वात् पुरुषस्य च रसजातत्थादसस्य पुनरुद्भवः पंचभृतेभ्यः [उपादानकारणत्वात्] । सर्वस्य च कार्यजातस्य सत्वरजस्तमांस्युपादानानि, पंचभूतेष्विप सत्वरजस्तमसां स्थितिः सत्वबहुळेखा-दिना सुश्रुते प्रतिपादितैव । मूळकारणानां त्रिविधत्वात् पंचभूतानि आयुर्वेदे त्रिमागविभक्तानि कृतानि संति । आप्पृथ्योक्तमोबहुल्खेनैककक्षां स्वीकृत्य श्चिष्यते=श्चिष्टो भवति श्चेषयति वा सः=श्चेष्मा। वायोरजोबद्धळलात्स खतंत्र-मेव कक्षां समासादयति । अग्नेः सत्वरजोबहुल्लात्समस्तपाककारणत्वं । अय-मेवाग्निः पित्ततेजःशब्दवाच्यः । तस्मिन् श्लैष्मिके परिणामे शरीरे जलपृथिवी-परिणाभी प्रत्यक्षसिद्धौ वाय्वाग्नेयी त्वनुमानगम्यौ । " तत्र शरीरं नाम चेतना-धिष्टानभूतं पंचमहाभूतविकारसमदायात्मकं समयोगवाहि "इसनेन पंचमहा-भृतानामेव शरीरोपादानकारणत्वं प्रत्यपादि । पंचमहाभृतविकारेषु च प्रसादत्वं मळत्वं चेति संक्षेपेण दैविध्यं स्वीकृतम् । तच दैविध्यं धातुत्वेनैवगृह्यते, शरीरे धात्वतिरिक्तपदार्थाऽभावात् । धातुषु यदा शरीरपोषकता तदा प्रसादत्वं यदा च तद्वाधकरत्वं तदा मलत्वमित्येतत्तदध्यायस्यैव पंचदशसूत्रेण स्पष्टतया प्रतिपा-दितम् [च. शा. १।१५] । पंचभृतेष्वेव कक्षात्रयं वातिपत्तकका इति

स्वीकृतमिति प्रविभाति । अत्र मलकोट्यां वात्तपित्तश्लेष्मणां परिगणनम् " किद्दमन्नस्य विमूण्त्रं रसस्य तु कफोसृजः " इत्यादिना कृतम् । अत्र निर्दिष्टाः कफपित्तवायवः स्थलस्करपा एव संति । अनेन रसाद्यस्मर्वानुगतः श्वेतिपिच्छिलगुरुत्वादिगुणविशिष्टः पदार्थी निर्वर्तते स 'कप्तत्वे'नाभिप्रेतः। रक्ताचत्यकृताल्यकृक्त क्रोाम्न विसुज्यते तस्य रक्ताल्यग्भावात् रक्तमल-त्वेन कथनाच तदेव पित्तत्वेनाऽभिष्रेतम् । मुक्तादिपरिपाकावसाने योऽयं वायरुष्ट्रच वायद्वारा बहिर्निस्सरति स ९वाऽभिप्रेतः । एते त्रयोऽपि मलत्वे ९व पर्यवस्यंति । परं त्वनेन एतद्वाचका एव वातिपत्तकमा इति नाध्यवसितं शक्यम् । तस्मात्स्थूळसृक्ष्मभेदैरसम्यगाकल्य्य यथागतस्थळं निर्णयः कर्तव्यः । रजागुणात्मनि वायो वात इति, सत्वगुणात्मनि पित्तमिति, तमोगुणात्मनि श्लेष्मेलायुर्वेदसिद्धांते व्यवहारोऽस्ति । तत्रापि शरीरवातयोत्रीत इति समानो व्यवहार: । शरीरांत: प्रविष्टानामाग्नेयपदार्थानामंतरग्निसंयोगाद्योयमग्न्याधार-परिणामस्तत्र पित्तमिति, जलपृथिव्यात्मनां पदार्थानां शारीराभिना परिणतानां श्लेष्मेति व्यवहारः। ते च पदार्थास्सूक्ष्मा वा स्युस्स्थूला वा स्युस्तस्था क्रिया गुणा वास्यः सर्वेषामपि प्रहणं तास्थ्यात्तच्छद्भमिति न्यायात् शरीरांतर्वति छिंग-शरीरात्मव्यातिरिक्तं यिकिचिदपि वस्तुजातमस्ति तत्सर्वं वातिपत्तकपात्मक-मेवास्ति ॥ प्र. ७१ ॥

पुण्यपत्तनीया डॉ. मल्हार विनायक आपटे नामका प्रसिद्धवैज्ञानिकदक्षतराः

खर्कीयायां ' आयुर्वेदौयसंहितासु शारीरसूत्राणि इति ' लेखमालायामिमं विषयमुद्दिस्य लिखंति ।

वातिपत्तकपाः शारीरव्यापाराणां मूलाधारा इति आयुर्वेदस्य मूल-सूत्रम् । अस्मिन् सूत्रे आर्थसंस्कृत्या विशेषोऽभिव्यक्तिमेति । स च एकेन निदर्शनेन स्पष्टो भविष्यति—एकैकेन इंद्रियेण बाह्यजगतः प्रत्यक्षानुभवः पौरस्यपाश्चात्ययोस्समान एव । तथापि यां कामिप घटनां कृतिमिति मत्वा तस्याः कोऽपि कर्ता विद्यतेति मंतुं प्रवृत्तिः प्रेम वा मनोवृत्तिर्वा आर्यसंस्कृत्या अभ्यासेन दढीकृतास्ति । वयं ईश्वरेण जगिनिर्मिति मन्यामहे । एतादशा मनोवृत्तिरेषां नास्ति ते इदं जगदेतादशं वर्तते एत्येव वदंति समादधित च । जगतः कर्त्ता ईश्वरो विद्यते स च मूर्तो जडश्च नास्ति केवलं मनश्चश्चुषा दश्य इत्येतत् यावदुभयेपि जानंति न तावदुभययोरिप कल्हकारणम् । यदा वयं स चेश्वरो मूर्त इति वदाम अन्ये स च मनसोप्यगोचर इति वदंति तदा वादप्रतिवादस्य प्रादुर्भविति विषयः । एवं अस्मिन्निप विषये एतादृश्येव द्विविधा वर्णनपद्धतिर्विद्यते । तस्या वर्ण्यविषयस्तु एक एव । एवं गृहीत्वा प्रथमायाः पद्धत्याः परोक्षपद्धतिरिति च संज्ञां दत्वा कप्पवातिपत्तानां विचाराभिव्यक्तिं कुर्मः —

नूतनमपरोक्षवर्णनम्।

- १ वायुना क्रिया भवंति (चलनस्पंदनादिरूपाः)
- २ अग्निना विक्रिया भवंति (द्रव्यांतराणि)
- ३ क्रियाश्च विकियाश्च वस्तुनामाश्रयेण भवंति ।

द्वितीयं परोक्षवर्णनम्।

- १ वायुः क्रियां घटयति (कारयति)
- २ पित्तं विकियां घटयति (कारयति)
- ३ कफ्स्तु क्रियाविक्रिययोरिधष्टानमस्ति ।

इदं वर्णनं आयुर्वेदीयवर्णनस्य पूर्णांशेन समानमिति न । तथापि एकस्य द्वयोवी तत्वयोर्थथार्थं वर्तते । यथा नरः १ बाह्यस्य जगतोऽनुभवं प्रथमं अधिगच्छति २ अभ्यस्तविषयस्य उपमायां साह्ययं प्रतिक्षणं गृण्हाति । मनुजस्य अनया पद्धत्या बाह्यसृष्टिविषयकशास्त्रस्य भाषया शारीरसृष्टिवर्णने प्रवृत्तिस्संजाता, उपरितनेन परोक्षापरोक्षवर्णनेन इदं दक्पथमुपेयाद्यत् प्रथमं वर्णनं बाह्ये जगति नित्यं प्रवर्तमानानां घटनाविघटनानामस्ति । द्वितीयं वर्णनं शरीर-मुद्दिश्य कृतमिति । द्वितीयोऽपि विशेषोऽयं अस्मिन् वर्णने विद्यते यदुभयोरनुभ-वयोरस्मिन्वर्णने तुलना कृतास्ति । याः क्रिया बाह्ये प्रवृत्ता वयं पश्यामस्तत्स-माना एव शरीरेऽपि ऋियाः प्रवर्तते, इत्येवीपरितनवर्णने वर्णितमस्ति न तस्मिन् शरीरव्यापाराणां विचिकित्सा कृता । न च तस्मिन् शारीरावयवानामुछेखः, अथवा एतादशस्य सूक्ष्मविचारव्याकरणोद्यागस्य प्रारंभात्प्रागेव बाह्याभ्यंतर-व्यापाराणां साम्यं लक्षयित्वा कृतिमदं वर्णनमिति लक्ष्यते । चरके वातकला-कलीयाध्याये एतादृशं वर्णनं विद्यते । चरकसंहितागतं वर्णनं विलोक्य आधुनिकवाचका एवं व्हयुरिदं वायुवर्णनं पाश्चात्यवैद्यकगतनव्हिम्सिस्टिमवर्ण-नेन संगतमिति । एवं भाषमाणस्य वक्तुरयमभिप्रायश्च यदि स्याद्यदेतानि वायोः कर्माणि वर्णितानि, तानि प्रायो नर्व्हस्सिस्टिम् इति संज्ञितायाः संस्थाया वर्णयंतीति चेत् तत्तु प्रायः सुसंगतम् । परं नर्व्हस्सिस्टिम् इति योऽवयव-संघो विद्यते तं ज्ञत्वैव तस्यैवेतानि कार्याणि चरके वर्णितानि इति वक्तुरमि-प्रायश्चेत् तस्य स्वीकारस्तु सर्वथा अनुचित एव । येन नैवावलोकिता नर्व्हस्-सिस्टिम् सोऽपि वर्णयेदेतादृशीं वर्णनपद्धति । वायुःकर्तेति वर्णितः परं शरीरावयवेषु कस्मिन् तस्य संबंध इति अनुभवाद्विना न ज्ञातुं शक्यम्। शरीरे शरीराद्विश्च एतादशा व्यापारा भवंति अयमनुभवः प्रलक्षः । एत-योर्द्वयोरनुभवयोस्साम्यं वा संगतिः प्रत्यक्षानुमानोपमितिभिरेव शक्यते । वयं प्रस्यक्षानुमानोपमितिभिरेव वदामेति चरकस्य तस्मिन्नेवाध्याये वायोर्विदेन ऋषिणा कथितमेव । इयमेव विचारपद्भतिः पित्तकप्तयोः संगच्छते । सुश्रुतेनापि चरकाचार्याणामिव वातिपत्तकफा जीविताधारा इति मत्वाऽपि रक्तमिप जीविताधारं वर्ततेति अधिकं प्रतिपादितम् । "नर्ते देहः कफादस्ति न पित्तान्त च मारुतात् । शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते ''। अनेन श्लोकेण वातादीनां समानं शोणितमुक्तम् । वातिपत्तकफा अमूर्ता रक्तं तु मूर्तिमिति भेदे परिज्ञाते तस्मिन् मूर्ते शोणिते वातादयो मिलिता इति यदुक्तं तत्तु सर्वथा उचितमेवेति ।

" डबलडी इति संकेतं देखा त्रिदोषसर्वस्वविषये परीक्षणार्थं यश्च प्रबंधो आगतस्तस्मादुधृतम् " कफनिरूपणं ।

अथ पाश्चात्यविज्ञानविन्निरूपितानां पदार्थानां साद्यम् एकं बातिपत्त-कफपर्राक्षणं क्रियते । इदं शरीरं जीवकाषसमुदाय-(सेल्) रूपम्। जीवकाषेषु अनितद्रवजीवपंका विद्यते (प्रोटोप्ठाझम्) तत्र च कोषकेंद्र (न्यूक्कीयस्) अवितष्ठते । जीवितजीवपंकश्च किमुपादानकस्तिनिर्णेतुं न शक्यते । यत यस्मिनेव क्षणे अस्य परीक्षार्थं कश्चिद्यतेत तस्मिनेव क्षणे अयं जीवश्चर्यो भवेत् । मृतेभ्यो जीवपंकभ्यः प्रतीद (प्रोटांड) नाम द्रव्यं लभ्यते । कोलाईड 'सदशं चास्य स्वरूपं । 'कोलाईड ' न सर्वथा द्रवतां याति । इदं हि शुक्रं, मधुरं, पिच्छिलं, क्षिण्धं, गुरु, स्थिरं, शीतं, मंदं च । आयुर्वेदोऽपि श्लेष्मस्वरूपं आह 'गुरुशीतमृदुक्षिण्धमधुरस्थिरपिच्छिलः ' (चरक सू० अ० १) एवं सति प्रतीदश्लेष्मणो अभिन्नरूपतया पाश्चात्या-भिमतं प्रतीदं नामकं द्रव्यं आयुर्वेदनिर्दिष्टश्लेष्मणोऽभिन्नमेव।

अत एतिश्चगमनम्।

- (१) श्लेष्मा सांद्रद्रव्यविशेषः (निर्यासवत्)
- (२) जीवनकोषस्थः प्रतीदांश एव श्लेष्मा इति ।

वित्तानिरूपणं ।

प्रायशः प्रतिजीवकीषं निष्यंदोत्सेको [एन्झाइम] जायते । अनेन उत्सेकेन जीवकीषाणां परिपाकानंतरम् अवस्थांतरप्राप्तिर्भवति । एवं च शरी-रस्यापि परिपुष्टिरनेनैव संपद्यते । अम्लद्रावकगंधकद्रावकसदृशोऽस्य स्वभावः । आयुर्वेदरवीकृतं पित्तमपि अम्लद्रावकस्य, गंधद्रावकस्य वा समानगुणम् । तथा हि " सस्नेहमुण्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु " । (च. सू. अ. १) अतः पित्तयुक्तद्रावकद्वयमिव द्रवम् [लिकिड] अनितस्नेहयुक्तं [आइली] च पित्तं तीक्ष्णं शीव्रकारि मंदविपरीतं सूचीव भिनात्ते अतो द्रावकमिवाहारादि-द्रव्याणां इतरद्रव्याणां च परमाणुविभागसंयोगादिकियायां [केमिकल् अवशन]

पूर्वपीठिका-डबलडी कलकत्ता.

उपयुज्यते । द्रावकिमव कर्युम्लं च पित्तम् । तथा विस्रं [आमगंधान्त्रितं] शरीरजातस्य निष्यंदोत्सेकस्यापि आमगंधित्वमास्ति ।

अत एतन्निगमनम्।

[१] पित्तं द्रावकद्रवमिव द्रवद्रव्यम् ।

[२] जीवकोषस्थं निष्यंदोत्सेक एव पित्तम् ॥

अथ वातनिरूपणम्।

'' रैक्ष्यं छाघवं वैशद्यं शैत्यं गतिरम् र्तित्वं चेति वायोरात्मरूपाणि भवंताति '' [चरक सू० अ० २०]

रौक्ष्यादयो हि वायोः स्वभावगुणाः । अमूर्तत्वमत्र अदृश्यत्वम् । नीळळोहितादिरूपाभावात् । बहिर्वायुः शारीरवायुर्वा न दर्शनेद्रिययोग्यः। अमूर्तत्वरीत्येतररीक्ष्यादयो गुणाश्च सर्वेष्वेव वायवीयद्रव्येषु वर्तते । पाश्चात्य-वैज्ञानिकपरिगृहीतेषु ' गॅस ' नामक द्रव्येषु अपि उक्तगुणा विराजते । वायुर्हि मूर्तेभ्यो द्रव्येभ्यश्च द्रवेभ्यः समधिको छघुः । वायुः सूक्ष्मगुणः । तेन निबिडावयवानामपि द्रव्याणामंतः प्रविशति । वायुरसंघातवान् अनवस्थितश्च । पित्त श्रेष्मवद्वयवसंघातरहितःवं, अनविस्थितत्वं, च चलनस्वभाववत्वम् वायो विद्यते । तथा हि कफो आधारस्य यदवच्छेदेन स्थाप्यते स्थिरत्वात् तदबच्छेदेनैव तत्र स्थिरो भूत्वा तिष्ठति । पित्तं खलु आधारस्य यत्र प्रदेशे स्थाप्यते, सरत्वात् [न्याप्तिशीलत्वात्] प्रदेशांतरं प्रसरदिप तस्मिन्नेवाधारे वर्तते, न च तत्पात्रानिस्सृत्य बहिर्गच्छति । वातश्च कस्मिन्नपि काचकृष्यां स्थाप्येत तर्हि अयं झटिति काचकूप्याः सर्वावकाशं अवलंब्यावतिष्ठते । अपसारिते च मुखावरणे सदागतिमत्वात् , वायुर्बाहिनिंस्स्स्य बाह्यवायुना सह संगच्छते । वायूरुक्षो 'गॅस'नामकः पदार्थोऽपि तथा । वायुः खरो विशदश्च । वैश्रद्यंतु पैच्छिल्याभावः। द्रवस्य सांद्रस्य वा द्रव्यस्य कफ्वित्तयोरिव पिच्छिलता संभवति । वायवीयं तु द्रव्यं (गॅस) न कदापि पिच्छिलं भवति ।

अतो निगमनम्।

आयुर्वेदोक्तवातस्य पाश्चात्यवैज्ञानिकानुमतगसनामकद्रव्यस्य च समानधर्मशालित्वादुभयोरभेद एवेति । जीवकोषो हि विविधानां क्रियाजातानां भूमिः ।

एकस्येव कोषस्य परीक्षया कोषसमुदायात्मकरारीरस्य विशेषेषु व्यापारेषु प्रकृष्टज्ञानं भित्रतुमहिति । कोषकेंद्रणैते व्यापारा मुख्यतो नियम्यते । केनाऽप्युपायेन चेदयं जीवकोषः तथा विभाज्यते यथा एकोंऽशः कोषकेंद्रसमन्वितो अपरश्च तद्रहितः स्यात् तिर्हि एषः केंद्ररहितोंऽशः सत्वरमेव निजीवो भवेत् । केंद्रोपेतस्तु भागः पुनरुपचीयमानो जीवकोष-स्यारोषकार्यकारणाय प्रभवित । अतोऽस्माभिरुपछद्दयते अस्मिन्कोषकेंद्रे किमिप द्रव्यं वर्तते । अस्य व्यापारस्तु आयुर्वेदोक्तवातस्यव । तथा हि " वायुस्तंत्र-यंत्रधरः । उच्चावचानां चेष्टानां प्रवर्तकः, रारीरधातुव्यूह्करः, रारीरावयव-संयोजनकरः, गर्भाकृतीनां कर्ता, च । कोषकेंद्रस्थितिमदमेव द्रव्यं जीवकोषं विभज्य क्रमशः सर्वेषां रारीरधात्नां (दिशूज) व्यूहं रचयित । इदमेव द्रव्यं जीवपंकस्य गतिहेतुः, स्नायुकोषाणां [नर्व्हसेल्स] कार्यनियंत् च । अत एतदवधार्यते [१] अभिन्नकार्यकारित्वात् कोषकेंद्रस्थितं पूर्वेक्तं द्रव्यमायुर्वेदपिरगृहीतत्वात् वातादिभिन्नमेवेति । " डवछडी " रचितम् ।।

पंडित सुरेंद्रमोहन, बी. ए. [लाहोर]

दयानंद आयुर्वेद कॉलेज इस्रस्य विद्यालयस्य ' आयुर्वेद संदेश ' इति प्रतिमासं मासिकपत्रं मुद्रितं भवति । तस्य विद्यालयस्य प्रधानाध्यापकैः, पंडितैः, आयुर्वेदाचार्यैः, सुरेंद्रमोहन बी. ए. मुख्य संपादकैः स्वीये मासिके पत्रे ' वातांकः, पितांकः, श्रेष्मांकः, त्रिदोषांक ' इति विदेशषांकानामंकनं कृतम् । तेषु वैद्यविदुषां लेखास्समायाताः । प्रथममेव श्रीमद्भिः, आयुर्वेदाचार्यैः, सुरेंद्रमोहनपंडितैः वातविषये स्वीयं मतं प्रदत्तम्—

'कोऽयं वायुः ? इत्यस्योत्तरम्—शरीरे याच संचालका शक्तिः [मोटर पॉवर] याच वा ज्ञानशक्तिः [सेन्सरी पॉवर] विद्यते सा वायोर्गुणः। आधुनिका इमां शाक्तिं नर्व्हफोर्स इति वदंति । इयं शक्तिरदृश्याऽतीं-द्विया च । पाश्चात्या दर्शनशास्त्रमजानंतो शक्तिं द्वव्यमिति आमनंति । परं शक्तिः कस्याऽपि द्वव्यस्य गुणो वा धर्मो विद्यते न तुद्रव्यम् । ऋषिभिरस्यातीं-द्वियस्य द्वव्यस्य वात इति प्रदत्तं नाम । कश्चापि पृच्छेत् वायोरांग्लभाषायां कोऽनुवादः श अस्योत्तरं तु कठिनमेव । इमे अस्य गुणाः 'नर्व्हफोर्स ' इति तु मानयंति, परं गुणिनोर्नाम तेषां भाषायां नैव लभ्यते । अयं हि वायुः शरीरे पंचसु केंद्रस्थानेषु वसन् करोति पृथक् कर्माणि । एतेषां वर्णनं सुश्रुते निदानस्थाने वर्तते । वायुस्तु केवलं 'नर्व्हफोर्स ' एवास्तीति न । प्रत्युत, अधिकोप्यस्ति । अस्मात् बाह्यो वायुरेवाऽयं (एअर) शारीरो वायुरिति तु सर्वथा मौर्छ्यमेव । चरकाचायैरेतयोर्वाञ्चोस्तु (बाह्याऽभ्यंतरयोः) तुल्ना कृता, परं तौ अभिन्नौ इति तु नैव प्रतिपादितम् ।

श्लेष्मा च तथा अस्मदीयं शरीरम्—

त्रयो दोषाः शरीरयंत्रचालने आवश्यकाः । वायुः गत्यात्मकित्रयाया अधिष्ठाता, पित्तं लैकिकामिवत् ऊष्मणः प्रदात् । तथैव कपोपि शरीरिनिर्माणे आवश्यक एव । " स्नेहो [ल्यूब्रिकेटिंग ऑईल] बंधः [सांधिसंयोजकत्वं] स्थिरत्वं (शरीरस्थैर्यं) गौरवं (बॉडी वेट्) वृषता (व्हाय्टॅलिटी) बलं (फिजिकलस्ट्रेंग्थ) क्षमा धृतिरलोभश्च कप्पक्मीविकारजम् ।" इमानि अविकृतकप्पस्य कर्माणि । यदि शरीरिमेदं राज्यमिति कल्पितं चेत्, तस्य राज्यस्य कोषविभागः [फिनन्स डिपार्ट्मेंट) कप्प इति विज्ञातुं योग्यम् । कप्पस्य ये पंचमेदास्ते सर्वे तरला वा अर्धतरला विद्यंते । [सेमिलिकिड] पाश्चात्यमतानुसारेण शरीरे विद्यमाना नानाप्रकारका ये ग्रंथयो विद्यंते तेषां रसाः [सीक्रिशन, ऑर एक्स्किशन] प्रायस्तरला एव ।

पंडित कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी. ए. आयुर्वेदाचार्य (हिंगणघाट)

आर्यवैद्यके त्रिदोषा ९व शरीरस्य सर्वा क्रियाकारका शक्तिरस्तीति गृहीतम् । अस्या अभावाच्छरीरस्यावस्थितिरपि नैव भवति । इदं शरीरं अत्यंतं सूक्ष्मातिसूक्ष्माणुर्वाक्षणयंत्रेणैव वीक्षितुं शक्येरसंख्यैः परमाणुसमूहैनिष्पन्नम् । 'शरीरावयवास्तु परमाणुभेदेनापिरसंख्येया भवंति ' चरकः । इमे परमाणवस्खजातीयैः परमाणुभिर्निष्पद्यते । तथा च खनियुक्तं कार्यं कर्तुं कियत्कालपर्यंतं जीवंति । पश्चात् परिपक्ताः संतो भिन्निर्भिन्नैर्मलायनैरागच्छंति शरीराद्वहिः । तदा एते मलसंक्षिता भवंति ।

सर्व शरीरस्य पोषणं रसेनैव भवति । रक्तमिप रसरूपमेव । अत एव एतेषां परमाणूनां [सेल्] जीवनमिप रक्तरूपो रस एव। एतेषां भरणं पोषणं शर्रारे सर्वदा प्रचळलेव । नित्यं नवीनारसंख्येयाः परमाणुसमूहा निष्पद्यंते । तथेवासंख्येयास्तु मळरूपतां याता निर्गच्छेति बिहः । एतेषु परमाणुषु नित्याः प्रचळंति त्रिप्रकारकाः क्रियाः । १ जीर्णशीर्णपरमाणूनां उत्सर्जनम् । २ नृतन परमाणूनामाविर्मावः परस्परसंघद्धश्च । ३ नृतनपरमाणूनां तथा जीर्णपरमाणूनां परस्परतो पृथकरणम् । इमास्तिस्रा अपि क्रियाः क्रमशो वातिपत्तकपानामेव-कारणाद्भवंति । शरीरे हृदयादिकानि यावंति मर्मस्थानानि तानि सर्वाणि— ज्ञानतंतुभिर्व्याप्तानि [मज्जातंतुभिः] । एतेषामंतस्तळेषु श्लेष्मळत्वचाया आवरणं विद्यते । तथा कोष्ठांतर्गतपाचकरसः [पित्तं] अन्नरसेन सह सर्वं शरीरं पोषयित उद्दीपयित च ।

अथवा अपरया दृष्ट्यापि इत्थमवधार्यते--

शरीरपोषणार्थं रक्तस्यावश्यकता तु अतीव वर्तते । इदं शोणितं तु अशिताहाररसादेव निष्पन्नं भवति । परं चेदं शोणितं न हि अन्नभक्षणक्षणे एव प्रादुर्भवति, किंतु भक्षितं अन्नं प्रथमं दवी भवति । पश्चात् अस्मादक्तो-त्पित्तकरभागस्य, त्याज्यमहरूपभागस्य पृथक्करणं भवति । अनंतरं आहारसत्वां-

शस्य रूपांतरं शोणिते परिवर्तितं भवति । तदिदं शोणितं समस्ते शरीरं संततं भ्रमति । इमाः क्रियाः कुर्वाणा काचिद्विद्यते शक्तिरदृश्या । यस्याम्नि-दोषा इति नाम । अन्नस्य द्रवरूपतासंपादिका शक्तिः कफः । रक्ते रूपांतरं कुर्वाणा शक्तिः पित्तम् । अनयोः शक्तयोः सहायेन संपन्नस्य शोणितस्य शरीरे भ्रमि कुर्वाणा शक्तिर्वात इति ।

"तप संतापे इत्यस्माद्धातो रिचिप्रत्ययेचेत्वे कृते वर्णविपर्यये कृते च पित्तमिति रूपम् "।

शरीरे सप्तधातुरूपद्रव्याणि संति । एतेषामेव खरूपयुक्ता अनेके पदार्थास्सृष्टी विद्यंते । एतेभ्यः पदार्थेभ्यः शरीरोपयोगिनां पदार्थानां ग्रहणं कृत्वा, शेषाणां उत्सर्जनकरीं वर्तते एका शक्तिः शरीरे व्याप्ता । आवश्यकानां समानानां पदार्थानां ग्रहणं, अनवश्यकानामसमानानामुत्सर्जनं यया क्रियया वा येन व्यापारेण भवति तस्य द्योतकः ' पित्त ' इति शद्धो वर्तते । शरीरे पाचनकारिणी शक्तिः पित्तमिति कथ्यते । कोऽपि गुणो वा शक्तिः कस्याऽपि पदार्थस्याश्रयणेव तिष्ठति । पदार्थकल्पनमकृत्वेव केवलं गुणस्य वा शक्तेवां अनुभवो नैवागच्छति । अतस्तम्यग्ज्ञानार्थं केवलायाः शक्तेवर्णनसमये यस्मिन्पदार्थे सा शक्तिराधिक्येनाधिष्ठता विद्यते, तस्यैव पदार्थस्य वर्णनं क्रियते । आयुर्वेदे अनेनैव सिद्धांतेन शरीराश्रितस्यातीदियस्य वस्तुनः पित्तरूपेण वर्णनं कृतमस्ति । यस्मिन् पाचनकार्यकरायाः शक्तेविशेषोऽस्ति । सृष्टेः प्रारंभसमयाद्यांगेव शरीरे अग्निगुणसंपन्नं, सर्वव्यापि, पित्तं सत्तारूपेण सूक्ष्मदर्शिमी ऋषिभिः स्वीकृतम् । यस्य आंग्ल्माषायां " बाईल् " इति संज्ञा । तत्तु भक्तरूपं वा किद्दरूपं वा पित्तं वर्तते । तस्य धातुरूपापित्तेन सह नैवार्थः संगच्छते ।

श्लेष्माचायं श्लेषक तत्वं विद्यते—इदं तत्वं सर्वस्मिन् शरीरे प्रतिभासते । अनेनैव तत्वेन वा शक्तया वा शरीरोत्पत्तिस्तथा वृद्धिभैवति ।

बाह्यसृष्ट्याः पोषकपदार्थस्य परमाणवो यदा शरीरांतर्गतिपिंडेषु संलग्ना वा एकरूपा भवंति तदैव शरीरस्याभिवृद्धिर्वा पोषणं वा भवति । अत एवोच्यते इयं श्लेषकशक्तिर्यथा शरीरोत्पत्ती तथा शरीरपोषणेपि कारणभूतेति । अस्याः श्लेषणशक्तयाः श्लेषणं कार्यं पार्थिवपरिमाणुजलतेजसां सहाय्येन भवति । जलपृथ्वीयोगेन विशेषतः कफोत्पन्नः । केन जलेन फलति यद्वा के-शिरसि—फणति फक्कति इति कफः । सोऽयं कफो पित्तसमानधातुभूतो अतींदिय एव ।

'' गुरुशीतमृदुिस्वग्धमधुरिस्थरिपिच्छिछाः । श्लेष्मणः प्रशमं यांति विपरीतगुणैर्गुणाः ॥ कफः स्विग्धो गुरुः श्वेतः पिच्छिछः शीतलस्तथा। तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत्॥

पिच्छिटः (मृद्यमानः खांगुिल्प्राहि) "प्रकृतिस्थोऽविद्ग्धश्चाप्रदुष्टो मधुरः कपः । विद्ग्धो विकृतस्थस्यात् प्रदुष्टो लवणस्तथा । यद्वा विद्ग्धा-म्लपाकाल्लवणः । सोयं कपो नासामुखाभ्यां बिहिनिंगच्छन् यो दृश्यते स नैव भवति । स तु किह् भूतो मलभूतो वा वर्तते । किंतु धातुभूतः कपो पित्तवाताविव अतीदिय एव । पाश्चात्यांग्लवैद्यक्तिस्रातेन समं अस्यैकवाक्यतायाः प्रयत्नेन इदं दृगोचरमायाति—शरीरांतर्वतिस्रोतसामंतभीगे वर्तमाना या त्वक् विद्यते तस्यां कप्तसदृशरस्योत्पत्तिम्बति सोऽयमेवाविकृतस्थूल्रूप्तमयः श्लेष्मा इति । एतेषु असंख्येयेषु स्रोतःसमूहेषु सर्वशरीरच्यापीनि त्रिदोषाणामपि स्रोतांसि विद्यते । एतेषा आभ्यंतरतलेषु स्वभाविसद्धः श्लेष्मगुणयुक्त एकः पदार्थ उत्पद्यते । सोऽयं शरीरस्य जीवितावस्थायामेवोत्पन्नो भवति । शस्त्रविच्छेदनसमये एव तत्कालं विलीनो भवति । मृतावस्थायां तु नैव तिष्ठति । अतोऽयं अतीदियोऽप्रस्थ इति कथ्यते । श्लेष्मणो उक्तं यदसस्वरूपं तदेव श्लेषिकी शक्तिः । यया शरीरस्य पार्थिवाः परमाणवो एकत्र संल्या मवति ।

कफो यदि अन्नरसोत्पन्नो निःसत्वो (बेकार) मळ एव उच्येत तर्हि एनं शरीरसंचाळकशक्तिभूतमिति कथं वक्तुं शक्यते ? अत इदं ज्ञातन्यं यत् कफ पित्तविषये ' मल ' इति संज्ञा या ऋषिभिः प्रदत्ता सा हेयरूपमल-त्वेन न प्रयुक्ता, अपि तु इयं संज्ञा सापेक्षिकी । कस्यापि पदार्थस्य पचनस-मये तस्मादेको भागः, द्रव्यं, पदार्थो वा, (प्रसादः) द्वितीयश्च अल्पखच्छः, त्रितीयस्तु किहरूपो मलो निष्पद्यते । एवमेवाऽयं श्लेष्मा वा पित्तं वा प्रसाद-रूपाभ्यां रसरक्ताभ्यां अल्पशुद्धमलरूपेण पचनसमये संभवति । अस्य कफनामकपदार्थस्य कार्यकारिणी शक्तिरस्य स्त्रिग्धता, शीतता इत्यादिगुणेष्वेव वर्तते । अतोऽस्य उक्तगुणसमुच्चयेएव धातुरिति तथा अस्य विकृतावस्थायां दोष इति संज्ञा प्रदत्ता।

प्रोफेसर हरदयाळ वैद्यवाचस्पतयः

खीये ' आयुर्वेदीयो वातस्तस्यचास्तित्वम् ' इस्यस्मिन्हेखे ठिखंति ।

प्राणादिबायूनां लक्षणानि तुल्नया लिख्यते। प्राणवायोः कार्यं "वायुर्यो वक्त्रसंचारीति" वर्तते। इदं कार्यं पाश्चल्यमतेन फेरिक्स्, न्यूमोगिस्टिक, पल्मनरी, तथाच कॉर्डियल फ्रेक्सस् प्रभृतीनां मज्जातंतुजालकानां कार्यमेव।

उदानवायुः — ' उरस्थानमुदानस्य नासानाभिगलान्चरेत् ' इत्यादि कार्यम् । तत् ' लॉरिंजियल् ' ज्ञानतंतुकार्येण प्रतिपादितम् ।

व्यानो वायुः — 'व्यानो हृदिस्थितः कृत्स्न देहचारीत्यादि 'कार्यम्। तत् 'मोटर' गतिवाहकज्ञानतंतुकार्येण समानम्।

समानवायुः —समानोग्निसमीपस्थ इत्यादि कार्यम् — 'सोल्डर' ज्ञानतंतुना समानम् ।

अपानवायुः - 'अपानोऽपानगः श्रोणि बस्तिनाभि इत्यादि' कार्यम्-इदं ''पेलाव्हिक् प्रेक्सस्'' संज्ञकस्य कार्येण समानम् इति ।

पित्तम् - शरीरसंबंधिज्ञानं हस्तामलकवत् धारकै ऋषिभिर्यस्य



शक्तिपुंजस्य नाम पित्तमिति संबोधितं तिददं — 'पित्तं पक्तयूष्मदर्शनैः । क्षुत्तट्रु चिप्रभामेधाधीशौर्य तनुमाद्वैः '। '' रागपक्तयोजस्तेजो मेधो-ष्मकृत् पित्तं पंचधा प्रविभक्तं आग्निक्मणा अनुप्रहं करोति ''। इयं अविकृता शक्तिः ईश्वरस्य सत्ता शरीरस्यांतः परिपाकित्रयया कार्यसाधनं करोति । यस्य आधुनिका 'डायजेस्टिक् गॅस्टिक्जूस्, पॅित्रयाटिकजूस्, इंटेस्टनल् सीिक्रशन्स्, कॉइल्' इति चोच्यंते ।

कफस्य स्थानानि—" उरः कंठिशरःक्कोमपर्वाण्यामाशयोरसः । मेदोघ्राणं च जिव्हा च कफस्य सुतरामुरः ।

क्केंद्रकः -स तत्रस्थ एव खशक्तया शेषाणां स्थानानां शरीरस्य चोद-ककर्मणानुग्रहं करोति ।

आमाराये वर्तमानः क्रेट्कः कपो खराक्त्या (केदारीकुल्या) न्यायेन रारीरास्थितान्यकप्रस्थानानां सर्वरारीरस्य च सिंचनेन उपकारको भवति । कप्रस्य प्रधानं स्थानं अमारायः । आमारायिकेन रसेन भक्ष्यादिचतुर्विधान्नं द्रवरूपं तथा भिन्नसंघतं च भूत्वा सुखेन पच्यते । पाश्चात्यविद्वानानां मतेन आमारायिकरसः –एल्डेमेंटरीकॅनॉल्ल—म्यूकस, सीरस, ग्लॉडिसिकिरान्स, पेरिटोनियल्फ्लुइड्, इत्यादि उदरस्थितजलस्य बोधको वर्तते । अंत्रारायस्थां-तर्वाद्यभागस्यार्दतारक्षणमेवास्य प्रधानतमं कार्यम् ।

२ अवलंबकः कफः —' उरुस्थः त्रिकसंधारणमात्मवीर्येणात्ररससिहतेन हृदयालंबनम्' तत्कार्यम् । पाश्चालविद्वानानां मतेन 'फ्ल्यूरल्' 'पेरिकार्डियल् फ्लुइड ' इत्येवाऽयं बोद्धन्यः ।

३ रसनको अथवा बोधकः कफः — जिन्हाम् लकंठस्थो जिन्हें-द्रियस्य सौम्यत्वात्सम्यप्रसज्ञाने वर्तते '। पाश्चालपंडिताः 'सलायन्हा' इति वदंति।

श्र स्त्रेहकः कफः –शिरस्थः स्त्रेहसंतर्पणाऽधिकृतत्वादिंद्रियाणामात्मवी-

र्येणानुम्रहं करोति । आंग्लभाषायां 'सेरिब्रोस्पायनल् फ्छ्रह् ' इति कथ्यते । ५ श्लेपकः कफः —संधिस्थस्तु श्लेष्मा सर्वसंधिसंश्लेषणात्सर्वसंध्य-नुम्रहं करोति । पाश्चात्याः सायनोव्हियल फ्छ्रह् इति वदंति ।

कविराज उपेंद्रनाथदास आयुर्वेदाचार्थ (दिल्ली)

यथा गत्यर्थेन 'वा' धातुना वायुराद्वो निष्पन्नोऽभवत् । 'तप' संतापे इस्रोनन पित्तराद्वोत्पत्तिरभूत्। तथा 'श्चिष् ' आर्टिंगने इस्रोनन धातुना श्लेष्म-शद्बोत्पत्तिर्जाता । एकं पदार्थं अपरेण पदार्थेन यः संयोजयति स श्लेष्मेति कथ्यते । सचाऽयं संयोगः केवलं द्वयोरस्थ्नोर्वा मांसास्थ्नोर्वा भवतीति न मंतव्यं । अपितु स्थूलात्स्थूलो वा सूक्ष्मात्सूक्ष्मो वा पदार्थी, येन संयुक्तो भवति स श्लेष्मा। अस्थोऽणुतरः कणोऽपरेण अस्थिकणेन श्लेष्मणा एव संख्यो वर्तते । मांस-स्यापि एकः कोषः (सेल्) अपरेण मांसकोशेन सह श्लेष्मणैव संगच्छते। अतः शरीरे नैतादशः सूक्षमात्सूक्ष्मतरोऽवयवो विद्यते यस्य श्लेष्मणः संबंधो नास्ति । अत एव शास्त्रकारैर्वातादिदोषाणां ' ते व्यापिनोपीति 'वर्णनं कृतम् । किंतु अणुवीक्षणयंत्रे एव विश्वस्तास्सर्वस्मिन् शरीरे अणुवीक्षणयंत्रेण श्रवण-चिक्कणं कफं नैव पश्यंतो, शास्रकारान् भ्रांतान् मन्यमानाः केचन विद्यंते । अन्ये च केचन दोषान् शक्तिरूपान् वा केचन सृक्ष्मरूपान् कथ्यंते। परंतु शास्त्र-कारैर्दत्तया संज्ञया एवाऽस्माभिरिदं ज्ञातव्यं यत् एकस्यापरेण संयोगकरः पदार्थः श्लेष्मा इति । यत्र स्थूलेन स्थूलस्य संयोगकरणं तत्र श्लेष्मण आधिक्यं अतः स दृष्टिगम्योपि तत्र भवेत् । परं यत्र तु सूक्ष्मेण सूक्ष्मस्य संयोगकरणं तत्र कफोप्यत्यंतं सूक्ष्मो वर्तेत यस्य यत्र प्रत्यक्षत्वमपि नैव स्यात् । वातादय-स्त्रयो दोषा द्रव्यपदार्था एव । एतेषु वर्तमानानां गुणिक्रयाणां वर्णनं शास्त्र-कारैरनेकशः कृतम् । अतोपि एते शक्तिरूपा इति कथनं कथं सत्यं भवेदिति सर्धाभिविचारणीयम्।

श्लेष्मा सौम्यः पृथिशीजलभागाधिक्यात् शैत्यगुणः, पृथिवीजलतत्वा-धिक्यात् श्लेष्माणे मानुषशारीरप्राकृतिकतापान्न्यूनतापत्वं वर्तते, अत एव शैत्यगुणः । कफे तापस्य सर्वथाऽस्तित्वं नैवेति न क्षेयं । हिमे [बर्फ] तापस्य सत्वात् वर्तते कफेऽपि तापः, परं स मानुषतापान्न्यून अत एव शीतः।

१ क्लेद्कः श्लेष्मा—अयं श्लेष्मा अमाशये स्थित्वा अन्नद्रव्यं क्लेद्यति भिन्नसंघातं सुखजरं च करोति । भिन्नसंघातं छिन्नं भिन्नं भूत्वा अणुरूपता-प्राप्तिस्तथा रासायनिकविश्लेषणत्व—(डीकांपोशिशन्) प्राप्तिरिप । लालारसोऽपि (सलायव्हा) अस्यांशरूप एव विश्लेयः । खाद्यपदार्थानां रासायनिकं विश्लेयः वणं कृत्वा श्लेतसारं, (स्टार्च) शर्करा—(शुगर) रूपेण परिणामयति, क्लेदको आमाशयस्थः सोऽयं प्रत्यक्षयोग्य एव ।

२ अवलंबकः श्लेष्मा—हृदये अयं प्रतिवसित, अयं धारयित पृष्ठवंशं, अस्य वीर्यं अन्नरसेन सह हृदयावलंबनं करोति । सचायं श्लेष्मा हृद्यंत्रे फुप्फु-सयोरंतर्वर्तमान एतान् कार्यक्षमान् कृत्वा स्वीयं सूक्ष्मांशै रक्तेन सह संगत्य शरीरे परिश्रमित, सोऽयमवलंबकः श्लेष्मा सोप्ययं प्रत्यक्षयोग्य एव ।

३ बोधकः श्लेष्मा—सोऽयं रसानुभवे सहायतां संपादयति जिन्हें-द्रियम् सोम्यं, जिन्हाम् लकण्ठयोर्वसन् श्लेष्मा रसज्ञानसाहायको भवति, सोऽपि प्रस्यक्षयोग्यं एव ।

४ तर्पकः श्लेष्मा—यश्च शिरिस स्थित्वा चक्षुषोक्तर्पणं करोति । पंचानामिष इंदियाणां केंद्रभूते शिरिस (नर्व्हसेंटर) वर्तते । एतेषु केंद्रेषु स्नेहपूरणं ऋत्वा कार्यक्षमत्वं संपाद्य इंदियाणां तृप्ति विद्धाति, सोयं कफः प्रत्यक्षयोग्य एव ।

५ श्लेषकः श्लेष्मा-संधितमृहं श्लेषणेन अनुग्राह्य कार्यक्षममनुविद-धाति सोऽयं श्लेषकः । संधिराद्वेन न केवलं अस्थनां संधय एव प्राह्याः, किंतु पेशी-शिरास्नाय्वादीनां असंख्याः संधयोऽत्र ग्राह्याः । अस्थिसंधिषु तु श्लेषकः कफस्तु प्रत्यक्षसिद्ध एव । परंतु, सूक्ष्मातिसूक्ष्मसंधीनामपि श्लेषणात् तत्र श्लेषककफ-स्यापि संनिधानमनुमानेनैव विज्ञेयम् । श्लेष्मण उत्पत्तिस्तु " अन्नस्य मुक्तमात्रस्य

षड्रसस्य प्रपाकतः । मधुराख्यात् कफो भावात् फेनभूत उदीर्यते । " तानि द्रव्याणि आमाशयस्थ श्रेष्मणा संगतानि भूत्वा मधुरत्वमायांति । तेन मधुरर-सेन फेनभाव: कफोल्पनो भवति। तथा च 'किदमन्नस्य विष्मूत्रं रसस्य तु कफो ' इल्पनेनापि रसस्य मलः कफोत्पन्नो भवतीत्पत्र विरोधो दश्येत, तथापि वास्तवत्वेन नात्र कश्चिदपि विरोधः । यत अस्माभिर्यदा भुज्यते तदा चर्व-णेन खादितपदार्थेषु लालारसो मिश्रीभूत्य तैस्सह आमाशयं गच्छति । भुक्त-पदार्थानां अंशो यावान् जलेन साकं मिश्रो भवति, तस्यैव आत्मीकरणं प्रथमं भवति (अब्सॉर्प्शन्) । खाद्यद्रव्येषु यावान् शर्करामयोऽशंस्स आमाशये गच्छन् मिश्री भवति (घूल जाता है)। तथैव गोधूमशाल्यादिषु यश्च श्वेतसारः (स्टार्च) सोऽपि शर्करारूपेण परिवर्तितो भवति । अस्मिन् समये भुक्तपदा-र्थेभ्यः श्रेष्मजनकांशयस्य प्रहणं भवति । तेन श्रेष्मणो अवयवानां वृध्वा श्लेष्मा वृद्धो भवति । अत एव भुक्तमात्रे एव श्लेष्मा वृद्धो भवतीत्युक्तम् । तथापि नाऽयं प्राकृतः श्लेष्मा, परंतु फेनभूतः श्लेष्मा आमश्लेष्मा भवति, अन्तरसेन मिश्रितो भवति । अनंतरम् रसस्य त्रयो अंशा भवंति । स्थूलसूक्ष्ममलनामकाः । मलांशेन कफस्योत्पत्तिर्भवति स च स्वाशयं च गच्छति । अन्यस्थानस्थित-श्लेष्मणां अप्यायनं करोति । आयुर्वेदसंदेश श्लेष्मांक १९३३ जून.

पित्तपरिचयः — कस्यापि पदार्थस्य सम्यग्ज्ञाने तस्य उपादान-कारणस्य ज्ञानस्यावश्यकता वर्तते । ' सर्वं द्रव्यं पांचभौतिकं ' च. सू. २६० इत्यनेन आयुर्वेदसिद्धांतद्वारा इदं स्पष्टं भवति यत्सर्वमिपद्रव्यं पांचभौ-तिकमिति । न्यायवैशेषिकदर्शनमतं तु प्रतिद्रव्यस्योपादानकारणं एकादिधिक-संख्याकं नैव वर्तते । यतो विजातीयद्रव्यपरमाणुभिव्धणुकोत्पत्तिनैव भवति । अतः प्रतिद्रव्यस्योपादानकारणं तु एकमेव भूतम्, इतरभूतानि तु निमित्त-मात्रकारणानि भवति । परंतु आयुर्वेदसिद्धांते तु सर्वमिप द्रव्यं पांचभौतिक-मिति पंचभूतोपादानकं विद्यते । स्थूछं पित्तं पांचभौतिकमिप अग्निभूतप्रधा-नम् । तपसंतापे इत्यस्माद्धातोः पित्तशद्धाभिनिर्वृत्तिर्भवति । अस्माकं शरीरं पांचभौतिकं तस्मिन् शरीरं ' अग्निभूतं पित्तांतर्गतमेव समाविष्टम् । पित्तं

विहाय शरीरे अग्निभूतस्य पृथक् सत्ता न विद्यते । अत एव चरके '' अग्निरेव शरीरे पित्तांतर्गतः कुपिताकुपितः शुभाऽशुभानि करोति "। तथा चरके त्रयोदशिवधोग्निरुक्तः । सप्तधात्वग्नयः पंचभूताग्नयः एको जाठराग्निः । ते च त्रयोदशाम्रयः पित्तांतर्गता एव स्वीयं कार्यं कुर्वति । पित्ते अग्निः प्रधानः जलं अप्रधानम् , अन्यानि भूतानि तु आनुषंगिकानि । आधुनिकारतु अप्नि द्रव्यं नैव मन्यंते । वैज्ञानिकास्तु कस्मिन्निप द्रव्ये आणूनां स्पंदनवृद्धिः केनािप कारणेन जाता चेत्तदा तस्मिन्द्रव्ये उत्तापवृद्धिरिप भवति । तेन वृद्धेन उत्तापेन द्रव्यं दग्धं भवति । तेन तद्द्रव्यावयवा उज्वला भूत्वा इतस्ततो विक्षिप्ता भवति। अतो नाग्निः किमपि द्रव्यम् इति वदंति । द्रव्याणूनां स्पंदनेन, आलोकः, उत्तापः, गतिः विद्युत् इति चतुःप्रकारका शक्तिरुद्भवति । एतेषु नियतपरिमाणा शक्तिः अन्यायां नियतपरिमाणायां शक्तौ रूपांतरिता भवति । यथा नियतपरिमाणाया विद्यतस्तापः, आलोकः, गतिः उत्पद्यते । तथा तापादालोकाद्गत्या अपि विद्युदुत्पत्तिर्भवति । अतः तापादयश्रत्वारो न कस्यापि द्रव्यस्य विशिष्टगुणाः। अपि तु सर्विस्मन् द्रव्येपि शक्तिरूपेण (एनर्जी) निवसंत इमे कदा, केनाऽपि रूपेण प्रकटिता भवंति । अस्मिन्विषये विचारः कृतश्चेत् तापश्चा-लोकश्च द्रव्यस्य गुणौ एव । यौ द्रव्याश्रयं विना न तिष्ठतः । अनयोः द्रव्ये गतिरूपा क्रिया भवति। यतः 'अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुणा निष्क्रिया गुणाः'। अयं सिद्धांतस्सर्वथा परीक्षितस्सत्यश्च वर्तते । यं सिद्धांतं आधुनिका प्राची-नाश्च मन्यंते । एकात् द्रव्यात् तापालेकौ निर्मत्याऽन्यं द्रव्यं गच्छत इति प्रत्यक्षसिद्धमेव । अतः तापालोको, " ईथर " द्रव्यस्य वैज्ञानिकैः कप्नित-स्यात्यंतं सूक्ष्मद्रव्यस्य स्थितिस्थापकात्यंतसूक्ष्मकणेभ्यः (तरंगमयेभ्यः)सर्वतः परिसर्पतीति वैज्ञानिका आहुः । परं सर्वव्यापिनोऽप्रतिबंधगतेरीथरद्रव्यस्य आश्रितौ तापाछोकौ सर्वतः प्रसरणे अनिरुद्धगतिशीछौ भाव्यौ । परं नैतत् दृश्यते, इमौ तापालोकौ रुद्धौ भवतः । अत ' ईथर ' द्रव्याश्रयादन्यदाश्रय-स्थानं तयोः किमपि संभाव्यते । तदेव द्रव्यं तेज इति वयं व्हमः । तेजसि नास्ति गुरुत्वं (वेट) इखतस्तनास्ति द्रव्यमिति पाश्चात्यानां मतम् । तथापि

'गुरुत्व 'मिप सापेक्षकमेव। अधुना 'हैड्रोजन 'द्रव्यमिप 'एकं ' संज्ञापेक्षया 'गुरु ' जातम्। अतो वर्तमानात्तुलायंत्रादि म्ह्रमातिस्क्ष्मतुलायंत्रस्योद्गमे कदाचित्तेजद्रव्यमिप मानस्यापि 'एकं ' इस्यधिकारमाष्नुयात्। अतस्तेज इति द्रव्यं यत्पूर्वाचार्येरुक्तं तदेव युक्तितरं प्रतिभाति। पित्तं, सस्नेहं, ऊष्णं, तीक्ष्णं, द्रवं, सरं, अम्लं, कटु च विद्यते। अस्माकं मते पित्तं लवणरसस्यापि अस्तित्वं वर्तते, यतोऽम्लक्षारमयाः पदार्था भुक्तद्रव्यं परिपाचयंति, अतः क्षारद्रव्येऽपि कटुलवणरसयोरिस्तत्वं वर्तते। अतो ज्ञायते पित्ते अम्लल्वणकटु-रसानां अस्तित्वं वर्तते इति।

पित्तस्योत्पत्तिः -- मुक्तं द्रव्यं आमाशये गच्छत् आमाशस्थक्केदक-श्रेष्मणा संगच्छति । मध्ररसात्मकं च भवति क्रेदकश्रेष्मप्रभावात । ततो आमारायाधोभागे गच्छति, आमारायाधोभागस्थाम्लरससंयोगं च गच्छति, (गॅस्टिकजूस) अम्लं च भवति । अनेन अच्छं पित्तं उत्पद्यते । अत्र ' आमाराय ' राद्वेन केवला पाकस्थली [स्टमक] इस्थेव प्राह्मम् । आमस्य अपकरयान्नस्य स्थानं आमाराय इति व्याख्यायां इदं कपस्थानं । तथापि यावदनं विदाहावस्थास्थितं तावदपि किंचित्पकापकावस्थं, अतएव आम-संज्ञया व्यवहृतं चेत् आमाशयाधीभागमारभ्य पित्तकीष-[गाँ व्ळॅडर] अग्न्याशय—[पाँक्रियाज्] इत्येतै: तथा च क्षुद्रान्त्रस्य (लघ्वंत्र) पाचक-रसोत्सर्जको भागोपि आमाशयशब्दवाच्यः । (अत एव सुश्रतेन पकामाशय-योर्मध्यं पित्तस्य इत्युक्तं) यस्मिन् पित्तपोषके आग्नेयांशरसे पित्तस्य वर्णरूपादयो न विद्यंते, अत इदं अच्छं पित्तमिति कथ्यते । यस्मिन् पित्तपोषकांशो विद्यते, एतादशो रसस्वाग्निना पक्को भवदक्तरूपं गुण्हाति तदा तस्मिन्शोणिते पित्तपोषकांशोऽपि संमिरितो भवति । तदेव शोणितं यदा स्वाग्निना पकं मांसतां याति, तदा तस्मान्मल्रह्रपं पित्तं पृथक् भवति, यस्मिन् वर्णादयो सर्वे गुणा विद्येत । इदं पित्तं स्वस्थानं गच्छत् संचितं भवति । अत्रेदं अच्छमिति न कथ्यते । यकुत्धीन्हो रंजकं िपत्तं निवसति । अनेन रक्तपरिश्रमणं [ब्लड् सर्क्युंळेशन] पूर्वस्मात्काळादिप पूर्वाचार्या जानंतीति सिद्धं । ते तु रसपरि-भ्रमणमिती नाम्ना निर्देशं कुर्वंति। 'व्यानेन रसधातुहि विक्षेपोचितकर्मणा।

युगपत् सर्वतोजसं देहे विक्षिप्यते सदा '। चरक चि. अ. १५। रसतीति रसो द्रवोधातुरुच्यते, तेन रुधुरादीनां द्रवाणामिप प्रहणं भवतीति चक्रपाणिः ॥ 'गत्यर्थो रसधातुर्यस्ततो भवदयं रसः । सदैव सकलं देहं रसतीति रसः स्मृतः '। भावप्रकाशः। हृदयस्थितं पित्तं साधकम्। चक्षुषो बाह्यपटलस्याध्यत्तेजोमिश्रितजलस्यास्तित्वं वर्तते, 'तेजो जलाश्रितं बाह्यं 'सु. उ. १॥ तदिदमालोचकं पित्तम्। जीवच्छरीरे त्वचो आवरणं विद्यते, इयं त्वक् खाभाविकेन ऊष्मणा युता विद्यते । अयं चोष्मा सदैव शीतोष्णकालेऽपि खाभाविकीं शरीररक्षां करोति । अनेनैवोष्मणा शरीरिलसलेपादीनां संशोषो जायते । अनेनैव शारीरो वर्णः प्रतिभासमानो भवति । अयमेवोष्मा भ्राजकं पित्तम् ।

चरकसंहितायां पुरुषविचयशारीरेऽध्याये पृथ्वीजलतेजवाय्वाकाश-ब्रह्मणां षण्णां समष्टिर्जगदिति कथितं, तथैव पुरुषोप्येषां षण्णां समष्टिरेव । पुरुषशारीरे पृथ्व्या मूर्तिः, जलेन क्रेदः, तेजसा उष्मा, वायुना प्राणाः, आकारोन छिद्रसमूहो निष्पचते इत्यपि कथितम् । अस्मिनिदं विशेषेणावधार्यम्-शरी-रस्थकठिनद्रव्याणि सर्वाणि पृथिवीसंभूतानि, परं येयं कठिना स्थूला पृथ्वी तं निर्मातुं न समर्था । अपि तु भोज्यपदार्थानां मक्षणात् तेभ्यः पार्थिवांशशोष-णेनेदं शरीरं खपुष्टिं संपादयति । अतः शरीस्य कठिनांशानां धारका सामान्या पृथिवी नैव, अपि तु विशिष्टां अवस्थां प्राप्तैव पृथिवी पोषका धारका च । एवमेव वायः शरीरस्य संजीवकः प्राण इत्युचमानो सामान्याद्वाह्यवायोरस्यंतं भिन्नोपि नास्ति परं विशिष्टामवस्थां समनुगतो वर्तते । जगत असाधारण-वायोरेव इदं शरीरं स्वीयोपयोगिनमंशं स्वीकृत्य शरीरधारकं वायं स्वीयं निष्पादयति, यः प्राण इति कथ्यते । वायुस्तंत्रयंत्रधरः, तंत्र्यते नियम्यते अनेनेति तंत्रम् । येन यंत्रादि नियमपूर्वकं चलति । हृदयादि अनैच्छिकं यंत्रं तथा खरयंत्रादि ऐच्छिकं यंत्रं नियमपूर्वकं संचालयंति या नाड्यस्तास्तंत्र-शह्वनाभिधीयंते । ''योऽनिलोवक्त्रसंचारी स प्राणो नाम देहधुक् । सोनं प्रवेशयत्यंतः प्राणांश्चैवावलंबते ?'। यो वायू रक्तसंचालको वर्तते (ब्लड् १ सर्क्युलेशन्) देहं धारयति स एव प्राणवायुरिति कथ्यते । इदं रक्तसंचरणं

प्रस्यक्षं कर्म नास्ति कोप्यत्र विवादः । परं विवादास्पदमेतत् तदेतत्कर्म रक्त-संचारणात्मकं अस्माभिः प्राणवायोरेव मन्यते । अन्यस्त हृदयप्रपप्रसा-द्यनैच्छिकयंत्राणां मन्यते । अस्मिन्विषयेऽस्माकं वक्तव्यमित्थं यदीदं रक्तसंच-रणं कर्म हृदयादीनामेव स्यात् तदा विद्यमानेपि हृदये कदाप्येदं कर्म स्थिगतं-नैव भवितं योग्यम् । अथ च यदि भवति स्थगितं सत्यपि हृदयादीं द्विये तदा नैव तेषामिदं कर्मेति । प्राणवायोः कार्यं यावत्काळं भवति तावत् रक्तसंचा-१ रोऽपि भवत्यतो रक्तसंचरणं कर्म प्राणवायोरेव मन्तुं युक्तम् । अथच हृद्यादीनींद्रियाण्यपि पूर्णतया अनैच्छिकानि नैव विद्यंते । यतो इच्छाशक्ति-रिप हृदयादीन्यपि नियंत्रयति । योगिजनाः प्राणायामेन प्राणादीन् संरोध्य समाधी हृदयादीनां क्रियारोधं कुर्वत्येव । अतो रक्तसंचरणकर्मणि प्राणवायी-र्यथाऽविच्छेद्यः संबंधो विद्यते न तथा हृदयादीनां । प्राणवायोद्धितीयं कर्म अन्नप्रवेशनात्मकं । आधुनिकास्तु इदं कर्म पेशीवेगादेव भवतीति मन्यंते । अस्मिन्विषये सूक्ष्मतया विचारे कृते पेश्यो हि तदा कर्म खर्कायं कुर्वंति यदा ता ज्ञानवहनाडीभिः संचालिता भवंति । वातनाड्योऽपि स्वीयं कर्म वाताध्माता एव कुर्वंति नान्यथा । अतः प्राणवायोरेव प्राधान्यं वातवहनाडी-पेशीसमृहेभ्य इति । प्राणवायुरुत्तेजयति वातनाडीः । तास्तु उत्तेजयति पेशीः । उत्तेजितानां पेशीनां वेगादन्तगंतर्यातीति अन्तप्रवेशकृत् प्राणवायः। नाड्यः पेश्यश्च तस्य साधनमिति ।

२ उदानवायुः -यश्च वायुक्तध्वं गच्छन् हृदयान्तिर्गच्छत् शोणितं नयन् ऊर्ध्वमिमसारयति जन्त्रुभागेषु स उदानः । उदगयनादुदानः । उध्वं गच्छ- स्रस्मादुदानः । आधुनिकास्तु इदमिप कर्म वातनाडीभिरुत्तेजितानां पेशीनां वेगादेव भवतीति वर्णयंति । अस्य वायोः कार्यं हसितभाषितगीतादि विद्यते।

३ सामानो वायुः —आमाशयादियंत्रेषु वेगं दत्वा पाचकरसस्योत्सर्गं, अन्नस्य अंतःपीडनं, रसस्य सात्मीकरणं, तथा तस्याभोनयनं कर्म अस्य वायोरेव । इदमपि कर्म आमाशयादियंत्राणां संचालका प्रेरका वातनाडय-एव कुर्वंतीति आधानिकं मतम् ।



४ व्यानवायुः —सर्वास्मिन् शरीरे गतो रससंबहनिक्रयाकरः सर्व-शरीरपोषकस्य आहाररसस्य सर्वास्मिन् शरीरे प्रेरकोऽयं वायुर्विद्यते । अत एव 'रससंबहनोद्यते'ति तस्य वर्णनं शास्त्रे कृतम् । प्राणवायोस्स्थानं स्पष्टं भवति, यत् फुफ्फुसहृदयादीन् संचाल्य महाशिराया अशुद्धं रक्तं गृहीत्वा । महाधमन्यां शुद्धशोणितस्य विसर्जनम् इत्येतत् कर्म प्राणवायोरेव । परं सर्व- । शरीरे रसरक्तादीनां तद्वहरस्रोतोविशोधनं कृत्वा तैरसंचारणात्मकं कर्म तु ; व्यानवायोरेव ।

५ अपानो वायु: - बृहदंत्रं, बिस्तः, वृक्की, शुक्राशयः, अण्डकोशी, गर्भाशय इत्यादीनां नाभ्यधोवर्तमानानां यंत्राणां संचालको यथासमयं एते- षामुत्तेजको मलमूत्रशुक्रगर्भादीनामुत्सर्जकोऽयं वायुरिति (सेन्सरी नर्व्ह तथा मोटर नर्व्ह इत्यादीनां वाहको वायुरेव)।

पंडित ठाकूरदत्तरामी अमृतधारा लाहोर

वायुः - प्रस्पंदनोद्वहनपूरणाविवेकधारणो वायुः पंचधा प्रविभक्तः शरीरं धारयति । सुश्रुत सूत्र अ. १५ रूक्षळघुशीतदारुणखरविशदाः षडिमे वातगुणाः भवंति ॥ चरकसूत्र अध्याय १२ ॥

व्याख्या साधारणाः — ' वादी ' इलादि शब्दान् वातपर्यायान् केचिदुदाहरंति, परं इमे पर्याया वायोरसन्मानकारकाः, यत आयुर्वेदे सर्वेष्वपि बलवान् वायुरेव कथितः । सच चेष्टानां प्रवर्तकः—(नरब्हस्फोर्स, पट्टोंके काम) केवलं नैव । परं शरीरस्यापि प्रवर्तको मनसोऽपि प्रवर्तकः । अत एव अस्य श्रष्टवं स्पष्टं भवति । प्रश्लोपनिषदि—

उत्पत्तिमायितं स्थानं विभुत्वं चैव पंचधा । अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतम्हनुते ॥ (प्रश्नोपनिषद्) अतः प्राणवायुरेव सर्वाशक्तिर्विद्यते । केवलं नर्व्हज् इस्रेव न वायुः । परं मनसः प्रवर्तकोपि वायुरेवेति लिखितम् । केऽपि यूनानीवैद्यकस्यं 'सौदा' तत्वमेव वायुरिति वदंति तदि अयुक्तमेव । यत यूनानीवैद्यके 'सौदा' तत्वस्य शीतल्रूक्षजलाग्नितुलनया पृथ्वीरेवसमाना । अयं रक्तसहचरः । अस्य रोगा उष्णिक्तिग्धिचिकित्सया प्रशाम्यिति । सौदा शोणितं आवश्यकतया सांद्रं करोति । सच अस्थामुपास्न्थामाहारः । अस्य स्थानं प्रीहा । अस्याऽखादो अम्लः । अप्राकृतोऽयं अन्येषां 'इखिलाते' संज्ञकानां दाहेनोद्भवति । सरक्तः सौदा किंचिन्मधुरः कषायखादो भवति । सफरावी (पित्तयुक्तः) सौदा तिक्तखादो भवति । बल्गमी सौदा (कफ्युक्तः) यदि कफो द्रवः स्यात् चेत् तदा स लवणकटुखादो भवति । यदि च सांद्रश्लेष्मयुक्तः तदा स कटुकांम्लखादो भवति । सौदा तु वायुरम्लः 'शिरका' सहशो विद्यते । असवर्णस्तु कृष्ण एव । यूनानीवैद्यके सफरा पित्तमिति बल्गम् कफ इति गीयते । यद्यि सौदातत्वं वायुश्च बहुषु गुणेषु समान एव, तथापि सौदा च वातश्च सर्वथा भिन्न एविति उद्यमेव । वायुस्तु सर्वथा अत्युचेन अर्थेन प्रयोजितो वैद्यके वर्तते ।

कफः को वर्तते ?।

संधिसंश्लेषणस्नेहनरोपणपूरणबलस्थैर्यकृत्श्लेष्मा पंचधा प्रविभक्त उदक-कर्मणाऽनुप्रहं करोति (सु. सू. अ. १५)

शरीरे चंचलो वायुः पित्तं इस्येव वर्तमानं यदि स्यात्तदा शरीरस्य का अवस्था भवेदतः स्थिरतागुणयुक्तस्य कप्तस्यापि अस्यंतं आवश्यकता विद्यते । क्षणे क्षणे अस्माकं शरीरं क्षीयते तथा च शारीरपरमाणवोपि प्रत्यहं क्षीयमाणा वर्तते । अत एव क्षणे क्षणे शीर्यते इति शरीरं ऋषिभिव्याख्यातम् । यश्चास्माभिरद्यते आहारस्तस्य रसःश्लेष्मान्वितः शरीरे प्रविशन् क्षीणतां-तथा विघटमानानां परमाण्नामपि न्यूनतां नाशयति, पूर्यति शरीरम् ।

विकृतस्तु श्लेष्मा विंशति प्रकारकान् रोगानुत्पादयति । यूनानीवैचके दूषितस्य कफस्य चत्वारो भेदा वर्तते ।



१ बलगमे मुखाती, २ बलगमे खाम, ३ बलगमे माई, ४ बलगमे हिनस्सी। 'बलगमे मुखाती ' इत्यस्य द्वौ प्रकारौ एकश्च द्रवो एकश्च सांदः। बलगमे खामस्तु आमः कपः कथ्यते। बलगमे माई स कथ्यते यः श्लेष्मा जलवत् द्रवोऽस्ति। बलगमे हिनस्सी सुधाचूर्णवत् श्वेतोस्ति। १ बलगमे मालीह २ बलगमे हामीज ३ बलगमे अपस् ४ बलगमे मसीख, इति अन्यश्चतुर्धा मेदो विद्यते। 'बलगमे मालीह ' लवणस्वादः, बलगमे हामीज, अम्लस्वादो, बलगमे अपस्, बलगमे मसीख सीसकदाव इव भवति।

डॉ. आशानंद पंचरत्न एम्. बी. बी. एस्. वैद्याचार्य [लाहोर]

अहं न ताबदस्मिन्विषये किंचिदिप ब्रवीमि वातो नाम पाश्चालवैद्यके व्याख्यातो भिवतुमहितीति । प्राचीनार्वाचीनानामस्मिन्विषये भिन्नानि मतानि । केचन इमं शक्तिखरूपं, (व्हायट्ल फोर्स) केचन मूर्तखरूपं, केचनोऽभय-रूपं मन्यंते । वातस्तु उभयखरूप एवेति युक्तम् । परं इमौ द्वौ परस्परं संबंधं धारयत इति तु निर्मूलमेव । यथा सूक्ष्मो वायुः पित्तकफी शासयित तथा स्थूलं वातमिप प्रेरयित इत्येवान्योन्ययोस्संबंधः। स्थूलो वायुस्सूक्ष्माद्वायोस्सर्वथा भिन्न एव ।

कफो वा श्रेष्मा, स्निग्धः, शीतः, स्थिरत्वप्रदाता, गुरुः, बलप्रदो वर्तते। अस्य च प्रधानो गुणः शरीरे शैल्यरक्षणम् बल्दानं च। 'स चायं' श्रेष्मा सोमगुणप्रधानत्वात् शरीरस्थसर्वधात्नां आईताया स्थिमापादयति। रक्षयति शरीरं पित्तोष्मणः सकाशात्। यश्च आमाशयात् तथा क्षुद्धांत्रान्निर्गच्छन् तीक्ष्णोण्णगुणयुक्तो रस उत्पचते, तथापि उत्पादकं आमाशयं क्षुद्धांत्रा च तत्स्थजीव-परमाणुषु कफस्याईशीतल्खभावस्य विद्यमानत्वान्नैव दहति। तथैव संधिषु श्लेष्मणो विद्यमानत्वात्सदैवाईता अभिरक्षिता भवति, यया सर्वदा संघिष्टितेषु संधिषु उत्पन्नमानाया उष्णताया उपशमो भवति। सर्वे च संधयो सुस्निग्धा जायंते।

मस्तिष्केऽपि प्रधानो अग्निर्वर्तते येन क्रोधादिविकारा उत्पद्यंते तेषां प्रश्नमो मस्तिष्कस्थ श्लेष्मणोत्पनैर्धृतिक्षमाऽलोभादिगुणैर्जायते ।

- १ अवलंबकः -यो वायुप्रणाल्यां फुफ्फुसयोः प्रतिवसति ।
- २ क्रेट्सः -य आमाशये अन्नप्रणाल्यां च स्थितो वर्तते ।
- ३ रसकः यो जिल्हां मुखं च सदैवाईं रक्षति येन मिक्षतः पदार्थो मुखे प्रसरन् खादमापादयित ।
 - ४ **तर्पकः** –यो मस्तिष्के सुषुम्नाशीषिकस्थमध्यस्थकोष्ठे वर्तते ।

५ श्लेषकाः -संधिषु श्लेष्मिककलायां उत्पन्नो भवति, यश्च स्निग्ध-पिच्छिलो वर्तते । एतेभ्यो भिन्नस्मूक्ष्मरूपः श्लेष्मा ' इंद्रियाणामात्मर्वार्येणानुग्रहं करोति ' तथा स्थिरत्वगौरववृषताबलक्षमादिकर्माणि करोति ।

आयुर्वेदाचार्य कविराज नानकचंदशास्त्री लाहोर

वास्तिविकं तु आयुर्वेदे रोगाणामुत्पत्तेस्तु कारणं त्रयो दोषा एवोक्ताः । 'सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः '। इदं सत्यमपि प्रधानतमत्वमत्र वायोरेव। वायुस्तु वा गतिगंधनयोरिति धातुः, वा गतिगंधित गतिगंधोपादानस्य वा धातोः असृद्धरादिभ्य इति सूत्रेण त प्रत्यये वात इति रूपसिद्धिः। वातस्य स्थानं सर्वेदेहव्यापित्वेऽपि श्रोणिगुदावेव । गुदशद्धेन मलाशयस्य प्रहणं कार्यम् । ''तत्र रुक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः ''। अत्र सूक्ष्म इत्यनेन स्रोतःप्रचारित्युक्तम् । योगवाहित्वादनुष्णाशीतत्वेऽपि प्रकृत्या शीत एव, यत ऊष्णचिकित्सया प्रशाम्यति ''।

पाश्चात्यमतानुसारेण ' एअर ' वाह्यवायोर्नाम, यस्तु होकं संचरित अस्मिन्पंचद्रव्याणि विद्यंते येषां वर्णनं पुरत इत्थं क्रियते । १ ॲक्सिजन्, २ हाय्ड्रोजन्, ३ कार्बन् डाय् ऑक्साइड्, ४ वॉटर मॉइश्चर, ५ ओझोन इत्थेवं प्रकारेण सामान्यवायौ द्रव्याणि स्वीकृतानि भवंति । ' हाय्ड्रोजन्'

शीघं दहित । अत एवाऽयं जलादेवोपलम्यते । प्रथमतृतीयौ एवाधिकतरं कार्ये उपयुक्तौ भवतः । यतः प्रथमो अशुद्धं शोणितं शोधयित, श्वासप्रश्वास सहायतां ददाति । तृतीयश्च अंतस्थितमलानां बिहरुत्सर्जने कार्यकृद्भवति । शोषाश्च त्रयो न हि विशिष्टं कार्यमावहाति । हैब्रोजनस्तथा नैद्रोजनश्च आहारेण साकं संमील्य शरीरांतर्यातः शरीरोष्णतायास्तथा उत्साहस्य चोत्पादकौ भवत । नैद्रोजनो जलेन साकं पीतवर्णो भवति ।

परिमाणम्— बाह्ये वायौ ' ऑक्सिजन् २१%, कार्बन् डाय् ऑक्सा-इड् ४% तथा नैट्रोजन ७८°/ होषांशद्रव्याणि ६°/ ।

ऑक्सिजनस्य न्यूनता तथा कार्बन् डाय् ऑक्साइड् इत्यस्य अधिकता शरीरे मूर्च्छोदिरोगेषु कार्यसंपादिका भवति, अथ च श्वासानां गतिं वर्धयति, तथा च मास्तिष्के 'रेस्परेटरी सेंटर 'इति स्थानं विद्यते तमुत्तेजयति।

नैट्रोजन—मूत्रमार्गेण बहिर्याति । तथा "गाउट्" इत्याख्ये रोग आधिकतरं कार्यं करोति । हैंड्रोजनस्य प्रमाणं यदि अधिकं स्यात् तदा भवति हृद्रोगः । नैट्रोजनस्य यदि वृद्धिस्स्यात् तदा वृक्करोगप्रादुर्भावोऽइमिरश्च जायते । ऑक्सिजनश्च शोणितेन सह मांसपेशीर्गत्वा उत्साहोष्णते समुत्पा-दयति । इति सामान्यतः पाश्चात्यमतद्वारा वातकार्याणि दर्शितानि ।

कविराज रामेश्वरसिंह वैद्य लाहोर.

' वायोमिहिमा ' प्रबंधे लिखंति ।

" शरीरे तिस्नः क्रिया जायंते संचालनस्वेदनस्नेहनरूपाः । संचालनक्रिया वायोरेव । स्वेदनिक्रया पित्तस्य, स्नेहनिक्रया कफस्य वर्तते । वायुं केचन स्थूलरूपं मन्यंतु, वा केचन शक्तिरूपं मन्यंतु, वा केचनोभयरूपं मन्यंतु । अस्मिन् जगति दृष्टं चेत् वायोर्विना, गतिं विना किचिदपि कार्यं न भवति । गतेः कारणं तु वायुरेव । 'वायुरायुर्वलं वायुर्वायुर्वाता शरीरिणाम् '।

'वायुर्विश्विमदं सर्वं प्रभुवीयुश्व कीर्तित' इति आत्रेयमहर्षिणा प्रोक्तम् । वायो रूपविषये संति मतांतराणि । केचन इमं शक्ति समामनंति, केचन कथयंति वायोरेका अवस्था विद्यते या 'मूर्ता ' वर्तते । परंतु केवलं वायो-मूर्तरूपत्वेनावधारणं युक्तं नैव पश्यामः । वायुस्त्वेका शक्तिरस्ति । केचन वातं प्राणिशरीरशक्ति, (बायोमोटरएनर्जी) केचन प्राणशक्ति, (व्हाय्टॅल्टिटी) केचन जीवनमूलस्थां शक्ति (प्रोटोष्टािहमक् ॲक्टिव्हिटी) प्राहुः । अतो वायुः शक्तिरव । इयं शीव्रगा, सूक्ष्मा, ल्बी, चंचला च विद्यते । सुश्रुतेन वातस्तु महाशक्तिशाली, गतिकर्ता, स्वयंभू, स्वतंत्रः, सर्वव्यापको, आयुकारी, सर्वदेषधातुसाम्यत्वापादिका शक्तिरिति वर्णितः । चरकेणाऽपि दिव्यशक्ति-योगवाह उक्तः ।

स्थानभेदेन वायुस्तु पंचिवधो, जातिभेदेन तु द्विधा। जातिभेदेन द्वैविध्यं १ प्रसादात्मकं २ भूतात्मकं च । प्रसादात्मकश्च वायुर्यो मस्तिष्क- हृद्यादिषु वर्तते, अपरश्च शेषेषु शरीरावयवेषु तिष्ठति । चरके उक्तं वायुना- आनंदहर्षयोरुत्पादो भवति, तथा च इंद्रियाणां विषयान् मनसः सानिकर्षं सनयति । अतो यदि वायुरेतादक्कर्मकरस्तदा इयं शक्तिरेव न केवछं श्वासानिश्वाससंबद्धो वायुरिति मन्यामहे । पाश्चास्यमतेनावछोकितं चेत् ।--

हृदयसंबद्घो (कॉर्डियल् प्लेक्सम्) उदानवायुः । सिंपथेटिक् सिस्टिम्, समानो वायुः । लंबरप्लेक्सम्, अपानो वायुः । व्हॅस्क्युलरी सिस्टिम्, व्यान-वायुः । वातांकः ' आयुर्वेद संदेश १९३१ जून '।

कविराज भुवनेश्वरदत्त शर्मा, कांगडी

आयुर्वेदसिद्धांतैरिदं मानवशरीरं पांचभौतिकं त्रिगुणात्मकं च विद्यते । सत्वरजस्तमांसि पंचमहाभूतेष्वंतर्गतानि संति । इमानि पंचभूतानि परमाणु-रूपेण परस्परं संनिविष्टानि, नैव दृष्टिगोचराणि । " अन्योन्यानुप्रविष्टानि सर्वाण्यतानि निर्दिशेत् । स्वे स्वे द्वये तु सर्वेषां व्यक्तस्क्षणमिष्यते " ।

५३ पूर्वपीठिका-क रघुनाथप्रसाद, क. खजानचंद्र, पं दिनानाथश्चर्मा.

सुश्रुत शा. अ. १। अतः परं पंचमहाभूतानां 'गुणान्' आंतरिक्षाः शद्धः, शद्धें-द्रियमित्यादिना, वायव्याः स्पर्शः, स्पर्शेदियं इत्यादिना, एवं अन्येषामिप भूतानां गुणा वर्णिताः । त्रिदोषाः —एषामेव त्रिगुणात्मकपंचमहाभूतानामाश्रयेण आयुर्वेदे वातिपत्तकपा निर्दिष्टाः । एतेषां पंचमहाभूतेभ्यस्साधर्म्यं वर्तते । एतेषु पांचभौतिका गुणाः संति ।

कविराज रघुनंदनप्रसाद वैद्यवाचस्पति (अमरोहा)

खीय ' पित्ता'ख्य छघुनिबंधे ।

अस्माकं शरीरं पंचमहाभूतानां संमिश्रणेन उत्पन्नम् । अस्माकं आहा-रोऽपि पंचमहाभूतात्मक एन । तथा पित्तादीनां सिद्धांतोपि पंचमहाभूतानां सिद्धान्ते एव स्थिरो वर्तते । अत आहारादेव एतेषां पुष्टिस्तथोत्पत्तिजीयते । यथा चरके सू. अ. २४ कथितं, " सर्वं द्रव्यं पांचभौतिकमस्मिनेवार्थे तचेतनावदचेतनं च ।"

कविराज श्री. खजानचंद्र बी. ए. (लाहोर.)

अस्माकं शरीरे त्रिविधाः क्रिया भवंति । संचाळनस्वेदनस्नेह्न-रूपाः । स्वेदनिक्रियायाः कारणं अग्निः । अस्य अग्नेरेव अस्मच्छरीरांतर्वर्ति, क्रियाकृत् पित्तमिति नाम । पित्तस्य स्थानं गुदादुपरि नाभ्यधोवर्ति पक्षाशयः । यक्रज्जन्यं पित्तमेव पित्तमिति नास्माकं अभिप्रायः । पित्तमिति पाचको रसो अभिप्रेतः । इमं पाचकरस इत्यभिधीयते । अस्मिन्पाचकपित्ते केवछं पित्ता-शयाश्रितं पित्तमिति नैव श्चेयम् । अपि तु क्रोमरसक्षुद्रांत्ररसादयोऽपि संमी-छिता भवंति । इमे सर्वे एव रसाः संमील्य पक्षाशये प्रविशंतः पाचयंति आहारम् । अतः पक्षाशयः पित्तस्य स्थानम् । अस्मिन् पक्षाशये संपूर्ण-क्षुद्रांत्रस्यापि समावेशो भवति तेन क्षुद्रांत्रोत्सर्जितरसोऽपि पित्तसंज्ञामर्हति।

पं. दीनानाथरामी शास्त्री (लाहोर.)

शरीरिनिर्मितिस्तु पृथ्यप्तेजोमरुद्योमेतिभूतपंचकसंघातेन जायते ।

उक्तमि यथा 'पांचभौतिकमिदं शरीरम्'। यथा शरीरं पांचभौतिकमित्त तथैव वातिपत्तकपाभिधा दोषा, रसरक्तमांसमेदोऽस्थिमजाशुक्राभिधाना धातवो, मूत्र-पुरीषादयो मलाश्चापि पांचभौतिकाः। अत एव त ते शरीरे पंचानां भूतानां प्रतिनिधित्वेनावतिष्ठते । अर्वाचीनास्तु धातुमलयोः प्रत्यक्षत्वादेतौ विकृता-विकृतौ रोगारोग्यादाविति मन्यंते। परंतु दोषाणामप्रत्यक्षत्वादिमे विकृताविकृता रोगारोग्यदाः संतीति न मन्यंते। तेषां मते इमे एव धारणाद्धातुषु, मलिनी-करणाच मलेषु विपरिणमंते तत्तदिभधानेनाभिधीयंते। ते च दोषा वातिपत्तकपा इति त्रय एव संति। को नाम वातः, किंच नाम पित्तम्, इत्यत्रावलो-कनीयौ वातिपत्तांकौ। कपत्वरूपं तु भगवान् आत्रेय इदमाह—

क्षेष्मा शीतो गुरुः क्षिग्धः पिच्छिलः शीत एव च । तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥

इत्यनेन कफो उदकतत्वप्रधानो अत एवास्य छक्षणे प्रायेण सर्वेध्यौ-दका गुणाः संगच्छते, कारणगुणाः कार्ये गुणमारभंते इत्यनेन । जलस्य लक्ष्म—

> वर्णः शुक्को रसस्पर्शी जले मधुरशीतली । स्नेहस्तत्र दवत्वं च सांसिद्धिकमुदाहृतम् ॥

एतस्मात् श्वेतगुरुस्तिग्धिपिच्छिलशीतस्वादवो गुणा उभयात्मकत्वात् । (जलकफात्मकत्वात्) कफे खयोनिसकाशात्समागताः । अनेनाऽयं कफो जलभूतज इत्युच्यते । वस्तुतस्तु अत्रस्तः पृथ्वीतेजसोरप्यंशौ । यतो हि दोषा नैव केवलमेकेन महाभूतेन प्रादुर्भवंति प्रत्युत, तेष्वंशांशतोऽन्यान्यिप महाभूतानि भवंति । यथा पित्तस्य—

पित्तं तीक्ष्णं द्रवं पूति नीलं पीतं तथैव च। उष्णं कटुरसं चैव विदग्धं चाम्लमेव च॥

इति सुश्रुतप्रतिपादिते स्वरूपे तैजसा गुणा यद्यप्याधिनयेनावलोक्यं-

तेऽतः ''तैजसं खलु पित्तमिति'' शास्त्रवचनाचापि तेजोभूतप्रधानं तैजसं वा सिध्यति, परं, तथापि तत्र द्रवत्वादयो जलगुणा अम्लकदुत्वादयश्च पृथ्वीगुणा-अत्रानुषंगेण संत्येव। तथैवात्र कफे यद्यपि श्वेत दय आप्या गुणास्संति तथापि विदग्धस्तैजसो, लवणश्च, पार्थिवो गुणोऽप्यरत्येव । किं च कफलक्षणे ''तमो-गुणाधिक'' इत्युपात्तं, तेन 'तमोबहुटा पृथ्वीति' वचनेन अयं गुणः कफे पार्थि-वोऽस्ति । यथोक्तमपि सुश्रुतेन यथा—''अन्योन्यानुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत्। स्वे स्वे द्रव्ये तु सर्वेषां व्यक्तं लक्षणिमध्यते "। सर्वाण्यप्यतानि पृथिव्यादिमहाभूतानि अन्योन्यानुप्रविष्टानि संति, परंतु यत्र तेषां छक्षण-बहुलता व्यक्तता वा भवति, तत्रैव तेषां स्वीया स्वीया प्रधानता भवति । अत-एव पित्ते तेजसः, कफे च जलस्य, प्राधान्यमस्ति, परंत्वानुषंगेणात्रान्यान्यपि महाभूतान्यवतिष्ठते एव । प्रत्यक्षानुमानोपमानशाद्धेति प्रमाणचतुष्ट्ये यत्कि-मपि ज्ञायते तत्सर्वमपि पदार्थेऽन्तर्भवति । स च पदार्थे द्विधा भवति । भाव-रूपपदार्थो, अभावरूपपदार्थ इति । भावस्तु " द्रव्यगुणकर्मसामान्य-विशेषसमवायेति नामभिः षोढा, द्वितीयस्तु अभावपदार्थः प्राग्ध्वंसात्यंतान्यो-न्याभावभेदैश्चतुर्धा भवति । न च पदार्थभेदेषु राक्तिसादृश्यावि पृथक् पदार्थाववगणनीयौ । तयोरभावसामान्ययोरंतर्भावसत्वात् । एवं भावभेदेषु प्रथमो भेदो द्रव्याख्यः । 'गुणानामाश्रयो द्रव्यं कारणं समवायि च' । चरके तु "यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत्। तद् द्रव्यम्" । ईदृग्लक्षण-विशिष्टं द्रव्यं पृथ्वीजलतेजोमरुद्व्योमकालदिग्देहिमनांसि चेति नवधा। चरके तु ' खादीन्यात्मा मनः कालो दिराश्च द्रन्यसंग्रहः'। नवद्रन्येश्वाचानि, पंचद्रव्याण्येव पंचमहाभूताभिधानेनाभिधीयंते । पंचानां महाभू।तानां नित्या-नित्यौ इति द्वौ भागौ भवत: । तदनु पुनर्गिनत्योपि महाभूतपंचभागस्त्रीवध्यं भजते शरीरविषयभेदात् ।

पृथिन्यब्मरुद्व्योम्नां विषयाः सामान्याः । परंतु तैजसो विषय: पुन-श्चतुर्धा विभज्यते १ भौमो (वन्ह्यादिः) २ दिन्यो (विद्युदादि:) ३ औदर्य ४ आकरजः (सुवर्णादिः) । एवं तेजसो विषयस्य तृतीयो (औदर्यः) भेदः-

पुनरपि जठराग्निनेकन, धात्वग्निभिः सप्तभिः, भूताग्निभिः पंचभिश्च त्रयोदशधा भवति । एवमाहारद्रव्येषु पृथ्व्यप्तेजसो विषया भवति (यद्यपि तत्र मरुद्-व्योम्नोरप्यंशोस्ति परं सोऽव्यक्तोऽणीयांश्च भवत्यतः प्राधान्येनोपर्यक्तानामेव म्रहणं कृतम्)। यदा स आहारो भुज्यते तदा सर्वतः पूर्वं जठरे तस्य जठ-राग्निना पाको भवति । ततो जाठराग्नेः प्रभावात् पक्कस्य तस्य प्रसादिकद्दात्मकं वर्तते, तस्य पुनरिप रसामिना पाके सित, स स्क्ष्मस्थूलिकद्दभेदैस्रेविध्यं भजते। प्रथमो भागो रसं पुष्णाति। द्वितीयः रथुलभागो रक्ते विपरिणमते । एवं तृतीयो भेदः किट्टाख्यः कफे विपरिणमते इयमस्ति कफस्योत्पात्तिशंखला । अत्रोत्पत्तावपि दृष्टिन्यासेन कफस्य भूतसंघातजत्वं सिध्यति । तंत्रांतरे / 'कपः केन जलेन फलतीति कपः । निष्पत्त्यर्थकभौवादिकपरसैन-पदस्य फलधातोर्डः प्रत्ययः । यद्वा ' के शिरासे फणित फक्कित वा ' अत्रापि फणफक्कयोर्डः प्रत्ययः। 'कं वारिशिरसेरिति' विश्वकोषे दर्शनात् कमिति शद्बस्य जलं शिरो वा अर्थो भवति । शिल्प्यतीति श्लेष्मा, श्लिष् आलिंगनेऽत्रमनिन् प्रस्य इति भानुजीदीक्षिताः ॥ 'बलासस्तु बलमासमंतात् सुनोतीति ' पुञ्-अभिषवे इत्यस्माद्धातोरस्य सिद्धिः ॥ कपः श्लेष्मा बलास इति शद्धा मिथः पर्याय-वाचका वा अपर्यायवाचकाः ? इस्पत्र विचारे कृते, द्विधैव स्वीकुर्वस्थाचार्याः। परंत्वेतेषां नामपरिभाषायां दृष्टिक्षेपेणेदमवगम्यते यत् इमे पृथक् पृथक् संतीति। इदमत्राभिसंधानं यत् कफ एव स्थानभेदेन पंचधा विभक्तोऽस्ति, अतस्तेषु स्थानभेदेन भिन्नेषु कफभेदेषु विविधस्थानसत्वाद्भिन्नभिन्नपर्यायेरुक्तः स्थानकर्म-भेदैभिन्नः कपः संपूर्णतया शरीरे कियान् परिमितोऽस्तीति सम्यक्तया नैवावधारयितं शक्यते । यतो हि जगति नानाप्रकाराणि खळ संति शरीराणि केषांचित् सूक्ष्माणि,केषांचित् स्थूलानि । एतस्मात्कारणांतरैश्च त्वस्योपचयापच-यसत्वाच नाास्ति सर्वेषामपि दोषधातुमलानां परिमाणं-इदमेवाह भगवानात्रेयः-

> " वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैवच ॥ दोषधातुमलादीनां परिमाणं न विद्यते "॥

परंतु ये मानवाः समघातुमछदोषा भवंति तेषां शरीरे कफस्य षडंजलयो भवंति । यथोक्तं सुश्रुतेन—

> रसस्य नव विज्ञेया जलस्यांजलयो दश । सप्तेव तु पुरीषस्य रक्तस्याष्टीप्रकीर्तिताः ॥ षट्श्लेष्मण इति ॥

अत्र सांप्रतं विचिकित्सा जायते यच्छरीरे इयान् श्रेष्मा वस्तुतां भवति नविति । — यद्यपि पाश्चात्याः संधिषु श्रेष्मिकासु कलासु च श्रेष्मा भवतीति गण्यंते परंत्वस्य परिमाणं तैरिप नोपिदिष्टं येन संगम्यास्माभिर्निर्णयः क्रियेत । परंतु 'स्थालीपुलाकन्यायेना'स्थैवं निर्णयो भवितुमर्हित । यदर्वाचीनाः स्वस्थरारीरस्य रातभागेषु पंचभागा रक्तस्य भवंतीति मन्यंते । एवं यस्य स्वस्थन्मानवस्य भारो २८२० मितः स्यात् तस्य रारीरेऽ२ परिमितं रक्तं भविष्यति । निष्कर्षस्तु ऽ२ परिमिते भारे ऽ२ परिमितं रक्तं भवतीति सिष्यति । एवमस्माकमाचार्याः स्वस्थपुरुषशरीरे तस्यैवाष्टांजल्लयो रक्तस्य भवंतीति मन्यंते । अतो यस्य भारः ऽ१ ऽ१ मितो भविष्यति तस्यांजल्लौ ऽ१ मितादिधिकं रक्तं नैवागच्छति । एतस्मादष्टगुणितमेतत्परिमाणमपि ऽ२ मितमेव भवतीत्या-याति । अत इयदेव रक्तं स्वस्थरारीरे भवतीति सिद्धं । अनेन प्रकारेण रक्तविषये प्राचीनार्वाचीनमते मिथः संगच्छेते । एवं रक्तपारमाणविषयकः प्राचीनाचार्यैः कृतः सिद्धांतोऽक्षरराः सत्यः सिद्धो भविति । तथैव तैरेव कृतः कफ्परि-माणसिद्धांतोऽपि स्थालीपुलाकन्यायानुसारं साधु सिध्यतीत्यत्र नास्ति विचिकि-त्साल्वोऽपि । एवं रारीरे कफ्तस्य पडंजल्यो भवंतीति सिद्धांतो न व्याहन्यते ।

पित्तविवेचनम्।

" जगदीश्वरिनिर्मितस्य सर्गस्य विभागद्वयं कर्तुं शक्यते । ययोः प्रथ-मस्याभिधानं सजीवसर्गः । द्वितीयस्य निर्जीवसर्गः । सजीवसर्गोऽपि वैज्ञानि-कैर्विभागद्वयेन विभज्यते । ययोरिभधानं प्राणिसर्गे वनस्पतिसर्गश्च । वनस्पतिषु

पूर्वपीठिका-पं. दीनानाथशर्माशास्त्री.

नास्ति संज्ञादिकमिति वक्तुं न च शक्यम्। भक्षणत्वात्समीकरणत्वात्संतत्युत्पा-दनसमर्थत्वाद् वर्धनत्वात् श्वसनिक्रयासत्वाचेष्टाज्ञानसंज्ञावत्वाच । 'अंतःसंज्ञा भवंत्येते सुखदुःखसमन्विताः ' इति स्मरणाच्चास्ति सजीवपरिचायको हेतु-व्यूहः। एषु प्राणिसर्ग एव शरीरीति नाम्ना वक्तुं प्रभूयते। शरीरं च देषधातुमलमूलं भवति। 'दोषधातुमलमूलं हि शरीरं ' अत्र पश्चिमीयास्तु धातुमलौ प्रत्यक्षत्वात्वीकुर्वति, परमप्रत्यक्षत्वादिचारलभ्यत्वात् ज्ञानगोचरत्वाच दोषान्नानुमन्यंते। परं स्थूलशरीरस्य मूलभूतानि द्रव्याणि दोषधातुमलाः। इमे एव दोषा धारणाद्वातुषु मलिनीकरणान्मलेषु विपरिणमंते। धातुमलाभिधानेनाभिधीयंते वा। एवं दोषेषु त्रिषु पित्तमस्त्वन्यतमो दोषः। तच्चित्तं शरीरे सर्वत्रव्याप्तमस्ति तथापि प्राधान्येन हन्नाभ्यंतराले संतिष्ठते।

पित्तविषये पश्चिमीयास्त्रित्थमाचक्षते । यत् हृदयस्य दक्षिणदिशि यकृदिभिधेया शरीरवर्तिनीषु सर्वाखिप प्रथिषु गरीयसी प्रथिवर्तते । सा च कुर्वती कार्य यं रसमुत्पादयित तिपत्तं—तदेव पाचकरसः । तस्य वर्णः पीतो-हिरतस्तस्य प्रतिक्रिया क्षारीया स्वादुश्चकटुः स्वभावेनैव च द्रवो भवति । तस्य गुरुत्वं षड्विंशदिधकसहस्रात् (१०२६-१०३२) द्वात्रिंशदिधकसहस्रात् (१०२६-१०३२) द्वात्रिंशदिधकसहस्रात् (१०२६-१०३२) द्वात्रिंशदिधकसहस्रां विद्यात्रात्रिंश्वर्यक्षते । इदं पित्तं दक्षिणवामभागाभ्यां नाडीद्वयद्वारा निर्गच्छिति । नाडीद्वयं च पित्तस्रोत्तसीस्त्रभिधीयते । यकृद्वारे ते मिथौ मिछतः । मिछित्वा च पित्तप्रणािछनाम्न्या नाल्या संभूय पित्तप्राणाल्यां विपरिणमेते । एवं यदा भोजनं पक्षाशये समेति, तदा तत्तस्थाने विचरत् पित्तं पित्तप्रणािछद्वारा पक्षाशये वजति, भोजनं पाचयित च। यदा अस्यानवश्यकता भवति तदेदं पित्तं पित्तस्रोतस्तः पित्तप्रणाल्यामगत्वा पित्ताशयिकीनछीद्वारा यकृत्संछग्ने पित्ताशये गच्छित । अस्य पित्तस्य अन्यान्यि संति कार्याणि ।

१ अनेन साकं संभूय क्रोमरसः खकीयं कार्यमाशु संपादयति । क्रोमरसस्य वसाविश्लेषणशक्तिरतिशेते ।

२ वसापाचने-आत्मीकरणे च पित्तमत्युपयुज्यते । यदा पित्तोत्प-

त्यभावः कारणांतरेण चास्य पकाराये गमनाभावश्च भवति, तदा वसा नैव पचित-निर्गच्छति च बाहुल्येन मलमार्गद्वारा बहिः।

३ आमारायादागते मोजने आरायस्थाम्ळरसमहिम्ना तस्य प्रतिक्रिया अम्लीया भवति । तामिदं पित्तं क्लोमरसेन साकं संभूय खमहिमानेन क्षारप्रति-क्रियायां विपरिणामयति ।

४ पित्तस्यैव प्रभावो यदंत्रांतरीयपदार्थे (पचनशीलपदार्थे) अधिका विकृतिर्नेव जायते । यदा हि पित्तस्य न्यूनता भवति तदैव विकारः प्रादुर्भवति । शकुचातिदुर्गीध भवति । इदमाधुनिकानां दिद्गर्शनं पित्तविषये । यत्पित्तमर्वाची-नैरुररीक्रियते तत् प्राचीनाभिमतिपत्तस्यकोंऽशः । पित्तांकः आयुर्वेदसंदेश । १९३२ जून।

वैद्यराज पूर्णानंदपंत आयुर्वेदाचार्य (लोहोर)

समस्तसजीवनिजीवसृष्ट्याः स्थितौ सोमसूर्यानिलानां यथोत्पत्तिर्दस्यते, तथाऽभ्यंतरिकरूपेण वातिपत्तकफानां उत्पत्त्या शरीरसुस्थितिस्थापितेति दश्यते। एतेषां त्रयाणां क्रमशः सर्विक्रियाकारित्वं, अनवस्यकानां पदार्थानां शोषणत्वो-त्सर्जनत्वे, आवश्यकानां वस्तुनां उत्पादनत्वमिति कार्यं विद्यते । एतेषां त्रयाणां खसाम्येन रारीरस्य पाठनपोषणकर्मणा धातुरिति, खेवैषम्यावस्थया अत्यंत विकृतिभावगामित्वेन, मलरूपतया परिवर्तनशीलत्वेन, 'मला ' इति, तथा गर्भावस्थामारभ्य शरीरे खवास्तव्येन भिन्नभिन्नानां प्रकृतीनां निर्मित्या, तथाच रसरक्तादीनां दूषणेन, ' दोषा ' इति संज्ञा ऋषिभिः प्रदत्ता वर्तते ।

सर्वे एव त्रिदोषा स्वे स्वे कर्मणि प्रधानत्वमायांति ।

श्लेष्मा-स च माधुर्यस्नेहगौरवशैत्यपौच्छित्यगुणलक्षणः, तस्य समानयोनिर्मध्रो रसः, स माधुर्यादिभ्यो माधुर्यादीनि वर्धयति । सु. सू. अ. ४२। अयं क्षेणा शरीराभिनिर्वृत्तौ तथाऽभिवृद्धौ प्रधानतमोऽभिमतः । युनानीवैद्यके श्लेष्माणं

'बलगम्' इति वदंति । पाश्चात्यवैद्यके तु यद्यपि श्लेष्मेति न कश्चन पदार्थी वर्णितस्तथापि 'एकजीवाणोः ' (अमीवा) द्रारीराभिवर्णनप्रसंगे तस्मिन् १ जीवोज २ चैतन्यकेन्द्रमिति पदार्थद्वयसत्वं वर्णयंति । अस्मिन् 'जीवोज '- इत्याख्ये द्रव्ये अधिकांद्रोन जलं तथा च 'प्रोटीन ' नामकं द्रव्यमपि द्रोष-पदार्थेषु अधिकतरं विद्यते । अयं च 'प्रोटीन ' इति पदार्थ एव श्लेष्मेति निःसंशयं प्राह्मम् । स चाऽयं श्लेष्मा पंचप्रकारको विद्यते ।

पुण्यपत्तनीय वैद्यभूषण गणेशशास्त्री जोशी महाशयाः

(स्वीये सिद्धौषधिप्रकाशे नाम्नि महाराष्ट्र भाषामये पुस्तके १९३३) अस्य प्रंथस्य प्रथमे प्रकरणे प्रारंभे एव शरीरस्य पदार्थानां गणना कृता । तेषु न्युनाधिकविचारेण ज्ञायमानानां त्रयाणां वातपित्तकफनाम्नां पदार्थानां येषां शरीरधारणाद्धातवर्गे गणना कृतास्ति-तेषां वर्णनमतः प्रारम्यते । इमे त्रयः पदार्थाः शरीरसूत्रचाळकाः । शरीरनिर्माणसमयादेव शरीरस्थ-इतरपदार्थानामु-त्पत्तिनाशौ एतेषामेव साहाय्येन भवतः । इमे त्रयोपि पदार्थाः स्थूलास्तथा सूक्ष्मा (नेत्रेंद्रयेणादृश्याः) द्विविधस्ररूपाः शर्रारे वर्तते । वातिपत्तकफानां सूक्ष्मस्वरूपस्य वर्णनं अनुमानेनैव कर्तुं योग्यम् । आयुर्वेदसिद्धांतेन पंचमहा-भृताश्च चैतन्यं इति यदा सह संगतं भवति तदा शरीरोत्पत्तिभवति । चैतन्यं नाम वस्तु, महाभूतेभ्योऽन्यत् तथा अवर्णनीयम् वर्तते । चैतन्यं विहाय पंचमहाभूतानामेव व्यवहारयोग्यं संक्षेपं कृत्वा, आकाशं वायुं-वायुमिति, तेजः पित्तमिति, जलं पृथिवीं च कफ इति, नामाभिधानं दत्वा महाभूतानां वर्णनं वैद्यके कृतम् । सृष्टेः कारणानि पंचमहाभूतानि यथा सुक्ष्मस्थ्रलस्वरूपाणि यथा सृष्टौ विद्यंते, तथैव वातः, पित्तं, कफ इति संज्ञया निर्दिष्टाः शारीराः पदार्था: महाभूतस्वरूपाः संतः स्थ्रलाश्च सूक्ष्माश्च विद्यंते । वातपित्तकफान् शरीरधारणोपयोगित्वाद्यद्यपि धातव इति वदंति तथापि वैद्यके एतेषां पदार्थानां दोषसंज्ञया वारंवारं उल्लेखः कृतोऽस्ति । रसरक्तादिसप्तपदार्थानामपि धातुसंज्ञा वर्तते । अत एव तेषां वातादीनां परिज्ञानं सहजसुळभं यथा भवेत्, तथा तेषां महत्वमपि सम्यक् शीघ्रं यथा ज्ञातं भवेत् तदर्थं वातादीनां

स्वातंत्र्येण दूषणात्मकं विशिष्टं स्वभावं लक्ष्यीकृत्य प्रंथकारैदोंष इति नाम प्रदत्तम् । स्थूलं सूक्ष्मं चेति एतेषां खरूपमस्तीति प्राक् कथितं, तथापि एतेषु वायुः स्थूलो (दृष्टिगोचरः) नैवास्ति । तस्य स्वरूपं तु सदा सूक्ष्ममेव ।

शरीरस्थं तेजमहाभूतं पित्तमिति कथ्यते । तस्थूळं सूक्ष्मं च विद्यते । यक्टदादिकोष्ठांगेभ्यो बहिरागच्छत् पित्तं स्थूळम् । कांतिवृद्धिः, उष्णतोत्पाद, इत्यादीनां कार्याणां कारणं यत्पित्तं तत्सूक्ष्मम् । सर्वेषां पित्तानामाधारस्थानं पाचकपित्तं तत् प्रायो यकृतादिभानिष्कामित । पाचकपित्तेनैव इतरिपत्तानां पोषकद्रव्यस्योपळिध्विर्जायते ।

पृथ्वीजलमहाभूतयोः शारीरपदार्थं 'कफ ' इति वदंति। स च स्थूलसूक्ष्मोभयस्वरूपकः। उरिस, संधिषु च यो चिक्कणमसृणः पदार्थो विद्यते स स्थूलः कफः। सत्वगुणः, क्षमा बुद्धिः इत्यादीनां यः कारणं स सूक्ष्मः कफो विज्ञेयः॥ पृष्ठ ३-७॥

डॉ. बाळकृष्ण अमरजी पाठक एम्. बी. बी. एस्. अहमदाबाद्.

इमे प्रत्यक्षशारीरे नाम्नि स्वीये गुर्जरभाषाप्रये पृष्ठेषु ३६६-३७० तमेषु अस्मिन्विषये टिपण्यां स्वमतं प्राददुः।

आयुर्वेदस्य आत्मरूपभूतोऽयं त्रिधातुवादो वा त्रिदोषवादो म्लत अस्मिन्नव देशे अजिन । प्राचीनग्रीकदेशीयैस्तथा यूनानैरस्य केवलमनुकरण-मेव कृतम् । यद्यपि श्रेष्ठतरैवैंद्यवरैः कृतेऽपि प्रयत्ने नायं वादोऽद्यापि आधुनि-कदृष्ट्या पूर्णतया ज्ञातुं सुलभोऽभवत् । प्रायो वैद्या अनम्यस्तशारीरेद्रियवि-ज्ञानशास्त्रा अस्मिन्विषये समापतंतो नैव यथावत् विज्ञापयितुं शक्ता भवंति । भवति च महान् मतभेदोऽस्मिन् विषये तेषाम् । भवतु प्रकृतमनुसरामः— किमपि वैद्यकशास्त्रं आयुर्वेदीयं वा आंग्लवैद्यकं वा भवतु, तस्य तु अनुभवै-स्तथा अवलोकनेनैव निर्मितिरभवत् । तस्मिन् कल्पनाया वा केवलानुमानस्य तु अल्पोवकाशः । भिन्नानि भिन्नानि लक्षणानि वा विकृतीर्लक्ष्यीकृत्य तेषु केषांचन लक्षणानां बर्व्हीषु विकृतिषु वारंवारं संभवमभिद्दण्ट्वा तथा च तेषामिप उपशमनाय ये च प्रयोगा यशस्करा अभवन्, तानिप विचार्य विकाराणां वा चिकित्साया वा यश्च भवित निश्चयो, यश्च निर्गलित सामान्यो नियमः, तेनैव वैद्यकशास्त्रस्थोत्पत्तिरभूदिति इतिहासो वर्तते । एकमेव विषयं दे शास्त्रे अन्यया पद्धत्या वर्णयंति । शारीरिविज्ञानशास्त्रं, तथा इदियविज्ञानशास्त्रं परस्परं सहायभूतं भवित । अंकर्गणितशास्त्रम् तथा अक्षरगणितशास्त्रं एकमेव विषयं भिन्नया रीत्या प्रतिपादयत् दर्शयित खपार्थक्यम्,तथापि प्रतिपादयति समानमेव विषयम् । एतेन दिद्वर्शनेन यदायुर्वेदशास्त्रं, तथा पाश्चात्यवैद्यकशास्त्रं वा, आधुनिकविज्ञान वा, एकमेव विषयं भिन्नभिन्नप्रकारेण कथयतीति वाचकानामवगतं स्यादेव । परं आधुनिकविज्ञानरूपादशें अनेके सूक्ष्मा विचाराः परिस्फुटतया साकल्येन प्रतिबिंबिता दश्यते । आयुर्वेदीयं शास्त्रं दिसहस्त्रवर्षात्राक्कालीनं यथाभूतं तथा-वस्थमेव अधुनापि विद्यते । अतः सर्वे विषयास्तिसम्नाधुनिकशास्त्रवत् विस्तारस्फुटा नैवेति नाश्चर्यम् । तथापि दे अपि शास्त्रे रोगान्, तथा रोगमूलकारणानि, तेषां लक्षणानि, तथोपशमं च ज्ञातुं कर्तुं च प्रयतत एव । सृक्षविचारेषु दृष्टिर-प्रदत्ता चेत् सामान्यतया दे अपि शास्त्रे वक्षयमाणविषयान् वर्णयंतीति दश्यते—

(अ) आधुनिकविज्ञानपरिभाषया-

१ मनुष्यशरीर द्वौ अंशौ जडचैतन्यरूपौ विद्येते । यैः पदार्थेरियं बाह्या सृष्टिर्वर्तते, तैरेव पदार्थेरिदं शरीरमिव वर्तते । शरीरस्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म-भागः कोषिति संज्ञितो (सेल्) विद्यते । अस्मिन् कोषे विद्यमानो जीवनरसः (प्रोटोष्ट्रज्ञम्) एतैरेव पदार्थेर्युक्तो वर्तते । तस्मिन् किमप्यस्ति पदार्थेभ्योप्य-धिकं, तत्तु कोषस्थितं चैतन्यम् । तेनैवाऽयं जीवति । चैतन्यरिहते तस्मिन् निष्क्रियत्वमृत्यद्यते । तत्स्थाश्च पदार्था बाह्यसृष्टौ संमीलिता भवंति ।

(ब) प्राचीनानां परिभाषया-

२ अस्मिन् शरीरे सूक्ष्मस्थूलास्संति अवयवाः । इदं शरीरं पंचमहाभूतानां जडद्रव्याणां समुदायरूपं वर्तते । अस्मिन् वर्तमानाभ्यां मनआत्मभ्यां इदं सर्वमिप शरीरं कार्यकृत् भवति । इमानि जडद्रव्याणि—पंचमहाभूतसंज्ञितानि नष्टे देहे पंचमहाभूतोत्पन्नसृष्टौ समाविष्टानि भवति । सूक्ष्मावयवास्तु नेदिय-गम्या (कोषविषये—(सेठ्) नैव किंचिदिप सूचितम्)।

- १ मनुष्यास्तथान्यप्राणिने। वृक्षावनस्पतयश्च सजीवसृष्टिरिति प्राची-नाऽर्वाचीनाभिमतम् ।
- २ सृष्टौ विभिन्नाः पदार्थास्तथा विभिन्नाः शक्तयो दृश्यंते, आसु किमपि वर्तते गूढं तत्वम् । जडद्रव्यं तथा शक्तिरित्येतयोरंतिमखरूपविषये तथा-योन्य-संबंधविषये विद्यते मतांतरम् ।
- ३ (अ) आधुनिकभौतिकशास्त्रं, रसायनशास्त्रं च कथयित सृष्टेः पदार्थेषु मूलपदार्था (प्रिनेंट्स्) द्विनवितसंख्याका विद्यंते, यैरियं सृष्टिर्घटिता विद्यते । एतिपि द्विनवित पदार्थाः परमाणुशः च्छिन्नास्ते धनवाहीऋणवाहीत्युभयिवद्युन्त्कणभूता (पॉझिटिव्ह, निगेटिव्ह, प्रोटॉन्, इलेक्ट्रॉन्) इति ज्ञायंते । इस्रनेन ते सर्वेपि विश्वव्यापिनो विविधरूपभूता इति ज्ञायते । तथैव विद्युत्, प्रकाशः, अग्निः इस्रेताः—शक्तयोपि मूलत एकस्या एव शक्ते (एनर्जी) रूपांतर्भूता विद्यंते । मूलभूतं द्रव्यं, (मॅटर्) तथा च शक्तिः इस्रेतयोरसंसंबंधोऽत्यंतं निग्ढो वर्तते । सोऽद्यापि अनेकैः प्रयोगैरपि ज्ञातुमशक्य एव इति भौतिकशास्त्रज्ञास्समामनंति।
- (ब) प्राचीनेस्तु प्रकृतिः पुरुपश्चेति द्वौ संयुक्तौ सृष्टिमूलभूतौ इति निश्चिस्य सृष्टेरयं क्टप्रश्नोऽद्घाटितो वर्तते । अस्या एव प्रकृत्याः पंचमहाभूतोत्पित्तर्भवति । इयं हि प्रकृतिः पुरुषणसह सर्जीवनिर्जीवसृष्टेरुत्पित्तं करोति । अस्यैव विचारस्य सांख्यशास्त्रानुसरतः किमपि न्यूनाधिकत्वेनावलंबनं आयुर्वेदे कृतम् । अस्यां दश्यमानायां विविधस्त्रस्त्पायां सृष्टौ मूलभूतं अगम्यं गूढमेकं तत्वं किमपि वर्तते इति परः सहस्रादब्दाल्पूर्वमेव प्राचीनैर्ज्ञातम् ।
- ४ (अ) आधुनिकं शारीरशास्त्रं तु के।षाणां (सेल्स्) सूक्ष्मातिसूक्ष्म-भागान् संगणय्य, तेषामेव समूहरूपिमदं शरीरिमिति अधिगच्छिति । तथैव सर्वमिप शारीरकार्यं सूक्ष्मकोषाणामेव व्यापार इति च कथयति । इमे कोषाः

स्वीयं संरक्षणं कृत्वा शरीरिवषयकमि कार्यं कुर्वंति । एकस्य कोषस्य प्रवृत्या सर्वशर्रास्यापि प्रवृत्तिरिमलिक्षता भवति । (पिंडब्रह्मांडवत्) । कोषस्तु स्वीयं पोषकांशं रुधिराद् गृण्हाति । तथैवाऽनवश्यकं पदार्थं बहिरुत्सृजति । अंत-बिहिरूद्भृतेनाघातपरिणामेनोद्विग्नो भवति । स्वभावानुरूपां वृद्धिं, व्हासं च गच्छति । इमे कोषाः सम्हरूपेण संगत्य शरीरधात्नाभिरचयंति । अत इदं शरीरमि निर्जीवसृष्ट्या भौतिकरासायनिकघटनानियमानेवानुसरित । अपेक्षते च केषुचिद्व्यापारेषु सर्जीवद्व्यम् । तथापि मनःशरीरे परस्परिसमन् अतीव परिणामं कुरुतस्तथा परस्परे नैव कदापि पृथक् भवतः ।

(ब) प्राचीनास्तु—शरीरं पंचमहाभूतीत्पन्नं समामनंतीति ऊर्ध्वमागतमेव । इमान्येव भूतानि शरीररचनायास्तथा धारणायाः स्थूळतया
मूळभूतानि (फिजिकल् बेसिस्) तथा इंद्रियन्यापाराणामिप प्रवर्तकानीति
मन्यंते । परंतु सजीवशरीरे प्राणिभूते वा वानस्पत्ये—ते शास्त्रविदो पंचमहाभूतानां मूळकारणत्वेन नामप्रहणमकुर्वतो तत्स्थाने एतेभ्य एवीत्पन्नानां
त्रयाणां वातिपत्तकप्ररूपपदार्थानां स्वीकरणं कुर्वति । अन्यया पद्धत्या कथ्यमाने तु इयं सजीवा मृष्टिर्वातिपत्तकपरेव निर्मिता वर्तते । इमे शरीराधारकत्वात् त्रयः पदार्था धातव इति संद्यंते । शरीरस्य सर्वा अपि क्रियास्त्रिधा
विभक्ता एतेभ्यस्त्रिभ्य एव जायंते । यथा बाह्यसृष्टी मूळपदार्थाः पृथक् पृथक्
परिमाणेन संमिश्राः संतो अनेकेषां पदार्थानामृत्पादका भवंति, तथा इमेऽपि
त्रयो धातवः परस्परं न्यूनाधिकाः संमिश्रिता भूत्वा सप्तधातुरूपेण मूर्तस्वरूपं
स्वीकुर्वति । एवं कृते विचारे अर्वाचीनाः शरीररचनायां स्थूळात् बाह्यस्वरूपं
स्वीकुर्वति । एवं कृते विचारे अर्वाचीनाः शरीररचनायां स्थूळात् बाह्यस्वरूपं
समागता इति ळक्ष्यते ।

विद्यावाचस्पति श्री शालग्रामशास्त्री साहित्याचार्य विद्याभूषण वैद्यभूषण कविराज छखनौ, संवत् १९८९ एतैः पंडितैः मध्यप्रांतीय द्वितीयसंमेळनावसरे अकारि भाषणम् सभापतित्वेन तस्मिन् भाषणे—इमं विषयमुद्दिश्य विचाराः स्वीयाः प्रदर्शिताः—

ब्रह्मणा सृष्टेरारंभे एकलक्षमितैः श्लोकैः, तथा एकसहस्राध्यायैरायुर्वेद आविष्कृतः । अस्य अष्टौ भागा अल्पविद्धितार्थाय कल्पिताः । आयुर्वेदस्य वेद इव महत्वं वर्तते । सांप्रतं उपलब्धसंहितास्तु नैव आयुर्वेदस्य आदिमो ग्रंथः । न तासु सर्वागाणामायुर्वेदस्य वर्णनं विद्यते । कायचिकित्सायाश्वरकः शल्यचि-कित्सायास्स शत इति तु प्रसिद्ध मेव । आयुर्वेदे सर्वेष्वेव विचारेषु वातिपत्त-कफानामेव वैशिष्टयं वर्तते । सर्वेष्वेवायुर्वेदांगेषु त्रिधात्नामेव प्रधानतया जायते दर्शनम् । अस्मिन् विंशतितमे शतके विज्ञानस्य दुंदुभिध्वनिस्सर्वत्र श्रूयते । नवनवैस्साधनैः शरीरस्य अंगप्रत्यंगानां रचनाक्रमस्तथा तेषां कार्यकलापः सम्यक्तया परिज्ञातो विद्यते । कीटाणूनां अत्यंतात्यंतसूक्ष्माणामपि सूक्ष्मदर्शक-यंत्रेण भवति दर्शनम् । परं वातिपत्तकफानां दर्शनं पूर्णशक्तिसंपन्नैस्सूक्ष-दर्शकयंत्रेरिप न भवति । अतः को विश्वासं कुर्यादेतेषामित्तिवे ? । आधुनि-कास्तु पिशाचवत् एतेषामस्तित्वं केवलं काल्पनिकमेव मन्यंते। भाषंते भिषजो वातिपत्तकफानां कथाः, श्रावयंति च परान्, तथापि न तैः खयं प्रत्यक्षीकृता न वा परेभ्यः प्रदर्शिताः । अथ च आयुर्वेदस्य मूलाधारभूता एव ते । अतोऽयं आयुर्वेदस्सुतरामशास्त्रीय-(दि प्रेटेस्ट अन्सायंटिफिक सिस्टिम् इन् इंडिया) एव । (अतः परं पंडितवरैरनेके अपरे चाक्षेपा उत्थापयित्वा पूर्वपक्षस्य स्थापनं कृतम् । अनंतरं च उत्तरे पक्षे उत्थापितानामाक्षेपाणां खंडनमपि चाकारि शोभनैस्तर्केतिहाससस्ययुक्तासिद्धांतैः) सर्वप्राचीने आयुर्वेदीयस्य त्रिधातुवादस्य स्पष्ट एव उल्लेखो वर्तते यथा-''त्रिनी अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरुत्तमद्भ्यः । ओमानंशंयोर्मकायसूनवे त्रिधातुरार्म वहतं ग्रुभस्पती ॥ ऋक् १-७-३४-६ ॥ अस्मिन् त्रिधातुराद्वस्य व्याख्यायां श्रीसायणाचार्याः " त्रिधातुः " " वातपित्तश्चेष्मधातुत्रयशामन-विषयम् '' इत्यनेन अयं त्रिधातुवादो नैव 'यूनानवैद्यकाद्वाऽन्यस्माद्वाऽयमागतः किंतु अस्योत्पत्तिस्तु वेदे एव बभूव । वेदस्य चायुर्वेदस्येऽयं स्वीया संपत्ति-विंचते इति।

तैत्तिरीयोपनिषदि द्वितीयवल्यां (ब्रह्मानंदवछी) प्रथमे अनुवाके सृष्टि-

क्रमस्य निर्देशं एतादशो विद्यते-" आत्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधिभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नर्समयः" । एतादृशोऽयं पुरुषोऽन्नर्समयो विद्यते । अस्य पुरुषस्योत्पत्तौ अन्नस्य रसः प्रचुरपरिमाणेन कारणं भवति । विवेचनपूर्वकया दशा यदि दष्टंचेदस्यां श्रुतौ यः पुरुष उक्तः स एव आयुर्वेद-मूळतत्वभूतश्चिकित्सापुरुष एव प्रतीतो भवति। '' षट्धातवः समुदिताः पुरुष इति राद्वं लभंते । तद्यथा पृथिन्यापस्तेजोवायुराकाशं ब्रह्मचाऽन्यक्तमित्येत एव षड्धातवः समुदिताः पुरुष इति शद्धं लभते " ॥ ५॥ चरक शारीर-अ. ५ ॥ " हिताहारोपयोग एक एव च पुरुषवृद्धिकरे। भवति " ॥ च. सू. " यतोऽभिहितं पंचमहाभूतशरीरीसमवायः पुरुषः (अ. २५) इति । स एष कर्मपुरुषिश्विकित्साधिकृतः"॥ १६ सु. शा. अ. १) इत्यनेन उपनिषदुक्तोऽन्न-रसमयः पुरुषस्तथा चिकित्सापुरुष एक एवेति स्पष्टं भवति । अस्यांश्रुतौ अस्यैवैकस्यात्मनः सकाशात् समस्तजडचेतनजगदुत्पत्तिर्भवतीति प्रतिपा-दितम् । वेदांतसिद्धांतस्य एतावानेव विशेषो यदात्मा जगदुत्पत्तौ उपादानकारणं तथा निमित्तकारणमस्तीति मनुते तच्छास्रम् । अस्य सिद्धांतस्य " अभिन्ननि-मित्तोपादानता " एव ध्येयं वर्तते ।

आधुनिक विज्ञानं (सायन्स) अधुनैव एकेनैव वस्तुना संपूर्णा सृष्टि-रुत्पना इति विश्वसिति । यदा इदं विज्ञानं, "ऐटम्स् " इत्यस्मिन्नेव स्थिर-मभवत्तदा राताधिकानि मूळतत्वानि मूळकारणिमिति कथयतिस्म । परं यदा ' इलेक्ट्रान् ' इत्यस्याभवञ्ज्ञानं तदा इमानि रातादधिकानि मूळतत्वानि रजिस समाविष्टान्यभवन् । तथापि आत्मन अस्तित्वविषये नाद्यापि विश्वासं धत्ते इदं विज्ञानम् । सांप्रतं आत्मविषयकं विचारं उत्सृज्य वैदिकभौतिकविज्ञानयोर्यत्र नास्त्यंतरं तस्मिन्नेव विचारे किंचिद्बृमः ।

आत्मनः प्रथमः परिणामो वा विवर्ती वा आकाशः, तदनंतर स एव वायुरूपस्तेजरूपो, जलरूपः, पृथिवीरूपः, परिणतो जात इति श्रुत्यर्थः ।

भौतिकविज्ञानमपि सर्वमपि वस्तुजातं कस्मादपि एकस्मान्मूळतत्वादुत्पन्नमिति बूते। इदं मूळतत्वं 'ईथर' नामकं विद्यते। इदमेव वैदिकभाषायां आकाश इति राद्वितम् । राद्वभिन्नत्वेपि तत्वैकत्वं वर्तते उभयशास्त्रे । तथैव राक्तिशालि-दूरदर्शकयंत्रेण विज्ञानविद्धिरिदं निश्चित्योद्घोषितं, वियति अनेकानां तारकाणां पुंजो वर्तते । यश्च केवलं बाष्पमयोऽद्यापि वर्तते (गॅस्)। यं वयं आकाशगंगेति कथयामः । सोप्यस्मादीथरनामकादेवोत्पन्नो भवेचेत् आकाशाद्वायुरित्यपि विज्ञानाभिमतमेव भवेत् । वर्तमानां वायवीयदशां उत्सृज्य घनीभूतावस्थां स तारापुंजो तेजोमंडलरूपतां यास्यतीति विज्ञानाभिमतमेव । वर्तमानसहस्ररिभ-रस्यामेवावस्थयां सांप्रतं वर्तते एव । एतेन वायोरग्निरित्यपि आगमप्रोक्तं विज्ञान-सिद्धमेव । विज्ञानं कथयति इयं पृथ्वी प्रारंभदशायां सूर्यस्यैव एकोऽवयव आसीत् (नेब्यूला) । स चाकारो भ्राम्यमाणस्तीव्रतरगतियुक्तोऽवर्तत । स चानेकवर्ष-सहस्रं भाम्यमाणोऽधिकतरो घनरसंवृत्तः । तस्य च यो मध्यो अवयवस्स सूर्यः । ये चान्ये घटकावयवा आसन् , त एव बृहस्पतीशुक्रचंद्रमापृथिवीरूपा बभूवुः । अस्मात्तेजरूपगोलात् (नेन्यूला) त्रुटिता पृथ्वी, पूर्व अत्यंतं उष्णदवरूपा आसीत् । तदानीं ज्वालापर्वतोत्पन्नद्रावइवासंतोष्णद्रवरूपपदार्थस्य समुद्र एवावर्तत पृथ्व्याम् । अनेन अग्नेराप इत्यपि श्रुतिवचनं विज्ञानसंगतमेव । पश्चा-दस्मादेव तरलोष्णद्रावपदार्थसमुद्रादेव कालांतरेण शीतरूपता प्राप्सा इयं सघना पर्वतमयी पृथिवी निर्ममे । यश्च तस्यां बाष्परूपः पदार्थ आसीत् स जल-रूपेण परिणतोऽभवत्, अत अद्भ्यः पृथिवीत्येतदिष संगतमेव । अस्मद्वेदिक-मतानुसारेण स च नेब्यूला केवलं वायोर्विशुद्धस्वरूप एव नासीत् । अस्याः पूर्वदशा वायोरेवासीत परं वर्तमानदशायां अस्मिन् क्रिया वायोरेव । ऊष्णता त अग्नरेव । अत अस्मिन् अग्निरूपपरिमाणे वायोरिस्तत्वं वर्तते एव । तथा च ऊष्णद्रवसमुद्ररूपपदार्थेऽपि नैव विशुद्धजलस्यावस्थितिरपि तु अस्मिन् क्रियाशक्तिर्वायोरूष्णता तु अग्नेर्विद्यमाना वर्तते, अतएव अस्मिन् जले सापेक्षतया तरल्लं घनत्वमपि वर्तते। एवं वैदिकभौतिकविज्ञानद्वारा आकाशादारभ्य पृथ्वी-पर्यंतं यथाक्रमं उत्पत्तिक्रमः समर्थितो जायते । कार्यरूपा पृथिवी खींयेम्य उपा-दानकारणेभ्यो वाय्वप्रिजलेभ्यः पृथक् क्षणमपि स्थातुं न राक्ता भवति । किमपि

कार्यं वस्तु, स्वोपादानकारणं विना न हि तिष्ठति । ' पृथिव्या ओषधयः, ओषधिभ्योऽन्नं, अन्नात् पुरुषः, इत्यादि सर्वमपि पृथ्व्याः कार्यजातं अतः पार्थिवमेवास्ति । व्यक्ते जगति तत्वांतरोत्पत्तौ सामर्थ्यं वास्वाग्नजलानामेव विद्यते । पृथिव्यां गतिमत्वम्, परस्परसंयुक्तत्वं, उष्णता च या विद्यते त यथाऋमं वाय्वभिजलानामेव गुणाः । यथा पृथिव्यामेतेषां त्रयाणामावस्यकत्वं तथा तेषां साम्येनावस्थितिरपि आवश्यिकी । एतेषां हीनाधिकरूपेण विषम्यं पृथिव्यास्ख-खरूपविकृतये भवेत् । यथा पृथिव्यास्तथा वनस्पतीनामपि स्थितिर्विद्यते । क्रियाशक्तिः, पाचनशक्तिः, संघातशक्तिः, (वाय्वग्निजलानां) यदि वानस्पत्येषु न स्यात्तदा नैत्र जीवेयुरेते । वृक्षास्तु शिफाभिः पृथिव्यास्सकाशादसाकर्षणं कुर्वंति । एकमेव रसं समाकर्षतो वृक्षाः, समानमेव जलं पिवंतो वृक्षा, मधुरा-ग्लितिक्तकट्कषायर्ससंपन्नफलादयो भविति । अस्य कारणं तु तेषां पाचन-संस्थानस्य वैभिन्यमेव वर्तते । रसाकर्षणे आकर्षणिकयायाः-वायोः-अस्य रसस्य पाचने-अग्नेः-तथा खाऽवयवसंघटने-पुष्टयै-जळस्य यथा आवश्यकता तथा तेषां यथाप्रमाणेनैवावस्थानस्यापि वनस्पतिषु दुर्यते । यथैव वनस्पतिषु तथैव अस्माकं शरीरेऽपि । अस्माकं शरीरं पार्थिवं तथापि क्रियापाचन-संघातेतिशक्तित्रयं विना अस्यास्तित्वमपि नैव संभवति । हृदयस्य गतिः, मस्तिष्कसंचाळनं, आमाशयस्थूळळघ्वांत्रयकृत्स्रीहावृक्कादी।दियाणां क्रियाः, रक्तशोधनिक्रया उरस्थलीया, इमाः सर्वाः क्रिया वायोरेव प्रधानतमं कार्यम् । स च वायुर्व्यक्ताऽन्यक्त एव । अस्माकं शरीरे बाह्येभ्यः पदार्थेभ्यो गृहीतस्य भोजनस्य पचनं शरीरस्थोष्णतया भवति । बाह्यं वस्तु शरीरे प्राप्तं, डायजेशन् , तथा अक्सिडेशन् त्रियांविना शारीरांगरूपं नैव भवति । परिवर्तनं शारीरोष्ण-तांबिन। नैव भवति । अतः शरीरे अप्नि विना पाचनमपि दुर्घटमेव । अत इदमेवसिद्धं यदस्मदर्थमपि वाय्यग्न्योरावश्यकता अनिवार्यरूपेण वर्तते इति । जलस्य वा संघातशक्तयास्तु आवश्यकता इयती स्पष्टा विद्यते, यस्याः प्रति-पादनं निर्थकमेव । तैत्तिरीयश्रुतौ सृष्टिप्रसृष्टिप्रिक्रियायां वाय्विम्रजलनाम्ना यत्कारणं निर्दिष्टं, तथा च येषां प्रतिपदार्थस्थित्यै नितरां विद्यते आवश्यकता ।

एतेषामेव धातुरिति विद्यते संज्ञा । ते धारणकर्मणा धातव इति निगद्यते । ऋग्वेदे इमे हि त्रिधातवो वैद्यके च एतेषामेव वातिपत्तकका इति नाम ।

वायोस्तु वेदे आयुर्वेदे च नामकत्वं वर्तते । पित्तस्य विषये सुश्रुतेन लिखितं पित्तमेवाग्निरिति । पित्तस्यैव नाम अग्निरिति । अग्निर्दहन—(ॲक्सिडेशन्, डायजेशन्)—पाचनादिगुणाः पित्ते एव विद्यमानास्संति । श्चिष् धातुना श्चिष्माशद्वस्योप्तत्तिविद्यते । यस्य अथोंमिल्नं, एकत्रकरणं, संयोगः । जलस्यायं विशिष्टो गुणो येन शरीरं अंगप्रत्यंगसंश्चिष्टं भवति । अस्य च स्थानमामाशयः । यस्मिन् कतिप्रकारका दवा भोजने मिश्रिता जायंते ।

सारांशस्तु दृश्यं जगत् तथा वस्तुजातं आकाशात् (इथर) उत्पन्नं भूत्वा वाय्वप्रिजलरूपेण परिवर्तितं सत् घनपार्थिवस्वरूपमगमत् । अतः प्रतिपार्थिवे द्रव्ये वाय्वाग्निजलानां स्वरूपं क्रियास्तथा गुणाः सार्वकालं विद्यमाना भवति। पिंडब्रह्मांडधारका इमे हि त्रिधातवः । एतेषां आधिदैविकं रूपं सोमसूर्यानिला-त्मिकं, आधिभौतिकं रूपं वाय्वग्निजलात्मकं, आध्यात्मिकं रूपं वातिपत्तकका-त्मकम् । आयुर्वेदे अनेनैव कारणेन स्थूलजगत्स्थितपदार्थास्रिधातुव्याप्ता इति लिखितम् । सृष्टौ एकोपि एतादृशः पदार्थो नैव लभ्येत यस्मिन् वाय्वप्निजलानि वा वातिपत्तकपा नैवोपलभ्येयुः। अनेनैव कारणेन आयुर्वेदे वातिपत्तकपास्तर्व-शरीरचरा उक्तास्तथा तेषां विशिष्टस्थानान्यपि उक्तानि । सुश्रुते अमाशयः कफस्य स्थानम् । आमाशयस्य पार्श्वतो नामेरुपरि पित्तस्य स्थानं, श्रोणीगुदौ वातस्थानं उक्तम् । अस्य वातस्थानस्योर्ध्वं नाभ्या अधः पक्ताशय उक्तः सुश्रुते। अमाराये भोजनं गत्वा जलद्रवैः प्रक्लिनं भवति । तत्र च तस्य संघातो भिन्नो भवति । अद्यतनीयं शास्त्रमपि (सायन्स्) अमाशय--(स्टमक्)-भित्तिस्थ-ग्रंथिभ्यो निर्गच्छद्रसो भोजने संमिश्रो जायते । अस्मिन् रसे पेप्सिन्, हायडोक्कोरिक असिड इति द्रव्यं प्रधानतमं विद्यते । अस्मिन् द्रवे अम्ललवणी रसौ विद्येते । चरके मधुराम्ललवणरसाः कफधारका उक्ताः । अतो यत्र जलाम्ललबणानामाधिक्यं, तथा तदुत्पन्नित्रयाणामपि यत्प्रधानं स्थानं तत् कफस्य स्थानं कथं नैवोक्तं भवेत् ?।

आमाशयस्य दक्षिणभागे वर्तते एकं छिद्रं, यस्मिन् मिलितं सछ्ग्नं क्षुद्रांत्रं अधो भागे गच्छति, अस्य क्षुद्रांत्रस्य प्रारंभिको द्वादशांऽगुलिमिता ऊर्ध्वादधः किंचित्वक्रतांगता भागो (डियोडिनम्) विद्यते, यस्मिन् भवति पाचनी क्रिया। तमेव पित्तारायः, पाकारायः, पाचनसंस्थानमिति कथ्यते सुश्रुतेन । नाभ्याम्-परि ' डियोडिनम् ' गृहीत्वा क्षुद्रांत्रस्यान्यस्संपूर्णो भाग आगच्छति । पित्तस्य प्रधानं कार्यं पाचनं, (डायजेशन्) दहनं, (अक्सिडेशन्) शोषणं, (ॲसिमिलेशन्) भेदनं इत्यादि कार्यं अस्मिन्नेवस्थाने भवति । पित्तकोषस्य रसः अग्निधराकलाक्षारः (पॅक्रियाटिक् जूस्) अस्मिन्नेव स्थाने भोजने संमिश्रो भवति । चरकसुश्रुताभ्यां क्षार " आंग्नयः " कथितः । तथा दहन-पाचनविल्यनशोधनशोषणभेदनादिकाः क्रियाः क्षारस्य निर्दिष्टाः । इदं सर्वे कार्यं क्षुद्धांत्रे एव भवति । शरीरस्य पालनपोषणकरणार्थं भोजनस्य रसे परिवर्तनं अस्मिन्नेव स्थाने प्रधानतया भवति । अत इदं स्थानं पित्तस्य प्रधानं स्थानं नैव कथं स्यात् है। अस्यैव पित्ताशयस्याग्रे बृहदंत्रं वर्तते (लार्ज इंटेस्टाइन्) । अस्मिन् संजातिपत्तकार्यं वस्तु आगच्छति । अस्य अंतिमद्वाद-शांगुलिमितो भागो वायोः प्रधानं कार्यस्थानं विद्यते । आधुनिकास्तु 'रेक्टम्' इति यत् कथ्यते तदेवेदम् । आमाशयस्तु खस्मादनेकप्रकारकान् रसान् विसृजति (विसर्गः)। पित्तायशस्तु समागतेभ्यो रसेभ्यः शरीरोपयोगि वस्तु आदत्ते (आदानं)। तथा बृहदंत्रस्यांतिमो भागो मलस्योत्सर्जनं (विक्षेप:) करोति । इत्यनेन सुश्रुतवचनं " विसर्गादानविक्षेपैस्सोमसूर्यानिला यथा । धारयंति जगत् देहं कफपित्तानिलास्तथा " सुसंगतं विद्यतेति स्पष्टम्। एतावता विवरणेन ' तस्माद्वा एतस्मादित्यादिश्रुतिप्रतिपादितस्तथा ' 'षट्धात-वस्समुदिताः पुरुष इति शद्धं लभते ' इत्यादि चरकप्रतिपादितः पिंडब्रह्मांड-सृष्टिकम एक एव । केवलं श्रुत्या ब्रम्हतो पृथिवीपर्यंतं, चरकेण च पृथिवीतो ब्रह्मपर्यंतं, आनुलोमप्रतिलोमक्रमस्वीकृतः । पिंडब्रह्मांडसृष्टिक्रमैक्यं चरकेण 'पुरुषोऽयं लोकसंमितः' 'यावंतः पुरुषे भावविशेषास्तावंतो लोके, ' 'यावंतो हि लोके तावंतः पुरुषे ' इत्यनेन प्रतिपादितम् । सोऽयं त्रिधातुवादो जगत्कल्याणा-र्थमेव प्रकाशितो विद्यते। यस्मिन् सूर्यः, चंद्रमा, वायुः, कालः, दिग् , आकाशः,

पृथ्वी इत्याचारभ्य अत्यंतसृक्ष्मातिसृक्ष्मपरमाणुषु अंतर्हितो विद्यते। जडं च चेतनं च सर्वमप्यनेन व्याप्तम् । सर्वाऽपि प्रकृतिरनेन नियमिता वर्तते । इमे एव त्रिधातवो विकृत्यां वा विषमतायां त्रिदोषा इत्युक्ता भवंति ।

डॉ. मोरेश्वर नारायण आगाशे एल्. एम्. एस्.

प्रधानाध्यापक आर्यांग्लविद्यालय, साताराः

' आंग्ळीयेंद्रियविज्ञानमतेन वातस्य स्थानं मस्तिष्कं शिर इत्युक्तम् । आयुर्वेदग्रंथकारास्तु तन्नाभ्या अध उपदिशंति । सर्जीवप्राणिस्तु 'युनिसेल्युछर्' अवस्थाया (अमीबासदृशावस्थायाः) ' मल्टिसेल्युल्रर ' स्थितौ परिवर्तनशीलो विद्यते । तस्य अवयवानां वृद्धिरभिलक्षिता चेत् , तर्हि मानवस्य मस्तिष्कं सर्वेभ्योऽन्तिमं वर्तते इति आंग्लेंद्रियविज्ञाननिपुणेभ्यो ज्ञातमेव । किंबहुना मानवस्योत्पत्ते ऊर्ध्वमेव मस्तिष्कस्य परिपूर्णाभिवृद्धिर्भवतीति दश्यते । अते। जीवितावस्थाया रक्षणे तथाच शरीरस्य इतरव्यवहारकरणे मस्तिष्कादन्यत्कि-मृपि कारणं विद्यतेति सिध्यति । इदं कार्यं ' सिपथेटिक्नर्व्हं ' इत्याख्याः नाड्या भवति । ता एव इडापिंगला इति गृहीते चेत् तस्या जालं नाम्योऽध-स्ताद्वर्ततेति प्रस्यक्षशारीरेण दृश्यते । अतस्तदेव वातस्थानमिति निश्चेतुं नैव कोपि प्रमादो भवेत् । पित्तविषयेऽपि ९तादृश्येव कल्पना सूचिता भवति । आर्यवैद्यके तु सर्वपदार्थानां दर्शनं दक्स्थालोचकपित्तेन भवतीति वर्ण्यते । आंग्छवैद्यके तु तदेव ज्ञानं ' ऑप्टिक्नर्व्हं ' इत्यनेन जायतिति वर्णितम् । परंतु तत्स्थं सूक्ष्मं शारीरमवलोकितं चेत्, 'रेटिना 'इत्यस्य विद्यंते दशपटाः। अंतिमस्तु पटो ' रॉड्स् ' तथा ' कोन्स् ' इत्याख्यस्य वर्तते । तत्रैव प्रथमं रासायनिकक्रिया जायते । अनंतरं वस्तुदर्शनं भवति । प्रतिविवप्राहकण (फोटोग्राफर) गृहीताः सर्वेऽपि काचफलकाः (प्लेट्स्) पूर्णावस्थायां नीयमानाः प्रथमं सर्वेऽपि सदृशा एवावलोक्यंते । न तत्र पार्थक्यपरिज्ञानं भवति । परंतु ते एव फलका रसायनद्रव्ये क्षिप्तास्तेषु भविष्यंत्या रासायनिक-कियया ते भिन्ना भिन्ना अवलोक्यंते । इदमेव कार्यं ' राड्स् ' तथा ' कोन्स् '

इत्याख्ये पटे भवति । तदेव रसायनं आलोचकपित्तमिति गदितुं नैव कोऽपि प्रत्यवायो विद्यते ।

तथैव हृदयं चेतनास्थानमित्यपि यथार्थं विद्यते । आंग्लवैद्यके तु चेतना-स्थानं मस्तिष्कं वर्णितं । तत्र कतरत्सत्यमिति संदेहे केनापि योगिवरेण ध्यानधार-णावस्थायां स्वकीयशरीरव्यापारास्तंभितास्तथा नाडीसपंदस्तंभितोऽपि हृद्रसंद-स्तंभो नैव कर्तुं शक्य इत्यनेन हृदेव चतनास्थानं प्रधानमिति वक्तुं युक्तम् । अपरं च आंग्लेंद्रियविज्ञानज्ञेस्तु हृदयस्नायुषु ज्ञाननाडीभिविना जीवितुं तथैव प्रसरणाकुंचनात्मकं कर्म कर्तुं विद्यते खतंत्रा शक्तिरिति प्रत्यक्षीकृतम्। अनेनाऽपि हृदयं चेतनास्थानिमत्येव यथार्थिमिति दृश्यते । अपरं च रसस्य रक्तत्वं यकृति भवति । अयं आयुर्वेदीयः सिद्धांतः प्रथमं परिहासयुक्तो भाति, तथापि पर्यालोचनया तदेव युक्तमिति दस्यते। यक्कतः क्षुद्रांत्रे परिवहत् पित्तं, पीतहरितं वर्तते अनेन रसरंजनं भवत्येव । पचनेंद्रियेभ्यो एकीभूतो रसधातु-रशुद्धे रक्ते संमिश्रो भवति । इदं रक्तं हृदये गच्छत् प्रथमं यकृति समागच्छति । अनंतरं हृदयं गच्छति । रक्ताः शोणितकणाः स्त्रीये शरीरकार्ये संपूर्णे नष्टा भवंति । नष्टभ्यो रक्तकणेभ्यो वर्तमानो छोहधातुर्यकृति संचितो भवति । पचनमार्गादागतं यकृति रक्तं बहिर्निर्गच्छत् तमेव छोहधातुं गृण्हाति । तेनैव लोहेन अस्थिस्थो मज्जधातुर्निर्मापयति रक्तवर्णान् शोणितकणान् । तथैव वर्द्ध-माने गर्भे यक्तदेव रक्तं निर्मापयति । शोणिते द्रवरूपेण संतिष्ठत् ' फिब्रिनो जेन् ' नामकं द्रव्यं, यकृति एव भवतीति आंग्छवित्संमतमेव । अनेन रसस्य रक्तत्वं यकृति एव भवतीति सत्यः सिद्धांतः ।

पंडीत दुर्गादत्तराास्त्री आयुर्वेदशास्त्राचार्य(बनारस)

चतुर्विधं हि पांचभौतिकं षड्सं द्विविधवीर्यं वाडष्टविधवीर्यं अन्नपानं, मुखं गतेन प्राणवायुनाऽधः प्रणुन्नं, जिल्हाम्लात् खरयंत्रपश्चाद्भागेनामाशयं गतयाऽ- नप्रणाल्या अमाशयमुलभ्यावतिष्ठते । तचादौ मधुरीभूतं किंचन प्रकृतितः प्रादुर्भूतं स्नावं (गॅस्टिक ज्स) उदीरयत् , तद्युतं सततमेवोदकेर्गुणैभिन्नसंघातं

७३ पूर्वपीठिका-पंडित दुर्गादत्तशास्त्री आयुर्वेदशास्त्राचार्य.

प्रक्तिनं यक्तताद्रक्तान्निसर्गतो विविक्तं पित्तं पित्तकोषमधितिष्ठत् तत्कोशसंसक्तेन हंसपक्षनालाकारेण स्रोतसा ' अग्न्यविष्ठानमन्नस्ये'त्यनेन निरूपितां प्रहणीं (डियोडिनम्) अधिष्ठाय समानास्येन वायुना उद्दीपितं सत्पचित आमाशय-संकोचिकासाभ्यामधःस्थोऽग्निः स्थाल्यामोदनाय जलतण्डुलिमव द्रवीभावमापाद्रियतुम्। ततश्च विद्रय्वतयाऽम्लभावमापनं द्रवीभूतं तदन्नपानं—आमाशयपार्श्वावलंबिना छिद्रेण अधो नयत् प्रहणीगतेनाग्नेयरसान्वितेन पाचकास्व्यपित्तेन सह मिश्रीभूय पक्तामाशयमध्यस्थायाः पित्तधरायाः प्राग्भागेऽवस्थितं पच्यते पित्तन्तेजसा यथाकालम् ।

ग्रह्णीसमाश्रितं हि पित्तं खस्नोतोमिलितमुखेन ग्रह्णीपार्श्वांतःक्रोडा-विश्वताग्न्याशय-(पॅक्रियाज्) संसक्तेन पृथक्स्रोतसा समागतेनाग्नेयरसेन (पॅक्रियाटिकज्स्) अन्वितं सदेव विशेषण पाचनाय कल्पते। इति तद्युक्तमेव पाचकपित्तिनितं संज्ञां लभते, पक्तामाशयमध्यस्थस्यैव पित्तस्य पाचकयुक्तत्वेनाभिधानात्। एतच्च पाचकपित्तं—भुक्तमात्रस्य पाकारंभे निसर्गतः समुदीरितेनामाशयरसेन (गॅस्टिक ज्स्) कफापरपर्यायेण प्रक्लिक्तमेव मधुर-पक्तमच्लतां गतमन्तपानं भुक्तमार्गाग्वर्यस्य क्षुद्रांत्रप्राग्मावस्वरूपां ग्रह्णां शनैः समाश्रितं पचित । इति रसरुपतया समुदीरितस्य कफ्रस्यैवास्ति प्राक् पाचनसहा-ध्यम् । एवंच—आमाशयगतस्यानस्य तत्रैव प्रकृतितः समुद्रिक्तेन मुखकुहरांतः सृणिकाग्रंथिचतुष्टय— [सलायव्हरी ग्लँड्स्]— खुतलाला— [सलायव्हा] स्रावकृतसाहाय्येनात्यम्लेन रसेन पाकारंभाय क्केदनं भवति, तत्रश्चामाशयात् क्षुत्रांत्रप्राग्मागं शनैः समाश्रितमर्भक्तमन्त्रपानं, तत्रैव पित्तकोषादागतं पित्तं आग्न्यशयाशयादागत आग्न्येयरसश्चेत्युमयमेव संमीलितमुखेन स्रोतोद्वयेन प्रसिक्तं पचित । इत्येवं निरूपितः प्रतीच्यसिद्धांतोऽपि प्राक्तनप्राच्यसिद्धांतेनैवानुगते। नाभिनव इति स्पष्टं प्रवक्तं शक्यते ।

ततश्च क्षुद्रांत्रे पित्तधरायाः प्रागुक्तग्रहण्यतिरिक्तं देशं संप्राप्तं, सर्वतो भावेन विपक्तं, च तदन्तपानं तत्रैव पित्ततेजसा पोष्यमाणं क्षुद्रांत्रीयव्यापारेण पकाशयं यातं, परिपिंडितपकं कटुभावमापन्नं, आमपकाशयचरेण वन्हिसंगतेन समानवायुना च विपाच्यमानं द्विधा विभज्यते रसमलभेदेन । ततश्च वायोर्बलमभिवर्धयिति ।

क्षुद्रांत्रे प्रहणीभिन्नदेशे निसर्गतः समुभ्दूतो रसोऽपि [स्यूकस् एंटरिकस् Succus Entericts] प्रागुक्तपाचकपित्तोपल्ब्धबलो विशेषेण विपकान्नविद्रावणाय कल्पत । इत्याग्नेयगुणभूथिष्ठत्वात्तस्याऽपि पक्काशयमध्यस्य-त्वेन पाचकपित्ते एवांतभीवः ।

एवं च क्षुद्रांत्रेषु पच्यमानस्यान्नस्य तदन्तःपर्याचिताभी रसांकुराभिरा-कृष्ट्रसस्य मलभागेन परिणतिः प्रारम्यते । स्थूलांत्रस्यारंभदेशे च सा सर्वथा संपद्यते इत्येवं यः पाश्चात्यनयः सोऽपि प्राच्यैरुक्तदिशा पुरैव निर्दिष्ट इत्यभिन्न एवेति निर्देष्टुं शक्यते ।

इत्थं च विविच्य समुत्पनोऽन्नपानरस आमपकाशयांतः प्रसृतैः सूक्षम-तरैः स्रोतोभिः पृष्ठवंशमनु नाभिसमप्रदेशस्थितं हृद्रामिरसवहस्रोतोमूळसंश्चिष्टं रसाशयं गत्वा यकृत्प्रीहानौच प्राप्य पाकरागानुपेत्य हृदयाद्यभिमुखमुपैति । स चायं रसः कृत्स्रदेहचरेण रससंवहनोद्यतेन व्यानाख्येन वाथुना 'व्यानेन रसधानुरित्युक्तदिशा विक्षिप्तो विभन्नमार्गस्रक्ष्पैः परिश्रमन्, सर्वान् धातून् पुष्णाति प्रीणाति च देहगतान्स्तान्सान् भावान्।

अस्य चान्नपानरसस्य यो हि सर्वथा प्रीणनानुपयुक्तोऽसारभागः क्षारद्रवः स तु सूक्ष्मतरैः स्रोतोभिः पृष्ठवंशमुपगत एकादशद्वादशपर्शुकयोरुपकंठावस्थितं महाशिबीबीजाकारं वृक्कद्वयमासाद्य तत्संसक्तेन बस्तिसंश्रितेन स्रोतोद्वयेन मुत्राशयं संप्राप्तो यथाकालमपानाख्येन वायुना प्रेरितश्चोपस्थमार्गेण बहिनिर्याति देहकल्याणहेतवे । मलस्तु पक्काशयारंभस्थानमुण्डुकाख्यमासाद्य मांसधरायां कल्यां सर्वतो भावेन विड्रूपतया परिणतः स्थूलांत्रव्यापारेणापानवायुना च क्षितो गुदमार्गेण बहिनिर्याति ॥ वैद्यसंमेलनपत्रिका जुलै १९३२ ॥

७५ पूर्वपीठिका-वंशीधर जोशी व वैद्य चैतन्य देसाई.

पं. वंशीधर जोशी आयुर्वेदाचार्य (ग्वालेर)

वैद्यसंमेलनपत्रिका डिसेंबर १९३४.

दोषाः—दोषानाम वातिषत्तकः । एते प्राकृतावस्थायां धातव इति विकृतावस्थायां च दोषा इति च निर्दिश्यंते । प्रकृतिमिधिश्रित्यारोग्यं पालयंतो वा विकृतिमिधिगत्य रोगान् वर्धयंतो वा त एते त्रयोऽिष खलु दोषाः सर्वदाऽ-प्याशरीरपातमशेषमप्याश्रित्य शरीरमिधितष्ठते । प्राणिनां सजीवत्वं च 'नित्याः प्राणभृतांदेह ' इति पद्येन स्वाशयमाविष्करोति चरकमुनिः । वातादयस्रयो दोषा नित्याः रजस्तमसी तु न नित्ये । इति वातादिदोषत्रयस्य मूलतो हानौ न हि कश्चित्पुरुषो जीवती, रजस्तमसी मूलतो व्यपोद्ध सात्विका मुनय इतरे च जनाः सुखेन सुचिरजीविनो जीवतिस्म ।

खल्वेते वातादयः शरीर द्विधा विकीनास्तिष्ठति तत्र । तेषां ये सूक्ष्माः सारभूताः शरीरधारणचाळनानविपाचनपोषणादिकारिणोंऽशास्ते प्रसादाः, शरीराबाधकरास्त्याज्यभागास्तु (कफशिंघाणकपित्तद्रवापानवातप्रभृतयः) विद्यंते मळभूता इति । एवं च प्रसादभूतेषु खल्वेव तेषु वातादिसंज्ञा मुख्या, मळभूतानां तु तेषां वातादित्वेनाभिधानं गौणमित्याचार्याणामाशयः। "शारी-रधातवः पुनिर्द्वविधाः संप्रहेण मळभूताः प्रासादभूताश्चत्यादिना "।

तथा च वायुः साधारणो मरुदेव, पित्तं नाम मुखादिनिर्गतं पीत-द्रव्यमेव, श्लेष्मा नासादिनिर्गतो मल्विशेष एव । साररूपेण प्रसादरूपेण वा विद्यमाना वातिपित्तकपानां सूक्ष्मांशास्तिस्नः शक्तयः । मल्रूपेण दश्याः स्थूलांशाः दोषाणां किट्टांशाः ।

' त्रिदोषसिद्धांतः ' वैद्य चैतन्य देसाई मुंबई.

वैद्यसंमेलन पत्रिका ऑगस्ट १९३५.

वातिपत्तकपादोषास्त्रयो धारकचालकाः । भूतभूता व्यापिनस्ते शरीरपरमाणवः ॥ २ ॥ टीका- दोषा ' इति सामान्या संज्ञा । पंचमहाभूतोत्पना भूतभूता । किरूपा न्यापिनः । शरीरे परमाणुरूपेण तिष्ठतः । अनेन दोषाणां प्रत्यक्ष-द्रन्यत्वं सूचितम् ।

भूतं किं रूपकं १ तत्तु प्राचीनैः परिकल्पितम् । इंद्रियारंभकं द्रव्यं गृहीतं पंचवर्गकम् ॥ ३ ॥

टीका—भूतमिद्रियद्रव्यं, चरकोपि पंचमहाभूतानि, पंचेद्रियद्रव्याणि, इति कथयति । ते पंचवर्गाः पंचमहाभूतानि । तेन द्रव्यविज्ञानोक्तम् छद्रव्यैः सह केचिन्महाभागा महाभूतानि तुछयंति तन्न साधु । द्रव्यविज्ञानोक्तम् छ-द्रव्याणि तु (केमिकल् एछिमेंट्स्) प्रस्यक्षसिद्धानि । भूतवादस्य विज्ञान विरुद्धस्वं कथयति ।—

> विज्ञानविरूद्धत्वात्त्याज्यास्यात् भूतकल्पना । दोषास्तस्माद्धि द्रष्टन्या प्रत्यक्षद्रन्यमेलकाः ॥ ४ ॥ शक्तेर्द्रन्याधिष्ठानत्वात्, दोषास्तु शक्तिरूपकाः । केवलाश्चेति यैरुक्तं आगमस्तैस्तिरस्कृतः ॥ ५ ॥

टीका—दोषशक्तिवादं दूषयति। दोषाणां केवलशक्तिस्वरूपत्वं प्रस्यक्षा-नुमानागमविरुद्धमतएव स्याज्यम् । अधुना प्रस्तुतदोषविषयस्य ये विभागाः शारीरविज्ञानतः परिकल्प्यास्तान् प्रति प्रदर्शयति, दोषाणां विशेषरूपं कार्यं च कथयति।-

> दोषास्त्रयः क्रमेणस्युर्गितिपक्तिस्थितिकराः । स्नावरूपा विशेषेण शारीरे च विभागतः ॥ ६ ॥ शुक्रशोणितमागश्च गर्भकळळकस्तथा । द्वौ च गर्भांगशारीरे दोषाः स्युर्यत्र कारकाः ॥ ७ ॥ स्वस्थशारीभागस्तु सूक्ष्मरूपेण चाळकाः । स्थूळान्नरसभागाभ्यां दोषाः स्युर्धारकास्तथा ॥ ८ ॥

गर्भागस्वस्थयोदींषा दश्यंते धातुरूपकाः । विकृतोत्सृष्टस्रावाम्यां रुग्णशारीरमुच्येते ॥ ९ ॥ यत्र वातादयो दृष्टा मलादोषास्तयैव च ।

टीका-दोषास्त्रय इत्यादि । दोषाणां कार्यं स्नावरूपत्वं चाग्रे स्पष्टम् । अत्र प्रवंधानुसारेण परिकल्पितदोषविषयविभागाः आलेखविन्यास्रूपेण प्रदर्शयामः—

धातुः ।

- (१) गर्भागशारीरम् (क) शुक्रशोणितविभागः (एंब्रिऑलजी)
 - (ख) गर्भकळळविभागः।
- (२) खस्थशारीरम् (क्) सूक्ष्मशारीरम् [चाळकाः] (ॲनटमी)
 - (ख) स्थूलशारीरम् [धारकाः]
 - (ग) अन्तरसविभागः [पोषकाः]
- (३) रुग्णशारीरम् (क) विकृतस्रावाः [दोषाः]
 - (ख) उत्सृष्टसावाः [मलाः]

शुक्रातिवाभ्यां ते चैव देहसंभवहेतवः ॥ १०॥ कफस्ररूपे फलबीजे तयोश्च प्रतिपुद्गले । निचये पित्तवातौ च स्नावौ पाचकप्रेरकौ ॥ ११॥

टीका— ग्रुकार्तवाम्यामित्यादि—देहसंभवहेतु भूतत्वाद्दोषा उपादान-कारणिनित प्रतिपादयति । यथाह सुश्रुतः ' वातिपत्तश्चेष्माण एव देहसंभव-हेतवः' । तथा च डळणः—'अविकृता वातादयः ग्रुकार्तवादिसहकारितया देह-जनका अभिप्रेता इति ' । परं गर्भसंभवे दोषा न केवळं सहकारिकारणं, किंतु स्रुपादानकारणं संतीति प्रबंधकारस्याभिप्रायः । वीर्ये फळेच प्रचुरं 'ॲल्ब्युमिन्' दृश्यते । (हॅळिबर्टन फि. ८६८—७०) सैतिकं (ॲल्ब्युमिन्) मौळकभेदः (प्रोटीन्) । सर्वाणि मौळकानि कफमयानि दृश्यते । माधुर्यात्पिच्छिळत्वााच्चिक्कण-त्वाच्च । वीर्यजंतुषु फळजंतुषु (ओव्हम्) ये पाचकस्नावास्ते पित्तं, ये प्रेरकस्नावास्ते वायुरेवमवगंतव्यम् । तौ द्वौ प्रतिपुद्गले निचयप्रांते (न्यूक्कीयस्) तिष्ठतः । एवमेव प्रतिपुद्गले (सेल्) त्रयो दोषा वसंति । बीजफलसंयोगात् फलकं प्रादुर्भवति।

> कल्लं फल्बीजाभ्यामुत्तराधरमध्यगाः । तस्मिन्नेव वातपित्तकफाः स्युधीतुकारकाः ॥ १२ ॥

टीका—कललं यथाकमं विभज्यते । तस्मिन् त्रयो भागा जायंते--यथा १ कललोत्तरं (एक्टोब्लास्ट) २ कललमध्यं (मीसोब्लास्ट) ३ कललाधरं (एंडोब्लास्ट)। एतेभ्यिक्षभ्यो भागेभ्यः शारीरांगाणि जायंते । तेनैते विभागा-वातकारका उक्ताः । एतेषु त्रिषु प्रत्येकात् यान्यंगानि जायंते—

वाताच बाह्यत्वक्, संज्ञा, स्नोतांसि, निखिळानि च । पित्तादन्नवहस्रोतो, ग्रंथयः, कवचादयः ॥ १३ ॥ कफात्संघानकाश्चेव घातवो मांसकस्तथा । रसास्ट्र≉पुद्गळानि स्युः ग्लीहा च रसग्रंथयः ॥ १४ ॥

१ वातः—बाह्यत्वक् तस्या नखादीनि उपांगानि । मुखांतस्वक् च दृष्टिश्च काचकः । मीणः । खादेंद्रियाणि । संज्ञावाद्यी स्रोतोधातुः । पिच्यु-टरी, पीनिअल्प्रंथी । उपवृक्कप्रंथेर्मध्यः । (दि इसेन्शिअल् ऑफ हिस्टालॉजी पृष्ठ २५)।

२ पित्तम् —अन्नवहस्रोतस्त्वक् । यक्तदग्न्याशयादिपाचकग्रंथिर्बाह्यात्वक् च । कवचग्रंथिः, प्रतिकवचग्रंथिश्च, स्तनकग्रंथेर्जाटकम् ।

३ कफ:--सर्वे संघानधातवः । रसासृक्पुद्गलानि । फ्लीहा च रसग्रं-थयः । मूत्रजनकनलिका बाह्यात्वक् । पुंस्त्रयंडबाह्यात्वक् । पुंस्नीबीजे । बुद्धि-प्रेरितमांसधातुः । हृदयस्य पेशीनां मांसकधातुश्च ।

स्थूलशारीरके वातान्मजा भवति देहिनाम् ॥ १५ ॥

क्रीडिका-वैद्य चैतन्य देसाई.

ित्तहसीका रुधिरं कपाच्छुकं भवेतथा। रसमेदोऽस्मिकानि कंडरा च जलं भवेत्।। १६॥ स्थूलशारीरालेखः—

| दोषः | वातूपघातुः | स्थानं | विशेषस्थानम् |
|---------|------------------------------|--|-----------------|
| वात: | अस्थि (मज्जा) | पकाशयः, कटिः, सक्थिनी,पादौ,अस्थि, श्रोत्रं, स्पर्शनं च | पकारायो विरोषेण |
| पित्तम् | खेदो, लसीका,रुधिरम् | नाभिरामाशयश्रद्धाः स्पर्शनं च | नाभिर्विशेषेण |
| कफः | रसो मेदः (मांसा- दिकम्) | उरः, कंठः, शिरः, क्लोम, पर्वाण्यामाशयः घ्राणं, रसनं च | उरोविशेषेण |

आगमे यद्यपि तत्रास्थानि स्थितो वायुः, तथापि 'अस्थीनि मज्ज्ञः पृष्टि च' इति सुश्रुतवचनेन मज्ज्ञ उपलक्षणं ज्ञातन्यम् । वायोधीतुर्मज्ञाचेल्यवगंतन्यम् । अस्थां श्रेष्मजन्यत्वस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् । वस्तुतस्तु वातिपत्तयोधीत्पधात्दर्शितौ तौ परमार्थतया न प्राह्यौ । एतयोर्द्धयोरिप न धातुकर्तृत्वं किमप्यस्ति । कृत्सनं रारीरं कफजं तस्मिन्वातिपत्ते स्नावरूपेणैव दृश्येते न तु घटकरूपेण, तयोः स्नावरूपत्वं सूक्ष्मशारीरे स्पष्टं भवति ।

सूक्ष्मशारीरके वायुः प्रेरकस्राव उच्यते । पित्तं तु पाचकस्रावो वर्णकेन सहोच्यते ॥ १०॥ कफश्च पोषकस्रावः स्नहनोऽपि विनिर्दिशेत् ।

टीका-वातिपत्तकपाः प्रेरकपाचकस्त्रहस्रावकरूपेणोक्ताः सूक्ष्मशारीर-विभागदृष्ट्या । केचित्तुवायुं संज्ञावाहिस्रोतस्सु घटयंति तन्नसाधु । स्वतंत्रे शास्त्रे संज्ञावाहिस्रोतांसि चैव मनोवहस्रोतांसीत्युक्तत्वात् । मज्जाधातुः संज्ञावहना-दन्यत् कार्यं न करोति, तस्मात् स प्रेरकगुणवत्विविद्यष्टेन वायुना सह न समानः। संज्ञाप्रेरकं तु मनः। तस्मात् प्रेरकस्रावत्वं वायोर्युक्तियुक्तम्। दोषरूपाणां त्रयाणां स्नावाणां पश्चात्यवैद्यकानुगतपदार्थैः सह समीकरणं कुर्मः—

१ वातः-हार्मीन् अँड् नर्व्ह एंडिंगसीकिशन्स्।

२ पित्तम्:- एंझाइम्स अँड पिग्मेन्टस्।

३ कफा:--न्युट्रायटिव्ह अँड छित्रिकेटिंग सीक्रिशन्स् ।

रुग्णशारीरकें बृद्धाः क्षीणा दोषास्त एव च । उत्सृष्टाश्च मला उक्ता वातवर्जा विशेषतः ॥ १९॥

टीका-रुग्णशारीरे त एव वातिपत्तकफदोषा इत्युच्यंते । विकृता वृद्धास्त-एवोत्सृष्टा बहिक्षिप्ता मला इति चोच्यंते ।

तेषां नियंता प्रमुखोवायुर्विद्युत्समो भवेत् ।
विशेषणास्थिगो यस्मात् मज्जस्थोप्युपलक्ष्यते ।
उपवृक्कादिजन्यत्वाद् बस्तिस्थो मुख्य उच्यते ॥ २०॥
संज्ञावाहिस्रोतसां तु यस्तु उत्साहवर्धनः ।
स मुर्धाकंठहृन्नाभिबास्तिस्थः पंचधा स्थितः ॥ २१॥
धारणायत्नगत्विग्नदानोत्सर्गान्करोत्यसौ ।
कृष्णरक्तवर्णकात्मा ह्यरुणश्याव उच्यते ॥ २२॥
शोषोव्हासश्च नाशश्च संज्ञागतिविद्यातनान् ।
विकृतः कुरुते शूलस्तंभाटोपादिकान् गदान् ॥ २३॥

दीका-नियंता प्रेरकः। मज्जात्वस्थिगता (बोन मॅरो)। गतिवत्पुद्गलजनक-त्वात्, संज्ञावाहिस्रोतसां धातुनां तथैव पुद्गलानामप्युत्साहवर्धनः प्रेरक एको वायुर्नान्यः पदार्थः।

१ प्राणः — पिचुट्री-सीक्रिशन्स् ।

२ उदानः — थायराइड्-सीक्रिशन्स् ।

३ व्यानः — नर्व्ह एंड-सािक्रीशन्स् ।

४ **समानः** — स्यूकस्-एंटरिकस्।

५ अपानः — अँड्रिनल-सीक्रिशन्स् इत्येवं भाति ।

कृष्णरक्तवर्णकात्मा इस्रादि । अरुणश्यावी वातवर्णी । जनकवर्णात् जन्यवर्णाः । तेन ' बोन मॅरो, नर्व्हटिशु, स्किन्, आदिषु रक्तवर्णकी दश्येते तो वातस्रावसंबंधिनी भिवतुं युक्तम् । वातिपत्तकफानां स्विधिष्ठितस्थानेषु तत्तस्रक्षणयुक्ता वर्णकाः (पिग्मेंट्स) उपलम्यंते । तत्तद्वर्णकस्तत्तत्स्रावाधीनः । इति स्पष्टम् ।

पित्तं पित्तं प्रहणीस्थं यकृत्स्थं रसरंजनम् ।

हत्स्यं (अस्वस्थं) चोत्साहं कुरुते तारकास्थितम् ॥ २४ ॥
तद्रुपप्राहकं, बाह्यत्वचि वर्णप्रकाशकम् ।
हत्स्थमे।जश्च तत्सर्वं रुपांतरिक्षयाक्षमम् ॥ २५ ॥
अग्निरूपं पुद्गलेषु कैण्वं धात्विग्नरुच्यते ।
पीतं नीलं तु सामं च पाचकं पित्तरक्तकम् ॥ २६ ॥
समानं तेन रक्तस्यं उक्तं च किष्टममृजः ।
तद्योनित्वात् कटुतीक्षणं क्षारमम्लं तु वैकृतम् ॥ २७ ॥
विधेतं रक्तपित्तातिसारपांड्वामयांस्तथा ।
पूथमावं च कुरुते पित्तं कैण्वसरुपकम् ॥ २८ ॥

टीका—' पित्तं पित्तं ' इत्यादिना पित्तस्य स्थानं खरूपं च प्रकट-यति । तदनुसारेण पित्तभेदान् प्रदर्शयामः—

नाम स्थानम् कार्यम् पाश्चात्त्यसंज्ञा १ पाचकं, प्रहिणीं, पचनं, बॉईल् अँड पॅक्रिअंटिक् जूस्, २ रंजकम्, यकुत्प्रीहानौ, रसरंजनम्, सीक्रिशन्स् ऑफ दि लिव्हर अन्ड स्थ्रीन,

पूर्वपीठिका-वैद्य चैतन्य देसाई.

३ साधकम्, इत्थम् (असृक्), उत्साहः, हेमोग्छोबिन्, ४ आछोचकम्, अंतस्तारकः, रुपप्रहणम्, पिग्मेंट ऑफ रेटिना, ५ भ्राजकम्, त्वक्, त्वग्वर्णप्रकाशकम्, पिग्मेंट ऑफ एपिडर्मिस्,

कप्तश्चामायशस्थोऽन्नक्केदनं च ह्युरःस्थितः ।
हृदयादिरक्षणं जिव्हादिस्थो हि रसद्रावकः ॥ २९ ॥
शिरःस्थो द्रवरूपः स करोतीद्रियत्पणम् ।
स्निग्धत्वाचिक्कणत्वाच कुरूते संधिश्लेषणम् ॥ ३० ॥
श्वेतच्छायात्मकः स्निग्धः पिच्छिछो मधुरस्तथा ।
औदकैश्च गुणैर्युक्तो विकृतो छवणः स्मृतः ॥ ३१ ॥
रसे च छिसेक चैवासृजि श्वेतश्च पुद्गछैः ।
मांसास्थिकंडरास्नायुमेदःकाचाभकेषु च ॥ ३२ ॥

नाम स्थानम् कार्यम् पाश्चात्तनाम
१ क्केदकः, आमाशयः, अन्नक्केदनम्, गॅस्टिक म्यूकस् सीक्रिशन्स्,
२ अवलंबकः, उरः, हृदयाद्यवलंबनम्, सीरस फ्ल्युइड्,
३ बोधकः, जिव्हामूलकंठाः, अन्नद्रव्यदावणम्, म्यूकस सीक्रिशन् इन दि
माउथ्, फॅरिक्स, अन्ड
इसाफेगस्,
४ तर्पकः, शिरः, इंद्रियतर्पणम्, सेरिब्रोस्पायनल् फ्ल्युइड्,

पर्वाणि,

५ श्लेषकः,

दोषास्तिष्ठंति केवले शरीरे प्रतिपुद्गले ॥ ३३ ॥ अन्नद्रव्येषु तद्वच नारत्यदोषं च किंचन । अन्न वायुः प्राणदैः स्यात्पित्तं कैण्वैः स्थितं तथा ॥ ३४ ॥ श्लेष्मा मौलकस्नेहाभ्यां पिष्टकेन हि तिष्ठति ।

संधिदार्ट्यम्, सायनोव्हिआ.

टीका-वायुः प्राणदनाम्ना, (व्हिटॅमिन्स्) पित्तं कैण्वद्रव्यविशेषैः (एन्झाय्मिस्) कपस्तु मौलकनाम्ना (प्रोटीन्) द्रव्यविशेषेण, तथा स्नेहैश्व (फॅट्स्) पिष्टकेन, (स्टार्च) चेति द्रस्यते । चकारान्मधुररसं जलभूयिष्ठं च द्रव्यं श्लेष्मोत्पादकम् । लवणाम्लरसक्षारतीक्षणं च पित्तजनकम्, कटुति-क्तकषायं च वायुजनकमिति तंत्रोपदेशास्प्रसिद्धम् ।

दोषसिद्धांतः-

कविराज द्वारकानाथ (कलकत्ता) विरचितः

पित्तस्य निरूपणम्-प्रष्ठ ५४ पित्तं त तैजसं द्रव्यं सततं उष्णयोगतः । उपष्टंभक्रमेतस्य विद्यात् क्षितिजलादिकम् ॥ १ ॥ द्रवतेजोमयं द्रव्यं पित्तं हि द्रावकोपमम् । विभिन्नवर्णयोगी च विभिन्नमूर्तिमत्तथा ॥ २ ॥ द्विधा संजायते पित्तं शरीरे प्राणिनां यथा। किंचिन्मलखरूपेणापरं च खच्छरूपतः ॥ ३ ॥ पच्यमानात् सदा काये खोष्मणा रक्तधातुतः। आविर्भवति यत् पित्तम् मलरूपं तद्च्यते ॥ ४ ॥ अन्नस्य पच्यमानस्य विदग्धस्याम्छभावतः । आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छमुदीर्यते ॥ ५ ॥ तेजोभागातिरिक्तत्वात् द्रवांशपरिहीनतः। पच्यमानाशये जातं तत् स्वच्छमिति कथ्यते ॥ ६ ॥ पकामाशययोर्मध्यप्रदेशवार्तिना पुनः । देहधारकपित्तेन संभ्य तच निर्मलम् ॥ ७ ॥ पाचकाग्रिस्वरूपेण परिणम्य स्वतेजसा । देहोष्मणामशेषाणां करोति शक्तिवर्धनम् ॥ ८॥

कफनिरुपणम् पृष्ठ ६८—

--

कफः स्नेहाश्रयत्वेन जलीयं द्रव्यमुच्यते।

तस्यापि द्विविधोत्पत्तिर्विवियते यथाऋमम् ॥ १ ॥ आदौ पड्समप्यत्रं पाकोन्मुखं हि तेजसा । क्रेंदनकफसंयोगान्माधुर्यं भजते धृवम् ॥ २ ॥ तदा मधुरमावाच्च मुक्तद्रव्यात्तु तादृशात् । आमाशये कफस्तावत् फेनभूतः प्रजायते ॥ ३ ॥ एष एव कफः सार आमाशयगतः खळु । क्रेंदनश्रेष्मसंसर्गाद् याति तस्य सर्ह्रपताम् ॥ ४ ॥ स्वशक्त्या स्नेह्दानेन सिळळकर्मणा तथा । समप्राणां शरीराणामनुप्रहं करोति च ॥ ५ ॥ पच्यमानान्मळांशोऽपि निरेतीक्षुरसाद्यथा । तथाऽहाररसात् किष्टं धातुरसाच्च जायते ॥ ६ ॥ तच्च किष्टं कफो नाम प्रोक्तो रसमळोऽपि च । वायुना प्रेरितो ह्रोषः श्रेष्मस्थानं प्रधावति ॥ ७ ॥ गत्वाच तत्र देहस्य धारकश्रेष्मभिः सह । संगत्य तांश्च पुष्णाति नवंभोऽव्धिजळं यथा ॥ ८ ॥

त्रिदोषस्वरूपम्

ले. अनंत भास्कर कर्डिले आयुर्वेदविशारद

एम्. ए. बी. एस्. सी. नासिक।

दोषाणां पांचभौतित्वम्-अत्र जिज्ञास्य किं स्वरूपा इमे दोषाः, किं— किविकल्पना, उत गुणाः, अथ शक्तिरूपाः अथाहो कार्यानुमेयकारणखरूपाः, अथवा प्रत्यक्षस्य विषयाः पांचभौतिकाः पदार्था इति । अत्रोच्यते न खल्ल दोषाः किविकल्पना, नवा गुणाः, न शक्तिरूपाः, नापि कार्यानुमेयकारणस्वरूपाः, किंतु इंदियगोचराः पांचभौतिकपदार्था इति ।

दोषाः सर्वत्र द्रव्यगुणवृक्ता उक्ताः । यथा वायुः शद्भवान्, पित्तं द्रव-

मम्लं, कटु, पीतं, नीलं, ताम्रं, अच्छं, विश्वं च। कफो घनः, पिच्छिलः, अच्छः स-फेनो, मधुरश्च। गुणा अधिष्ठानमंतरेण न शक्ता अवस्थातुं। तस्मादोषा एतद्गु-णयुक्ताः पदार्था इति निश्चयं विना न विद्यते गतिः। अपि च दोषाणां शरीरे स्थानं, मानं, वृद्धिः, क्षयः, तेषां पूरणार्थं तत्समानगुणानां पदार्थानामुपयोग-उपदिष्ठो प्रथेषु, तस्मादपि न शक्यमन्यथाऽनुमातुम्।

वातः -'रुक्षःशीतो लघुः सूक्ष्मश्वलोऽथ विशदः खरः। विपरीतगुणै-र्द्रव्यैर्मारुतः संप्रशाम्यति '॥ च. सू. ॥ वातखरूपस्य तत्वावग्रहणं न सुकरम् । किं तु अतीव कठिनम् । यतो वायुः रवरूपतो नेत्रेंद्रियप्रहणाऽक्षमः प्राक्त-तोंऽपि । तेन हि शरीरबहिः प्रांतेऽपि तस्य गुणावबोधः प्रयासेन साधन-विशेषैरेव भवति, किमुत नयनपथात् सुगूढे शरीरांतभीगे । शरीरे वायोः कार्यं बहुविधं वर्णितं, येन तस्य खरूपज्ञानं गहनतरं जातम् । चरक सुश्रुत-वाग्भटानां सर्वेषामि ऐकमत्यं यद्वायुः पकाशये आहाररसात्प्रादुर्भवति । तत्र चास्थितः शेषाणां वातस्थानानां पूरणं करोति । पाश्चात्यशारीरशास्त्रमतेन तु विशेषकार्यकरा वायवः १ अक्षः, [प्राणः, ऑक्सिजन्] तप्तांगारजो वायुः, (कर्बद्विप्राणिलः, –कार्बन् डाय् ऑक्साइड्) नवसादरआर्द्रचूर्ण-काभ्यां जायमानो वायुः, (अमोनिया) इत्यादयो ये भिन्नप्रकारास्संति । तथा आंत्रयोरिप जंतुक्रियया बहुप्रकारा वायव उद्भाव्यंते, (बॅक्टीरिअल ॲक्शन्) पते सर्वेऽपि वायवो आयुर्वेदे वायुराद्वाभिहिताः । तथा शरीरस्थेषु अणुस्रोतस्सु (सेल्) वायुर्विद्यते । सर्वाणि अणुस्रोतांसि श्वासोच्छ्वासाक्रियामभिनिर्वर्तयंति । रक्तेऽपि प्राणो. (ऑक्सिजन्) व्यानश्च, (ऑक्सिजन् तथा कार्बन्डाय् ऑक्साइड्) विद्येते एव । तस्मादियं व्यवस्था कल्प्येत-मुख्यः प्राणः श्वासेन बाह्यतो अभिवर्तमानात् वातात् शोष्यमाणो ऑक्सिजनः। स तु पंचधा आत्मानं अवस्थाप्य, आहाररसाजातेन वायुना बलं लब्ध्वा प्राणादिवायूनां स्थानानि यथावत् सुषिराणि कृत्वा, तानि भिन्नभिन्नवायुनिभित्तानि कार्याणि संपादयति ।

पूर्वपीठिका-अनंत भास्कर कर्डिले.

२ उदानः--फुप्फुसयोरधस्थाने वर्तमानो वायुः । प्राचीनानामपि एतदेव-मतम् ' उदानवायोराधारः फुप्फुसः प्रोच्यते बुधैः ' । फुप्फुसोदरविभाजकं पटलं (डायाफ्राम्) उदानवायोः प्रवर्तकं उच्येत, तदाश्रया हि प्रागुक्ताः क्रियाः ।

३ समानः-आमपकाशयचरो वायुः।

४ टयानः—सर्वदेहचरो वायुः हृदयाद्धमनीः प्रपद्यमानः प्राण एव
 व्यानः। अथवा प्राणाज्ञायमानो तप्तांगारजो वायुः (कार्वन् डाय् ऑक्साइड्)।

५ अपान:-पकाशये जायमानो वायुः।

पित्तम्--पित्तं अम्लं सरं कटु च। शरीरे ये केऽपि भावा एतद्रस-विशिष्टास्ते सर्वे पित्तसंज्ञां प्राप्नुवंति।

प्रत्यक्षशारीरीयं मतम् – प्रथमं अम्लिपत्तं आमाशये अम्लिभ्तेन अन्नेन उदीयते। तत् स्क्ष्मांत्रं गत्वा ततो प्रहणीस्थं पित्तं (स्यूकस् एंट्रिकस्) उदीरयित। तच्च पुनः प्रहणीस्थं पित्तं भूरिप्रमाणेन उदीरयित। अनंतरं तैरनं पाच्यते। तस्य च सारात् किद्वं विभज्यते। तस्माद् प्रहणीस्थं पित्तं पाचक-पित्तानां श्रेष्ठम्, इतरिपत्तोदीरणशक्तिमत्वात्। पाश्चात्यशरीरप्रिक्रियायां ये च पाचका रसा विशेषद्रवरूपा अम्लकटुरसास्तीक्ष्णाश्च तेषां सर्वेषां समुच्चयो आयुर्वेदे पित्तराद्धेन अभिधीयते। जठरस्थो अम्लोरसः क्लोमस्था रसः (पॅक्रियाटिक् जूस्) यक्तरस्थं पित्तं पीतं, प्रहणीस्थं पित्तं, एते सर्वे रसाः पाचकपित्तं उच्यंते आयुर्वेदे। एतेषां क्रिया यद्यपि अन्योन्येभ्यः किंचित् भिन्नास्तथापि तेषां भूयस्तरं साम्यम् अम्लकटुरसयुक्तैः पदार्थैः। सर्वेऽिप ते उद्यार्थेते, तस्मात्तेषां समाहारः पित्तसंज्ञया क्रियते। सर्वेऽिप ते उद्यार्थेते।

२ यकृत्ष्रीहानौ रंजकिपत्तस्य—स्थानम् । तस्यं पित्तं पीतं ताम्रं नीळं च । तेन रंजितो रसो रक्तलं याति । तस्मात्तत् रंजकं उच्यते । ३ **हृदयस्थं पित्तं साधकम्**—हृदयशद्वोऽत्र हृदयसमीपप्रदेशवाची प्राह्यः । हृदयस्थं च <u>पित्तं यकृत्स्थं पित्तमेव प्राह्यम्</u>।

४ नेत्रयोः पित्तं आलोचकं — उच्यते। तेन नेत्रे खच्छे आलोचनसमर्थे च भवतः । प्रत्यक्षश्चारीरीयं मतम् – नेत्रयोद्दीं प्रथी स्तः। (दि लॅक्सीमल १ ग्लॅड्स्) । याभ्यां सततं नेत्रोदकं स्रवति, येन नेत्रे तेजोयुक्ते भवतः । तत् क्षारयुक्तं द्रवं, तदेव नेत्रस्थं पित्तम् ।

५ त्वक्स्यं पित्तम्—यस्विच पित्तं तत् भ्राजकं उच्यते । त्वचि हि स्क्ष्मरसवाहिन्यस्संति । ताः पित्तरक्तनापूर्यमाणास्सत्यो त्वचं पित्तस्थानमापाद-येयुः । अथवा त्वक्स्थेषु अणुस्रोतस्सु (सेळस्) वर्तमानः पित्तांशो भ्राजक-पित्तम् । पित्तस्य प्रमाणं पंच अंजळयः—अशीति तोळकप्रमाणं । पाश्चात्यशारीर-प्रक्रियायां दैनंदिनपीतपित्तप्रमाणं (५००--१००० घनसेंटिमीटराणि) चत्वारिशत्तोळकादशीतितोळकपर्यंतं उक्तम् । इतरेषां पित्तानां प्रमाणं न विशेषण निश्चितम् ।

ित्तस्य रक्तमलत्वम्ः—िपत्तं रक्तस्य मल उक्त आयुर्वेदे । तस्य एष अर्थे। यत् रक्तात्पित्तं जायते तत्तु न शरीरधातुवत् । पाश्चात्यशारीरप्रिक्रियायां पीतं पित्तं [बाईल्] रक्तिस्थितताम्राणुविकारः । तथा इतराणि पित्तानि [गॅस्ट्रिक् जूस् इत्यादीनि] तेषु तेषु स्थानेषु रक्तादेव जायंते ।

कुष:--श्रेष्मा गुरुः स्निग्धः शीतो मृदुर्मधुरः स्थिरः पिच्छिलश्च । स अन्नस्य पाचनकाले प्रथममामाशयादुदीर्यते । स शरीरे संधिसंश्लेषणं, स्नेहनं, रोपणम्, पुरणम्, बलं, स्थैर्यं, उदककर्म च करोति । तस्य प्रमाणं चरके-णोक्तं षट् श्लेष्मणोंऽजलय इति । तस्य स्थानानि प्रोक्तानि चरकेण—उरः, शिरो, प्रीवा, पर्वाणि, आमाशयो, मेदश्च । तस्मात् कफः पांचभौतिकः पदार्थं इति निःशंकमनुमीयेत । स अन्नपाचनकाले प्रथमं प्रादुर्भवति आमाशये । अन्नेन च मिलित्वा, अन्नस्य मधुरपाकेन अधिकं कफं जनयित्वा रसेनोपगग्य,

इतराणि आत्मनः स्थानानि गत्वा, तत्रतत्रस्थाः क्रियाः करोति । कफः अन्न-संघातं द्रवीकरोति तस्मात् स द्रवः ।

कफर्बरूपं-पाश्चात्यशारीरप्रिक्रया-रसयुक्तरक्तात् क्विग्धः पिच्छिलोऽच्लो द्वः पदार्थ उत्पद्यते । स वातयुक्तरक्तविहनीभ्यः सिराभ्यो
निस्सरित । स एव कफः । रक्ते त्रयः पदार्थाः संति । १ द्रवः
(ग्राइमा) २ रक्ताणवो (रेड्ब्लड्कापम्कल्स्) ३ श्वेताणवः
(व्हाइट् कापम्कल्स्) इति । तेषां अच्छो द्वो यं रस इति वयं आचक्षमहे ।
तस्माद्रवादच्छः कफो (लिंफ) जायते। स हि सर्वावयवानां पोषणे नियुक्तः।
स आयुर्वेदे वर्णिताभिः श्वेतसिराभिरुद्यते [लिंफिटिक्स्] । कफः [लिंफ]
कोष्ठस्थाभिः कफवाहिनीभि उद्यमानः श्वेतो लक्ष्यते [लिंकिटल्ल्स्] । अपि च
तस्य रसस्य [लिंफ] विशेषोत्पतिर्मधुरल्वणाम्लरसैश्व । तथा च तस्य
विशिष्टं गुरुत्वं १०१५। जलस्य यदि १ गुरुत्वं, तिर्हं तस्य १०१५। पित्तस्य
तु [अम्लिपत्तस्य १:००३—१:००४। तस्मादार्युवेदे वर्णितः कफः सर्वदेहसंचारी लिंफ एव तथा च रक्तगतश्वेताणवः।

१ आमायस्थः कफः -प्रत्यक्षशारीरिक्रयायां--मुखं तथा च अनवाहिनिल्निकायां तथा च श्वासमार्गे उपरितने भागे लाला, अन्यश्च पिच्छिलः
पदार्थः स्रवित तत्तत्पदार्थोत्पादकेम्यो प्रंथिम्यः । लालेत्पादनार्थं जिन्हाया
अधस्तात् गल्लकर्णयोश्वांतराले प्रंथयः संति—सलायन्हरीग्लँड्स्—थेम्यो लालास्रवित । लाला एव क्रेदकः कफः, सा अन्नं मधुरीकरोति आमाशये । लाला
च मंदवीर्या, लवणान्विता, आमाशयस्थअम्ल-पित्तशामिका, अतः कफप्रकार
एवोच्यते । कंठस्था इतर प्रंथयोऽपि आत्मनः पिच्छिलरसेन अन्नसंघातं
स्रोहयुतं कुर्वति स च रसः कफखरूपः । लाला आमाशये अनस्थं पिष्टमयं
द्रव्यं (स्टार्च) मधुरं करोति । तथा च आमाशयेऽपि सांद्रः खच्छो घनः
पदार्थ उत्पद्यते अन्नपाचनकालमंतरेण । एवं लाला, तथा अनं आमाशये
मधुरीभवती, तथाच आमाशयोद्भवः सांद्रः पदार्थ आमाशयस्थः कफ उच्येत ।

२ उरस्थः —उरिस स्थितः कफिलकधारणं, अन्नर्वार्येण च हृदयावलंबनं करोति, स अवलंबकः श्रेष्मा । उरिस फुप्तुसयोश्च श्रेष्मग्रंथयः (म्यूकस्ग्लॅंड्स्) संति, येम्यः श्रेष्मा उत्पद्यते । तथा च हृदयपरीतो द्रवपदार्थो (पेरिकार्डियाक् पलुइड्) विद्यते एव, तेन हृदयचालने साहाय्यं जायते, स द्रवपदार्थः कफ (लिफ) एव । अथवा यकृत्स्थो मधुरः पदार्थः (ग्लाय्कोजन) कफस्य आधार उच्यते, स अन्नरसादुत्पद्यते, यकृति च संगृद्यते । यदा रक्ते (रक्तरूपरसे) मधुरः पदार्थो अनशनात् क्षीयते, तदा यकृत्स्थात् मधुरपदार्थात् स रक्तेन प्राप्यते । एवं र्सस्थकफ्त्य सोऽवलंबक् उच्यते । अथवा अन्नस्थिपष्टमयद्वयाद्वयद्यमाना शर्करा (ग्लूकोज्) यया हृदयं चाल्यते सा अवलंबकः कफ उच्येत ।

३ जिन्हाम् छकंठस्थः कफो रसानां बोधनाद्धोधकः। जिन्हाया मूळे कफोत्पादकग्रंथयो विद्यंते । यः पदार्थस्तद्रसे विद्रान्यते तस्य एव रुचिज्ञानं भवति । तस्मात् जिन्हाम् छस् क्मिछिदेषु उत्पद्यमानो जलसदशः पदार्थ एव कंठस्थः कफो अवबोधक उच्येत ।

श शिरस्थः कफस्तर्पकः —मिस्तिष्कस्य मध्ये कफसदशः पदार्थो विद्यते, (सेरिब्रोस्पायनल् फ्ल्युइड्) तिस्मिन् क्षारा द्राक्षशर्करा च (ग्लूकोज्) विद्यते । तेन मिस्तिष्कः सदा आर्द्रो भवति । स मिस्तिष्कस्य आधार उक्तः पाश्चात्यशारीरे । स पदार्थो मिस्तिष्के सर्वशरीरगामिकफात् प्रादुर्भवति, मिस्तिष्कस्य अधस्तात्तिष्ठंतीभिः सिराभिरपनीयते । स एव तर्पकः कफ् उच्येत । नेत्रगोलकयोरतस्तथाकर्णयोश्चांतोच्छपिच्छिलः पदार्थो विद्यते एव सोऽपि तर्पकः कफः ।

५ संधिस्थः कफः – अस्थितं घयः श्रेष्मणः स्थानम् । अस्थितं घिषु यः कफो वर्तते स यंत्रसं घिषु तैल्मी वोपयुक्तः, तेन हि संघिषु घर्षणं न भवति । अस्थीनि अनायासेन चलंति । संधिस्थः कफः श्रेषक उच्यते, तेन अस्थीनि संघिषु आश्रिष्टानि भवंति ।

क्रफ्मूलम् - कफोऽन्तरसाजायते । स रसस्य मलः । <u>रसः ब्लड्घास्मा</u>। क्र<u>फः लिंफ् अँड</u> अदर सीक्रिशन्स । चरकमतेन ९६ तोलको विद्यते कफः।

पित्तधातुसंबंधः — तत्र असृक्खेदयोः पित्तम् 'रक्ते खेदे च स-क्षाराः पदार्थास्संति तथा आम्ला अपि, व्यायामात् रक्ते लॅक्टिक् ऑसिड् जायते, तथा भोजनोत्तरं पित्तप्रकोपे रक्ते अम्लत्वं दृश्यते । 'रक्तस्थितरक्ताणूनां पीतिपित्तेन संबंधो वर्तत एव । रक्तेन शरीरे औण्ण्यं रक्ष्यते । रक्तात् भिन्नभिन्न-पित्तानि जायंते । अतः रक्तं पित्तस्थानम् ।

कप्रधातुमंबंधः — शेषेषु धातुषु श्लेष्मा रसमांसमेदमज्जशुक्रइत्येषां मध्ये यो मधुरः स्निग्धः शीतो अंशो विद्यते स कप्रखरूपः । शुद्रकप्पष्टधा मांसादीनां वृद्धिः । कप्पक्षयात् क्षयः । दुष्टकपादेते धातवो दूष्यंते । टालाखरूपानपाचकः कपो दोषरुपः । अनस्थिपष्टद्रव्यादुत्पद्यमानं मधुरं द्रव्यं अन्यश्च पिच्छिलोंऽशो धातुरूपः कप इति । (पृष्ठ १-३०)

आयुर्वेदे विज्ञानम् । पंडितप्रकांड लक्ष्मीरामस्वामी भिषगाचार्य (जयपूर)

इत्येतैर्मद्रराजपुरशासनाधिकारिस्थापिताया आयुर्वेदशास्त्रे वास्तविकता-संशोधनसमीत्याः प्रस्तावोद्देश्यनिमित्तं प्रदत्तानि उत्तराणि 'आयुर्वेदविज्ञान ' मिति पृथक् संमुद्य प्रकाशितानि संवत् १९८३ । तेषु त्रिदोषविषयमधि-कृत्यागतो विषयः-(४) पृष्ठ ३ '' किंचायुर्वेदे य इमे व्यापकाः सिद्धांताः स्थिरी-कृताः संति, तेऽपि सुस्पष्टमिदं साधयंति यदेतेऽत्रधानपूर्वकं चिरकालायातप्रयो-गानुभवद्वारेव स्थिरीभूताः संति । ये एतावत्कालं नवीनसंस्कारं विनैव यथायथं कार्येषु परिणमिता अद्याप्यव्यभिचरितं प्रदर्शयंति फलम् । एवं विधानां व्याप-कसिद्धांतानां स्थिरीकरणं न साधारणपरिज्ञानस्य कार्यं भवतुमर्हति । तेषामेव सिद्धांतानां मूलभूतः सिद्धांतः सेयं त्रिद्शेषपद्धतिनीम । या किल शारीरे संरक्षिणी शक्तिविधातिनीशक्तिश्चोररीक्रियते । सा हि वस्तुतोऽस्माकं सिद्धां- तानुसारं वातिपत्तकफानां प्राकृती वैकृती च गतिरूपाऽवस्थाऽस्ति । वातिपत्त-कफाश्चापि शरीरे सूक्ष्मस्थूळरूपेण द्विविधा अभ्युपेयंते । तेषु सूक्ष्मा वातादयः केवळं कार्यानुमेया एव । स्थूळा वातादयस्तु अनेकरूपेषु अनेककार्याणि कुर्वतो विळोक्यंते । अत एव शरीरस्य खस्थदशायां रुग्णदशायां वा प्राकृतवैकृतमेदेन वातादीनां संबंध एव निश्चीयते । यदाश्रयेण आयुर्वेदस्य जीवनसर्वस्य महत्वं चावितिष्ठते ।

द्वितीयप्रश्नस्य (अ)—भवदीयवैद्यकतंत्रमनुरुध्य व्याधिहेतुत्वे सिद्धांतः सिद्धांता वा के नाम विद्यंते ? इत्याद्यात्मकस्य-उत्तरे—'' आभ्यंतरो हेतुरिप बहुविधः।

शरीरे यानि द्रव्याणि धातुरूपाणि, दोषरूपाणि, मलरूपाणि, प्रसाद-रूपाणि, आश्रयीरूपाणि, आश्रयरूपाणि, अंगोपांगादिमेदेन अवयवभेदेन विद्यमानानि संति, (इत्यत्र दोषाणां द्रव्यत्वं प्रतिपादितम् दातारः) तथा तत्र शारीरभावा रसरक्तमांसवसास्थ्यादयो धातवः, शिराधमनीस्नायुनाडीकंडरादयोप-धातवः, फुफुसहृदययकृत् श्लीहांत्रवृक्कादीनि नानाविधानि यंत्राणि, कलाः, आरायाः, विण्मूत्रस्वेदादयो मला दोषाश्च'। (इत्यत्र दोषा भावरूपेण व्याख्याता दातारः) पृष्ठ ५-६ । तथैव ' क्रिम्यादीनां रोगोत्पत्तिकारणत्वे खीयसिद्धां-तसंक्षेपः-यद्यपि प्रतिरोगं भिनाकाराः क्रिमयः कारणमिति प्रत्यक्षमप्रस्थते इत्यतः किमीणामेव कारणत्वं स्यादिति विचार्यते तथापि तत्तदाकारक्तमि-व्यक्तीनां केषुचिदेव कुष्ठादिषु रागविशेषेषु उत्पादकत्वं तदन्यत्र तु संक्रामकत्व-मेव, उत्पादकत्वं तु तत्तिकिमिविशेषशरीरारंभकाणामभिवर्द्धकाणां पोषकाणां वायुजलदेशकालानामेव । यतो वायुविशेषो जलविशेषश्च आहारत्वेन, देशवि-शेषश्च विहारत्वेन तत्तिकिमीणामारंभको वर्द्धकः पोषकश्च भवति सामान्यात्, इत्यतस्तदनुकुलवायुजलादय एव कारणानि, ते च तत्वतो विविच्यमाना वात-पित्तक्षाः । यतस्तदानुकूल्यमेव लोके वा शरीरे वा सर्वेषां जंगमोद्भिदादीनां क्रिमीणामपि उत्पत्याभिवृध्योः कारणम् , तत्यातिकूल्यं च विघातकारणमिति

सर्वत्र वातिपत्तकमसंबंधो न व्यभिचरतीति सिद्धांतः '(इस्पत्र जलाग्निवायवो लोके त एव शरीरे वातिपत्तकमा इति प्रातिपादितं इति जलाग्निवायुनां यथा द्रव्यत्वं तथैव वातिपत्तकमानामिप विद्यते एव दातारः) पृष्ठ ११ ।

श्री. पं. केशव लक्ष्मण दप्तरी बी. ए. एल्. एल्. बी. (नागपूर)

(प्रख्याता ज्योतिर्विदा धर्मशास्त्रचणाः समपद्धतिचिकित्सकाश्च) एतेरिस्मिन्चिषये ये च व्यलेखि निबंधास्तत्सारः-

असाकमयं तर्कः --१ जीवशक्तिः शारीरप्रतिजीवाणौ विद्यते, सा च त्रिप्रकारा प्रकटिता भवति । गतिं वा ज्ञानं वा या उत्पादयति इयमेव प्राक्त-तवाताभिधा । उष्णतोत्पादिनी द्वितीया इयमेव पित्तमिति वर्णिता । शरीर-घटका इयमेव कफसंज्ञिता । इयं त्रिप्रकारा शक्तिरमूर्ता विद्यते । अस्याः शक्तेः क्रियाया यद्यदुत्पद्यते तत्तदपि वातपित्तकफनाम्ना संकीत्र्यते आयुर्वेदे । जीव-शक्तिः कदापि न विकृता भवति । तथापि साधनसामुग्न्यारभावात्तस्याः कार्यं विकृतं भवति । कस्यास्सामिग्ऱ्यारभावाजीवशक्तेः कार्यमभूद्विकृतमिति निश्चित्य तस्याः पूरणमेव चिकित्सा । एतस्याश्चिकित्सायाः कृते कतिविधेऽयं सामुग्री-भवत्युपयुक्ता, तस्याः प्रत्येकस्यारभावाजीवराक्तेः कार्यं कथं कथं विकृतं भवतीति निश्चेतव्यम् । एकस्या एकस्याः सामुग्रेरभावाद्यानि संभवंति रोगचिन्हानि तान्येव वातादिदोषाणां प्रत्यकरो। लक्षणानि । एतेषामपि दोषाणां पुनरिप दत्तम-भिधानमायुर्वेदाविद्भिर्वातिपत्तिकका इति । इत्येवं प्रकारेण वातिपत्तिककशब्दा भिन्नभिन्नार्थेन प्रयुक्ता वर्तते । तानर्थाननभिसमिक्ष्य भिन्नार्थप्रयुक्ताः शब्दा एकार्थत्वेनैव प्रयुक्ता इति च मत्वा कुर्वति विपर्यासं त्रिदोषकल्पनायाः केचन । त्रिदोषास्सर्वदेहचरा इति यदा वक्ति आयुर्वेदस्तदा त्रिप्रकरा इयं जीवशक्तिरिख-र्थोऽभिष्रेतोऽस्ति । वातिपत्तकमा अस्मिनस्थिन वा अस्मिनस्मि-न्काले तिष्ठंति इत्यादि आयुर्वेदवचनं यत्रागच्छति, तदा तस्यास्त्रिप्रकारकायाः शक्तेः प्राकृतं कार्यं बहुधा विकृतमभवदिति ज्ञापकोऽर्थो वा विद्यते तस्य वचनस्य । यत्र दोषाणां वर्तते पदार्थरूपेण वर्णनं तत्र तस्या जीवशक्ते: प्राकृतं वा वैकृतं कार्यं निर्दिष्टमिति ज्ञेयम्। इत्येवं तर्कगम्यं दोषस्वरूपम्। तत्तु कथं वा भवतु, तस्य चिकित्सायां नैव कोऽपि परिणामो भवति । सामान्यानां रोगचिन्हानां वर्गीकरणेन प्रतिवर्गं दोषमिति विकल्प्य च तस्मिन् सामान्यं तथैव निश्चित्तमौषधं प्रकल्प्यमित्येव चिकित्साशास्त्रस्य साध्यमिति । आयुर्वेद अंक ४ वर्ष १७ आषाढ शके १८५२ ।

डॉ. सुरेंद्रनाथदास गुप्त एम्. ए. पी. एच्. डी. प्रिन्सिपॉल संस्कृत कॉलेज (कलकत्ता)

स्वीये 'हिस्टरी ऑफ इंडियन फिलॉसफी ' आंग्लभाषामये निबंधे अस्मिन्त्रिषये एवं लिखितवंतः

शरीरधर्मस्तु संक्षेपाद्विविधः येन शरीरं दुष्टं (मिलनं) भवति, अन्येन च शरीरधारणं भवति (प्रसादः) ॥ चरक शारीरस्थान अ. ६ ॥ वातिपत्तकफारत शरीरस्य सर्वप्रकारकाया विकृतेर्मूलं कारणं अत एव ते दोष-संज्ञया संज्ञिताः । तथापि इमे सर्वेऽपि यावत्समानावस्थितास्तावन्न ते शरीरविकृतिं जनयंति न वा शरीरदौर्बल्यं संपादयंति न वा रोगोत्पादका भवंति । अत एव ते तावत् धातवो वा रारीरघटका वा इत्युच्यंते । मल्धातवो वा प्रसादधातवो वा यदा योग्य प्रमाणेन वर्तते तदा अन्योन्यसहकरेण रारीरधारणं कुर्वति । यदा शरीरसंवर्धकानि खाद्यपेयानि आमाशये पचनेंद्रियेरम्रिना संयुज्यंते तदा उण्णतायाः प्रभावेण पचनं नयंति । पाचितानां खाद्यपेयानां सारभागो रसो (कॅाइल्) निष्पद्यते । अन्यच देहे समरसतामगच्छन् भागः किंहु वा मलो वेति भण्यते । तस्मान्किद्वात् वातिपत्तकपास्तथा मूत्रमलादिरिदियमलो निष्पन्नो भवति । अन्नस्याञ्चद्धोभागो मूत्रमलौ, रसस्याञ्चद्धोभागः पित्तं (बॉइल्) इत्यादि । इत्यस्य अयमर्थी लक्ष्यते यदिमे अन्यपदार्थवत् शरीर-स्याम्यंतराभ्यो प्रंथिभ्यः स्रवमाणा द्रवपदार्था (सीक्रिशन्) वर्तते । ते यदा योग्यप्रमाणेन स्रवमाणास्तदा ते शरीरधारणकर्माणे उपयुज्यते । परं ते यदा समप्रमाणापेक्षया हीना वाप्यधिका वा सबमाणा भवेयुस्तदा शरीराविकृति वा शरीरनाशं वा आपादयंति । सर्वेभ्यस्स्रवद्भ्यः पदार्थेभ्यो मल्रूपद्रवेभ्यो — वातिपत्तकफास्तु मूलत एवात्यंतमुपयुक्ताः पदार्था (वस्तूनि) निगद्यंते ।

शरीरं रसादिश्चक्रांतसप्तधात् भिर्घटितमिति । यदस्माभिरद्यतेऽन्नं तच्छ-रीरघातुपोषणायोपयुक्तं भवति । तथापि भक्षितं सर्वमप्यन्नं शरीरवर्धनायोपयुक्तं न भवति । तस्मात्किमपि शरीरानुपयुक्तं शिष्टं भवत्येव । अत्राऽयं प्रश्नस्तम्-त्पनो भवति यद्वस्त शरीरं धारयति वा नाशयति वा तिकमस्ति ? धातूनां योग्यप्रमाणमेव शरीरप्रकृतिः । तथापि इदं योग्यं प्रमाणं तदैव स्रस्थितं भवेत् यदा प्रतिधातं योग्यांशेन पोषको भागो यदा प्राप्येत । स हीनो वाप्यधिको वा नैव युक्तः । सोऽयं योग्योंऽशः खाद्यपेयानां उपयोगेऽवलंबितो वर्तते । अन्यच एतदपि आवश्यकं यद्भीनताया वा वृद्धेः कारणानां योग्यं कार्यं भाव्यम्। तदित्थं यत्तेषां घटकानां तथा सर्वशरीरघटकानां योग्यप्रमाणस्यास्तित्वे तेषामुपयोगः । अतो निरुपयोगिनां पदार्थानां प्रमाणतो न्यूनत्वं वा वृद्धि-र्भातुसाम्यावस्थाया विकृत्युत्पादकस्सातत्येनानुषंगिकः पदार्थ एव । अतएव तेषां शरीरानुपयुक्तपदार्थानां न्यूनता वा वृद्धिः सर्वधातुवैषम्यस्य कारणमिति शास्त्रे प्रतिपादितम् । यावत्कालपर्यंतं तेषां पदार्थानां नैव न्यनता वा वृद्धि-स्तावत्कालपर्यंतं ते निरुपयोगिनः पदार्थाः शरीरकार्यकराः प्रवर्तका एव । अतस्त धातव इति ज्ञातुं योग्यमेव। यदा तेषां मध्ये एकस्य वा अधिकानां भवति प्रमाणतो न्यूनता वा वृद्धिस्तदा ते शरीरधारणकार्यविरोधिनो भवंति, तदा ते दोषराद्वेनाऽभिसंज्ञिता भवंति । रारीरानुपयोगिनः पदार्थास्तु नैकरोो विद्यंते । तथापि तेषांमध्ये वातिपत्तकपाः शरीरवृद्धिशरीरनाशयोवी आरोग्यरोगाणां वा मूळे वर्तमाना अतिशयेन महत्ववंतो विद्यंते ।

अत्र तावदेको विद्यते महान् प्रश्नः, तत्रावधानमावस्यकम्। मलशद्धस्तु कुत्रचित् दूषियतारः प्रवर्तका इति, कुत्रचित् अशुद्धपदार्थास्तथा कुत्रचित् निरुपयोगिपदार्था इति प्रथेषु उपयुक्ताः। अतो मलशद्धार्थे भ्रमोत्पत्तिर्भवेत्। मलशद्धस्य संबंधो रागोत्पत्तिरित्यत्र, तथा किदृशद्धस्य निरुपयोगिपदार्थो, प्रंथिभ्यश्चयनमाना द्रवपदार्था इत्यथींऽपि विद्यते । ते यदा एवं प्रमाणाः संतो रोगोत्पादका भवंति तदा ते मलशद्धिता भवंति, मलशद्धितास्ते यावत्प्रमाणा-विश्वतास्ते रोगानुत्पादकास्तावत्प्रमाणाविश्वतास्ते 'मलधातु ' शद्धेनाभिहिता भवंति। नैव ते तदा मलाः । चरके तु (सूत्रस्थान अ. २८ श्लोक ३) संजातपचनादनात्सारं किष्टं चाभिनिर्वर्तते—(किष्टं—ग्रंथिभ्यश्चवमाना द्रवपदार्थाः) अस्मात्किद्दात् स्वेदो, मलमूत्रे, वातपित्तश्लेष्माणोऽत्पद्यंते । मला अपि योग्यप्रमाणाविश्वतास्साम्यावश्वास्थिता सप्तधातव इव शरीरधारणात् धातव एवोच्यंते इत्युक्तम् ।

किइराद्वस्य सत्ये।ऽर्थः क इति निश्चेतं दुष्करमेव । तथापि तस्याऽ-र्थस्त—अन्नरसस्य पक्करस इव न पको भागः । रक्तमिव न पको भागो वा सप्तधातुषु अपको भागः । किंवा अन्नरसात् रारीरपोषकभागस्य रोषणेन पश्चादुर्वरितोऽराद्धो भागः । अपके भागे संगतास्तत् तत् धातुभ्योऽत्सृष्टा द्रवपदार्थाः ये सर्वथा नैव पक्काः । किइराद्धस्य धातुमला वा धात्नामग्रुद्ध-पदार्थाः । इमे धातुभिः परित्यक्ताः पदार्थाः आंतरग्रंथिभ्यः उत्मृज्यमानाः— पदार्थाः रारीरस्य विधायकराक्तेर्वा विनाशकराक्तेर्वा कारणानि विद्यंते ।

अत्र एवं प्रश्नोत्पित्तर्भवेत्—वातिपत्तकपाः कि स्वरूपाः पदार्था ? वा केवछं काल्पिनका वा ? येषामिस्तित्वं विनैव बहूनां छक्षणानां ते चिन्हानि ? इति । काल्पिनकानि छक्षणानां संकेतिचिन्हानि इत्यस्यार्थस्य प्रहणे विद्यंते बहवः प्रस्थवायाः । संति एतादृशानि वचनानि बहूनि येषु दोषाणां वर्णनं - ग्रंथिभ्य-स्म्रवमाणा द्रवपदार्था-इति विद्यते । तेषां समप्रमाणात् शरीरधारणं शरीरोत्पादो भवति, विषमप्रमाणाद्रोगोत्पादस्तथा शरीरनाशो भवति । तथा तेषां विवक्षितो वर्णः, तेषां दृश्यं खरूपं विद्यते तेषां नियतानि स्थानानि, तेषु स्थानेषु तेषां संचयो भवति इत्यादिकं वर्तते, येन वर्णनेन ते दोषाः काल्पिनकास्तथा भिन्नानां छक्षणानां समावेशकानि संकेतिचन्हानि विद्यंते इत्ययमर्थो नैव सुत्रां संगच्छते ।

अथ च दोषगुणानां संख्यासंबंधनाऽपि प्रामुख्येनेदमवगंतुमावश्यकं यत् एकदोषस्य प्रकोप इस्रनेन तस्य दोषस्य सर्वेषामेव गुणानां पूर्णांशेन च प्रकटनं भवतीति नैव । दोषाणां एकस्य द्वयोवी बहुनां वा सर्वेषामि गुणानां प्रकटनं भवेद्वा नैव भवेदित्यर्थोऽपि दोषप्रकोपराद्वेनागच्छेत् । यथा वातस्य प्रकुपितस्य-रूक्षलघुचलबहुशीघशीतवातगुणेषु मध्ये शीतगुणस्यापि वृद्धिर्भवेदन्येषां गुणानां नैव वा वृद्धिर्भवेत् । ते गुणास्तु तथैवावस्थिता वा भवेयुः । एवं वातगुणेषु मध्ये एकस्य द्वयोर्वा बहूनां वा सर्वेषां यथासंभवतो निदानतश्च वृद्धिर्भवेद्दानैव भवेत् । कदाचिदेवमेवापि भवेत् प्रकोपावस्थायां दोषगुणेषु मध्ये केचन गुणा वृद्धा वा केचन न्यूना वापि भवेयुः । इत्येनन एवं निर्गिलितोऽर्थी भवति, दोषो नाम प्रंथिभ्यः प्रस्नवमाणो द्रवपदार्थः, तथा भिन्नभिन्नगुणयुक्तानां स्रवमाणानां द्रवपदार्थानां मिश्रणं, (दोषः) विशेषतो पित्तकफौ एकस्या एव प्रंथेस्सकाशात्स्रवमाणौ द्रवपदार्थौ इत्यपेक्षया अनेके-भ्यो प्रंथिभ्यश्चयवमानद्रवद्रव्याणां समुदाय इत्यमिज्ञानं समुचितमिति । अयं च द्रवद्रव्यसमुदायो भिन्नभिन्नगुणयुक्तोऽपि सहकारितया निरुग्णावस्थायां एकया एव पद्धत्या करोति कार्यम् । रुग्णावस्थायां तु यदा प्रकोपावस्था भवति तदा दोषघटकग्रंथिभ्यस्स्रवमाणानां द्रवाणां वैषम्येणाभिनिष्पत्तिर्भवति । केचन द्रवपदार्था न्यूनोत्सृष्टा वा अधिकोत्सृष्टा वा नैवोसृष्टा वा भवेयुः । आयुर्वेद वर्ष २० अंक ४ आषाढ छु. १५ शके १८५५ श्री. दा. भा. पटवर्धन इत्येतैर्महाराष्ट्रभाषायामनुवादितस्य निबंधस्य गैर्वाण्या सारोद्धारः।

डॉ. के. एस्. ह्यसकर एम्. ए., एम्. डी., डी. पी. एच्. मुंबई.

(इस्येतैः पैठणग्रामीयवैद्यसंमेळनावासरे ' आयुर्वेदोन्नते मार्गा ' इत्यस्मिन्विषये यदकारि भाषणं तस्मिन् त्रिदोषविषयमुद्दिश्याऽधोळिखिता

विचाराः प्रकटीकृताः)

'केचन आयुर्वेदवैद्यधूरिणाः खां कूपमंडूकवृत्तिं त्यक्वा आधु-निकराास्त्रेभ्योऽपि खीयशास्त्रेण समानं यितकिचिदपि प्राह्ममुपलभ्येत तस्मिन्

जागरुकाः संतो प्रयत्नं कुर्वंति, पुरातनन्तनशास्त्रयोस्तुलनात्मकमभ्यासं कुर्वंति, तथाच नवीनस्य प्राह्यांशभागग्रहणेन पुरातनशास्त्राभिवृद्धिं वांच्छंति। आयुर्वेदस्य पाश्चाल्यवैद्यकसाम्यं दर्शियष्यंति प्रयतंते तद्रथम् । अनेन प्रयत्नेन आयुर्वेदो-परि गृह्यमाणो अशास्त्रीयत्वारोपो नश्येत । आयुर्वेदीयसंदिग्धवाक्यानां प्रत्यक्ष-प्रयोगसदृशं महत्वं यास्यति । जगति वर्तते नैकविधा-श्चिकित्सापद्भतयः । तासु सर्वासु चिकित्सायां विशेषतो वर्तते साम्यं, परं रोगहेतुसंप्राप्तिनिदान-विचारपरंपरायां नैवावलोक्यते समानता । पाश्वात्यानां 'ह्यूमर्स' तथा आयुर्वेदीयानां त्रिदोषा एतेषु स्थूळाळोचनेन दर्यतेऽतीव सादर्यम् । प्रांकानां रोमनानां च संबंधमभिलक्ष्यीकृत्य परस्परेषां विचारसंक्रमणमभविष्यदिति संभाव्यते । तथापि इमां ' बुमर्स ' कल्पनां दूरीकृत्य आधुनिकपाश्चात्यशास्त्र-दृष्ट्या अयमायुर्वेदः शास्त्रशुद्धो वा नवेति दृष्टुं त्रिदोषविषयका नैकविधाः कल्पनाः सांप्रतं संमुखं समापतिता वर्तते। १ वातपित्तकफा यथासंख्यं 🕻 १ एक्टोब्लास्ट, २ मेसोब्लास्ट, ३ ९ंडोब्लास्ट तथा १ ॲनॅबॉलिझम्,। २ मेटबॉलिझम्, ३ कॅटबॉलिझम् तथा १ इरिटेशन्, २ इन्क्रमेशन्, ३ सप्युरेशन् तथा १ कार्बन् डाय्, ऑक्साइड् गॅस् (वातः) २ बॉइल (पित्तं) ३ गॅस्ट्क सिस्टिम् (कफः) अथवा १ सेंट्रलनर्व्हज् अन्ड सिंपथेटिक् सिस्टिम्, २ हीटप्रांडिनिंटग मेटॅबॉलिझम्, ३ रेस्पिरेटरी सिस्टिम् इति । तथापि अस्मिन्विषये सूक्ष्मतया दृष्टिनिपातो दत्तश्चेदिदं सर्वप्रकारकं साम्यदर्शनं इटित्येवापूर्णमेव प्रतिभाति । अतोऽपि व्यापकास्तथा सूक्ष्मा आयुर्वेदीयानां सिद्धांता भवेयुरिति जायते बुद्धिः ।

एते सर्वे एव विचाराः प्रयोगातीताः केवछं कल्पनामयाः । कल्पन्नी-द्रम आयुर्वेदीयैः कार्यः । तस्य सत्यासत्यत्वप्रतीतिविषये पश्चात्याः प्रयतेयुः । अस्माभिरिप संशोधनीत्सीक्यार्थं सूच्यंते विचाराः । पश्चात्यैः पंचिविशति-वर्षेभ्यः पूर्वं ' द्यूमर्स ' कल्पनायाः परीक्षणे कृतः प्रयत्नः । शरीरस्य व्यापारा-बाह्यरसस्रावे तथा आंतररसस्रावे अवछंबिता वर्तते इति अद्यापि केचन मन्यंते । परं अधुना एतेभ्यो रसस्रावेभ्योपि कारणं प्रतिजीवाणौ (संस्) द्वौ

वा त्रयो वा स्नावा वर्तते, तेषु इमे सर्वे व्यापारा अधिष्टिताः संतीति शास्त्र-ज्ञानां मतं वर्तते । इमे स्नावाः शरीरावयवानां जीवाणुषु भवंतो दश्यंते । ते च सततं जायमाना अभिलक्ष्यंते । शरीरधारणात्मके कार्ये निष्पन्ने नष्टा भवंति । एकस्मिन्समये सर्वास्मिन् शरीरे भवति तेषामल्पं प्रमाणम्। इयं तेषां साम्यावस्था। वैषम्यावस्थायां तेषां वृद्धिक्षयौ भवतः । ते तु अत्यंतया सूक्ष्मया मात्रया स्वीयं कार्यं कुर्वंति यत्केवछेन छोचनेन किमपि तु असंतमुक्ष्मदर्शकयंत्रेणापि न दृश्यते । ते तु एकस्या रत्तिकायाः कोटग्रामितया मात्रयाऽपि विकृत-परिणामान् दर्शयंति । स्थानवैशेष्यात् तेषां गुणभिन्नता च भवति । कुत्रचित् 'रक्तवेगाधिक्यं' (ब्लडप्रेशर) कुत्रचित् वृद्धाः संतो निद्रामपजनयंति । एकत्र तेषां संयोगात् विरुद्धाः क्रियाः कुर्वति । तेषामुत्पत्तौ नियंत्रणं वातवाहिनाभिभवति । यदि सूक्ष्मप्रमाणेनापि उत्तेजिता, भवति तेषां विपुरुः स्रावः । अयमत्र प्रधानो भावो यदेतेषां स्रावाणां सूक्ष्माणि द्रव्याणि रसायनप्रयोगशालायामुत्पन्नानि भवंति । काचकृष्यां दृष्टुं शक्यानि । तथैव पूर्वोक्तसृक्ष्मप्रमाणेन शरीरावयवेषु तेषु तेषु निक्षिप्तानि स्युस्तदा पूर्वप्रतिपादिताः । क्रियाः प्रादुर्भूता भवंति । एतेषां सक्ष्मद्रव्याणां गुणाः वातिपत्तकप्रसमानाः

जडसृष्ट्याः अणुपरमाणुकल्पनायाः सांप्रतं असंख्यातायां प्रोटॉन् इंटक्ट्रान् इत्यादिशक्तिसृष्टौ रूपांतरं जातम् । पाश्चात्यानां पूर्वीक्तजडा-त्मकात्यंतसूक्ष्मस्राविपदार्थानां आदिकारणं शक्तिसृष्टौ नैवोपटम्येतेति वक्तुं कः साहसं कुर्यात् । कदा वा पाश्चात्येभ्यो एतादशाः शक्तिरूपारतथा अप्रत्यक्षाश्चिदोषाः स्वतंत्रेण संशोधनेनोपटब्धाश्चेत् शक्तिरूपित्रदोषवादि-पक्षोऽपि शास्त्रीयसंशोधनेन समर्थितो भवेत् कदाचित् ।

पाश्चात्यानां उपरितनानां त्रिदोषसमानां पदार्थानां प्रयोगा अद्यैव मया कर्तुं शक्याः । परं अस्माकं प्रयोगपद्धतिः श्रीमद्भ्यो मान्या वर्तते इति प्रथमं विश्वासो देयः । उत श्रीमतामि का प्रयोगपद्धतिस्सापि वक्तव्या तदैव एतस्पर्वे सुशकम् । ता. ३-५-३५, भिषिविकास । त्रिदोषाणां आधुनिकशास्त्रदृष्ट्या विचारः डॉ. दा. मा. जळगांत्रकर एळ्. एम्. एस्. (नॅ.)एम्. सी. पी. एस्. दर्यापूर.

भिषािवलास माघ शके १८५०.

- १ कपः रारीरपरमाणुषु वर्तमाना संयोजकशक्तिः ।
- २ **पित्तम्:** –विजातीयद्रव्याणां छेदनेन शरीरसात्म्यत्वं यया संपद्यते सा शक्तिः।

३ वातः —शरीरपरमाणूनां चलनात्मिका शक्तिः। इस्यनेन, शरीरे सृक्ष्म-परमाणुषु दश्यमाना संयोजकशक्तिः, भ्राजकशक्तिः, गस्यात्मकशक्तिरेव त्रिदोषाः।

राक्तरयं गुणः । अदृश्यत्वेन तस्य आश्रयस्थानत्वेन कस्याऽपि वस्तो-रावश्यकता विद्यते । अत येषां दृश्यपदार्थानां त्रिदोषराश्रयः कृतः तेषां पदार्थानां गुणविषयको विचारः कृतश्चेत् कफो वा कफगुणाश्रितं वस्तु वा स्निग्धो मसुणः शांतो दृश्यते । पित्तं वा पित्तगुणाश्रितं वस्तु वा ताक्षणं, अम्छं विद्यते, वातस्य आधारभूतं वस्तु सूक्ष्मं चंचछं छघु वर्तते । त्रिदोषा अस्मा-भिर्दश्यमानानि नैव वस्तुनि किंतु वस्त्वंतर्गता शक्तिरेव । आसां शक्तांनां कार्यं शारीरिकव्यापारेषु स्थूछत्वेन अन्नपचनमारभ्य सप्तधातुमार्गेण शरीरपो-षणशरीरस्नास्थ्यांतं एतेषामेव दोषाणामाधारेण संपद्यते ।

आयुर्वेदीयानि तत्वानि बुद्धिगम्यानि, आधुनिकशास्त्राणि प्रत्यक्षप्रमा-णदर्शकाणि संति । तद्र्यं एकमुदाहरणं दक्पथमायातम्—रोगकारकाः कीटा-णवः सांप्रतं रोगोत्पादका इति संगिरंते, ते तु कीटाणवो वातावरणे संचरंतो शरीरसंबद्घाऽपि न हि सर्वेषामेव रोगोत्पादका भवंतीति दश्यते । कीटाणु-रूपं विजातीयद्रव्यं शरीरे गच्छत् शरीरस्थश्चेतपिंडैः (फागोसाइड्स्) नष्टं भवति । ते तु पिंडा यया पद्धत्या तंकीटाणुरूपं विजातीयद्रव्यं नाशयंति तस्या विचारः कृतश्चेत् इदं दृश्यते दृश्यम्—तिस्मन् वस्तुनि शरीरसंरक्षकाः श्वेतिपंडा आकर्षिता भवंति । तदनु स्रोदरे संनिवेशयंति, तिस्मन्तेषां च्छेदनं भवति । त्याज्यवस्तु किदृरूपं बिहः क्षिप्तः भवति । इदं सर्वमिप सृक्ष्मदर्शक-यंत्रेण द्रष्टुं शक्यते प्रयोगशालासु । —अस्यैव दृश्यस्य आयुर्वेदीयपरिभाषया तिस्मन् कीटाणुवस्तुनि श्वेतिपंडानां संयोगः कफेन भवति, संयोगकृत् कफः । तस्य वस्तुनश्च्छेदनं पित्तेन भवति, पृथक्करणकृत् पित्तं, । किदृरूपम्लाशिष्णं यया भवति सा शक्तिर्वातः, विक्षेपकृद्धातः । ईश्वरस्य नियम एवाऽयं येन नियमेन स्थूलो देहस्संबधस्तेनैव नियमेन शरीरस्थस्क्ष्माणुपिंडा अपि संबद्धा वर्तते । अस्माभिरद्यमानमन्नमि अनेनैव नियमेन संबद्धं वर्तते । तस्य संयोजनं मुखिस्थतलालारूपः कफः करोति । पित्तस्य पाचकं कार्यं तदामाशयस्यं पित्तं करोति । अन्निकृत्रूपं वस्तु वायुर्बिहः क्षिपति । या वृत्तिर्देहस्य सेव तस्य परमाणूनामिप ।

डॉ. दा. म. भोसेकर (हैद्राबाद दक्षिण)

" आयुर्वेदीयत्रिदोषाः " भिषग्विलास फाल्गुन १८५१ ।

त्रिदोषा वा त्रिधातवः ? अयं वादोऽत्यंतं रमणीय एव । वस्तुतस्तु त्रिधातविश्वदोषा एके एव । धातवो दोषा अपि पदार्था एव । तेषां नाम-भिन्नत्वं तेषां अणुमिश्रणप्रमाणवैभिन्यात्तथा कार्यवैभिन्यादेव वर्तते ।

यदा हि ते पदार्थाः शरीराभिवृद्धिकरास्संपद्यते—शरीरघटकेषु संमिश्रा यदा भवंति-तदा ते धातुसंज्ञया व्यवहार्याः । यदा ते शरीररोगकारका वा शरीरनाशका वा भवंति तदा ते दोषसंज्ञया व्यवहार्याः । धातवो, दोषा, मला, इत्ययं संज्ञा मूलत एकस्यैव पदार्थस्य विद्यते । निरुपयोगिनो पदार्था मलाः । दुष्टाः पदार्था दोषाः । उपयुक्ताः पदार्था धातवः ।

सचेतनस्य आत्मनश्चेतन्यशक्तिर्जडसृष्टेर्जननी विद्यते। इयमेवादिशक्तिः स्वकार्यानुरूपेण त्रिगुणात्मिका भवति । इयं शक्तिः कदा व्यक्तं (ॲक्टिव्ह) कदा चाऽन्यक्तं (लेटंट, पॅसिन्ह,) इति द्विप्रकारकं कार्यं करोति । सजीवशरीरे इयं त्रिगुणात्मिका विद्यते ।

एकस्या विद्युतः प्रकारास्त्रयो भवंतीति १ निगेटिन्ह २ पॉझिटिन्ह ३ गतिमान् इति तेषां नामानि । कार्येणैव अस्य भिन्नता प्रकटिता भवति । इयं राक्तिः पदार्थाश्रिता भवति । तस्याः कार्यवौभिन्येन नामकरणमपि विभिन्न-प्रकारकं जायते । विद्युत्प्रवाह-(करंट) प्रारंभे अचेतनपदार्थस्य वा द्रन्यस्य आश्रयो आवश्यक एव । जले किंचिदम्ल--(ऑसिड्) प्रक्षेपाद्विना विद्युत्प्रारंभो नैव भवति । अतः स्पंदनं वा क्रियावान् संदेशो वातस्य खरूपमिति वक्तुं युज्यते ।

ित्तम् – अयं पदार्थो वातापेक्षया अधिको घनो (द्रवरूपो) ऽस्ति अस्य गुणधर्माः पाचकोत्तेजकाः शरीरोपकारका विद्यंते । दाहकभस्मकादयो ये गुणास्ते शरीररोगकारकाः संति ।

दाहकं पित्तम् दूषितं, पाचकं पित्तं पोषकं इस्ययं भेदः । वस्तुतस्तु पित्तं मूखतो एकमेव द्रव्यम् इदं । च गुणवैभिन्न्यं तिस्मन् द्रव्ये परिणामका-रिण्याः पित्तरात्तयाः संस्कारेणोभ्दूतिमिति विश्लेयम् । यथा कोष्णं जस्त्रं स्नाने पाने च हितावहं, अत्युष्णं उभयस्मिन्निष कर्मणि अयुक्तं अहितावहं च । एक-मेव जस्त्रं तथापि तिस्मिन्नुष्णतामानेन वैभिन्यं समागतं वर्तते । तथेव एकस्मिन्पात्रे स्थितं दुग्धं अत्यंततप्तं चेदूर्ध्वमागच्छत् भूम्यां निष्पतत् पानाऽयोग्यं भवति । सम्यक् तप्तं पानयोग्यं भवति । अवस्थाद्वयापन्नं दुग्धं तु एकमेव, परं भिन्नस्थित्यंतरापन्नत्वेनैषावस्था जायते । इयं चावस्था नैव दुग्धाधीना किंतु तस्मिन् गत्युत्पादनप्रवणस्याग्निशक्तेः कार्यभिदमिति तु स्पष्टमेव ।

कफ: -अयं पदार्थो (वस्तु) घनस्र रूपो शीतो मसृणः क्षारयुक्तश्च विद्यते । यथा उष्णताप्रधानो द्रवरूपः पदार्थः पित्तस्याधिष्ठानं, तथा शीत-गुणप्रधानो घनरूपः पदार्थः कफशक्तया अधिष्ठानम् । अस्याः शक्तेः कार्यं पित्तकार्यविरूद्धम् । यथा हिमं, शीतो वायुश्च किंचित्काठं शरीरस्पर्शसुखकरो भवेत् । परंतु एतस्यैवातिरेकेण एतद्वयमिष शरीराऽपायकरं संभवेदेव । एत-द्वयमिष हिमं, शीतस्पर्शो वातश्च विरूद्धकारणेन रेगकारकमभूत् । एकस्मिन् वायोरुण्णताप्रधानस्पंदनस्य कार्यं विद्यते, अपरस्मिन् वायोः शीतगुणकार्यस्य स्पंदनं वरीवर्ति । एवं एकस्या एव मूळशक्ते इमे रूपांतरे बभूवतुः । अनेन् विवेचनेन—वातिपत्तकमाः कार्यकारिणो नैव पदार्थाः । किंवा तदाश्रितपदार्थास्तु-नैवाचित्यशक्तयः ।

त्रिगुणात्मिका जगचालकराक्तिरंशरूपेण पिंडेऽपि जीवात्मन आश्रयेण वर्तते । चालकपोषकसंवर्धकराक्तियुताः पदार्थास्त्रिधातवः। संहारकराक्तियुता वा रागोत्पादकराक्तियुता वा पदार्था दोषा इत्युच्यंते । मला अपि दोषा एव । परं सर्वथा निरुपयोगात्त्याज्यत्वान्मलेति संबोधिताः । शरीरे दोषधातुमलानां निरुपयोक्तां भागः । पदार्थानां अस्तित्वेन साकं शरीरे तस्यास्तित्वं वर्तमान-मेव । शरीरे चालकराक्तयस्तु खतंत्रतया वर्तमाना भवेयुरिति ।

पंडित दिगंबरजी बक्षी कैवल्यधामवासी (बोरवली)

आयुर्वेदस्य ' तात्विको विचारः ' भिषिग्विछासे चैत्र—ज्येष्ठ शके १८५५ अंके १-३ अस्मिन् विषये छिखितवंतः।

आयुर्वेदोऽनादिरिति तिसम्नेव कथितम् । प्रलयकालादूर्ध्वं सृष्ट्यु-त्यिर्त्तिभूव । सा च विकासवादपद्धला नैवोत्पन्ना अपि तु सर्वेऽपि जीवाऽ-जीवा यथा पूर्विस्मन्संकल्पे अभवन् तथैव समुत्पन्ना बभूवुरिति पौरस्ल्यमतम्। समुत्पन्ना जीवाः स्वपोषणाय प्रयतमाना यमेवाशनपानं जप्रहुस्तस्य अन्यवस्थया वा प्रज्ञापराधेन वा तेषां शरीरस्वास्थ्यस्य दुष्टेरनेकाः प्रसंगा अपि प्रादुर्भूता भवेयुः । उत्पन्नमस्वास्थ्यं नाशियतुं स्वभावादेव तेषां प्रयत्नोऽपि प्रारच्धो भवेदेव।ये च तदर्थं तैर्गृहीता द्रन्याऽद्रन्यप्रयोगाणामनुभवास्तानेकत्र संकल्य्य तेषां विवेचनं च कृत्वा नियमान् निर्माप्य यदभूतसंग्रहः सा एव चरका

संहिता । संहिता राद्वेनैव इतस्ततः पर्यस्तज्ञानस्य संग्रह इत्यर्थबोधो भवति । सृष्टेरनादित्वादायुर्वेदोऽपि अनादिरेव ।

अस्मिनेवाऽयुर्वेदशास्त्रे १ किं नाम जीवितम्, २ जीवितस्य व्यापाराः कथं केषु च कैर्भवंति ३ जीवितव्यापाराणां नियतपूर्ववृत्ति किं वर्तते एतेषां विचारः कृतोऽस्ति ।

सृष्टिविषयकविचारकरणे प्रवृत्ते द्वे वर्तेते सांख्यन्यायनामके शास्त्रे । द्वयोरिप शास्त्रयोस्तुल्यबळल्वमासीत्तिस्मिन् काळे । द्वयोरिप शास्त्रयोः सिद्धां-तान् अंगीकृत्य आयुर्वेदेन जीवितिशास्त्रस्य सिद्धांता आविष्कृताः । शास्त्र-द्वयतोऽपि शरीरेद्वियसत्वात्मसंयोग एव जीवितिमत्यिस्मिन्नायुर्वेदीयसिद्धांते न कापि विप्रतिपत्तिर्वर्तते—

स चायं संयोगो अनुमेय एव तस्य इमानि रुक्षणानि । यचामोति, यदादत्ते, यचात्ति विषयानिह । यश्वास्य संततो भावस्तस्मादात्मेति गीयते ॥

इमानि यत्र वर्तते तत्रात्मसंयोगो नियत एव । भोगार्थं िंगशारीरं तथा मनश्चापि तिस्मिन्विद्यते । एवमिस्त तत्र जीवितमिस्यवबुध्यते । यतो "नैकः कदाचिद्भूतात्मा लक्षणैरुपलभ्यते । संयोगः पुरुषस्यष्टो विशेषो वेदना कृतः । आदानं, विसर्गः, संवेदना, भोक्तृत्वं, संतत्मावश्चेत्येतैर्लक्षणैरात्ममनःशरीरसंयोगो ज्ञाप्यते । तथा च १ अस्ति, २ जायते, ३ वर्द्धते, विपरिणमते, ५ अपक्षीयते, ६ म्रीयते, (नश्यति) इत्यतैः षड्भावैरपि जीवितस्याकन्त्रम्वति । लिंगशरीरस्थूलशरीरयोरसंजाते संयोगे इमे षड्भावाः प्रादुर्भवंति । एवं च जीवितस्वास्थ्यस्य विचारे प्रारब्धे केवलाया मनुष्यसृष्टेरेव विचारस्तु अपर्याप्तो भवेत् । तदर्थं वृक्षकीटकपतंगादीनां अपि विचारस्यावश्यकता विद्यते । यतस्तेषु सर्वेष्विप अनुस्यूतं एकमेव जीवितं कथं प्रवर्तते, तस्य नि-यतपूर्ववृत्तीनि कानि कारणानि, गौणानि कानि, अन्यथासिद्धनि कानि, इस्रस्यापि परामर्श आवश्यक एव ।

शरीरस्य पृथिवी उपादानकारणं, चत्वारि अन्यानि महाभूतानि उपष्टंभकानि विद्यंते । शरीरं तु कृमिकीटादीनामिष प्राह्मम् । आकाशभूतं तु विभु वर्तते । आप्तेजवायव एव शरीरे कार्यकर्तारो विद्यंते । कृमिकीटकपतंगा-द्यारम्य मानुषपर्यंतं जीवितचिन्हानि तु १ भक्षणं, २ उत्सर्जनं, २ संवित् १ वृद्धिः ५ क्षयः ६ खजातीयप्रजोत्पादश्चेति समानानि ठक्ष्यंते । सर्वेषां जीवानां जीवनं तु जलसूर्यतापवायुखाधीनं वर्तते । इमान्येव आप्तेजवायुभूतानि जीवितस्य नियतपूर्ववृत्तिकारणानि विद्यंते । 'यत्सत्वे यत्सत्वं यदसत्वं यदसत्वं यदसत्वं १ इस्रनेन नियमेन सर्वजीवानां जीवितस्य इमान्येव कारणानि नियतपूर्ववृत्तीनि, अपराणि तु अन्यथासिद्धानि । बाह्यमृष्टेः आप्तेजवायुभूतानां शरीरांतर्गताप्तेजवायुभिः सह नित्यं संबंधो वर्तते । तेषां बाह्यानां त्रयाणां महाभूतानां शारीरमहाभूतैः संबंधो हिनाधिकत्वनागतश्चेत् तेषामिप हिनाधिकत्वं उपजायते । सर्वत्र महाभूतानां साजात्यात् ।

शरीरांतस्थोपष्टंभकमहाभूतत्रयमेव क्रमेण कफिपत्तवातेति संज्ञितम् । तान्येव द्रव्याणि बाह्यमृष्टौ आपः, तेजः, वायुः, इति नाम्ना संबोधितानि । बाह्यजगित वर्तमानानि इमानि द्रव्याणि मौतिकानि, तथा जीवित् शरीरे वर्तमानानि कफिपत्तवातात्मकानि जीवद्रव्याणीति महान् अनयोर्द्धयोर्मध्ये भेदो विद्यते । १ सूक्ष्मशरीरं—र्ष्टिगदेहः—स्थूलशरीराद्भिन्नम् । २ तत् शुभाशुभकर्मणा भोगार्थं नानायोनिषु भ्रमति । ३ ताश्च योनयो नैकिविधा वृक्षकृमिपशुपिक्ष-मनुष्यादयः । ४ एतान्येव भोगायतनानि । ५ इमानि सर्वाण्यिप स्थूलशरीराणि पार्थिवानि । ६ इतरभूतानि तु उपष्टंभकानि । ७ एतेषां च लिंगशरीराणां संयोग एव जीवितम् । ८ अस्यच जीवितस्य व्यापाराः सुखकरा वा असुखकरा आप्तेजवाय्वाधीनाः । ९ जीवसाक्षित्वेन विलक्षणभावमापन्नानां एतेषां जीवनद्रव्याणां वातिपत्तकफेति विद्यते संज्ञा । १० एतेषां द्रव्याणां साम्येन सुस्थे जीवितव्यापारे जीविताधारकत्वाद्धातुरिति तेषां संज्ञा विद्यते । ११ एतेषां वैषम्याज्ञीवितव्यापारदृष्टिर्जायते । १२ दृष्टिकारणत्वाद्दोषा इति संज्ञिता ह्यते । १३ एतान्येव यदा मल्रूपेण स्थूलावस्थायां दृष्टानि भवंति तदा तेषां

मलेति संज्ञा । इयमेव त्रिधातुत्रिदोषपद्धतिः आर्याणाम् ।

शरीरे अभिदृश्यमानानि द्रव्याणि (पदार्थाः) रसासंग्मांसमेदोस्थिम-जाशुक्राणि धातवः । मूत्रशकृत्खेदादयो मलाः । स्नायुकंडरा उपधातवः । मलखेदरक्तादिवहस्रोतांसि । फ़फ़्सादिधात्वाशयाः । ते सर्वेऽपि अन्नसंभवाः । 'आहारसंभवं वस्तु (देह:) रागाश्चाहारसंभवा: '। चरकस्त्र. ॥ इमे सर्वेऽपि धातपधातमञा आहारसंभवाः । धात्वादिकानां कारणं अन्नरसः । एतेषां सर्वेषां धात्वादिकानां विशिष्टसमुदाय एव शरीरम् । कफपित्तवाता उपष्टंभ-कद्रव्याणि धात्वादिकेषु वर्तमानानि जीवितव्यापारकारणानि भवति । इमानि त्रीणि द्रव्याणि सर्व शरीरव्यापीनि विद्यंते । तथापि आमाशयादुर्घांगानि, मेदः, पर्वाणि, मूत्रं चेति कफस्थानानि । तथैव रक्तं, लिसका, खेदः, पकाशयश्चीति पित्तस्थानानि । बस्तिः, अधरपकाशयः, अस्थीनि, मज्जाचेति वातस्थानानि । तथा तेषां कार्याण्यपि पृथक् पृथक् विद्यंते । एतेषामेव वातादीनां कार्यविशे-षात्, व्यापारविशेषात् धातवो, दोषा इति च विद्यते संज्ञा । रसादिधातवो ' शरीरघटकाः ' मलमूत्रादि ' मलाः ' ९ते सर्वेऽपि व्याधिविचारेण 'दूष्या ' इति संज्ञिताः । एवं च शरीरं नाम दोषा, धातवो, उपधातवो, मलाश्व, भिनानि स्रोतांसि, च एतेषां समुदायः । अस्मिन्समुदाये त्रीन् दोषान् विहाय इतरेषु अर्थिकयाकारित्वं नास्ति । दोषेष्वपि वायोरेवार्थिकयाकारित्वं अधिकतरं वर्तते । अतएव 'पित्तं पंगु कफः पंगु पंगवो मलधातवः। वायुना यत्र नीयंते तत्र वर्षन्ति मेघवत् ' इत्युक्तम् । एवमेषा आयुर्वेदस्य त्रिधातुत्रिदोषपद्धतिर्विद्यते । इयमेव पद्धतिः सर्वेष्वपि जीवेषु, वृक्षेषु, यत्र यत्र वा जीवितं विद्यते तत्र तत्र समानैवांगीकृता शास्त्रकृद्धिः। वृक्षप्रुमनुष्येषु जीवितं नाम एकमेव। अतस्त-च्छास्राणां मूलसिद्धांतोऽपि एक एव । एकपेशीमये जीवाणौ यद्यपि कफपि-त्तवायुनां नैव विद्यंते पृथक् स्थानानि । रसधातुं विहाय रक्तादिधातवोऽपि न भवंति, अंगप्रत्यंगानामपि अभाव एव । तथापि तस्मिन्नेकपेशीमये जीवाणी कफपित्तवातानां अस्तित्वं नास्तीति न । तस्मिन्नपि वृद्धिः, अन्नग्रहणं, अन्नस्य-शोषो वा रूपांतरं, मलस्योत्सर्ग इत्यादिकाः क्रिया भवंत्येव । अत एतास्सर्वा

पूर्वपीठिका-ज्यंबकशास्त्री जोशी व अप्पाशास्त्री साठे. १०६

क्रिया विना कफिपत्तवातेभ्यो नैव संभाव्याः । तात्पर्यम् –वृक्षादिस्थावरेषु, एकपेशीजीवादारभ्य मानुषपर्यंतेषु जंगमेषु कफिपत्तवातानां वर्तते अनुस्यूतत्वम् ।

वैद्यरत्न पंडितप्रवरमूर्घन्य त्र्यंबकशास्त्री जोशी वैद्यराज वाराणसी.

आयुर्वेदे रोगाणां कारणज्ञापकसिद्धांतिस्तदोषतत्वे प्रतिष्ठितो वर्तते । त्रिदोषाणां साम्यावस्था एव आरोग्यम् । तेषां वैषम्यं रोगः । इयं साम्यावस्था कालस्य शीतोष्णवर्षस्वभावात्, तथा वैपरीत्यात्, असात्म्येद्रियार्थसंयोगात्, । तथा शारीराभिघाताद्विकृता भवति तया च भवति रोगाणां प्रादुर्भावः ।

एतेषां त्रिदोषाणां परिमाणस्य नैकविधा जातयो, भिन्नानि च स्थानानि नैकविधानि संति । अतो रोगा अपि असंख्येयाः । इमे च त्रिदोषाः पाश्चा-स्यास्त्रयो ' ह्यूमर्स् ' इव विज्ञेयाः । (मद्रास रिपोर्ट)

वैद्यराज अप्पाशास्त्री साठे मुंबई.

आयुर्वेदो नाम आयुषो ज्ञानम् । आयुष्यं नाम पांचभौतिकं शरीरं, पंचेंद्रियाणि, मन आत्मा च येषां संयोगः । आत्मा चांतर्गतबहिर्गतकारणैर्न-कदापि विकृतो भवति । न च स्वयं विकारान्कुरुते । पांचभौतिकं शरीरं, इंद्रियाणि, मन, इमानि विकृतिं गच्छंति । तया च विकृत्या आत्मा दुःखभाक् भवति । यस्मात् तैस्तस्य साहचर्यं वर्तते । अयभेव रोगः । शरीरे तदवयवेषु च रागद्वैविध्यं भवति । अंतर्गतदे।षप्रकोपेण, बाह्यैहेंतुभिश्च ।

अधुना अंतर्गतरोगकारणविचारं कुर्मः—प्रथमतो दोषा नाम के इति विचार आवश्यकः । आयुर्वेदस्तु षड्दार्शनिकः । स, विश्वस्योत्पात्तं उपादान-कारणभूतेभ्यः पंचमहाभूतेभ्य एव भवतीति मनुते । मानुषं शारीरमपि पंचमहाभूतोत्पन्नमेव विद्यते । रोगाणां निदानं चिकित्सा सम्यक्तया कर्तुं एतेभ्य एव पंचमहाभूतेभ्यस्त्रिदोषाणामुत्पत्तिजीतेति तद्विदां मतम् । जीव-माने शरीरं आकाशवाय्वोरतैर्वातेति प्रदत्ता संज्ञा । तेजसः पित्तमिति संज्ञा, तथा च पृथ्वीजलयोः कफेति संज्ञा तैः प्रदत्ता । जीवतः रारीरादन्यत्र नेयं संज्ञा तैर्व्यवहृता । तेषां साम्यं नाम आरोग्यम् । वैषम्यं नाम अनारोग्यम् । विश्वस्मिन्समुम्दूतानि द्रव्याणि पंचमहाभूतोत्पन्नानि मानुषरारीरे समप्रमाणेन अन्नरूपेण समाविष्टानि यदा भवंति तदा तेषां पाचनं भूत्वा तानि तत्वानि स्वस्य स्वस्य स्वस्त्रपस्य प्रमाणाधिकतां वर्द्धयंति । तेजोधिकानि द्रव्याणि पित्तं वर्धयंति । तथा च पृथिवीजलप्रमाणाधिकानि अन्नद्रव्याणि कप्तस्य वृद्धि कुर्वंति ।

गृहीतमन्नं आनने गच्छत् चिवतं भवति । अनंतरं गच्छित आमाशये । तत्र तिमन्तुपिरं कपस्य संस्करणं भवति । तदनंतरं तिमत्तंसंस्काराई भवति । यदा तद्गच्छिति पित्ताशये तदा तिस्मिन्तुपिरं पित्तस्य क्रिया भवति । तस्मा-जीवनप्रदरसस्य तथा मलम्त्रादेवैभिन्यं भवति । मलम्त्रादयस्खेन मार्गेण बिह-गेच्छिति । सत्वरूपोऽन्नसारा अभिसरणकृयया शरीरं अभिसृतो भवति । शरीरं रसादिशुक्रांतास्सप्तधातवो विद्यंते । एतेषां वर्तते खतंत्रोऽग्निः । अन-रसस्य यदा एतेषु धातुषु संबंधो जायते, तदा इमे धातवः खीयाभ्रेविलात् स्वोपचयकरद्रव्याणि अस्माद्रसात् शोषयंति । अन्तरसस्यद्रव्येषु पंचमहाभूतानां प्रमाणसाम्यं यदा नैव भवति तदा वातिपत्तकपेष्वि न्यूनाधिक्यमुपजायते । सप्तधातवोऽपि खां क्रियां यथायोग्यतया कर्तुं न समर्था भवति । तेन कोऽप्यंशोऽपाचित एव तिष्ठति । स एवामो दोषेषु विकृतिमृत्पादयति । एकस्य दोषस्य प्रमाणं वर्धयति, अपरस्य दोषस्य प्रमाणं हीनं करोति । इमे एव प्रकृपिता दोषाः शरीरे प्रसरंतो यत्र स्थाने आघातं कुर्वति, भवति तदा रोगा-णामुत्पत्तिः । अयमंतर्गतरोगकारणानां विचारः । आम एव रोगस्य कारणं मन्यंते कोविदाः । अत एव रोगोऽपि आमय शद्ध संज्ञितो वर्तते । (मद्रास रिपोर्ट)

पांडित वासुदेव नंबसेन कोचीन.

' तथाहि—अप्रत्यक्षो वायुरिति कश्चन पदार्थो रूक्षत्यचलनत्वादि हिंगैरनुमीयते '।

एवं विधस्य वायोरप्रत्यक्षत्वान्ववीनैरस्याधारभृतः प्रत्यक्षवेदाश्च स्नायुः

' नर्व्ह ' एव तत्स्थाने व्यवञ्हीयते । स्नायुशाक्तिः ' नर्व्हस् फोर्स ' इत्याधुनिक-व्यवहारेण या विषयीक्रियते स एवायं वायुः । अपिच चराचरात्मकस्यास्य जगतस्सर्वस्यापि पंचभूतरेवोत्पित्तिरिति सर्वेषां सिद्धांतः । तदन्तर्गतवाय्वग्नि-जलान्यवात्र वातपित्त श्रेष्मपदैर्व्यवञ्हीयते । शेषयोराकाशस्तु वायुत्वेनांगीकृत-आस्ते । पृथिव्यास्त्वलंतस्थूल्वात्तज्जन्यस्य देहांशस्य वाय्वादिजन्यांशस्यव सर्वा विकृतिर्जायते । पृष्ट १३६-१३७। (मद्रास रिपोर्ट)

अहमदाबाद वैद्यसभा वैद्यराज नारायणशंकर देवशंकर अन्येच वैद्या

पश्चिमास्यवैद्यैर्यस्य 'नर्व्हफोर्स ' इति कथ्यते, तस्य आयुर्वेदप्रणेत्रा 'वायु 'रिति कथ्यते । महर्षिभिर्यस्य नाडीमंडलमिति राद्वेन वर्णनं षट्चक्रं इति कृतम्, तदेव पाश्चिमास्यप्रयेषु नर्व्हस् सिस्टिम्, इति राद्वेन व्यवन्हीयंते । पृष्ठ १५१ नर्व्हस् सिस्टिम्, ब्लंड् सिस्टिम्, लिफॅटिक् सिस्टिम् इति पाश्चिमास्यवैद्यके धातुरूपेण संज्ञिताः ॥ १५०॥

हीटप्रॉडिंक्टंग मेकॅनिझम्, मेटॅबॉलिक पंक्शन्, उष्णोत्पत्तिकृदक्षेय-राक्तिरिति पाश्चिमात्मग्रंथकारः कथ्यते। अग्निरूपस्यैव पित्तस्य पाचकादिसंज्ञा। पाचकाग्निः "बॉइल्" इति गृहीतः। रंजकपित्तमिति अन्वर्थकं नाम। दि ' कल्लरिंग मॅटर ऑफ दि बॉइल ' इज ड्राइव्हड् फ्रॉम अँड् रिलेटेड टु दॅट् ऑफ् ब्लड्, सिन्स् दि क्वालिटी ऑफ दि बॉइल पिग्मेंट, सीकेटेड ऑर मार्केड्ली इंक्रीज्ड् बाय् दि इंजेक्शन् ऑफ् सब्स्टन्स इन्टु दि व्हेन् ईच ऑर केपेबल ऑफ् सीटिंग फी हेमोग्लाबिन्। साधक पित्तेन हृत्यकोष्ठस्य संकोचिकासौ भवतः। आलोचकिपत्तस्य स्थानं दृष्टिमंडलम्। दृष्टिमंडले या पित्तस्य किया अस्ति (मेटॅबॉलिक् प्रोसेस्) तयैव दर्शनशक्तिजीयते॥ १५२॥

क्रेदनकप्तस्य आमारायस्थानम् । 'लाला ' राद्वेन पाश्चिमास्यैः राद्वितम् 'सलायव्हा'। अवलंबनकप्तस्य रस इति पाश्चिमास्यसंज्ञा 'सीरस्' इति ।

१०९ पूर्वपीठिका-व्ही. नारायण नायर व सी. व्ही. सुब्रह्माणशास्त्री.

स्नेहनकप्तस्य स्थानं शिरः । श्लेषणकप्तस्य स्थानं संधयः । ' सायनोव्हिया ' इति पाश्चिमात्या वदंति ॥ १५२ ॥

यच्छत्तया रारीरजीवनव्यापारो जायते तच्छत्तया पाश्चिमात्यग्रंथकारभ्यो ' नर्व्हफोर्स ' इति ज्ञायते एव ॥ १५१ ॥ (मद्रास रिपोर्ट)

व्ही. नारायण नायर.

" आयुर्वेदीया पद्धितस्तु त्रिदोषतत्वे आधिरूढा वर्तते । इयं त्रिदोष-पद्धितस्तु प्राचीनप्रीक 'शूमर्स' पद्धत्या नैव संबद्धा । इमे त्रिदोषास्तु सुप्तशक्ति-युता ' मॅक्राकम् ' इत्यस्य विभिन्नविशिष्टत्रितत्वमूला (धिस् त्रिदोष इज् दि नेम् गिव्हन् दु दि लेटंट फोर्स् ऑफ् दि मॅक्राकम् , क्रॅसिफाइड् अंडर थी बेसिक प्रिन्सिपल्स्) त्रयो दोषास्तु शक्तिरूपा नैव द्रव्याणि ॥ पृष्ठ २२२॥ (मद्रास रिपोर्ट)

आयुर्वेदभूषण पं. सी. व्ही. सुब्रह्मणिशास्त्री.

पंचम्लद्रव्येभ्यः शरीरं अभिनिर्वृत्तं । अग्निः (फायर) वायुः (एअर) जलम् (वॉटर) पृथ्वी (अर्थ्) आकाशः (ईथर्) पृथ्व्याः सकाशात् सप्तधातवः ।

त्रिदोषानाम शक्तिमंतो तेजात्मका शरीरमूळद्रव्याणि । (पॉवर्फुळ् ऑर् व्हाय्टळ् एळिमेट्स् ऑफ् दि बॉडी) चत्वारी भूतानि त्रिदोषानुत्पादयंति ॥ पृष्ठ २२६॥ (मदास रिपोर्ट)

दोषसिद्धांतः

कविराज श्री द्वारकानाथसेन रामी, कान्यन्याकरणतर्कतीर्थ विरचितः –(कलकत्ता)

" आयुर्वेदे खळु सर्वस्यैव उपभोगसाधनीभूतद्रव्यस्य क्षित्यादिपंच-महाभूतारब्धत्वं व्यवस्थापितम् । तापपाचनादितेजोद्रव्यकार्यजननात् पित्तं तैजसमपि (शरीरारंभकतेजःप्रधानपंचभूतविकारात्मकं, तेजःस्वरूपमपि) न केवलं तेजः, क्षित्यादीतरभूतसंयुक्तत्वात् तेजस एव पित्तोत्पत्तेः । अतएव सुश्रुते पित्तं तैजसमित्युक्तम् । तेजोद्रव्योपादनत्वेऽपि पित्तस्य इतरभूतसहा-यादेव तेजस उत्पत्त्या विलक्षणस्रक्षपेण प्रतीयमानत्वात् । तेजोगुणातिरिक्त-कटुद्रव्यत्वादिविशिष्टगुणवत्त्वाच पृथङ्नामरूपाभ्यां निर्देश एवोचित इति । तत् तेजोविशषमपि तेजोनाम्ना अनिर्देश्यसुवर्णवत् विलक्षणेन पित्तनाम्ना परिमाषितम् । आग्नेयत्वात् तस्मिन् पित्ते दहनपाचनादिक्रियास्वभिवर्तमाने अग्निरिति, तेज इति, व्यपदेशोऽपि युज्यत एव । अत आयुर्वेदे पित्तस्य तत्तनाम्ना क्षितनमपि परिलक्ष्यते ।

एवं कपस्य जलासाधारणधर्मस्नेहवत्तया उदककर्मणा शरीरस्योपकार-कतया च जलीयत्वेऽपि न जलाभिधानेन कीर्तनमहिति । भूम्यादीतरभूतिव-मिश्रितजलादेव तस्योत्पत्तेः । विभिन्नाकारेण प्रतीतेश्च । अतस्तादशशारीरजली-यद्दव्यस्यासाधारणेन कपादिनाम्नाऽभिधानेभव युज्यते । अभिन्नद्रव्यस्यापि हेत्वंतरयोगात् पृथग्रूपेण परिणतस्य तत्तिद्वेलक्षणरूपपरिचयार्थं, पृथक् पृथक् नाम्ना संकेतोऽन्यत्रापि दश्यते-यथा सिललादिभिन्नानां तुषारिहिमकरकादीनां सिललिविलक्षणेन तत्तनामा । जलसदशकार्यकारित्वाजलप्रधानोपादानकत्वात् च कफे जलिमित्युपचारः क्रियते ।

अथ शरीरचरस्य वायोरिष पांचमौतिकत्वेन पृथिव्यादीतरभूतसंबंध-वत्तया पित्तकपवत् पृथक् संज्ञया व्यवहार एवोचितः। नत्वविद्यक्षणेन सर्वतंत्र-प्रसिद्धन वातामिधानेन इतिचेन्न । 'वायोरात्मैवात्मा' इति सुश्रुतवचनेनावगम्यते-सर्वैः- सर्वदानुभूयमनाद् बाह्यवातादेव शारीरवातस्योत्पत्तिरिति। परमस्क्ष्मरूपेण पृथिवीजलस्यिकरणाकाशानां संयोगसद्भावेऽिष बाह्यवायौ यथा तस्य असंघा-तरूपत्वेनादृश्यम् तित्वेन च विलक्षणावयवसंस्थानादिमत्तयानुभूतिर्न स्यात्। तथा वायूपादानकस्य शारीरवायोरिष परमसक्ष्मतयेतरभृतसंबंधसत्वेऽिष असं-घाताऽदृश्यपदार्थत्वात् विशिष्टद्रव्यरूपेण विशिष्टाकारेण च प्रतीतिर्नस्यादेव। अतस्तस्य पृथक् नाम्नाऽनिर्देशः। अपि तु समानगुणयोगित्वात् बाह्यशरीर-वातयोरिभेन्नाभिधानेन निरूपणमेवोचितम् ॥ पृष्ठ ४-५॥

पूर्वपीठिका-कविराज श्री द्वारकानाथसेन शर्माः

वातः पित्तं कमश्चेति त्रीणि द्रव्याणि वैद्यके । धातुर्दोषोमलश्चेति गीयंते कार्यभेदतः ॥ वातिपत्तकमा एव देहसंभवहेतवः । त एव विकृतास्संतो भवंति लयहेतवः ॥ अव्यापनेश्च तैरेव धार्यते शरीरं यतः । गृहमिवित्रिभिः स्तंभैस्तस्मात् ते धातवः स्मृताः ॥ भावास्सर्वेऽपि देहस्य दूष्यंत्येभिर्विकारगैः । यतस्तस्मान्निरुक्तास्ते वाताद्या दोषसंज्ञ्या ॥ मलधात्पधातूनां मलिनीकरणाच्च ते । मला इति निरुच्यंते वैद्यशास्त्रानुशालिभिः ॥

अथवा

पच्यमानरसादीनां किष्टरूपेण संभवात् । वाताद्या व्यपदिश्यंते विद्वद्भिर्मलसंज्ञया ॥ पृष्ठ १४ १५ ॥ यदा ते विकृतिं यांति तदैव दोषसंज्ञया । गीयंते मलनाम्ना वा समास्तु धातुसंज्ञया ॥ अविकृतदशायां तुं, दोषमलाभिधानतः । दुष्टिस्ररूपयोग्यत्वात् कीर्तनमौपचारिकम् ॥

शरीरगतवातस्य स्वरूपम्

स्पर्शवान् रूपहीनो यः स वायुरुच्यते बुधैः । सर्वदा गतिमानेष ज्ञेयः स्पर्शादिहेतुभिः ॥ त्वगीदियेण तस्यापि प्रत्यक्षं भवति स्फुटम् । इति नैय्यायिका नव्याः प्रवदंत्यनुभूतितः ॥ <u>बहिश्चरति यो वायुः स एव श्वासकर्मणा</u> । <u>शरीरांतः प्रविष्टोंऽते स्यायते धातुसंज्ञया</u> ॥ अन्यथाप्यनिलो देहे जायते स च कथ्यते । पच्यमानं पुनर्भुक्तं शोष्यमाणं च वन्हिना ॥

पूर्वपीठिका-वैद्यरत्न जोगींद्रनाथसेन.

सुपकं मलरूपेण यदा परिणतं भवेत् ॥
पकाशये तदा तत्तु भजते कटुतां ध्रुवम् ।
तथा परिणताच्छुष्कादन्नात् स्यादनिलोऽपरः ॥
वायोरस्यैव संपर्कात् बाह्यवातः शरीरगः ।
देहस्य धारणे शक्तो नान्यथा स क्षमो भवेत् ॥
अवेश्याऽपि बहिर्वातं मुखनासादिभिर्मशम् ।
न प्राणान् रक्षितुं कोऽपि शक्तोतीतिहि दृश्यते ॥

मल्रूपेण जायमानादाहारात् मल्रांथाने चोत्पत्त्या वायोरिप मल्नामा व्यपदेशो युज्यते । ननु 'वायोरात्मेवात्मा ' इत्यनेन सुश्रुते कथनात् कथं पकाशये परिपकात् कटुभावापनादाहारद्रव्यादिप वायूत्पत्तिकथनं संगच्छते इति तु न शक्यम् । पंचभूतात्मकमाहारद्रव्यं हि ऊष्मणा यथायथं परिपकं विश्विष्टावयवं सत् स्वावयवभूतेन तेन तेन क्षित्यादंशेन शरीरस्य तं तं क्षित्यादिभागं जनयति चरमपाककाले आहारद्रव्यकारणात् भूतवातादेव शरी-रवातस्योत्पत्तेः ॥ पृष्ट ४१ ॥

वैद्यरत्न जोगींद्रनाथसेन एम्. ए. कलकत्ता

कानपूर वैद्यसंमेनाध्यक्षाः (१९१२) भाषणम् पृष्ठ २२।

दोषत्रयवादः — " व्याधीनां आश्रयः शरीरं, सत्वसंज्ञं मनश्च । व्याधीनां कारणं त्रिविधं, असात्मेद्रियार्थसंथागः, प्रज्ञापराधः, परिणामश्च । तत् त्रिविधं कारणं शरीरचरं वायुं पित्तं कफं चं दूषित्वा विकारान् उत्पाद्यति । तत्र वातः, शीतो छष्ठः सूक्ष्मश्चलो विशदः खरश्च । पित्तं, सस्नेह-मुण्णं तिक्षणं द्रवमम्लं सरं कटुकं च। कफो, गुरुः शीतो मृदः स्निग्धो मधुरो स्थिरः पिच्छिलश्च । ते च वातिपत्तकफा यदा समाः प्रकृतिमापन्नास्तदा देहं धारयंति अतो धातव इत्युच्यंते । यदा विषमा, विकृतिमापन्नास्तदा देहं दृषयंति, अतो दोषा इत्युच्यंते । मिलनीकारणान्मला इत्यपि । तथा च शारंगधरेणोक्तम्—

शरीरदोषणादोषा धातवो देहधारणात्। वातपित्तकका ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः ॥ ५-२०॥

११३ पूर्वपीठिका-कृष्णशास्त्री कवडे व लक्ष्मीशंकर नरोत्तमभट्टा.

वैद्यपंचानन कृष्णशास्त्री कवडे बी. ए. राजमहेंद्री,

संमेलनसभापतयः, भाषणम् संवत् १९७८ पृष्ठ २७

'' गुणलक्षणकार्यात्मकं दोषाणां वर्णनमायुर्वेदीयग्रंथेषु बहुलतरमुप-लभ्यते । परं वस्तुरूपनिदर्शकं, तेषां वर्णनं न दृश्यते । अतो वातपित्तकफाः काल्पनिका न तु शरीरगताः शरीरधातव इति पाश्चात्यवैद्यशास्त्रविदुषामन्यथा प्रहस्संजातः । वस्तुतो विचार्यमाणे दोषा अपि शरीरगता अवयवा इति मुस्पष्टम् । दोषराद्वो आयुर्वेदीयप्रथेषु केनाऽर्थेनोपयोजित इत्यस्य प्रश्नस्य निर्णयो दोषशद्वस्य निर्देश आयुर्वेदे येषां येषां शद्वानां साहचर्येण कृतो दृश्यते तेषां सर्वेषां समुचयविचारेण भविष्यति । 'दोषधातुमलम्लं हि शरीरम् ' " त्वचः कलाः धातवो दोषा मला यक्तरहीहानौ " इत्यादि वचनेषु दोषाणां निर्देशः कृतः । समानानामेव हि प्रायेण समभिव्याहारा भवंति । यदुपरि निर्दिष्टवाक्येषु धातुमलैः सह दोषशद्भस्य साहचर्यं दरीदृश्यते, न तत्केवलं संख्यानार्थं प्रत्युत तद्विशिष्टगुणकर्मख्यापनार्थम् । दोषघातुमलाः शरी-रावयावा इति स्पष्टतमं प्रतिभाति । शरीरं चेदं, पांचभौतिकं पड्सात्मकं सेद्रियं सजीवमिति सुप्रथितम् । तस्मिश्च संग्रहात्मको वर्धनात्मको विशरणा-त्मकश्च व्यवहारः कायतनुक्षरीरशद्भप्रयोगेणावगम्यते । तस्मादवयविनो देहस्य संप्रहवर्धनविशरणात्मकस्य व्यापारस्य चालका ये अवयवा दोषधातुमला-स्तेऽपि पांचभौतिकाः सेंद्रियाः सजीवा इति वक्तुं न कोऽपि संशयः। तथापि तेषामस्तित्वमनुमानेनैव सिध्यति।"

वैद्यशास्त्री लक्ष्मीशंकर नरोत्तमभट्टाः भावनगरस्थाः

बटोदरीयाऽयुर्वेद संमेलन-(गुजराथ, कच्छ, काठियावाड चतुर्थ वैद्यसंमेलन) सभापतयः भाषणम् पृष्ठ ६-१२ ता. १७-३-१९२९

आयुर्वेदशास्त्राचार्या वातादिदोषप्रतीतिविषये कथयंति यत् , मुखनासि-काभ्यां शरीरे गच्छन् वायृ रूपरहिततःवाददृश्यो वर्तते । तथापि स्पर्शनें-

पूर्वपीठिका-वैद्यशास्त्री लक्ष्मीशंकर नरोत्तमभट्टा. ११४

द्रियेण ज्ञायते । स च वायुः शरीरे अंतः प्रविशन् करोति नानाप्रकारकाः क्रियाः । कफस्तु रसधातोर्मल्स्तथा पित्तं रुधिरस्य मलो वर्तते । यतः प्रत्येको रसादिधातुः स्वाग्निना पक्को भवति । पक्कस्य धातोर्भवंति भागास्रयः । अथ च स्वात् परस्य धातोः पृष्ट्यै तस्मिन्सिमिश्रो भवति तस्य सूक्ष्मो भागः। अपरश्च स्थुलो भागः खखरूपं यावत्प्रमाणं रक्षितुं तस्मिन्नेव धातुस्थाने तिष्ठति । अन्यश्च तृतीयो मलरूपो भागः स्वीये मले संयुक्तो भवति । ९वं आमाशयादुत्पन्नस्य रसस्य त्रयो भागा भवंति । सूक्ष्मो भागो रक्तस्य पोषणार्थं गच्छति । द्वितीय:-स्थू छो भागो रसरूपो रसस्य स्थायीभावार्थं रसस्थाने एव तिष्ठति । तस्मानि-र्गतो मल्ररूपस्तृतीयो भागः कफरूपो शरीरपोषणं करोति । स च प्रवाहीरूपो विद्यते । एवमेव पित्तं तृतीयाच्छोणितमलादुत्पन्नं भवति । तदपि दवरूपं पित्तस्थाने गच्छति, शरीरस्थाऽन्यपित्तानां पोषणं करोति । एवं रसधातो-र्मटरूपः कफो खीये मुख्यस्थाने आमाशये तिष्ठति। अन्यस्थानस्थकफाना-मपि साहाय्यं तत्रस्थ एव सन् ददाति । इत्यनेन तेषु स्थानेषु स्वीयं प्रवाहि रसं प्रददाति । केचिदत्र ' सौक्याइसानाददानो विवेक्तुं नैव शक्यते ' इत्यनेन वचनेन सूक्ष्म इति इंदियागोचर इति अर्थं कुर्वति, तथा च कफापित्ते दश्यादश्ये इति द्विप्रकाररूपे मन्यंते, परंत 'गुरुशीतमृदुस्निग्धमधुरस्थिरपिच्छिलाः । श्लेष्मणः प्रशमं यांति विपरीतगुणैर्गुणाः' । इत्यनेन वचनेन प्रोक्ता गुरुशीतस्निग्धादि गुणाः प्रवाहीरूपस्य कफस्यैव संति । तथा च कफस्य अन्यस्थानेष्वपि एतद्रपगुणप्रवाहयुक्तो रसरूपः कफः कियताऽपि अल्पप्रमाणेन वर्तमानो भवेदेव । अतः सङ्भशद्वस्य अत्यंतद्रवस्तथात्यंतारुपो वर्तमानो विवेक्तं शक्यो नुंत्रेति वक्तुं योग्यम् । अतः कियताप्यंशेन अदृश्यः कियताप्यंशेन दृष्य इति कथितुं नैव योग्यम् । एवमेव पित्तस्याऽपि प्रक्रिया मंतव्या । तीक्ष्णोष्णाः स्निग्धगुर्वादयो गुणाः केनाऽपि द्रव्येण विना कथं तिष्ठेयुः। अधिष्ठानमंतरा आधेयरूपा गुणाः कथं अधिष्ठिता भविष्यंति । अतः प्रवाहीद्रव्यरूपपित्त-कप्तयोरंतस्तीक्ष्णस्निग्धादिगणास्तिष्ठवि । धात्वप्रिसंज्ञितं पित्तं अतिशयेन खल्पं मंतव्यम् । अतः 'सृक्षम ' शद्वस्य अर्थो अदृश्य इत्यपेक्षया अतिश्य-स्वल्प इत्येव कर्तव्यः ।

११५ पूर्वपीठिका-पंडित शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य.

पंडित शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य लाहोर.

बिकानेरसंमेळांतर्गतनिदानसंभाषापरिषदाध्यक्षाः १९३२ भाषणम् पृष्ठ ३

ममाऽत्र नायमभिप्रायो वर्तते यदस्मिन्प्रसंगे त्रिदोषविषये विशदः शास्त्रार्थः कर्तुम् । तथापि प्रसंगोचितः स्वित्रवयसंगते। विषय एव वक्ष्ये ।

जीवितः शरीरस्यांतिमा पदार्था वातिपत्तकका विद्यंते । (अल्टिमेट फिजिकरु फॅक्टर्स) इमे चातिस्क्ष्मामतीदियामवस्था गृहीत्वा स्थूलां तथा सरलतया इंद्रियगोचरामपि अवस्था गृण्हंतो शरीरे विद्यमाना भवंति । तथा एतेषां कार्यभेदा रूपभेदाश्चास्यंतं विस्तृता वर्तते । तथा प्रथमदृष्टिपातेन एतेषां सुसंबद्धः सिद्धांतो वक्तुं नैव शक्यते । तथापि दोषवर्णने द्विधायाः क्रियाया वर्णनं शास्त्रकारैः कृतमिति तु छक्ष्यते । एका शारीरिकी क्रिया अपरा च मानसिकी । शारीरकार्ये वायोस्स्रोतसां मेदनं, मलोत्सर्गः, अवयवानां परस्परम-संघातः, क्रेदस्य शोषणं इत्यादिभिः स्थूलरूपस्य कार्यवर्णनं दश्यते । सूक्ष्म-रूपस्य वायोर्ज्ञानवाहिशिराणां तत्कार्यं वर्णितं विद्यते, येन विषयस्य इंद्रियसंनिकर्षेण ज्ञानोत्पत्तिजीयते। (सेंट्ल अन्ड अटॉनॉमिक नर्व्हस् सिस्टिम्) मलोत्सर्जको वायुर्यद्यपि अदृश्यस्तथापि स एकः स्थूलः पदार्थ एव, यतस्तस्य प्रस्रक्षं त्विगिद्रियेण भवति । परंतु यस्य वायोर्हर्षोत्साहमयं खरूपं विद्यते तत्तु अतिसूक्ष्ममतींद्रियं च तथा कार्यानुमेयं च विद्यते । एवमेव उपचयो, वृषता, दार्ढ्यं इत्यादि रूपः कफरस्थूलरूपेण स्वस्य परिचयं ददाति । तथा प्रसन्तता, बुद्धिः, इत्यादिरूपेण सूक्ष्मरूपं दर्शयति। तथैव, भुक्तान्नपाचने यश्च समुद्भवति पाचकरसस्तत् पित्तस्य स्थूलरूपम् । परंतु शौर्यं, क्रोधः, इत्यादि तु अतीवमृक्ष्ममतींद्रियंच पित्तस्य खरूपपरिचयं ददाति । पाश्चिमात्मा अद्य-यावत्कालं शारीरमानसिक्रयाणां पारस्परिको घनिष्ठः संबंधो विद्यतेति न मन्यंते स्म । परं पौर्वात्यास्तु ऋषयः प्राचीनात्कालादारभ्य वर्णयंति संबंधिममम्। अन्नपाचनकार्यं तु केवछं शारीरिकमेव । तथापि मनोधर्मीऽपि कार्येऽस्मिन् विव्रमुत्पाद्यति यथा-'मात्रयाप्यभवहृतं पथ्यं चात्रं न जीर्यति '।

चिताशोकभयक्रोधदुःखशय्याप्रजागरैः॥

इस्यनेन अन्नपाचने मनोधर्माणां प्रभावः कथं संभवतीस्यभिलक्ष्यते । क्रोधेन ज्वरवृद्धिर्जायते शिरःपीडाऽपि समुत्पचते, तथा शीतळजळपानेन वा स्नानेन क्रोवस्तथा क्रोवजन्यविकाराः प्रशमं यांतीति प्रत्यक्षमनुभूयते । आधुनिका अपि सांप्रतं इमं सिद्धांतं मानयित्वा कथयंति-उपवृक्कप्रंथ्युत्तेजनेन (अड्रिनल ग्लॅंड्) एको द्रवीभूतः पदार्थ उल्पचते, येन मानवे कोधस्योत्पत्ति-जीयते, तथा केनाऽपि अन्येन कारणेन नरे क्रोधोत्पत्तिस्संभवति तदा उप-वृक्कप्रंथयोऽपरितनं स्नावमुत्सृजंति । अयं च स्नावो दवीभूतं पित्तमेव । तथैव शोकाद्वायोर्वृध्या मरणं, धेर्येण कफबृध्या शोकजनितवायोः प्रशमनेन प्राणरक्षणं, आकस्मिकधनप्राप्या दरिद्रस्योन्मादावस्था, तस्यां उन्मादावस्थायां कफजोन्मादलक्षणानामुत्पत्तिस्तथा अस्यामेबोन्मादावस्थायां त्रासनभयोत्पादन-चिकित्सया वातवृध्द्या कफस्य व्हासनं, तेन चोन्मादोपशम इत्येवमादिना यथा शारीरे क्षेत्रे दोषवृध्वा व्याध्युत्पत्तिस्तथा विरुद्धगुणभू थिष्ठदोषस्य वर्धनेन उत्पन्नरोगस्य शांतिभवतीस्यभिलक्ष्यते। तथा मानसिकविकारेऽपि वातिपत्तकपाः स्नास्थ्येन तथा व्याधिना च स्त्रीयं साम्यं वृद्धि व्हासं च दर्शयंतीति स्पष्टमेव। इत्यनेन दोषाः स्थूलस्क्षमखरूपेण शरीरे मनसि च निवसंतो शारीरमान-सिकाः क्रियाः कुर्वतो अस्मजीवनभूता विद्यंते इति स्पष्टमेव ।

पंडित एम्. व्ही. शास्त्री आयुर्वेदभूषण मंगलेर

सभापतिः त्रितीयम् कर्नाटकआयुर्वेदसंमेळनम् विजापूर १९२७ भाषणम्—

१ '' अनुपल्रब्धत्वात् त्रिदोषसंज्ञा वातिपत्तश्चेष्माणो न विद्यंते । २ किचिदिपि प्राणिशरीरे यदि च विद्येरन् न च ते खास्थ्यकरणे साधकाः ३ यदि च संरक्षणे साधकास्त्रथापि अखास्थ्यकरणे न हेतव इति ''। अत्रोच्यते १ चरकस्य शारीरस्य प्रथमाध्याये त्रयोविंशतिप्रश्लेष्वेत्र 'कारणं वेदनानां किं ' इलस्य प्रश्नस्योत्तरत्वेन ' इल्यसालयार्थंसयोगस्त्रिविधो दोषकोपनः । वेदनानामसात्म्यानां इत्येते हेतवः स्मृताः ' इत्यत्र दोषशद्भो वातिपत्ति श्लेष्मण अभ्यूपैति । सुश्रुते तु 'असृजः श्लेष्मणश्चापि यः प्रसादः परो मतः । ततोऽ स्यांत्राणि जायंते गुदं बिस्ति च देहिनः। तं पच्यमानं पित्तेन वायुश्वाप्यनुधा-वति '। इस्येनन आंत्रगुदबस्तीनां प्रस्यंगानां समुत्पत्तौ वातादीनां कार्ययोनित्वं कथितं । वातादयोऽत्रांऽत्रादीनां जन्मन्युपादानकारणत्वेन तिष्ठंति । किंच धातुरूपेषु वातिपत्त श्लेष्मसु भूतरूपेभ्यो वाय्विग्नवारिभ्यो जातेष्विप तेभ्य ५व सन्तवनभ्यः शारीरेभ्यो धात्वंतरेभ्यो रक्तादिभ्यो विशिष्यंते । तस्मादायुर्वेदशास्त्रे पंचमहाभूतान्यंगीकृत्यापि दोषसंज्ञानां वातिपत्तक्षेष्मणामपि ग्रहणमवार्यम् । ' त्रिधातुरार्म वहतं शुभस्पती मं. १ अ. ७ सू. ३४ ' इत्यस्यां ऋचि वातिपत्त श्रेष्मधातुत्रयशमनविषयं सुखं वहतं इति वेदेष्विप त्रिदोषाणां नामनिर्दे-शोस्त्येव । २ वातिपत्तश्चेष्माण एव खारध्यरक्षणे हेतवस्संपद्यंते । धातवोऽपि रसादयो दोषापेक्षया शरीरे व्याप्यारसंति प्रसादजन्या अपि किट्टजन्येभ्यः शरीरे दोषेभ्यः परिभिताश्च । न हि रसादीनां शरीरे दोषादीनामिव सर्वचरत्वं, धातवस्तु नियते कलेवरप्रदेशे जायंते, वर्धते, च चरंति च । जन्मनि सल्पपि धातनां रसादीनां प्राशस्ये जीवने धातुसंज्ञकानामेव दोषाणां भवतीति । सत्यमुक्तं दोषा स्वास्थ्यसंरक्षणे हेतव इति । स्वयंरक्ष्या धातवः कथं रक्षेयु-र्घात्वाख्यात् परान् । तस्मादेव सुश्रुतो ' वातिपत्त श्रेष्माण एव देहसंभवहेतव ' इत्यादि प्राह । परंत्वत्राऽयं खलु विचारणीयोंऽशः । त्रिदोषशद्धेन के प्राह्या इति ? । वातिपत्तकेष्माणो प्राह्या इति तर्हि किमिति संदिह्यते । संदेहश्चात्र वातिपत्त श्लेष्मणां त्रिदोषाख्यानां द्वेधांभावात् । तथाहि ते च अंतर्गता, बहिर्गता इति, दोषभूतां, धातुभूता इति, समाः कुपिता इति च दैधीभावमापद्यते । तथासंपन्नेषु के प्राह्या इति संदेहः । अत्र अंतर्गता धातुभूताः समाः अन्यापन्नाश्च होकिकाः शारीरगताः प्राण्यंगधातुत्वेन स्थिता वास्विग्निसोमा एव खास्थ्यसंरक्षणे हेतव इत्युच्यंते । अखारथ्यकारणे 'रुक्षशीताचशनानेभ्यो वायुः प्रकापमापचतेतदाज्वरमिनिर्वर्तयते ' इस्रनेन रागोत्पादने वायुः

कारणं नाम समवायि कारणिमःयर्थः । वेदेऽपि त्रिदोषसंज्ञानां वातिपत्तश्चेष्मणां रागान् प्रति समनायिकारणत्वं प्रतिपादितम् । ' अथर्ववेदस्य प्रथमकांडस्य तृतीयेऽध्याय द्वादशतमे सूक्ते तृतीयऋचि ' " मुंच शीर्षक्या उत कास एनं परप्परूराविवेश, यो यस्य । यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीनस च तानार्वतांश्व " । अत्र त्रिदोषसंबद्धानां वाक्यानां व्याख्यानं कुर्वन् सायणाचार्य एवं व्याचख्यो " इदानीं वातिपत्तश्चेष्मविकारजनितानां सर्वेषां व्याधीनां अस्मालुरुषादन्यत्राऽवस्थानं प्रार्थयते यो अभ्रजा इति – यो रोगः अभूजाः अपो बिभर्तीत्यभ्रं प्रवर्षको मेघसंघः तस्माजायते प्रवर्षणोदकसंसर्गण उत्पद्यते इति । अभ्रजः श्लेष्मरोगः । तथा यो वातजोः वातात् कौष्ठयाद्वायो-र्जात उत्पन्नो रोगः। यश्च ग्रमः शोषकः पित्तविकारजनितो ज्वरादि रोगोऽस्ति। दोषत्रयोभ्दतः स सर्वोऽपि रोगं एनं पुरुषं विहाय वनस्पतीन् काननस्थान् वृक्षान् पर्वतांश्च मनुष्यसंचाररहितान् शिलोचयांश्च स च तान्समवैतु आश्र-यत इत्यर्थः । अत्र अवाँचः शारीरे कृतदीर्घपरिश्रमाः रसादिसप्तधातून् शारी-रावयवान् सूक्ष्मेणांऽतः प्रकाशकादियंत्रजालैः कणशोऽणुशश्च वीक्ष्यमाणा-दे। बानुपळब्ध्या प्रत्यवतिष्ठते । अत्र विषमाणां शारीराणां वातपित्त श्लेष्मणां व्याधिनिमित्तानां शोधनाय (शारीरादेतान् बहिष्कृत्य) आयुर्वेदशास्त्रे वमन-विरेचनादिपंचकर्मोपदिष्टम् । तानि पंचकर्माणि श्लेष्मिपत्तवातान् शरीराद्ध-हिरानयंतीति सर्वेऽपि वैद्या अवगच्छंति । तथा च बहिरानीतेष रौक्ष्यलाघव-शैत्यादि लक्षणैस्समान्वतं वायं, औष्ण्यस्नेहत्वतैक्ष्ण्यादिलक्षणैरन्वित्वं पित्तं. गौरवशैत्यमार्दवास्त्रिग्धत्वादिलक्षणयुक्तं श्लेष्माणं च यथा खेनेंद्रियेण साक्षात् कर्तुं शक्नुयः। विशेषतस्तत्त्वाचुर्येषु व्याधिषु आनाहाध्मानादिषु वायुं, पांडुका-मलादिषु पित्तं, श्वासकासयक्ष्मादिषु श्लेष्माणं चं, प्रत्येक्षीकर्तुं समर्थयंते। शोधनशोधिताश्चेते प्रकुपितत्वात् शरीरस्य बाधकत्वेन स्थिता न पुनः साधक-त्वेन । एते च बहुद्रव्ययुक्तास्स्थूलतरा अंतिमकार्यरूपा इति ज्ञेयाः । एतत्पू-र्वावस्थायां स्थितास्सूक्ष्मरूपास्तया च कार्यात्मका छंघनसाध्या अनुमानगम्या भवंति । एतस्मादिप पूर्वावस्थायां स्थितास्सूक्ष्मरूपा तथा कार्यात्मकाः स्वास्थ्य-

संरक्षणे हेतवोऽनुमानगम्या सूक्ष्मेक्षणांऽतःप्रकाशकादिभिर्यंत्रविशेषेर्दश्या दोषा भवंति । परमेतेषामपि कारणजाताः सर्वस्रोतस्सु व्यापकत्वेन शरीरसर्वप्रदेशे धा-त्वंतरव्यतिकराः सूक्ष्मेक्षणादिभिजीतुचिददृश्या गुणकर्मभिर्देतुभिरनुमेयाः केवलं ज्ञानचक्षुषां तपश्चक्षुषामेव विषयीभूताः प्रविभक्तकर्मनिष्ठा वाय्वप्रिसोमात्मका-बावापृथिव्योरंतरिक्षे समधिष्ठितम्लप्रभावा देहधारणाद्धात्वभिधाना, सदात्मकाश्च ते व्यवहारसोकर्याय दोषव्यपदेशेनाऽकार्यंते । ॥ पृष्ठ ६-१४ ॥

श्रीमान् पंडित गणपतीचंद्र केला

धन्वंतरी भाग ११ अंक १ पृष्ठ ५६-६०

त्रिदोषास्तु आयुर्वेदस्य आधारभूता वर्तते । शारीरः सर्वोऽपि व्यापार-स्तथा द्रव्योषधीनां विभजनमपि वातपित्तकषाधारानुवर्ति विद्यते । अयं हि सिद्धांतो युगयुगानुप्रवृत्तः प्रचरुति ।

सांप्रतं दक्षतराः (डॉक्टर्स्) विवदंति त्रिदोषविषये । ते च कथयंति त्रिदोषवादस्तु निराधार एव । अशास्त्रीय एव । न वातो न पित्तं न च कफः शरीरस्य आधारः । एतेषां गुणकर्माणि नैव तानि दक्पथमनुयांतीति ।

शरीरस्य यंत्रं बहु कोमलं (पेचीदा) विद्यते, अस्य दार्ड्याय विद्यंते अस्थीनि । इदं शरीरं अतीवस्क्ष्मतमैजीवकोषैः (सल्स्) घटितम् । एतेषां जीवकोषाणां कार्यक्षमत्वमेव जीवनम् । तथा एतेषां पोषणमेव देहधारणम् । संज्ञावहाः क्रियावहाश्च नाड्यो जीवकोषान् चालयंत्यो तेम्यः कारयंति कर्माणि नानाविधानि । केचन जीवकोषा विवेककार्यं कुर्वति । केचन आहारं गृण्हंति, केचन कुर्वति मलोत्सर्गमिति । एतेषां जीवकोषाणां पालनं शोधनं च शोणितन भवति । इदं शोणितं अहर्निशं समस्तशरीरे धावति । लसीकारूपेण समस्तजीवकोषेम्यो प्रददाति पुष्टिम् । मल्हरणेन तथा शान्तिप्रदानेन समस्तशरीरगेविषमुपशमयति । तथा स्वेनोष्मणा समस्तशरीरांगप्रसंगेषु स्वास्थ्यानुव्व- तिकरमुष्माणमार्भरक्षाति । अनेनैवोष्मणा पचित भोजनादिकम् । अयमेवोष्मा रक्तमलेन (बाइल्) सह यकृति संगत्य पाचनसमर्थो भवति ।

इदमत्र विचारणीयम् यत्--शरीरचालकं, तापकं सुखापादकं, नाडी-मंडलम्, रक्तरसा, लसीका चेति त्रयम् आर्षग्रंथेषु वातपित्तकफनाम्नाऽभिवर्णि-तमिति ।

वैज्ञानिकशारीरशास्त्रे नाडीमंड हदं सर्वं समाविष्टं भवति येन समस्तशरीरिक्रियाप्रवर्तनं भवि । यथा 'कौपर्स स्ट्रायटम् 'येन मानसिकशक्तिसमुत्पादो जायते । चक्रांगसमूहेन ज्ञानकर्मकारिण्यः शक्तयः प्रकटा भवंति ।
नाडीकेंद्रेण (नर्व्हसेंटर) इंद्रियजन्यो बोधो मनसाऽवबुद्धो भवित । 'थैलमस् ऑप्टिकस् ' इत्येनन शारीराणां धातुनां क्रमबंधनं भवित (धातुओंको
क्रममें बांधता है) हृदयादिकानां चालनं 'हैक्सस् ' इत्येनन जायते । ये च
शरीरस्य संधिवंधनैस्संयताः (ताने हुये) संति । तथा च वाणीमुत्पादयंति,
(व्होकल् कॉर्ड्) स्नायुकंडरादिकानां शौथिल्यमापदयंति, । स्पर्शज्ञानश्रवणादिज्ञानोत्पत्तिरनेनेव नाडीमंडलेनाभिजायते । हर्षोत्साहाभ्यामेतेषु स्पूर्तिशक्त्योः प्रादुर्भावोऽभिजायते । तथेव चिताशोकभयैरेतेषु क्षीणताया भविति
प्रादुर्भावः (नर्व्हस् डांप्रेशन्) । अतोऽधुना इंद्रियव्यापारा मस्तिष्कस्य तथा
नाडीमंडलस्य नाम्ना ये प्रचलंति, ते सर्वेऽपि आयुर्वेदे वातगुणकर्मेषु समाविष्टा विद्यंते ।

आयुर्वेदे वायुरग्नेर्वर्धको, दोषशोषको, मलोत्सर्जको, स्थूलसूक्ष्मस्रोतः— ग्रुद्धिकरो, गर्भस्थबालकस्याकृतिनिर्माणको, आयुर्स्थैर्यकरः कथितोऽस्ति ।

शरीर जम्मोत्पत्तः प्रकारद्वेविध्यं वर्तते । वायुना फुण्फुसमार्गेण, तथा आहाररसेन, पाचनिक्रयया च । फुण्फुसयोः संकोचिवकासौ, आंत्रयोर्जलौका-वगितम्त्वं वातसंस्थानस्यवं कर्म (नर्व्हस् सिस्टिम्) विद्यते । प्रतिजीवको-प्रस्थदोषसंचयस्य हृदयाभिगमनात्तथा तस्य च शोषणं वायुः फुण्फुसयोरेव करोति । यस्य गतिनीडीमंडलस्यवं कार्यम् । इदमेव नाडीमंडलं गुदसंकाोचिन्याः पेश्याः (स्पिक्टर एनी) वलीनां संकोचिवकासौ कृत्वा निस्सारयित मलम्, तथैव म्त्रादिकमिष । शरीरस्रोतसां विवंधेन समुत्पन्नं दुःखं अनेनैव

नाडीमंडलेन शिमतं भवति । गर्भे बालको मातुः खस्थमस्तिष्कत्वात्प्रसन्नेद्रिय-त्वादेव खस्थो भवति । अन्यथा विकृतो भवति । इदमपि कार्यं नाडीमंडलस्यैव (वायोरेव) वर्तते ।

द्वितियं द्रव्यं पित्तम्—शरीरे जण्णताया वितरणम्, शैलादक्षणम्, अन्नस्य पाचनम्, त्वगादीनां वणीत्पादनं नैत्रयोदिर्शनक्षमता इलादीनि कर्माणि पित्तस्य वर्तते । यद्वरितपीतादि मुखादुद्वीणं भवति तदेव पित्तमिति सामान्या भाषते, स्यात्तेनाऽपि पाचनसाहाय्यम् । तथापि पूर्वोक्तानि कर्माणि एतस्यै-वेति न हि सल्यम् ।

लेहितं शरीरे प्रतिक्षणं संचरित । तिस्मन् पीते तरलद्भव्ये (रक्त-रस-सीरम्) श्वासवायुना गृहीतो 'प्राणः ' (ऑक्सिजन्) संिमश्रो मवित । यक्कित संचितेन मधुरतत्वेनोत्पन्नश्चोष्माऽपि (कोलेस्टरीन्) रसक्तपेणास्मिन् रक्तरसे तिष्ठित तथा स सर्वस्मिन् शरीरे प्रतिपन्नो भवित । एवं रक्तरसः शारी-राणून् अंगप्रलंगानि च ददाति ऊष्माणम् , शारीरदोषान् शोषयित । उपवृक्करसः (अंड्रेन्लीन्)क्कोमरसः (पाँक्रेअंटिक्जूस) इत्यादयोऽपि अस्मिन्नेव रक्तरसे संिमश्रा भूत्वा उत्तेजयंति शारीरावयवान् । आपादयंति बलं, निर्भयतां समुत्पादयंति । अयमेवोष्मा—रक्तमलेन (बाइल्) साकं यक्वतेऽभिस्लय पक्काशये पाचयित आहाररसम् । अयमेवोष्मा पीततरलक्ष्पो अक्ष्णोरंतरे स्थित्वा प्रकाशं वाहयित । त्वगपि अनेनैवोष्मणा स्ववर्णमिप यथावरथमिनरक्षिति । रक्तरसे पीतोवर्णस्तथोष्णता चेति समानं पित्तेन, तथा रक्तरसरसर्व-शरीरचरो भूत्वाऽपि यक्कित, श्लीन्ह, हृदये, अक्षिगोलकयोः, त्वचि आधिक्येन तिष्ठतीति समानं पित्तस्थानैः । अतो रक्तरसः (सीरम्) तथा तदिधिष्ठताश्च श्लेताणवः पित्तस्य समानगुणकर्मात्मका इति स्पष्टं भवति ।

कुफ:-रक्तरसादन्यत् अत्यंतमहत्वपूर्णं वस्तु शरीरे विद्यते, येन शारीर-जीवकोषाणां निर्मार्णं, जीवकोषस्थन्यूनाधिकत्वस्य साम्योत्पादनेन तथा तद्गत-क्षीणताया अपि पूरणेन नाशो भवति । येन समस्तमपि शरीरं निर्मितं पालितं च भवति । रक्तप्रवाहादिदं करावाहिनीनां भित्तिषु भूत्वाऽभिसरित, जीवकोषाणां संमततस्संभृतं भवति । इदमेव द्रव्यं लसीकासंज्ञितं (लिंफ्) वर्तते । अस्यां लसीकायां निमग्ना जीवकोषाः (सेल्स्) खाभिलिवां सामग्रीं गृहीत्वा उत्पादयंति अन्यान् जीवकोषान्, विसृजीते स्वसंचितं मलं विकारकरं अस्यामेव लसीकायाम् । सचाऽयं मलोऽन्येनैव लसीकावहमार्गेण प्रस्याद्वत्तो महालसीकावहया ग्रीवासमीपशोणिते संमिश्रो भवति । इदं श्रेतं पिच्लिलं लसीकावहया ग्रीवासमीपशोणिते संमिश्रो भवति । इदं श्रेतं पिच्लिलं लसीकावहया ग्रीवासमीपशोणिते संमिश्रो भवति । इदं श्रेतं पिच्लिलं लसीकावहया ग्रीवासमीपशोणित स्वाति शारीराय नवीनां जीवनसामग्रीं, बलं च । हृद्यस्नायून् तर्पयति । मुखे, आमाशये, आंत्रे, लालायां, तथा जाठररेस स्थित्वा भोजनोष्मणा अभिरक्षति इमान् अवयवान् । मिस्तिष्के सर्वाधिकान् जीवाणून् उत्पादयित पोषयितं च । संधिस्थलेष्विप संचितो भवति । शरीरे कस्याऽपि विषद्वयस्य जाते आक्रमणे, विषयुक्त-द्रव्यसंसर्गे सविषप्राणिदंशजाते अनयेव लसीकया भवति शमनम् । अत इयं लसीका (लिंफ्) तथा तस्या गुणाः कर्माणे च आयुर्वेदीयं कफं स्वगुणकर्मसहितं स्मारयंति साम्येन ।

एवं प्रकारेण वातिपत्तकपानां स्थूलं खरूपं, नर्व्हस्सिस्टिम्, रक्तरसः, लसीका, इत्यादि रूपेण संमुखमुपैति। वातसंस्थानं नाडीषु दरीदृश्यते, तथा एतासु विद्युतः संचारं भूत्वा जायते ज्ञानम् । लोहिते कियता कालेन पीतो रक्तरसः पृथक्तया निष्कासनयोग्यो जायते । विश्लेषयितुमपि शक्यते । लसीकायां फेब्रीन् नामकं द्रव्यं संचितं भवति । एतेषु द्रव्येषु अंतर्निहितास्सूक्ष्माः-शक्तयो विद्यंते, याभिः क्रमशो मेटाँबोलिझम् (शक्तिसंचारः) कटाबोलिझम् (विनाशः) तथा अनाबोलिझम् (रचनानिर्माणं) चलेति ।

दक्षतराः (डॉक्टराः) रोगचिकित्सायां नर्व्हस् टेंपरामेंट, बिर्छायस्, टेंपरामेंट, प्रॅग्मॅटिक् टेंपरामेंट इस्पेतत् त्रित्वं अभिलक्षयंति । इमा एव वातिपत्त-कफप्रकृतयो विद्यंते । नर्व्हस्प्रकृतिर्नरा वातरोगी, तथा प्रॅग्मॅटिकप्रकृतिर्नरः कफरोगी, बिल्यस्प्रकृतिस्तु पित्तरोगी प्रायो भवति । इस्पेतदेव नहि, अपि तु

केषांच न वातस्थानानां (चक्रांगाणां) छेदनेन मानुषिवचाराणां क्रियतेऽन्यथा भावम् । पित्तरसवर्धनेन (ऑड्रेनॅछिन्, पॅंक्रियॉटीन्) क्रोधोत्पत्तिं कर्तुं शक्यते । तथैव पिचुट्रीग्रंथ्यित्तेजनेन मानवः स्थूलो आलसो पुरुषत्वहीनो शांतो मंदश्च शक्यते संपादियतुम् । अतएव आशास्यते इयं विज्ञानवािछः आयुर्वेदतरावैव अचिरात्समारुढा भूत्वा संपादियण्यति जनहितिमिति ।

पित्तम् 🕸

अवधूत वासुदेव वैद्य

आर्यभिषक् वर्ष १४ अंक ९ (१९०६)

' पित्तमाग्नेय '

अप्नेः (तेजसः) पित्तोत्पत्तिभवति।

दृष्टिः पाकः प्रकाश उष्मा पित्तं च तेजसः ॥

आयुर्वेद संहिता

अथ तेजसः (पित्तस्य) दर्शनं चक्षुरुष्माकायाग्निहृदयपर्यंतमिति । तत्र चक्षुर्गतं रुपाणि गृण्हाति । कायाग्निरामाशयपकाशययोरंतरस्था धातुनां चांतरेषु प्रमोचयति । आ. म. दी. ।

पित्तस्य द्वौ भेदौ वर्तते १ तेजसगुणिवशिष्टः २ रूपगुणिवशिष्टश्च । १ इमे द्वे अपि शरीरांतर्गते एव । शरीरे हृदयमारभ्य त्वक्पर्यंतं शोणितेन ऊष्णतायाःप्रिर्मवित । शरीरे प्रत्यहं भवंत्या अजस्रायाः क्षीणतायाः पूरणे जीवनावश्यकस्यान्नस्योदरे समानवायुसहाय्येन पचनं भूत्वा तस्मात्समुद्भवित पोषको रसः । अस्य रसस्योत्पत्त्यै आमाशयपक्काशययोर्वर्तमानानां पित्तविभागानामावश्यकता वर्तते । अस्य रसधातोर्निष्यस्यनंतरं तस्मिन् संचितेन पित्त-विभागेन—कायाग्निना—भिन्नाभिन्ना रक्तादिश्चक्रांता धात्रवो ओजस्सिहिता यथा-

एतेषां अस्यामेव पूर्वपाठिकायां सप्तमेपृष्ठे समारब्धां लेखांशस्ततोऽस्य लेखस्याऽनुवृत्तिर्वर्तते ।

क्रमं निष्पचंते, ततोर्ध्वमिप ओजसो गर्भनिष्पादनकर्मण्यपि अस्य कायाग्नेर्विचते आवश्यकता । अतो रसधातोः परं शोणितमांसमेदादिधात्रपत्तौ कायाग्निसंज्ञक-पित्तस्य वस्तुनो विद्यते आवश्यकतेति निर्गतम् । अतएवोक्तम्—

> खस्थानस्थस्य कायाग्नरंशा धातुषु संश्रिताः । तेषां सादातिदांप्तिभ्यां धातुषुद्धिःक्षयोद्भयः ॥

अनेनैव कायाग्निना धात्वंतर्गतेन धात्नामण्वीभवनं (घटना) भवतीति स्पष्टम् । अतर्वोक्तम्—

> अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तॄणामधिको मतः । तन्मूलास्तेहि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः ॥

अतो धातूनां बृद्धौ मुख्यतस्तैजसगुणविशिष्टस्य पित्तस्य साम्यमाव-ष्यकमिति ।

अस्य पित्तस्य रूपं रूचिरिप संक्षेपेण दीयते । पीतं रक्तं विदाहि कृष्णं चेति । पित्तं पुनराग्नेयमुष्णं तीक्ष्णं रूक्षं लघु कट्वम्लल्वणानुबंधि विशदम्।

- १ बाहुल्यात्पित्तं पीतं, ताम्रं, कदा वा कृष्णं वर्तते ।
- २ तत्पचनावश्यकं रूक्षमुष्णं लघुचास्ति ।
- ३ पित्तस्य रुचिः -तिक्ता, आम्ला, लवणा च विद्यते ।
- ४ तथैवाऽस्मिन्पित्ते—अण्वीभवनशाक्तिः पदार्थघटकधर्मः तथा भेदकता--द्रव्याणुविघटन शक्तिरपि विद्यते ।

मानुषशरिस्य त्रयो विभागा विद्यंते १ कोष्ठः २ हस्तपादाः ३ शिरः । कोष्ठे पित्तपंचेकषु त्रयाणां पित्तानां—साधकपाचकरंजकाणां स्थितिर्विद्यते । शार्षे नेत्रयोराछोचकं पित्तं, सर्वबाह्यत्वचि भ्राजकं पित्तं (व्यानवायुवत्) सर्वत्र वर्तते । साधकपित्तपाचकपित्तस्योग्दमो रक्तादेव भवति, रक्ताधारं तु हृदयं, अतो हृदयस्य विचार आवश्यकः—

हदिस्था देवताः सर्वा हदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः । हदि प्राणश्च ज्योतिश्च त्रिवृत् सूत्रं च यन्महत् ।।

साधकपित्तस्य स्थानं हृदयं वर्तते । तास्मन् व्याप्य प्राणवायुस्तिष्ठति, तथा वर्तते चैतन्यशक्तिरिप, तथैव ज्योतिः (उष्णतोत्पादकधर्मं तेजः) विद्यते । यदेव तेजस्तदेवास्माकं साधकं पित्तमिति प्रतिभाति । हृद्यंत्रं तु चतुःकोष्ट-मयं स्थूल्रेस्तनुभिरसंख्येथेजीलमयैः स्नायुभिर्घटितं विद्यते, तेषु केषांचन स्नायूनां विकासे समकालमेवान्येषां स्नायूनां भवति संकोचः । संकुचितानां स्नायूनां विकासे पूर्वविकासितस्नायूनां भवति संकोचः । इत्येतेन प्रसारणाकुंचनसातत्यन शोणितं दश 'इंच 'प्रमाणकं गच्छति अप्रे । एवं केशवाहिनीपर्यंतमपि शोणितगमने हृद्यंत्रस्य स्पंदनोत्पन्नस्याघातस्य वर्तते आवश्यकता । अयं चाघातो हृद्यंत्रघटकस्नायुगतिजन्योऽस्तिति स्पष्टमेव । इयं च स्नायूनां गितः संकोचविकसनशीला—उष्णताया उत्पादिका । यतः गतिश्चोष्णताच परस्परस्याख्तत्विति प्रसिद्धमेव । अत एव हृस्था चित्कला साधकपित्तस्य सहाय्येन साधयित हृत्कार्यमिति । इयमेवोष्णताऽस्माकं साधकं पित्तं येन जीवतो-न्रस्य हृद्गतिस्तंतं प्रवर्तते ।

रंजकापित्तम्:—रारीरपोषकं, जीवनाधारं (व्हायट्ल् फ्लुइड्) वर्तते देहे रोणितम्। तस्मिन् विद्यंते चत्वारो घटकपदार्थाः १ रक्तकणाः २ श्वेत-कणाः ३ फेब्रिन् इत्याख्यं द्रव्यम् ४ सीरम् इत्याख्यं द्रव्यं च। तत्र रक्तकणानां वर्णस्तामः, श्वेतकणानां वर्णः श्वेतस्तथा सीरम् इत्याख्यस्य द्रव्यस्य पीतो वर्णो विद्यते तथा च एतत् द्रवं द्रव्यम् । अस्य द्रव्यस्य नित्यं क्षपणं भविति। तत्परिपूर्तये छेद्यखाद्यादिपदार्थानां प्रत्यहमावश्यकता च वर्तते। तेषां पचनसमये रूपांतराण्यीप बहूनि भविति। तत्कार्यं तु रूपगुणविशिष्टरंजकिपत्तेन्वेव भविति । अस्य तावदुत्पत्तिस्तु सार्द्धप्रस्थिनताद्यकृताद्भविति। शिरागतं नीछं लोहितं हृदयेऽभिगच्छत् शुद्धये गच्छित फुफ्फुसयोः । तत्र प्राणवाशुमिश्रणात् भविति शुद्धं तथापि तस्मिन् ये उर्वरिता विषमयपदार्था वा क्षारा वा शिरागत-लेहितस्थिविषमयपदार्थक्षारा विद्यंते तेषां नाशस्तु इदमंतिरिद्रियं करोति।

यकृतस्तु पाचकिपत्तोत्पत्तिस्तथा शोणितशुद्धिरिति कार्यद्वयं विद्यते । शरीरेऽभिसरतो छोहितस्य नष्टम्यस्ताम्रकणभ्यो रंजकिपित्तस्योद्धवो भवित यकृति । तदेतत् पित्तं संयुक्तिपत्तवहनिष्ठकया (कॉमन् डक्ट्) आमा-शयाऽभो मुखे याति । पित्तकोषे च संचितं भवित (गोळ ब्ळडर्) तत् आमाशये अन्नपूर्णे जाते सित तस्मादिभसरित (पित्तकोषात्) । इदं पांतिस्निग्धं वर्तते ।

पाचकं पित्तम्-यथाकालं मक्षितमन्नं प्राणवायुसहाय्येन गच्छति जिटरे । तत्र पित्तमिश्रितकफित्रया भवति मृदुरूपम् । तदनंतरं तस्मिन्नामा-शयपकाशयाभ्यां समानवायुकार्येण निर्गतस्य तैजसगुणविशिष्टपाचकिपित्तस्य भवति कार्यम् । तदनंतरं पचनित्रयोष्णताजिनतेन तथाऽन्नप्रविभक्तवातांशेन च रसधातुविभजनं, किष्टविभागिनस्सरणं च भवति । एतावता अने उदरे गच्छिति सित प्रथमा पित्तमिश्रितकफित्रया, द्वितीया उष्णोत्पत्तितो तैजसपि-त्तस्य क्रिया, तृतीया पित्तिक्रियासहाय्येनैव (योगवाद्दिधर्मतो) वातवृष्ट्या बातिक्रिया च भवति । अत्र एतास्तिसः क्रिया अपि पित्तसाहाय्येन यद्यपि जायमानास्त्रथापि या तैजसगुणविशिष्टा द्वितीया पित्तिक्रया येन भवति तदेन बाऽस्माकं पाचकं पित्तम् । इदं पाचकिपत्तं पकामाशयगतं वर्तते । इमानि साधकरंजकपाचकिपत्तानि द्रव्यरूपाणि प्रत्यक्षदृष्टानि विद्यंते ।

आलोचकं पित्तम्—असमच्छरीरे ज्ञानेंद्रियाणां ये विषया वर्तते अनु-मवजन्यास्तेषामनुभवार्थं द्वयोस्साधनयोस्साहाय्यमभीष्टम् । १ एकं बाह्यसृष्टि-गतम्, २ द्वितीयं अंतःसृष्टीस्थम् । एकेन विना अन्येन इंद्रियविषयज्ञानं नैव शक्यम् । यथा ध्वनेः श्रवणाय बाह्यसृष्टी बाह्यवायुकंप आवश्यको तथैव शद्धश्राह्कज्ञानतंतुषु मध्येऽन्तः कंपस्यापि विद्यते आवश्यकता । कृता चैतादशी शारीरयोजनाऽन्तरीयकी । असमच्छ्रवणेंद्रियरचनाऽपि अंतःकंपोत्पा-दनानुक्ला वर्तते । अतो यत् द्वयं या च योजना इंद्रियजन्यज्ञानाय आवश्यिकी तत् द्रव्यं सैव योजना अंतरिष तिस्मिनिंदिये तथैव विद्यते इति सिद्धम् । अतस्तेजोविशिष्टं नेत्रेंद्रियं प्रकाशग्रहणसमर्थं भवति । इयं प्रकाशशक्तियेंन रस-विशेषेण नेत्रगततत्तदवयवेषु समुत्पना विद्यते स एव रस अस्माकमालोचकं पित्तम् ।

भ्राजकं पित्तम् त्विच वर्तते, १ वर्णः, २ विद्यते चोष्णता, ३ कांति-मत्वमपि तस्यां वर्तते । ४ धर्मवाहकत्वमपि तस्यामस्ति, अतो एतग्दुणविशिष्टं संचितं द्रव्यमेव त्वक्स्यं भ्राजकिनिति ।

कफदोषः

सर्वमिष स्थावर जंगमात्मकं पदार्थ जातम् घनरूपं, द्रवरूपं, वायुरूपंमिति त्रिभागावस्थावस्थितं दृश्यते । तथा घनरूपपदार्थास्तु द्रवरूपाद्वायुरूपादेवोत्पन्ना इति च दृश्यते । आधुनिकं पदार्थिविज्ञानशास्त्रमेतदेव कथयति ।
इदमेवास्माकं तत्वपद्धस्यां पंचमहाभूतमय्यां दरीदृश्यते । सोऽयमेव प्रकारोऽस्माकं शरीरेऽपि पूर्णतया युक्त एवेति । रेतार्तवाभ्यां—वायुद्भवावस्थाभ्यां—
शरीरमभिनिवृत्तं भवति । संयोगसंस्कारेण घनरूपत्वमेति । श्रीरघटने,
तजःशक्तिः, वायुः, द्रवपदार्थश्चेति त्रयं मूळतयाऽवश्यकमिति । पूर्वं वायोस्ते
जसश्च संजातो विचारः । क्रमप्राप्तस्य द्रवरूपपदार्थस्येदानीं क्रियते विचारः—

अस्मच्छरीरं द्रवात्मकं, अतस्तस्य द्रवस्य समप्रमाणावस्थितये पानीयस्यात्यंतावश्यकता विद्यते अत एवोक्तं 'पानीयं प्राणिनां प्राणा विश्वमेव हि तन्मयम् । व्यतिरेकदृष्ट्याच 'अन्नहीनो दहेद्धातुरंबुहीनं च शोणित-मिति । औदका भावास्स्नेहः, क्रेदः, शैत्यं, रसो, रसनं, चेति शरीरे वर्तते । यदा शरीरे उदकजन्यो द्रवोभागस्तेजोगुणविशिष्टो भवति तदा स भागः पित्तवर्गे समाविष्टो भवति । तेजोगुणाविशिष्टो द्रवो भागः कप्तसंज्ञ्या व्यवहृतो भवति । अस्य व्याप्तिस्तु रसमांसमेदमज्जाशुक्रम्त्रेषु वर्तते । पूर्व कप्तविषयको विचारस्तु स सर्वदेहस्योपलेपनं वर्ततेत्स्येव कृतोस्ति । अत ऊर्ध्वं तस्य विस्तरः क्रियते ।

कफोत्पत्ति:-विशेषतो आप्तत्वते। अस्योत्पत्तिर्वर्तते तेन अप्गुणाः स्नेहः, क्रेदः, शैत्यं, रसो, रसनं, इत्योदिकास्तु वर्तते श्रेष्मणि । तथा च 'स्निग्धः शीतो गुरुर्मदः श्रव्हणो मृत्सनः स्थिरः कफ ' इत्येतेऽपि गुणाः श्रेष्मणो विद्यंते । तत्र अवलंबकः श्रेष्मा-' उरस्थः स त्रिकस्य खर्वार्यतः ।

हृदयस्यान्नवीर्याच तत्स्य एवांबुकर्मणा । कफधामां च शोषाणां यत्करोत्सवलंबनम् ॥

अतोऽवलंबकः श्लेष्मा'। वाग्भट। 'अथ या एता वक्ष्यमाणा हृदयस्य पुंडरी-काकारस्य ब्रह्मोपासनस्थस्य संबंधिन्यो नाड्यो हृदयपिंडात्सर्वतो विनिसृताः। आदित्यमण्डलादिव रश्मयस्ताः। कथमासां वा आदित्यः पिंगलो वर्ण एष आदित्यः शुक्लोपि एष नील एष लोहित एष आदित्य एव '। (शांकरभाष्यं)।

हृदयपिडान्निर्गतानां नाडीनां वर्णने काऽपि नाड्यः शुक्का वर्तते । आसां किमधं शौक्ल्यम् ! ओजोवाहकत्वात्—ओजस्तु " स्निग्धं सोमात्मकं शुद्धमीषछोहितपीतकम् " इत्यनेन श्वेतवणीत्मकम् । ओजिसि रिनग्धत्वं, शुद्धत्वं, अप्भूयिष्ठत्वं च अवलंबककफस्येव । ओजघटकोद्ययमवलंबकः श्लेष्मा । सोऽयं अवलंबकः श्लेष्मा अन्तरसादाशयप्रमाणानुरूपो हृदये आगच्छति, ततो व्यान-सहाय्येन सर्व देहस्य विशेषतो रक्तस्य जीवनाधारो भवति, सर्वस्मिन्देहे च संचरति । इतरकप्रधाम्नामपि अवलंबनमनेनैव भवति ।

आंग्लवैद्यके तु सर्विस्मिन्देहे संचरतो रक्तस्य संचारिण्यो केशाकाराम्यो निल्काभ्यो रक्तं वहद्भ्यः सर्वित द्रवांशस्त्रस्मिन्तिस्मिन्स्थले, सिच्छद्रत्वात्तासाम्। सचाऽयं संचितो रसो (द्रवांशः) रसवाहिनीभ्यो सर्वदेहप्रविस्तो भवति। सर्वा अपि रसवाहिन्यो वामदक्षिणस्थयोर्बृहद्रसवाहिन्योस्त्यजंति रसं (सांचितं द्रवम्) दक्षिणरसवाहिनी लिंपिटिक्स् डॅक्ट् इत्यभिधीयते, वामरसवाहिनी तु थोरासिक् डक्ट् इत्यभिधीयते । अस्या एव वामरसवाहिन्याः केचन भागा जठरे, क्षुत्रांत्रेचापि प्रसृता विद्यंते । तैर्भागैरन्नस्य

दुग्धववले रसः शोषितो भवति च वामरसवाहिन्यां समाविष्टो भवति । अन्नरसवाहिन्यो लॅक्टिल्स् इत्यभिधीयते । इमे दक्षिणवामरसवाहिन्यौ हृदयावकाशे रक्तवहिशिरायां (एओर्टा) उत्सृष्ट भवतः । इत्यनेन वक्षस्थलावकाशे एताभ्यां वाहिनीभ्यां अन्नस्य चरमें इसस्पा रसो रक्ते समाविष्टो भवति । अनेनैवावलंबक-कफस्य सर्वदेहे ऽस्तित्वं स्थितं भविति । सर्वीसां रसवाहिनीनां कफकार्ये साहाथ्यं भवति ।

क्केदकः -ये च पूर्वं कोष्ठस्थरसाः पाचकपित्तवर्णने उदाहतास्तेषा-मेवास्य क्रेदककफस्य विचारेऽपि नामगृहणमावश्यकम् । तदा पित्तविचारे तद्रसस्थतेजोद्रव्यस्य तस्थितगुणानां च विचारः कृतः । अधुना तद्रसस्थितद्रव-त्वस्य तद्गतगुणानां च विचारस्यावश्यकता विद्यते । चत्वारो अन्नविद्यावकारसा-ऽस्मिन्देहे विद्यंते। १ लालोत्पादकपिंडेभ्यो जायमानः, यस्य व्याप्तिरस्नमार्गे विद्यते यश्च अन्ने संमिश्रो भूत्वाऽगच्छति आमाराये। अयं च प्रत्यहं सार्द्ध-प्रस्थादारभ्य सार्द्धद्विप्रस्थिमतोऽभिनिः सरति । २ द्वितीयो आमाराये एबोत्पन्नो भवति, अयं च नितरां दवः खच्छो वर्णरहितः केवलं जलमयो प्रतिभोजन-वेळायां सपादप्रस्थमितोऽभिनिर्याति । ३ तृतीयो मांसरसविभेत्ता स्वादुपिंडाद्वा क्रोम्नो निस्तो भवति सोऽयं सार्धकुडवमितो भवति । ४ चतुर्थस्तु आंत्राणि तावत् स्निग्धमस्णचिक्कणया त्वचा आच्छादितानि विद्यंते (म्यूकस् मेंब्रेन्) तस्यां त्वाचि विद्यंते बहुवः क्षुद्राः पिंडाः तभ्यः पिंडेभ्योऽभिस्रवस्यऽयं रसश्चतुर्थः । रसधातुनिमिश्रितस्य शोणितस्य मिन्नभिन्नेषु एषु मागेषु वहनकाळे इमे अवयवाः स्वस्मिन् प्रविसृताभिः केशाकारवाहिनीभीरस-शोषणं कुर्वंति । अनेन रससंयुक्तोऽवलंबकश्लेष्मा एव एतेषां अवयवस्थरसा-नामुत्पस्य कारणं भवति । तथा च अस्मिन् रसविद्रावणोत्पन्नानपरिपाके एव अवलंबकस्य तथा रसधातोस्सामर्थ्यमवलंबितं वर्तते । अतर्व ' श्लेष्मा शेषेषु तेनैषामाश्रयाश्रयिणां मिथः '। इति परसारावलंबित्वं स्पष्टं भवति ।

बोधकः श्लेष्माः-अन्नस्य चर्वणसमये जिन्हाया इतस्ततो मुखिवनरे संचरणं भवति । तेन च मुखस्थलालापिंडेभ्यस्त्रवति लाला । येषां पिंडानां

पूर्वपीठिका-डॉ. फ्रामरोज माणेकजी सेठना

कर्णाधःप्रदेशे तथा दंष्ट्रांतर्वितिविवरे अस्तित्वं वर्तते । तेभ्यो यो भवति लालास्रावः स एवास्माकं बोधक इत्यवगम्यते । अतएव रसनास्थायी, रसन-इत्यप्युच्यते ।

तर्पकः –िशरःस्थाने वर्तमानस्य रससमानद्रवसमुद्दस्य नाम तर्पक इति । येन रससम्हेन नेत्रगोलकचलनं, नेत्रयोः शैत्यं, काचवत् स्फटिकवत् ९ पटलवत्वम् समुत्पनं भवति । सचाऽयं मस्तिष्के वर्तते तस्य च ' ज्ञानरसः ' इस्पि भिना संज्ञा वर्तते ।

संधिकः श्लेष्मा-शुद्धश्लेष्मा स्थिरत्वस्निग्धत्वसंधिबंधनत्वकर्मभिः पालयित देहम् । अप्तत्वतो श्लेष्मणि स्नेहनक्केदनादिधमिस्समायाति । अतः स्नेहनधर्मस्य कप्तस्य क्रियते विचारः । साठिले मसृणत्वं स्वभावादेव वर्तते—तत्तु धर्षणप्रतिरोधि, कस्मादिप स्निग्धपदार्थात्स्नेहनस्य निष्कासनसाधनीभूतं च विद्यते । अतोऽन्नरसात्स्नेहनकप्पनिष्कासने, अप्दव्यसाहाय्यं वर्तते । गमन-कियायां स्निग्धद्रवस्य साहाय्यमावश्यकामिति । गतिमच्चक्रयंत्राणां सुगत्से स्नेहनं सूपयुक्तं भवति । शरीरावयवानां सजीवावस्थायां नित्यं भवति चलनं वलनं । एवं संभवत्यिप शरीरसंधिचलनकर्माणि यन्नेव भवति किमपि दुःसं वा कष्ट-स्तस्य कारणं तु संधीनां स्नेहयुक्तत्वम्, सोऽयं स्निग्धः पदार्थ एव श्लेषकः श्लेष्मा वा संधिकः श्लेष्मा । संधयोऽत्र शिरास्नाय्वस्थिमांसपेशीनां विविधा वर्तते, तेषां सर्वेषां गृहणं कार्यम् ।

डॉ. फ्रामरोज माणेकजी सेठना.

'त्रिदोषपद्धतिः ' आर्यभिषक् अंक ६० सन १९०८— इत्येतेरैशवीये १९०० अद्धे कै. आ. म. शंकरशास्त्री पदे इत्येतेषां जातस्य व्याख्यानस्य सारांशरूपो निबंधो व्यलेखी, तस्य निबंधस्य सारोद्धारः क्रियते विषयानुरोधतः ।

आर्यवैद्यकस्य मूळं वातिपत्तकफाः । चिकित्साशास्त्रे शारीरज्ञानं

प्रस्थक्षम् लक्तमवस्यं। तथापि अनुमानं, उपमानं, आप्तवाक्यानीति ज्ञानसाधना-नीति अवगंतन्यम् । आप्तेस्तु स्वीयं ज्ञानं केवलायां जडसृष्ट्यामेव नैव संगृ-हीतमपि तु जडसृष्ट्याः परतो विद्यते किमपि चैतन्यनामकं वस्तु, तत्साहा-य्येनापि तैर्ज्ञानावप्रहः कृतो विद्यते ।

जडं चेतनं चेति शक्तिद्वयं प्रस्परतो भिन्नं वा चैतन्यमेव केनापि रूपेण जडतामाप्रोति वा जडमपि चैतन्यत्वमेति ! इत्यस्मिन्विषये बहवः संशयास्समुत्पन्नाः, अतः परमपि समुत्पत्स्यंति नानाविधाः संशयाः । तथापि जडस्य चेतनस्य च न्यूनाधिकत्वं भवति, न्यूनाधिकत्वेन च एकस्मिनपरस्य वृद्धिस्तथा एकस्य हानिर्भवति इति प्रत्ययः समुपैति, अतो इमे भिने शक्ती वर्तेते इत्यपेक्षया अयं संयोगिविशिष्टो रासायनिकः प्रयोगो वर्तते इति वक्तुं वा गृहीतुं युक्तम् । इत्यनेन स्थितिविभिन्नत्वेन अनयोः पार्थक्यं, तथा शक्तिवै-शिष्ट्यादनयोरैक्यं खीकर्तुं शक्यं भवेत् । रासायनिकप्रयोगकर्तारस्तु जानंस्थेव यथा कस्याऽपि पदार्थस्याकाशे विद्यते वायुरदृश्यः। स च कयापि क्रियया तस्मादाकाशात् पृथक्कर्तुं शक्यः । अतः शक्तिरूपो वायुश्चैतन्यावस्थायां अद-इयोऽपि रासायनिकप्रयोगेण स भवत्येव दश्य इति सिद्धं भवति । तथा च अस्मादिप विपरीतमिप कर्तुं शक्यते । यथा पाषाणस्य चूर्णं परमाणुरूपं कृत्वा एतादशी तस्यावरथा कर्तुं शक्या या अदृश्यखरूपं प्राप्तुयात् । इस्यनेन यत्र यस्य विशिष्टं शक्तिमत्वं तत्र तस्य भूयस्वेन दर्शनं वैशिष्ट्येन ज्ञानं च भवति ।

शरीरस्य अंतर्रचनायास्सामान्यं विशिष्टं च ज्ञानमावश्यकं येन सम्यक्तया सर्वे ज्ञानं भवेत् । आंग्लवैद्यशास्त्रे ' नर्व्हस् सिस्टिम् , डायजे-स्टिब्ह सिस्टिम्, लिंपॅटिक् सिस्टिम्, इति त्रिप्रकारास्संस्था विद्यंते याभिस्सर्व मिदं शरीरं खर्जावनन्यापारं करोति । नर्न्हस् सिस्टिम् ' इत्याख्या संस्था संस्कृतभाषायां ज्ञानतंतुरिति, डायजेस्टिव्ह सिर्स्टिम् इत्याख्या संस्था पचन-व्यापार इति, लिंपॅटिक् सिस्टिम् रसवाहिनी व्यवस्था इति च व्यवहृयते कै।श्चित् । ज्ञानतंत्नां विद्यंते चत्वारो भेदाः -प्रथमो ' सेरिब्रोस्पायनङ् सेंटर, मस्तिष्कस्य तथा पृष्ठवंशस्य ज्ञानतंतूनां भागः, अस्य द्वितीयं आंग्लनाम

' ऑक्सिस् ' इस्रिप वर्तते । मस्तुलुंगं मस्तके विद्यते, तस्यैवांशः पृष्ठवंशे समागतोऽस्ति । नर्व्हस् सिस्टिम् इत्याख्यायास्संस्थाया मुख्यस्थानं शिरोभ्यंत-र्गतं मस्तिष्कम् । तस्य तंतवे। ' नर्व्हज् ' इत्यभिहिताः । तेषां च शक्तिसा-धकाः कणाः (गाँग्छिया) तथा 'ऑर्गन्स् ऑफ एक्स्टर्नेट् सेन्सिस् ' ज्ञानतंतुभ्यो बाह्यज्ञानप्रदातारा ज्ञानप्रदाः परमाणव इत्ययं चतुर्धा विभेदो विद्यते, येन क्रियाशक्तिक्ञीनशक्तिस्संभवति । एतेषां चतुर्णां समुदायो नाम ' नर्व्हस् सिस्टिम् ' इति कथ्यते ।

शरीरं गतिकिया, ज्ञानिकया च सुन्यवस्थितया पद्भत्या भवितुं अस्या-स्मंस्थायाऽत्यंतावश्यकता वर्तते । अस्यां संस्थायां यत्किचिद्पि न्यूनत्वमधिकत्वं स्यात्तेनैव गतिज्ञानशक्तयोरपि न्यूनत्वमधिकत्वं भवेत् । अतिरयं संस्था सर्व-शरीरव्यापारेषु मुख्या प्रधानतमा च । अतरियं मुख्या शक्तिर्विद्यते । मुख्याशक्ति-रिति वर्णनेन केवला इयं शक्तिरेव, निह दृदयः पदार्थ इति नैव मंतन्यम् । पंचज्ञानेंद्रियाणां, पंचकर्भेंद्रियाणां तथा मनस्थ्र सर्वा अपि क्रिया अस्या एव प्रवर्तते । अपरा च या संस्था-डायजेस्टिव्ह सिस्टिम्-इति गदिता तस्या मूळं यकृत् वर्तते । यकृत उर्ध्वं एका विद्यते 'गाँल ब्लंडर' नाम्ना पेशिका तस्यां यकृति च, अन्नस्य पचनकरणसमर्थी विद्यते एको रसः स च यदा पचनयोग्यः पदार्थ आमाशये समुपैति तदा तस्मिन् मिश्रितो भवति तेन च पचनकार्यं साधु चलति । पित्तपेशिकास्थपित्तद्रवेण शरीराव-इयकस्योष्णस्यापि भवति लाभः । इत्यनया पद्धत्या तस्याः कार्यं शरीरे प्रवर्तते । तृतीया च या लिंफॅटिक् सिस्टिम् इत्युक्ता तया रसवाहिनीभ्यो रसवहनं भूत्वा यथोचितस्य शैत्यस्य लाभः शरीरे जायते । इति संक्षेपतरितसणामपि संस्थानां वर्णनं कृतम् । चलशक्तेर्वातस्य कार्यं, नर्व्हस् सिस्टिम् इत्यनया, पित्तस्य कार्यं डायजोस्टेव्ह सिस्टिम् इत्यनया संस्थया, कफस्य कार्यं लिफॅटिक् सिस्टिम् इत्यनया च संस्थया भवतीति वक्तुं युक्तम् । इमास्तिस्रः शक्तयोऽपि वक्तुं यक्तम् । शक्तिरिति चेतना, इयं कार्यकर्त्रा विद्यते । चैतन्यरूपायै शक्तयै

यथा यथा स्वरूपं प्राप्तं भवति तथा तथा सा भिन्नभिन्नस्वरूपा भूत्वा भिन्नं भिन्नं करोति कार्यम् । खादिद्रव्यांणां पंचज्ञानेद्रियै: पंचकमेद्रियैर्यदा संयोगो भवति तदा चैतन्यानुभवो भवति । असंयोगे द्रव्याणामचेतनत्वं वर्तते। स चायं संयोगो यया शक्तया भवति, तस्या यावस्त्रमाणं शरीरे स्यात्तावस्त्रमाणं कार्यं भवेत् । यस्मिन् यस्मिन् पदार्थे इयं शक्तिर्यथा यथा संयुक्ता भवति तथा तथा अस्या अपि शक्तयास्संयोगिश्यितिरपि भिन्ना भवति । बाह्यसृष्टेस्सकाशादियं शक्तिरतर्गञ्छती, यश्च प्रकारो अस्या भवेत् तस्माद्भिनः प्रकारोऽन्तर्भवेत् तस्मा-दपि भिन्नः प्रकारोत्यंतांतर्गमने भवेत् । शुद्धो बाह्यो वायुः शरीरे गच्छन् यदा तस्य रुधिराभिसरणे किया भवति तेन रुधिरस्य स्थळे स्थळे अस्य संयोगाद्भिना भवति स्थितिः । तेन च वर्णसंक्रमणमपि भवति । प्रथमं ईपःकृष्णः, पश्चात्कृष्णः, तदनंतरं शुद्धस्रूपप्राप्या ईषत्ताम्रः, अनंतरं ताम्रः, पश्चात्तामृतमो वर्णी रक्तेऽभ्युपैति । अस्य वर्णातरस्य कारणं संयोग एव । सच संयोगः शक्तया एव । रक्तसहितायाः शक्तया एवाऽयं वर्णस्वरूपसंज्ञमो भवति। यदा द्वौ पदार्थौ अभि-न्नियया संचरतस्तदा अन्योन्ययोर्गुणावगुणानां उभययोरिप यथा प्रसंगतः संसर्गो भवतीति सूक्ष्मदर्शक्यंत्रेण दृश्येभ्यो रक्तस्य त्रिभ्यो वर्णेभ्य एवावबोधो भवति । इयमेव चैतन्यशाकिरार्यवैद्यके बायरिति भण्यते । सचाऽयं वायरदृत्य-स्मंयोगवशाद्वा दृश्य इति द्विप्रकारको भिवतुं शक्यः । चैतन्यशक्तेर्यदुपरितनं वर्णनं वायोरिप यथावद्युज्यते । संपूर्णावकाशे प्रदेशे गत्युत्पादनेन वायोस्स्परीज्ञानं समुद्भवति तस्मिन्नवकाशे निस्पंदरूपेण गतेरनुत्पादात् स च स्पर्शवान् वायु-र्नैवानुभवतामेति, इस्पनेन आकाशे बायुर्नास्सेवेस्पनुमानमयुक्तं वायोस्सत्वात् । अत्राकाशे गत्युत्पादनित्रया वायुनैव क्रियते, तथैव वायोरिस्तित्वमनुभवतामेति, अत एव वायुश्वल इति वर्णितः । स चाऽयं वायुः केनाप्यन्येन पदार्थेन मिश्रितो बा तिसमन् कोपि संस्कारः कृतश्चेत्स दृश्योऽपि भिवतुं शक्य एव । तस्य तावत्तदानीं खरूपं संस्कारानुरूपं भवेत् । तथापि तस्य तावत् खीयं रूपं नीछं स्यामं वा शास्त्रकारैर्वणितम् । वायोर्वणनं चरके वातकलाकलीयाध्याये 'वायुस्तंत्रयंत्रधर' इस्यनेन सुविस्तृतं कृतमेव । शरीरे यानि दश्याणि द्रव्याणि विद्यंते तेभ्योऽन्यो

पूर्वपीठिका-डॉ. फ्रामरोज माणकजी सेठना.

वायुस्तेषु कियासामर्थ्योत्पादको विद्यते। स च वायुस्तेषु कियानिमित्तं संमिश्रो भवित तदा स च दृश्यस्वरूपत्वमेति। शरीरे विद्यते सर्वत्र चलशक्तिः। सा च आंग्लवेद्यके 'नर्व्हस् सिस्टिम्' इति गीयते। 'नर्व्हस् सिस्टिम्' इत्याख्या व्यवस्था दृश्या वर्तते। तस्याः कार्यं गतिरूपं ज्ञानशक्तिरूपं च वायोरेव वर्तते। दृश्या या ' नर्व्हस् सिस्टिम् ' रचना सास्माकं नैव वायुस्तिर्द्धं तस्यां रचनायां या चलशक्तिर्विद्यते सैवास्माकं वायुः।

१ प्राणवायुः-आंग्लवेद्यकीयो सेरिब्रोस्पायनल् सेंटर् अथवा ऑक्सिस्।

२ उदानो वायुः-सर्व्हायकङ् प्रेक्सस् ।

३ व्यानो वायुः-कॉर्डियाक् प्रेक्सम् ।

४ समानो वायु:-सोलर् प्रेक्सस् तथा लंबर प्रेक्सस्।

५ अपानो वायु:-हायपोगस्टिक् तथा सेक्रल् प्रेक्सस्।

एवं जगित चलखरूपः शक्तयात्मको वायुर्वर्तते । तथापि संयोगव-शात् उष्णशीतधर्मी समुद्भवतः । ताभ्यामिप शरीरस्य कार्यमकार्यमिप भवित । केषांचन मतेन गत्या एव मंद्रा क्रिया तथेव तीवा क्रिया भवित तथेव शिवो-ष्णयोः पदार्थयोरन्भवोद्भवित । अस्रंतस्क्ष्मिवचारेण तु चैतन्यमेव सत्यं वस्तु । सर्वमिप चैतन्यमयमेव । तथापि चैतन्यशक्तिरेमे द्वे शक्तिति कल्पिते तथापि तयोज्ञीनमिप परमावश्यकमेव । शरीरे पचनव्यापारकारिणी द्वितीया वर्तते शक्तिः । तयोः शक्त्योस्समानगुणाः पदार्थास्ते तयोघीटकावयवा वा तयोर्दश्य-स्वरूपाणि इति गृहीतुं युक्तमेव । जडतत्वपद्भत्यापि दृष्टं चेत् इमे द्वे साधने शरीरस्योपयुक्ते एव । आंग्लपद्भत्या 'डायजेस्टिव्ह सिस्टिम्' तथा 'लिंफॅटिक् सिस्टिम्' द्वे पद्भती वर्णिते वर्तते । तयोर्मध्ये पचनादिव्यापारकारिणी 'डायजे-स्टिव्ह सिस्टिम्' पित्तसमाना वर्तते । 'लिंफॅटिक् सिस्टिम्' कफस्य लक्षणसमाना विद्यते । एतयोरिप कफिपत्तयोः पंचपंचप्रकारा आयुर्वेदे वर्णिता विद्यते । रस-वाहिनीभ्यो कफस्य कार्यं भवतीति तस्य च स्थानं उर इति पाश्चात्यवैद्यकेन स-मानमेव । स चाऽयमुरिस वर्तमानः कफः स्क्ष्मस्वरूपः परमगुद्धश्च वर्तते । यश्च बहिरायाति सिंघाणकरूपः ष्टीवनरूपः कफो से चाँऽशुद्ध एव । रजश्च तमश्च मानसदोषो वर्तेते । त्रिगुणात्मकं जगत्, पंचभूतेषु सूक्ष्मतया त्रिगुणानां सत्वरजस्तमसां सूक्ष्मरूपेणास्तित्वं वर्तते एव, तथा वातिपत्तकफेष्विप त्रिगुणानामित्तत्वं विद्यते, तथापि मानसौ दोषो रजस्तमसी, शारीरदोषाः कफिपत्त-वाताः पृथक्तयाऽयुर्वेदे विर्णिता विद्यंते । मानसदोषाभ्यां शारीरदोषा विकृता मंवति । शारीरदोषिर्मनोदोषो विकृतौ भवतः । इत्ययं परस्परेषां मिथः परिणामोऽनुभवमायाति एकपोनित्वात्, समानधर्मत्वात्, परस्परस्परेषां मिथः परिणामोऽनुभवमायाति एकपोनित्वात्, समानधर्मत्वात्, परस्परस्परेषां प्रातन् दूषयंति, धातवो दुष्टा मलान् दूषयंति, मला दुष्टा मलायनानि दूषयंति, श्वा च रोगप्रादुर्भावो भवति । दोषाः स्वयं दुष्टा भवति, परास्परानिप दुष्टान् कुर्वति, अथ च धात्न् मलान् दूषयंति, परं मला वा धातवो वा नैव कदाचित् दोषदृषका भवंति सामध्यीभावात् । अतएव ते दोषसंज्ञया संिज्ञता भवंति ॥

'वैद्यरत्न' स्व. कविराज जोगेंद्रनाथसेन एम्. ए. कलकत्ताः

चतुर्दरावैद्यसंमेळनसभापतिभाषणे प्राहुः

दोषत्रयवादः

" व्याधीनामाश्रयः शरीरं, सत्वसंज्ञं मनश्च । व्याधीनां कारणं त्रिविधम्—असात्म्येदियार्थसंयोगः, प्रज्ञापराधः, परिणामश्च । तत् त्रिविधं कारणं शरीरचरं वायुं पित्तं कफं च दूषियत्वा विकारान् उत्पादयति । तत्र वायुः शीतो छघुः सूक्ष्मश्चलो विशदः खरश्च । पित्तं सस्त्रेहमुण्णं, तीक्ष्णं, द्रवमम्लं सरं, कटुकं, च । कफो गुरुः, शीतो, मृदुः, स्त्रिग्धो, मधुरः, स्थिरः, पिच्छिलश्च ।

ते च वातिपत्तकमा यदा समाः प्रकृतिमापनास्तदा देहं धारयंति, अतो धातत्र इत्युच्यंते । यदा त्रिषमा विकृतिमापनास्तदा देहं दूषयंतीति अतो दोषा इत्युच्यंते, मिळिनीकरणान्मळा इत्यपि । तथा च शारंगधरेणोक्तम्

पूर्वपीठिका-राजवैद्य रामप्रसादजीः

शरीरदूषणादोषा धातको देहधारणात्। वातिपत्तकमा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः॥ इति ''

वैद्यरत्न राजवैद्य पंडित रामप्रसादजी (पतियाला)

स्त्रीये विंशतितमवैद्यसंमेळनसभापतिपदप्रयुक्तसंभाषणे प्रोचुः-

आयुर्वेदीयशारीरज्ञाने, वातिपत्तकफानां त्रिदोषापरपर्यायाणामिप ज्ञान-मस्यावश्यकम् । वाग्भटे प्रोक्तम्—

> ' वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः । विकृताऽविकृता देहं प्रीति ते वर्तयंति च ॥ '

अर्थात् वायुः पित्तं कपः इमे शरीरस्थास्त्रयो दोषाः । इमे साम्याव-स्थावस्थिता देहधारणं कुर्वतो धातव इत्युच्यंते । यदा मिध्याहारविहारैमीलिना भूत्वा रसादिसप्तधातून्मलिनी कुर्वति तदा ते 'मला ' इत्युच्यंते । 'दूष-यंतीति दोषा ' इति वाक्यं वातिपत्तकपेभ्य एव सम्यक् संज्ञितं भवति ।

संपूर्णस्य जगतः स्वास्थ्यकारणं यथा चंद्रमा, सूर्यो वायुश्चेति । तथैव संपूर्णमानवानां स्वास्थ्यं वातपित्तकफानां साम्यावस्थाऽऽयत्तम् ।

संपूर्णस्य प्राणिमात्रस्य, शरीरे सदैव भवंति तिस्नः क्रियाः । यथा संचालनं, स्वेदनं, स्नेहनं, इति । एतासु संचालनिक्रयाकारको विद्यते वायुः, यथा सर्वशरीरिक्रयाकरो विद्यते तथा मनसोऽपि नियंता प्रणेता च विद्यते । मनसोगत्याः किंचिदपि जाते परिवर्तने शारीरवायोः क्रियासु संजायते विकृतिः । छंघनाद्यैयथा वातस्य साम्यावस्था नश्यति तथैव कामशोकादिमनोविकारैरपि भवति वायोः प्रकोपः ।

यथैव वायुस्समो शरीररक्षणं पोषणं च करोति, विकृतः शरीरविनाशं करोति, तथैव पित्तमपि खेदनपाचनादिक्रियाभिः शरीररक्षां, अन्नस्य पाचनं, बातकप्रयोः साम्यं, रसस्य लेहितस्वरूपापादानं करोति । स्वीयैः प्रकोपणैः प्रकुपितं पित्तं यथा व्याधिकरं भवति तथैव क्रोधिरूपमनोविकारेण विकृतं भद्भववित विकारकरम् ।

एवमिप श्लेष्मा स्नेहनादिस्शीयगुणैः शरीरं पालयति । निजहेतुभिः प्रकुपितस्सोऽपि यथा नानारुजाकरस्संपद्यते । तथैव मनसस्तुष्ट्याऽपि स्थाल्यादि कप्पविकारास्संजायते । ताल्पर्यमिदभेव यत् मनोविकाराणां त्रिदोषाणां वर्तते कोऽपि पारस्परिकस्संबंधः । इत्येते त्रिदोषा आयुर्वेदे शरीरस्य धारणपालन-कर्माणि, तथा दीर्घायुष्ट्वे च सर्वथा कारणं विद्यंते ॥

श्री. पं. गोवर्धनशर्मा छांगाणि भिषकेसरी (नागपूर)

खीये भाषणे अधिजगुः

"कथमेते बातादयस्त्रय एव दोषा भाषतुमहैति है विविधावस्थास्थानोपद्रवप्रकाराणां विकाराणामुरपत्तिकारणिमस्थाशंक्यते कैश्चिदायुर्वेदत्यवानिभेज्ञरतो निवेद्यते किंचित् । सुविदितमेबारत्यायुर्वेदविदां यदप्रिसंस्ययानामातंकानां सामान्येन भवित शोधदाहरालामकं त्रिविधमेब स्वस्तुम् । सर्वेषामिप रोगाणां शूलसंभवाः शूलात्मानो वा, दाहसंभवा दाहात्मानो वा, शोधसंभवा शोधात्मानो वा इति त्रिधैव भवित सुगमं संस्थानम् । शूलदाहरोधाश्चेतेवातिपत्तकफोद्भवा एवेत्युक्तमायुषो वेदे । " यथा—' शूलं नर्तेऽनिलाहाहः
पित्ताच्छोफः कफोदयात् " इति । तथैव " कुषितानां हि दोषाणां शरीरे
परिधावताम् । यत्र संगः स्ववैगुण्याद् व्याधिस्तत्रोपजायते ।" इत्यनेन संगादेव
संभवो व्याधीनाभिति प्रतिपादितम् । संगस्यवापरं नाम शोध इति । प्रकारेणानेन
संचितस्य रोगोत्पत्तिकारणद्रव्यस्यै दरीदृश्यते रोगविज्ञाने " आम " इति
नाम्नाऽपि व्यवहारः । व्याधिविज्ञानोपवर्णितमिद्मामास्यं, दोषास्यं, मलास्यं, वा
द्वयमेबाहारोपयुक्तिर्द्वयांतरेस्तद्गुणानुरोधेन शूलदाहशोधानामेतेषामन्यतमस्य
बा भवत्युत्पादकम् । आस्यायते चशूलादिकारणानां वातादीनां प्रकोपणमिति ।
' दुष्टा वातादयो दोषा ' इति व्यपदेशोऽपि शुलशोथादिकारणानामेव द्वव्या-

णाम् । तत एव प्रचिता संचयप्रकोपप्रसरस्थानसंश्रयव्यक्तिभेदानां सुश्रुतो-क्तविकाराणां परंपरा । सिद्धत्येवं शूलदाहशोथात्मकस्य विकारनिकरस्य कर्तारो बातादयस्त्रयो दोषा एव ॥

डॉ. पोपट प्रभुराम वैद्य एल्. एम्. एस्. प्राणाचार्य (मुंबई) स्वीये गुर्जरप्रांतीयसंमेलनसमये (१९२५) समापतित्वेन प्रोक्तवंत:—

' नायं वातः कोऽपि साधारणवायुः, किंतु जीवनरक्षायां संबद्धायाः सर्वस्याः क्रियायास्तथा तत्कार्यस्य कर्तारस्सर्वे अवयवास्तेषां गतिप्रदा विद्यते काऽपि महती शक्तिः।

यद्दमनवेलायां निर्गच्छिति पीतं द्रब्यं तदेव पित्तमिति सर्वथा प्रमादप्र-चुरं, किंतु शरीरे सततं जायमानाः किया यासु कियासु मध्ये शरीरे उष्णताया यथायोग्यस्संचयो यथा सुरक्षितो भवति, यया च भवति यथायोग्यमन्नस्य पाचनं, यया भवति शोणितस्योत्पत्तिर्वृद्धिश्च, तथैव शरीरस्वास्थ्याय आवश्य-काणां भिन्नभिन्नरसानामिप यया समुत्पत्तिर्भवति, यया च शरीरोपयुक्तद्रव्याणां जायते गृहणं, किष्टमलादीनां च भवति उत्सर्गः, एतादशी विद्यते काऽपि पित्तमिति शक्तिः।

तथैव कसनवेलायां बिहरागच्छन् स्निग्धमसृणः पदार्थ एव श्लेष्मेति नैव सत्यं, किंतु शारीरोष्णतायाः स्वीयेन सामर्थ्येन नियमनं कृत्वा शरीरे शैल्यमादधाना, तथैव भिन्नभिनानां रसानां स्निग्धादिपदार्थाणां प्रसिवत्री विद्यते काऽपि श्लेष्मेति शक्तिः ।।

यावत् वातिपत्तकपानां कार्याणि शरीरे समानेन परिमाणेन जायंते, तावत्पर्यंतं ते 'त्रिधातु ' संज्ञया व्यवहृता भवंति । एतेषु कार्येषु यदा भवति न्यूनाधिक्यं, तेन च रोगोत्पत्तिसंभवोऽपि दृश्यते तदा ते 'त्रिदोष ' संज्ञया संज्ञिता भवंति । सांप्रतं इंदियविज्ञानशास्त्रस्याऽपि अभ्यासो नितरामावश्यक एव । यक्नदामाशयहृदयमस्तिष्कांत्रफुफ्फुसादिभिरवयवैर्यानि भवंति शरीरेकार्याण

१३९ पूर्वपीठिका-वैद्यराज त्रिंवकलाल त्रिभ्रवन मुनीः

तानि सर्वाण्यपि सम्यगवगत्य पश्चादेषां सर्वेषामपि अवयवकार्याणां सामुदायि-केन बलेन शरीरखास्थ्यार्थमस्तित्वमुपयातानां वातिपत्तकपानां याश्च भवंति क्रियास्ताभिः शरीमिदं खस्थं, समर्थं च भवति । अतएव बातिपत्तकपा-स्त्रियातव इत्युच्यंते ।

कै. वैद्यराज त्रिंबकलाल त्रिभुवन मुनी (मुंबई)

गुर्जरप्रांतीयत्रितीयअधिवेशनसभापतिः १९२७ प्राह ।

" अनेकवर्षपर्यंतं आंग्लेवेद्यकप्रवीणा गृण्हंति आक्षेपं यत् आयुर्वेदस्य मूलसिद्धांत एव अशास्त्रीय अवैज्ञानिकश्चेति । न तु ते वातिपत्तकफान् जानंति । अहं ताविद्स्येव दर्शियतुं प्रयते यदयं त्रिदोषसिद्धांतो वैज्ञानिकैः स्वीकृतेन 'प्रोटोष्ठाझम् ' सिद्धांतेन कथं कियत्प्रमाणेन समकक्षामिध-रोहतीति ।

वाग्भटेन 'ते व्यापिनो ' इत्यनेन त्रिदोषाणां व्यापकत्वं वर्णितम् । व्यापकस्तु पदार्थस्स एव यो हि सूक्ष्मातिसूक्ष्मेषु अणुप्विप विद्यमानो भवेत् । इत्यनेन त्रिदोषाणामिस्तत्वं प्रत्यणौ सिद्धम् ।

१ ' प्रोटोष्ठाझम् ' पदार्थस्तु सूक्ष्माणुरूपः त्रिदोषा अपि व्यापित्वेन अनुरूपास्सूक्ष्माश्च, २ ' प्रोटोष्ठाझम् ' सिक्रयिश्चिदोषा अपि क्रियावंताः ३ प्रोटोष्ठाझम् पदार्थेन रसरक्तस्त्राच्चादिसंपूर्णं शरीरमुत्पन्नं भवति, त्रिदोषैरिप संपूर्णशरीरस्योत्पिर्निमेवति । ४ प्रोटोष्ठाझम् पदार्थेन समुत्पन्नया नर्व्हस् सिस्टिम् संज्ञायाः प्रणाल्याः क्रियाभिर्यथा ज्ञानं, भानं, इच्छा, इत्यादि समुत्पवते तथा आयुर्वेदीयवातेनाऽपि ज्ञानं, भानं, इच्छा, इत्यादीनां समुद्भवो भवति । भवंति च सर्वा अपि चलनवलनादिकाः शारीरचेष्ठा, उभाभ्यामिप समाना एव ।

प्रोटोप्ठाञ्चम् पदार्थे 'व्हाइट् कार्पम्सकल् 'इति द्रव्यस्य यो विद्यते समुक्केखस्तत् द्रव्यं अर्धद्रवरूपं (सेमिफ्लुइड्) विद्यते, तदेवास्माकं पित्तं

पूर्वपीठिका-हाराणचंद्र चक्रवर्ती व यामिनी भूषणराय. १४०

तथा तस्मिन् द्रव्ये यश्च घनरूपः पदार्थस्स एवाऽस्माकं कफ इति गृहीते वातिपत्तकफानां शास्त्रसिद्धमस्तिलं सिद्धं भवति ।

के. कविराज हाराणचंद्र चक्रवर्ती [कलकत्ता] बंगालप्रांतीय वैद्यसंमेलन सभापतयः।

" महाशयाः, आयुर्वेदस्य वैज्ञानिकत्वे तथा त्रिधातुसंबंधे च किमपि वक्तुमावश्यकम् । त्रिधातवः के अस्मिन् विषये वर्तते बहूनि मतानि परं धन्वंतरिस्तु सारहयेन सुंदरां व्याख्यामाचख्यो ।

' विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ॥ धारयंति जगदेहं कफपित्तानिलास्तथा '॥

यथा समस्ते जगित चंद्रसूर्यवायवो यथा कार्यं कुर्वंति तथैव जीवदेहे कफिपत्तवायवः कार्यं कुर्वंति । इस्यनेन त्रिधात्नां खरूपगुणिक्रयाणां संकेतः कथित एव । कफस्य खरूपं जलं, शैलादिगुणा, रसदानं वा विसर्गः क्रिया, पित्तस्य खरूपमिमस्तपादिगुणः, आदानं वा रसशोषणं क्रिया, वायोः खरूपं बायुः शैल्यादिगुणः, पित्त्वालनं वा विक्षेपः क्रिया वर्तते । त्रिधात्नां साम्या- बस्था नाम खास्थं, वैषम्यं नाम रोगः । शरीरस्य धारणं कुर्वंतीस्यतिस्रिधातव उच्यंते । विगुणास्संतो शरीरे दोषाणामुत्पादनं कुर्वंतीत्यतिस्रिदोषा उच्यंते । "

कविराज यामिनी भूषणराय (कलकत्ता)

अतः परं येषु शारीरं मानसिकं च स्वास्थ्यं निर्भरं वर्तते तेषां वातिपत्तकफानां कियते बिचारः ।

त्रिदोषसिद्धातं पारंपर्येण स्वीकुर्वति पाश्चात्याऽपि । पाश्चात्यवैद्यके यश्च विद्यते ' नर्व्ह फोर्स ' स एवायुर्वेदीयो वायुः ।

' एन्साय्क्रोपीडिया ब्रिटानिका ' नामके विश्वकोशे " मि. एम्.

१४१ पूर्वपीठिका--पं. वैद्यराज भिकाजी विनायक डेग्वेकर.

कोन्डिक '' नामकः पंडितः कथयति ' नर्व्ह ' नामिका संस्था कस्याऽपि विशिष्टायाः शक्तया वाहिकास्ति, तस्याः शक्तयाःयाथातथ्यदर्शकनामामिश्राना-भावात् ' नर्हफोर्स ' इत्येव वयं ब्र्मः ।

पित्तकप्रविषयकी कल्पना काऽपि पाश्चात्यवैद्यके सुयोग्या नैव विद्यते।

डॉ. फास्टर नामको दक्षतरो ब्रूते, यत् नित्यं प्राणिशरीरं मृयते तस्याऽयं भावः यत् प्रतिक्षणं शरीरस्य कश्चनोपि घटकः प्रिक्छन्नो भवति, नाशं च गच्छिति । सत्यत्वेन जीवत् प्राणिशरीरं न दग्धं भवित, यतस्तिस्मन् विद्यते बहुतरो जलाशः । परं यदि तत् शुष्कं कृतं चेत् 'ऑक्सिजन् नामक वायुसाहाय्येन इंधनवत् ज्वलनक्षमं भवेत्तथा तस्मानिगच्छित् ऊष्णता, तथा काऽपि शक्तिः । यत् शीर्यते तत् शरीरं इति आयुर्वेदेऽपि पठितं तथा पित्तस्याऽपि किया ज्वलनवच्छरीरदाहिका विद्यते ।

कफस्य क्रिया अग्नेः सकाशाच्छरीरसंरक्षणरूपा विद्यते । पित्तं नाम सूर्यः, कफो नाम चंद्रमा, अस्यार्थः पाश्चात्यैवद्यकशास्त्रमपि पर्यायतास्त्रदोष-सिद्धांतं समामनति ।

पंडित वैद्यराज भिकाजी विनायक डेग्वेकर

९म्. ए. एळ्. एळ्. बी. (जबलपूर)

"कणादः-१ इंदं जगत् परमाणुभिर्निष्पन्नं (ॲटम्)

२ संयुक्तैः परमाणुभिर्गुणानामाभिनिष्पत्तिर्भवति ।

३ शरीरं मनश्चायुरिप परमाणुभिरेवाभिसंपन्नं विद्यते ।

पृक्षमा नित्याश्च परमाणवो जगन्कारणं, तेभ्यस्संयुक्तभ्यो भिन्नानां
 पदार्थानां भवत्याविभीवः । कणादमतानंतरमप्रे सांख्यानां मतोत्पत्तिर्जाता ।

पूर्वपीठिका-पं. वैद्यराज भिकाजी विनायक डेंग्वेकर. १४२

सांख्यमतमः -- एकस्मादेवाखिलस्य विश्वस्योऽत्पत्तिर्वभूव । आधुनिकैः पाश्चास्यपंदितकृतैस्संशोधनैविंगुत्प्रवाहसहाय्येन परमण्नां स्वरूपमपि विभिन्नं कर्तुं शक्यते । अयं भावः -- मूलतत्वं तु एकमेव, परं तस्यानेकानि रूपाणि भवंति ।

सत्कार्यवादः कस्मिनिष पदार्थे तन्मूलतत्वं सूक्ष्मत्वेन प्रतिवसित । यतः शून्यात् शून्यस्यैव भवेदुत्पत्तिः । सतः पदार्थस्य कारणं तु सदूपमेवाव-इयकम् । इदं तु सत् सूक्ष्मं नाम अन्यक्तं (प्रकृतिः) विद्यते ।

इदमेव सुश्रुतमतम्।

व्यवसायात्मकया बुद्ध्या संयुक्ता विद्यते प्रकृतिः, परं तस्यामात्मनो नैव विद्यते अस्तित्वम् ।

प्रकृती अहंकारस्योद्गमो भवति तेन च भिक्तभिक्तपदार्थेषु पार्थक्य-भावना प्रादुर्भवति ।

पंचज्ञानेंद्रियेर्पेषां पृथक्त्वेन संजायेत ज्ञानं इताहशाणि विद्यंते पंचतन्मा-त्राणि, येभ्यस्स्थूलानां पंचमहाभूतानां भवति प्रजननम् ।

सृष्टि: - एतेम्यः पंचमहामूतेभ्यो निरींदियसृष्टेः प्रादुर्भावो भवति । इदमेव पंचीकरणम् ।

सुश्रुतः - अस्मिन् शास्त्रे पंचमहाभूतशरीरीसमवायः पुरुषः ।

चरकः — तत्र शरीरं नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पंचमहाभूतविकारात्मकं, समयोगवाही । एतादशे शरीरे पंचमहाभूतानां न्यूनाधिकत्वमेव विकारः।

त्रिदोषाः — द्रव्याणि [मॅटर]

यद्यपि सचेतनमचेतनं वा शरीरं पंचमहाभूतात्मकमेव, तथापि आयुर्वेदस्य

१४३ पूर्वपीठिका-पं. वैद्यराज भिकाजी विनायक डेग्वेकर.

जीवयुक्तपुरुषोपचारकरणं प्रधानतमं कार्यं विद्यते । अतो सजीवस्य पांचभौतिकस्य शरीरस्य विचारे पृथ्वी, आपः, तेजः, इत्यादितत्वानां
तान्येव नामानि शास्त्रकारेर्नेवोपयुक्तानि । अपि तु स्वतंत्रया संज्ञया तेषां
च्यवहारः कृतः । अस्मिन्नूत्नसंज्ञाकरणप्रसंगे पृथिव्याकाशयोरंतिमयोस्तत्वयोस्तु
नैव कृतं गृहणम् । यतः शून्यस्वरूपमादिममाकाशभूतम् । तथा पृथ्वीभूतमप्यंतिमं तत्वम् । उभयोरिप नैव शारीरघटनायां किंचिदिप स्वरूपपार्थक्यसंभवः ।
तथा च मंदगुरुसांद्रगुणाः पृथ्वपापां समाना एव । तथा तीक्ष्णळघुसूक्ष्मगुणास्तुवाय्वाकाशयोस्समानास्संति । अत आकाशस्य वायौ, तथा पृथिव्या अप्सु,
समावेशनं कृत्वा आप्तेजवायूनामेव सर्जीव शरीरे कप्पित्तवातेति प्रदत्तासंज्ञा । अर्थात् कप्पित्तवाता इतीमानि तत्वानि पांचभौतिकानि नैव विद्यंते अपि
तु सर्जीवानि (बायाळाजिकळ्) संति । वातपित्तकपा इति संज्ञास्तु केवळे
सर्जीव शरीरे एवोऽपयुज्यंते, पृथ्वी, आप, इत्यादयस्संज्ञास्तु जीवरिहते
शरीरे प्रयुक्ता भवंति ।

यथा पाश्वाल्यपदार्थविज्ञानशास्त्रपद्धला कृते विचारे प्रकृत्याः (मॅटर) असंख्यातानां पदार्थानां (रेडियंटमॅटर) वनद्रववायुतेजाकाशा (ईथर)-इति पंचद्रव्याणां विशिष्टस्थितिदृष्ट्या वर्गीकरणं भवति, तथैवायुर्वेदस्याऽपि पंच-महाभूतात्मकं वर्गीकरणं जीवरहितप्रकृतेरेव । परंतु तस्मिनेवशारीरे जीवकार्ये यदा समारब्धं भवति, तदा तेषामेव शारीरतत्वानां वैषम्यं रे।गस्साम्यमारोग्यमिति भवति व्याख्यानम् । अत एव सुश्रुताचार्या ' वातिपत्तश्चेष्माण एव देह-संभवहेतव '' इत्यादि प्राहुस्तथा वाग्भटाचार्योऽपि '' रे।गस्तु दोषवेषम्यं दोष-साम्यमरोगतेति '' जगाद । एवं पांचभौतिकशरीरस्य (फिजिकल्) तथा सर्जीवशरीरस्य (बायालॉजिकल्) परस्परः कः संबंधस्तथा सर्जीवशरीरस्य प्रचलि व्यापारे म्लतत्वेषु शास्त्रीयपद्धला यश्च भवति विपरिणामस्तस्य विवेचनमेतावत्पर्यतं जातम् । त्रिदोषविवरणप्रसंगेन एतदपि सुस्पर्ष्टीकरणं यक्तं यत् त्रिदोषविवरणे शारीरलक्ष्रणौस्सह मानसिकविकारलक्षणानामिप अस्मत्-

पूर्वपीठिका-पं. वैद्यराज भिकाजी विनायक डेग्वेकरः १४४

शास्त्र समावदाः कृतः । आधुनिकाः केचन शास्त्रज्ञा नैत्युक्तमिति प्रति-पादयंति । तथापि अन्येऽपि केचन पाश्चात्यपंडिताः प्रस्यक्षप्रयोगद्वारा शारीर-व्याधिभ्यो मनोव्याधानां उद्भवो, मनोव्याधीभ्योऽपि शारीरव्याधीनामुत्पतिर्भवती-ति कथंयति । प्रयोगेरेतिसिद्धं यदौषधैस्त्तथाविधैराहारैश्च शारीरांतप्रथयोयखुत्ते-जितास्तदा रागसंतापयोर्मनोविकारयोरुत्पत्तिर्भवति । तथैव रागसंतापाभ्यामपि मनोविकाराभ्यां समुत्पन्नाभ्यां शरीरांतप्रथिभ्योपि भवति स्नावप्रादुर्भूतिः । इत्यनेन दोषाणां मनसि मनसश्च दोषेषु कोऽपि भवति परिणामः । वर्तते परस्परा-वर्ळवित्वं दोषविकारमनोविकारयोरिति ।

यद्यपि दोषाः शरीरस्य सूक्ष्मेभ्योऽपि सृक्ष्मतमभागेषु स्त्रीयं स्त्रतंत्रं कार्यं कुर्वंति, तथापि पक्काशयः, (लार्ज इंटस्टीन्) आमाशयः, (स्टमक्) उरः, (लंग्ज्) इति वातपित्तकफानां क्रमेण स्थानानि मुख्यानि । अन्नग्रहणयोग्ये काले विधियुक्तमुपभुक्तमन्नं मुखे दंतचर्वणेन लालायुक्तं भूत्वा प्रविशात्मामाशये । तत्रैय सवद्भिरनेकैईवपदार्थैः क्रेदकेन कफेन च दवरूपं भूत्वा तत्रैव पाचकाख्यपित्तविशेषेण (आग्नेयतत्वप्रधानद्रवपदार्थः असिड्-अम्लः) पचति । दोषधातुमलानामुत्पत्तिःस्थितिर्नाश इस्यादि क्रियाभ्यस्समुत्प-द्यमानोऽन्तरग्निरयमेव । उदरंगते अने उद्भवति आम्छस्रावः, आम्छस्रावे अन्नसंयुक्ते सति उष्णतोत्पादनं भवति । सैवोष्णता वांछसन्नमिस्वेवं चक्रं संततं प्रवृत्तं भवति । षड्सानस्य आमाराये क्वेदककफेन सह भवति मिश्रणम् । ततोऽनंतरं तस्मिन्नेवामाशये पचनित्रयाकाले मधुरीभूतस्य कफस्य ष्रादुर्भूतिर्जायते । ततो पाचकपित्तस्य संयोगेन पित्तद्रव्यस्य संसर्गतो अन-रसेऽम्लत्वं समुपैति । तेनैव दाहस्य संभूतिर्जायते, अथ च तत्रैव पित्तस्यो-त्पत्तिर्भवति । स एवान्नरसः पकाशयपर्यंतं गम्यमानो गृहणांस्थितकदुरसप्राय-राम्रेयद्रव्येस्संमिश्रो भवति । तेन च तत्रैवानस्य शोषणाक्रियाया भवति प्रारंभः। तेन द्रव्ये घनत्वप्राप्त्या कटुरसत्वेन च वायोर्भवति प्रादुर्भावः । इदमेवाऽत्र तात्पर्यं सुसूत्रत्वेन शारीरपचनित्रयाभवने आवश्यकाणां वातिपत्तकफानां

१४५ पूर्वपीठिका-पं. वैद्यराज भिकाजी विनायक डेग्वेकर.

उत्पत्तिस्तु पचनिक्रयामा जायमानायाः काले एव भवति । अतएव वातस्य स्थानं—यत्राव्यचनवेलायां तस्योत्पत्तिर्भवति स पकाशयो, यत्र च तस्मिन्नेय काले भवति पित्तस्योत्पादस्स आमाशयः पित्तस्य स्थानिमिति । श्लेष्मणोऽपि उरस्थानिमिति स्थानं यत्कथितं तस्य कारणं तु शरीरस्याऽस्तित्वं असनिक्रियाधीनम् । इयं असनिक्रिया उरस्थानस्थस्क्ष्माछिद्रयुतमांसापिंडानां निसर्गसिद्धसंकोचिवकासिक्रियया भवति । अयं च संकोचिवकासिस्धुखेनैव भाव्य इत्यर्थं एतेषु मांसपिंडेषु स्निग्धादिमृदुगुणयुक्तद्रव्यस्यात्यंतं वर्तते आव-श्यकता । अतः श्लेष्मणस्तत्र संभूतिर्भवति । आमाशये भिक्षताहारे पचनिक्रियाया जाते संस्कारे यश्च निगेलित रसस्स गच्छित यक्नति । तत्रस्थान् संस्कारान् गृहीत्वा स रसो रक्तत्वं समुपगच्छिति । अस्याहाररसस्य रक्तरूपक्रपांतरकाले एव यश्च तस्मादुत्यवते मलस्स उरस्थानिस्थितकप्ताप्यायनं करोति । अयमेवोऽरस्थः कपः । अन्यान्यपि वर्तते वातिष्तकप्तानां रथानानि ।

वायुः –तत्र प्राणोदानसमानापानव्याना इति पंचप्रकारको वायुः । प्राणवायोस्स्थानं मूर्धा, श्रोत्रचक्षुर्जिव्हाघ्राणेद्रियनियंत्रकोऽयं मुखगळोऽरस्मंचर-णशीलो वायुनियामको वर्तते । आधुनिकमाषायां 'सेंट्रल नर्व्हस् सिस्टिम् इति 'वक्तुं सांप्रतम् । तथैव उज्जनो (ऑक्सिजन्) इति वायुः प्राणवायुरेव । अपानवायुर्त्तु (कार्बन् डाय् ऑक्साइड्) कर्बवायुरेव । शरीरे प्रामुख्यतः कार्थकर्तारौ इमावेव द्वौ वायू । तथापि त्योभिन्नभिन्नप्रमाणतस्संजातेन संयोगेन मिन्नकार्यस्थानत्वेन च प्राणापानव्यानोदानसमाना इति शास्रकारैः संज्ञा प्रदत्ता । एतेषां सर्वेषां वायूनां प्रत्यक्षतः संचयं कृत्वा रासायानिकं पृथकरण-मृत्यंतमावश्यक्रभेव ।

पित्तं—वाग्मटचरकसुश्रुतप्रथेषु पित्तस्य ऊष्णतीक्ष्णादिगुणवर्णनं यद्दश्यते तत्तु गंधकाम्छछवणाम्छवत् जलेन द्रवीकृतस्याम्छद्रव्यस्य गुणव-र्णनिमवाऽभाति । तत्तु पाचकभ्राजकालोचकरंजकसाधकभेदेन पंचविधं, तेषु पाचकं पक्तामाशयमध्यस्थं [स्मांळ् इंटस्टाइन्-पक्ताशय, डिओडिनम्-पक्ता-माशयमध्य] वर्तते । तस्य स्नावस्तु प्रहण्यामेव भवति । पाचकं पित्तं लवणाम्लगंधकाम्लवत् [हाय्ड्रोक्कोरिक् ॲसिड् तथा सल्फ्यूरिक् ॲसिड्] द्वं वर्तते । इदं पित्तं आमाशयस्थितमन्नं, तथाऽमाशयांत्रावरणस्थक्षेष्मलग्नंथि-म्यस्समुत्पन्नमपि द्वद्रव्यं [गॅस्ट्रिक ज्यूस] पचति । पित्ताशयाम्न्याशयाभ्यां [गॉल्ड ब्लॅडर, पॅकियाज्] नलिकाद्वाराप्रस्रवदन्ननलिकां च गच्लत्साविभश्रणं, अन्नविपाचनं च करोति ।

कफ:

१ बोधकः कफः — अनं मुखे प्रक्षिप्तं दंतैः चर्वितं भवति । तस्मिन्काले मुखांतस्थितलालाग्रंथिभ्यः स्रवंती लालाऽन्नमिश्रिता भवति । जिन्हा तु तदनं वारंवारं दंताधो नयति चर्वणार्थम् । जिन्हावेष्ठितं श्लेष्मलमावरणं स्रवित कमिप स्रावं तेनैव भवति रसज्ञानम् । जिन्हासमंतास्थिताभ्यो प्रंथिभ्यः (म्यूकस ग्लॅंड्स्) स्रवमाणो द्रवस्नाव एव 'बोधको रसबोधनात्' बोधकः कफः।

२ क्केंद्रकः कपः-मुखस्थितलालाग्रंथिभ्यः प्रस्रवमाणो लालास्रावो-आमाशयस्थितक्केदककपोऽन्तर्भूतो भवति । मुखादारभ्यामाशयसहितोऽर्ध्वभागः क्केंदककपस्य स्थानम् ।

३ तृतीयः कफो उर्स्थः—रसंघातोस्सारभागो रक्तं, तस्य मलः कफः स तु फुफुसांतस्थितसूक्ष्मावरणगतश्लेष्मलग्रंथिनिष्पन्नस्मावः । अस्यैवावलंबः कफ इति संज्ञा वर्तते ।

चतुर्थः श्लेषकः कफः-अस्थिसंधिषु आसमतात् आवरणं कृत्वा स्थितेभ्यस्सूक्ष्मत्वग्रूपकोषेभ्यस्समुत्पन्नो द्रवपदार्थ एवायं श्लेषकः कफः ।

५ **५ंचमस्तर्पकः कफः**-सचाऽयं श्लेष्मा मस्तुलंगस्य निवासभूता या

१४७

करोटी वर्तते, तस्यां विद्यते श्लेष्मलत्वच आवरणं, तस्यास्सकाशाद्यश्च स्रवति स्रावस्सोयं तर्पक इति।

एवं शरीरे वातिपत्तकमा नाम दोषा द्रव्याणि, प्रत्यक्षद्रयपदार्थाश्चीत्य-द्यमानास्त्रावाश्चेति । श्रीरे दोषाः (सीक्रिशन्स्) धातवः (दिश्ज्) मृद्धाः (इन्क्रीशन्) इति इंदियविज्ञानशास्त्रे विद्यंते संज्ञाः । यथैव दोषधातु-मलानां क्रियाभिः, शरीरिमदं सम्यक् धार्यते इति गदत्यायुर्वेदस्तथैव स्नावैः, (सीक्रिशन्स्) धातुभिः, (दिशूज्) खेदम्त्रादिमलैः, (इन्क्रीशन्स्) योग्य-प्रमाणकार्यकरेरिदं शरीरं धार्यते इति इंदियाविज्ञानशास्त्रमप्यायुनिकं वदिति ।

भिषिग्विलास पुस्तकाणि ३१-३३ वर्ष शाके १८५०-५३ तथा वैद्यकसंमेळनपत्रिका सन १९२९-३१ अंकाः, जर्नल् ऑफ आयुर्वेद कलकत्ता।

√ वैद्यपंचानन गंगाधरशास्त्री गुणे अहमदनगर.

स्वीये चतुर्थकर्नाटकवैद्यसम्मेलनाध्यक्षीय भाषणे अस्मिन्विषये प्राहु:-

१ आयुर्वेदः (जीवितज्ञानं) प्राचीनतमं शास्त्रम् । स्वास्थ्यानुवृत्ति-करो रोगोच्छेदकरश्चेस्यस्य द्वौ भागौ विद्येते । १ हेतुः, २ लक्षणं, ३ औष-पिधिविज्ञानं चेत्यस्य त्रिस्स्कंधाः । यस्मिन् शास्त्रे साकल्येन शर्रारज्ञानं प्रतिपादितं तदेव शास्त्रं जीवितशास्त्रसंज्ञायोग्यं भवति । अतएव चरके 'शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वदा वेद यो भिषिगिति ' प्रतिपादितम् ।

श्रीरस्य व्याख्या च 'तत्र शरीरं नामचेतनाधिष्ठानमृतं पंचमहाभूत-विकारसमुदायात्मकं समयोगवाही ' चरकाचार्येण कृता विद्यते । यत्पंच-महाभूतविकारात्मकं तथा चेतनाधिष्ठानभूतं तच्छरीरम् । १ शरीरं, २ इंदि-याणि, ३ मनः, ४ आत्माचेति चतुर्णां संयोग एव जीवितं वा आयुः ।

शरीरेंद्रियसत्वात्मसंयोगीधारिजीवितम् ॥ च. सू. अ. १ ॥ शरीरस्य

१ पंचमहाभूतविकारसमुदायात्मकत्वं, २ चेतनाधिष्ठानभूतत्वं चेति द्वौ विभागौ भवतः । तत्र पंचमहाभूतविकारसमुदायात्मकं शरीरं स्थूलं, तथा चेतनाधि-ष्ठानभूतं शरीरं सूक्ष्मं इति तु भेदः । पंचमहाभूतविकारसमुदायात्मकं शरीरं तु पंचमहाभूतिविकारसमुदायात्मकं शरीरं तु पंचमहाभूतिभ्यस्समुत्पन्नानां नानाप्रकाराणां द्रव्याणामेव । शरीरस्यांतिमः-सृक्ष्मात्मृक्ष्मतरोऽवयवस्तु चिदंशप्रमाणुरेव । आयुर्वेदीयः शारीरपरमाणुस्तु आधुनिकशास्त्रनिर्देष्टसेल्सदश एव ।

आधुनिके शास्त्रे शरीरस्यांतिमः परमाणुरतु चिदंशपरमाणुरिति गृहि-तम् । तस्मादेव सर्वस्य शरीरस्य सर्वेष्यवयवसमूहा निष्पन्नाः । तेषां व्यापा-रास्तु पंचमहाभूतिवकारसमुदयात्मका विद्यंतेति-('फिजिको—केमिकल') आधुनिकं वैद्यशास्त्रं तथेंद्रियविज्ञानशास्त्रं समामनित । शरीरस्य सर्वेऽपि व्यापारा आधुनिकरसायनपदार्थविज्ञानशास्त्रविज्ञानसिद्धनियमानुसारं चलंति । मदश-क्तिवत् द्रव्याणां परस्परसंमूर्च्छनेन प्रादुर्भवत्यात्मशक्तिरतस्स्वातंत्र्येण आत्म-तत्वस्य गृहणमनावश्यकं निरर्थकं चेति सांप्रतं प्रचलति मतम् ।

आयुर्वेदस्तु रारीरांतिमावयवं चित्परमाणुरूपमिवभाज्यस्वरूपं समा-मनित च संगिरते च सर्वमिप रारीरं तन्मयमिति । " रारीरावयवास्तु परमाणु-मेदेनापारिसंख्येया भवंति, अतिसूक्ष्मत्वादितवहुत्वादतींद्रियत्वाच्च "॥ च. राा. अ. ७। एतावत्पर्यंतमाधुनिकशास्त्राणामायुर्वेदस्य वर्तते ऐकमत्यम् । परंतु आयु-वेदस्तु परमाणवस्त्रतंत्रा इत्यधुनिकशास्त्रमिव नैवामनुते । परमाणोः परं नैव रारीरे किमिप द्रव्यमिति नैवायुर्वेदसंमतम् । परमाणूनां संयोगिवभागकरसमर्थानि विद्यंते कारणानि, 'तेषां संयोगिवभागे परमाणूनां कारणं वायुः कर्म स्वभावश्च । चरक राा. अ. ७ ॥ इत्यनेन निर्दिशत्यायुर्वेदः ।

अनेनैव सिद्धांतेन न स्थिगतोऽयमायुर्वेदः। अतः परमिप मनस्तु स्वतंत्रं अणुरूपं द्रव्यमिति पठित्वा 'मनसस्तु चित्यमर्थः' तथा 'चित्यं विचार्यमुद्धां च ध्येयं संकल्यमेव' चेति वचनेन तत्कार्यमिप निर्दिष्टम्। मनसः परमिप चेतनावत आत्मनस्वातंत्र्येणास्तित्वमि पृथक्तया वर्तते ऽत्युद्धोषित सिद्धांततत्ववाक्येस्तर्क-कर्कराबुद्धिनिकषिद्धैः । एवं १ पंचमहाभूतानि (फायनेस्ट एलिमेंट्स्) २ पंचतन्मात्राणि, इति शारीरः पंचमहाभूतद्रव्यगुणसंप्रहस्तथा मनो, मनो-ऽर्थो, बुद्धिः, आत्मा, चेति अध्यात्मद्रव्यगुणसंप्रहः । उभाभ्यां संप्रहाभ्यां संगृहीतोऽयं जीवकोशः (शरीरं)।

शारीराध्यात्मद्रव्यगुणसंग्रहस्य शारीरे पंचमहाभूतद्रव्यगुणसंग्रहे भवति (दे कोप्यवितक्यः परिणामः । तेन शरीराद्वाद्येभ्यः पंचमहाभूतविकारसमुदयो- दे त्पन्नभ्यो द्रव्यभ्यस्सुधाक्षारलोहादिभ्यः शरीरस्थपंचमहाभूतविकारसमुदयो- दे त्पन्नद्रव्येषु तेष्वेव सुधाक्षारलोहादिषु द्रव्येषु स्वभावतो, गुणतः, कार्यतश्च संजायते, संदश्यते, चानुभूयते, सर्वथा पार्थक्यम् ।

विविधाशीतपीतपांचभौतिकद्रव्यमयानस्य रसरक्तादिधातुरूपविपरिण-मनेन सजीवत्वरूपप्राप्तिस्तु केवलेन।ऽध्यात्मद्रव्यगुणसंग्रहणैव विशेषतस्त्वात्मन-श्चेतनावतः परिणामेन भवति । पांचभौतिकद्रव्याणां रूपांतरं भूत्वा सजीव-! श्चेते सजीवकणरूपभवनेन तेभ्यस्समायाति त्रिधातुत्वम् । अनया रीखा । पांचभौतिकद्रव्याणां रूपांतरं सजीवशरीरे सजीवकणमयत्रिधातुरूपेण भवति । । अत एव 'वायुः पित्तं कपश्चेति शारीरो द्रव्यसंग्रहः 'च. सू. अ. १ इत्युक्तम् । इमे त्रिधातवस्तु शरीराधारा, व्यापिनः कार्यकर्तारस्तथा साम्याव-स्थितत्वेन शरीरखास्थ्यधारका विद्यंते 'शरीरधात्नां ग्रकृतिभूतानां तु खळु वातादीनां फलमारोग्यम् 'च. शा. अ. ६ ॥

> एतावता १ आत्मा (सोल् कॉन्शस् थिंग इन् इट्सेल्फ) २ मनः, अस्मिन्नेवबुद्धेरंतर्भावो भवति, ('फिजिक् ')

> > ३ त्रिधातुः (बायो-फिजिक्)

४ स्थूलधातुः (बायो-प्रास्मिक्, ऑर बायो-केमिक्)
 ५ पंचमहाभूतविकारसमुदायः (फिजिको-केमिक्)

इत्येतिर्भिन्नभिनैर्द्रव्यैः शरीराभिनिवृत्तिर्भवति ।

त्रिधातवो यस्माद्धारयंति देहं तस्मात्ते धारणाद्धातवः । ते व्यापिन-स्सर्वशरीरचराश्चित्परमाणुष्विप वर्तमानास्तथाऽन्तर्बहिरिप विद्यमानाः, (इंट्रासेल्यूलर, अल्ट्रासेल्यूलर) संति । एते एकचित्परमाणुमये (यूनी सेल्यूलर) प्राणौ विद्यंते । तेषां वैषम्थेण शरीरं विकृतं भवति, तेन हेतुना ते दोषसंज्ञिता भवंति । अतिप्रकोपेण दोषास्तथा शारीरव्यापारे जायमाने संपद्यमानानि निस्सत्वानि द्व्याणि 'मल ' संज्ञ्या संज्ञितानि भवंति ।

केचन वातवहमंडलमेव [नर्व्हस् सिस्टिम्] 'वात ' इति कथयंति । परं नैतयुक्तम् । वातवहमंडलेन भवति वायोर्वहनम् । अतस्तत्कथं भवेदेकरू-पम् । वातो वातवहमंडले चेति द्वयं सर्वथा भिन्नमेव ।

अंतःस्नावकग्रंथिभ्यस्स्रवमाणास्त्रावाः समाकर्षयंति पंडितानां मनांसि त्वस्मिन् विषये, परं त्रिधातुभ्यस्तासां ग्रंथांनां वा तदुद्भूतस्नावाणां नियमनं भूत्वा संरक्ष्यते तेषां साम्यम् । अंतस्त्रावकग्रंथयस्तु शरीरावयवा एव । तेभ्यो वायोः प्रणं, शोणितस्य संयमनं (प्रेशर) श्लेष्मण आईता, इत्येतदावश्यकमेव ॥ भिषिविद्यास पुस्तक ३१ शके १८५० अंक ४॥

सूचनाः—मतसारोद्धारेऽस्मिन् प्रायो मतसाराणां गीर्वाणवाणीवेदास्तु मया किल्पतो विद्यते, अतोस्मिन् वेदाकल्पने सर्वथा निर्दोषत्वासिद्धये कृतेऽपिप्रयत्ने ये च लेखनदोषा वा मतानां वास्तवरूपाऽप्राप्तिदोषा भवेयुस्तेसर्वथागीर्वाणभाषाऽन-भिज्ञस्य ममैवेतिमन्तव्यम् । येषां तु मूलतएव विद्यते गीर्वाणवाणी तेषां ममोऽपिर नैव गुणदोषभार इति विज्ञातिः । अतः परमस्य सारोद्धारस्य क्रियते संक्षेपतो विचारः । वामनशास्त्री दतार.

इति द्विसप्तत्याधिकमतानां सारोद्धारवाचनेनेदं सर्वेषां विदुषां दक्-पथमागच्छेत् यत् त्रिदोपविषयकाणि नैकमतानि प्रचरंति वैद्यदक्षतरसमाजे । आयुर्वेदीयत्रिदोषसिद्धान्नस्तु मूलमेवाऽयुर्वेदस्य।अस्यैवात्रिदोषतत्वस्य खरूपविषये संशयास्पदत्वं, नैकरूपत्वं, विवादविषयत्वमेवमेवास्मिन् समाजे वर्तेत चेत्, आयुर्वेदस्याशास्त्रीयत्वप्रवादस्सत्यरूपत्वमिधरोहेदित्यत्र नास्त्याशंका । अस्मिन् सारोद्धारे द्विप्रकारा विचारपद्धितस्सामान्यत्वेन वर्तते । एका केवला पौर्वात्य-शास्त्रकप्रनाधिकृता, द्वितिया पौर्वात्यप्रतीच्यशास्त्रकप्रनातुलनायुता, अस्मिन्नि द्वैविध्ये विद्यते विविधा विचारमतपद्धितः यया पद्धत्या मतमतानांसंकरएवदरी-दश्यते नैकोपि कमपिमानयित वा न पृच्छिति एवं प्राया स्थितिस्संजाता दश्यते । प्रत्यकशो हि भिना मतपद्धितः । पौर्वात्यशास्त्रकप्रनाकृत्वाया विचार-पद्धत्यास्तु निम्नलिखिता भेदाः संक्षेपतो विद्यते ।

आयुर्वेदीयमतानि.

१ त्रिदोषाः - कल्पनाः

२ त्रिदोषाः -प्रत्यक्षाः दृश्याः शक्तिरूपेण अदृश्याश्च

३ त्रिदोषाः -पंचमहाभूतानि.

४ त्रिदोषाः - शक्तयः

५ त्रिदोषाः -प्रत्यक्षाः द्रव्यं, शक्तिः,

६ त्रिदोषाः -द्रव्यम्.

७ त्रिदोषाः -अदृश्याः, तर्कानुमेयाः, सूक्ष्माः, तर्कदृष्ट्या दृश्याः, अणवःपदार्थाः, शक्तयः,

८ त्रिदोषाः - त्रिधातचो दोषाश्च, पंचमहाभूताधाराः, विकाररूपा वातिपत्तकपास्तुभिन्नाः

९ त्रिदोषाः -स्थूलास्सूक्ष्माश्च इन्द्रियगोचराः अतीन्द्रिया अदृश्याः

१० त्रिदोषाः —सत्वरजस्तमोयुतपंचमहाभूतोत्पन्नाः धातवस्थूलास्स्-क्ष्माश्च.

११ त्रिदोषाः -परोक्षवर्णनेन संज्ञिताः बाह्यजगद्धटनानुभवा अमूर्ताः

इतिवृत्तम्-पूर्वपिठिका

१२ त्रिदोषाः -वायुर्मूर्तामूर्तो कफापित्ते तु मूर्ते.

१३ त्रिदोषाः --पांचभौतिकाः, द्रव्याणि, तेषां पंचप्रकाराः परस्परं भिन्नाः

१४ त्रिदोषाः -आधिदैविकाः सोमसूर्यानिलाः आधिभौतिका वाय्विप्र-जलासकाः, आध्यासिका वातिपत्तकपाः

१५ त्रिदोषाः -धातवो दोषाः प्रसादरूपेण सूक्ष्माः शक्तयः मलरूपेण-स्थृलाः

१६ त्रिदोषाः -प्रस्यक्षद्रव्याणि,कारकाः, चालकाः, धारकाः, सूक्ष्माः स्थूलाः, स्रावरूपाः

१७ त्रिदोषाः --द्रव्याणि, पित्तकफो अच्छमलखरूपो द्विप्रकारको

१८ त्रिदोषाः --त्रिप्रकाराजीवशक्तिः गत्युष्णताघटकरूपाः

१९ त्रिदोषाः --भिन्नभिन्नग्रन्थिस्श्रुतस्रावाः, दवाः

२० त्रिदोषाः -जीवद्रव्याणि महाभूतत्रयमेव धातवो दोषा मलाश्च.

२१ त्रिदोषाः --पांचभौतिका द्रव्याणि धातवो दोषा मलाश्च.

२२ त्रिदोषाः - दश्याः रसरूपाः द्रव्यं, सूक्ष्मा इति खल्पाः

२३ त्रिदोषाः --पदार्थाः स्थूलाः सूक्ष्माश्च.

२४ त्रिदोषाः --स्थूलाः सूक्ष्माः सृक्ष्मतराः

२५ त्रिदोषाः --संचालनस्वेदनस्नेहनकर्तारो दोषधातुमलरूपाः

२६ त्रिदोषाः --शूलक्शोथदाहात्मकाः वातिपत्तकमा दोषाः

२७ त्रिदोषाः --चंद्रसूर्यवायवो-जल्खरूपं कफः, अग्निखरूपं पित्तम् वायुखरूपं वायुः धातवो दोषाः

२८ त्रिदोषाः --सजीवतत्वानि द्रव्याणि, दोषा, धातवः प्रत्यक्षद्दस्य-पदार्थाः उत्पद्यमानस्रावाः

पाश्चात्यतत्वानुगतमतानि.

२९ त्रिदोषाः --त्रिधातवः (बायोफिजिक्)

३० त्रिदोषाः -वायुः पंचप्रकारको ग्यासः, तेजोरूपगुणद्वयात्मकं पित्तं

इतिवृत्तम्-पूर्वपीठिका

द्विप्रकारकं द्रव्यात्मकं, तेजोगुणावशिष्टो द्रवोभागः स्नावरूपः कपः

३१ त्रिदोषाः --नर्व्हस् बिलियस् लिपयाटिक्स्-

३२ त्रिदोषाः --नर्व्हस्सिस्टिम्, वायुः सीरम् कपः

३३ त्रिदोषाः --नर्व्हस्. ब्लडसिस्टिम्, लिप्पयाटिक्सिस्टिम्.

३४ त्रिदोषाः --नर्व्हस्. बिलियस्, प्रेग्म्याटिक्,

३५ त्रिदोषाः --प्राडक्टस् ऑफ ॲनाबोलिः पांचभौतिकाः सेन्द्रियाः सजीवाः

३६ त्रिदोषाः -एमिब्लास्ट वायुः, मीसोब्लास्ट फ्तिं, हैपोब्लास्ट कफः,

३७ त्रिदोषाः --सेरिब्रोस्यायनल् प्रणालिः वायुः, अन्नपचनप्रणालिः पित्तं, स्केलेटल्सिस्टिम् कफः

३८ त्रिदोषाः --प्रोटीड-कपः एन्झाइम्-पित्तम्, ग्यास्-त्रातः

३९ त्रिदोषाः --नर्व्हफोर्स-वातः सेमिलिनिवड्प्रन्थिरसाः कफः

४० त्रिदोषाः -वायुः -

वायुः

१ प्राणः --फेरिक्स्, न्यूमोग्यारिट्क्पल्मनरि, कार्डियल् फ्लेक्सस्-प्रभृतिमज्जातंतुकार्यम्.

२ उदानः --लॉरिंजियल्कार्यम्.

३ व्यानः --मोटारज्ञानतंतुकार्यम्.

४ समानः —सोलरज्ञानतंतुकार्यम्.

५ अपानः --पेल्व्हिक् प्रेक्सस्कार्यम् ।

पित्तमः —डायजेस्टिक्, ग्यॉस्टिक्ज्स्, पॅंक्रियाटिकज्स्, इन्टे-स्टनल्सिकिशनस् काइल् ।

कफ:

∤ क्रेंदकः --आमाशयिकरस. एलेमेन्टरीकॅनालम्यूकस् इन्टेस्ट-

इतिवृत्तम्-पूर्वपीठिका

नल्सिकिशन् कॉईल ।

२ अवलंबकः --फ्ल्यूलर पेरिकार्डियल् फ्ल्युइड्.

३ बोधकः --सलायव्हा.

४ स्नेहकः -सोरब्रोस्पायनल् फ्ल्युइड्.

५ श्लेष्मकः --सायनोव्हियल् फ्ल्युइड्.

४१ त्रिदोषाः --वातः व्हायटल्फोर्सः

४२ त्रिदोषाः --वातः ऑक्सिजन्, कॉर्बनडायअक्साईड.

४३ त्रिदोषाः ---

वातः

१ उदानवायुः --कार्डियल्प्रेक्सस्.

२ समानयायुः --सिंपथेटिक्सिस्टिम्.

३ अपानवायुः -- लंबरप्रेक्सस्.

४ व्यानवायुः --व्हॅस्क्युलरीसिस्टिम् ।

पित्तम्: --पाचकोरसः यकृत्जन्यं पित्तं, क्रोमरसः क्षुद्रान्त्ररसः

४४ त्रिदोषाः ---

कफः --आमाशयः कफस्थानम्-आमाशयाभित्तिस्थरसः पेप्तिन्, हैड्रोक्कोरिकॲसिड्द्रव्ययुतः अम्ल्लवणोरसः।

पित्तम्ः --डियोडिनम् क्षुद्रान्त्र, पँक्रियाटिक् पित्तकोषरसः क्षारो-रसः क्षारोआग्नेयम्, पित्तम्, ।

वातः -बृहदंत्रानिम्नद्वादशांगुलमितोभागः रेक्टम् वातस्थानम्.

४५ त्रिदोषाः — सिंपथेटिक्नर्व्ह इडापिंगळा वायुस्थानम् . आलोचक-पित्तम्-रॉडस्कोन्स् यत्र रासायानिकक्रिया भवति इदं रसायनमेव आलोचकपित्तम्.

४६ त्रिदोषाः -

इतिवृत्तम्--पूर्वपीठिका

वातः

१ प्राणः -पिचुट्री सिक्रिशन्स्.

२ उदानः --थायराइड्सिकिशन्स्.

३ व्यानः --नर्व्ह ॲण्ड् सिक्रिशन्स्

४ समानः --स्यूकस्एंटरिकस्.

५ अपानः --अड्रानॉलिन्सिक्रिशन्स्.

पित्तम्ः

१ पाचकं --बाइल ॲण्ड पॅंक्रियाटिक्जूस्.

२ रंजकं --सिक्रिशन्स्, ऑफ लिब्हर् अण्ड स्ट्रीन्.

३ साधकं --हीमोग्लोबिन्.

४ आलोचकं -पिग्मेंट ऑफ रेटीना.

५ भाजकं --पिग्मेंट ऑफ एपीडिर्मिक्.

कफ:

१ क्रेदकः --ग्यॉस्टिक्म्यूकस्सिक्रिशन्स्.

२ अवलंबकः --सीरम् फ्ल्युइड.

३ बोधकः - म्यूकस्सिक्रिशन्स् माउथ, पयारिक्स् इसाफेगस्. ।

४ तर्पकः --सेरिब्रोस्पायनल् फ्ल्युइड.

५ श्लेषकः --सायनोव्हिया.

४७ त्रिदोषाः —

वायु: --प्राणः -ऑक्सिजन्, व्यानः -कॉर्बन् डायभक्साईड.

पित्तम्ः

१ पाचकः --गृहणीस्थं पित्तं, आमाशये अम्लं पित्तं, स्यूकस-एंटरीकस्. जठरस्थो अम्लोरसः क्रोमस्थोरसः यकृत्स्थं पित्तं.

२ रंजकः --यक्तप्रीहानौ रंजकिपत्तस्थानम्.

३ साधकं --यकृत्यमेव साधकं पित्तम्.

४ आलोचंक -दि लॉकिमल् ग्लॅंडस्सुतं नेत्रोदकं.

५ भाजकं --त्वक्स्यं पित्तम्-त्वक्स्याणुस्रोतस्यपितांशः

क्फ: -रसयुक्तरक्तात् अच्छो द्रवः स्निग्धः पिच्छिलः पदार्थ उत्पद्यते स एव कफः लिफ.

क्केद्कः --लाला.

आमाश्यस्थः --सान्द्रपदार्थो आमशयस्थः कफ उच्यते.

उरस्थः --कपः पेरिकार्डियाक्पल्युइड अथवा यकृत्स्थः पदार्थो मधुरः (ग्लायकोजेन.)

अवबोधकः --जिव्हाम्लस्क्ष्मछिदेषु उत्पद्यमानो जलसदशः पदार्थः

तर्पकः --सेरिबोस्पायनल्फ्युइड.

श्लेषकः --अस्थिसंधिस्थः

४८ त्रिदोषाः --पाचितानां खाद्यपेयानां सारभागे। रसः द्युद्धो भागः (कॉईल,) रसस्य अद्युद्धो भागः (वॉइल्,) अन्य-पदार्थवत् द्यार्रस्याभ्यन्तराभ्यो प्रन्थिभ्यः स्नव-माणभ्यो मलरूपद्रवेभ्यो स्नवभ्द्यो वातिपत्तकपा निगद्यंते अस्यन्तमुपयुक्ताः प्रन्थिभ्यः स्नवमाणा द्रवपदार्थाः किष्टमयः

४९ त्रिदोषाः --प्रतिजीवाणो द्वौ वा त्रयो स्नावा वर्तते, येषु सर्वे व्यापारा अधिष्ठिताः एतेषां सूक्ष्मद्रव्याणां गुणाः वातिपत्तकप्तसमानाः, एतेषां स्नावाणां नामानि असेरील्, कोलिन्,

५० त्रिदोषाः -वातः विद्युत्स्पंदनं वा क्रियावान् संदेशः

इतिवृत्तम्-पूर्वपीठिका

पित्तम्: --वातापेक्षया घनो दवरूपःपदार्थः कफः --वनरूपः शीतो मसृणः क्षार्युक्तः पदार्थः

५१ त्रिदोपाः --दि लेटन्ट फोर्स ऑफ दि मॅक्राकम्.

५२ त्रिदोषाः --पावरफुल् आर् व्हायटल् एलिमेटस्.

५३ त्रिदोषाः --

वायुः

१ प्राणवायु: --सेरिन्नोस्पायनल् सेंटर अथवा अन्सीस्.

२ उदानोबायुः -सर्व्हायकल् प्लेक्सस्.

३ व्यानोत्रायुः -कार्डियाक् प्रेक्सस्

४ समानोवायुः --सोलरप्ठेक्सस् तथा लंबरप्रेक्सस्.

५ अपानोबायुः -हायपोगॅस्टिक् तथा सेऋल् घ्रेक्सस्

पित्तम्: -डायजेस्टिव्ह सिस्टिम्

कफः --लिंपयाटिक् सिस्टिम्.

५४ त्रिदोषाः -प्रोटोष्टाझम्

५५ त्रिदोषाः --हयूमरस्.

इत्येतानि पौर्वात्यप्रतीच्यिवचारारूढानी पंचपंचारान्मतानि संगृहीतानि,
येषु मतेषु सूक्ष्मदृष्ट्या विचारितेषु यद्यपि विद्यते परस्परतो वैभिन्यं तथापि
अस्मिन् वैभिन्येऽपि त्रिविधमेव वैभिन्यं प्रामुख्येन विद्यतेति सूक्ष्मत्या
ऽवलोकिते व्यक्तीभवति १ त्रिदोषाः —केवलं कल्पना २ त्रिदोषाः —राक्तिरूपा
अदृश्याः ३ त्रिदोषाः —द्रव्याणि (पदार्था वा) दृश्याणि । एतस्मिन्मतत्रितये
भवन्तु प्रत्येकास्मिन् मतान्तराणि, तथापि त्रितयात्कमपि मतमेकं केन्द्रतया
स्वीकृत्येवान्तरमत्मिन्नत्वं वर्तते इति दृक्पथमागच्छेत । अत्पृव सर्वमतानां समन्वयकृदेकः शास्त्रवचनवृहितः सरहस्यो त्रिदोषस्रकृपदर्शकः कोऽपि प्रबंधः
आवश्यक इति हेतोः त्रिधातुसर्वस्वनामकनिबंधस्य खीस्तीय १९२८—१९२९
तमे वत्सरे महाराष्ट्रप्रान्तेन पारिते, निखिलभारतीयवैद्यसंमेलने एकोनविंशे

लेखकेभ्यो आभारतीयभ्यो पंचरातरूप्यकमितं पारितोषिकं प्रतिश्रुत्य खागत-समित्या जनस्थानस्थितया आकारणं कृतम् । निर्मापिता च भारतप्रसिद्धवैष-पंडितानां परीक्षकसमितिः । निबन्धलेखने सौलभ्यं परिपूर्णतां च संपादियतुं निष्कासितमासीत्तदानीमेकं खागतसमित्या पत्रकम् ।

पत्रकत्रमांकश्चतुर्थः

जनस्थाने

एकोनविज्ञातितमस्य भविष्यतो वैद्यसंमेळनस्य स्वागतसमित्या समभिलिषतः प्रवंधः पारितोषिकं पंचशतरूपकिमितं

प्रबन्धविपयः

" त्रिधातुसर्वस्वम्"

अस्मिन् विषये सरलया सुबोधया समासरहितया गीर्बाणभाषया गद्यमय्या एकेन पण्डितेन वा बहुभिर्वा विद्यालयेन वा वैद्यकसंस्थया वा पंच-विद्यात्यधिकशतपृष्ठात्मकः प्रबन्धो लेखनीयः । यस्य लेखकस्य प्रबन्धः समा-गतसर्वप्रबन्धातिशायी भवेत् तल्लेखको लभेत प्रतिज्ञातं पारितोषिकम् ।

अयमस्य प्रबन्धलेखनस्य हेतुः यत् आयुर्वेदशास्त्रे "दोषधातुमलम्लं हि शरीरम् " इत्यनेन दोषा धात्रको मलाश्व समकक्षीयाः पदार्था अंगीकृताः। तत्र यथा धात्रनां मलानां च यथावत् ज्ञानं स्पष्टतया भवति । तथा दोषा-णामि साकल्येन स्पष्टतया च ज्ञानमावश्यकं, येन खज्ञाननिष्ठया परसंशयोच्छेदनसामथ्यं लभेयुरायुर्वेदिवदः । निबन्धलेखने चरकसुश्रुतबृद्धवाग्मटाष्टांग-हृदयाश्चत्वारएव प्रयाः प्रामुद्ध्येन प्रमाणीकृताः आमेडादिभावप्रकाशपर्यन्तापि प्रमाणत्वेनाङ्गीकृताः । नातोध्वं नन्यसंभूतप्रयाः प्रमाणम् । निबन्धेऽस्मिन् प्रयचतुष्टयगतिश्चातुविषयकशद्धकल्पनाविचाराणामशेषत्या संप्रहणं आवश्य-कम् । तथा च लेखनपरिपाट्या लेखकैस्तथा यत्नः कार्यो येन आधुनिकानां त्रिधातुगतं अशास्त्रीयलापवादनिरसनं निर्दिष्टप्राचीनग्रंथप्रणेतृभिः साभिप्रायं

योजितः त्रिधातु विषयकसंज्ञाशद्वानां अपरिवृत्येव भवेत् । निम्नलिखितप्रकरण-चतुष्टये तत्तद्विषयनिवेशनपूर्वकं लेखनं कार्यम् । प्रतिप्रकरणप्रथमागतशद्व-कल्पनाविचाराणां भिन्नार्थत्वेन भिन्नप्रयोजनेन च पौनस्क्सं खीकृतं भवेत् । प्रबन्धलेखनसौकर्यार्थं प्रतिप्रकरणे आवश्यकाणां त्रिधातुगति षयाणां समा-वेशनार्थं सूचीपत्रकमधोदीयते । नैतदेवसर्वथा पूर्णमितिमन्तव्यम् । दर्शित-विषयांशेभ्यो भवेयुरन्येऽपि केचनांशास्तेषामपि सविवेचनं समावेशनं कार्यमेव ।

त्रिधातुसर्वस्वस्य सूचीपत्रम् ।

१ आकृतीविज्ञानम् नाम प्रथमं प्रकरणम् ।

अस्मिन् प्रकरणे त्रिचातुनां खरूपवर्णमानस्थानपांचभौतिकत्वत्रिवृत्क-रणपंचविधत्वसाधर्म्यवैधर्म्यद्रव्यत्वसाम्यादीनां विवेचनमावश्यकम् ।

२ प्रकृतिविज्ञानम् द्वितीयं प्रकरणम् ।

अस्मिन् द्वितीये प्रकरणे त्रिधातुनां सर्वशरीरव्यापित्वं एकदेशव्यापित्वं सप्तधातुमलाग्निप्रकृत्वाशयकलाधमनीशिरारनायुन्नोतआहाररसेषु संबंधः । तथा आहारानाहारात्क्षीणता कालर्तुलक्षणप्रकृतिकर्माणां वर्णनं, तैर्देहवर्तनं, तेषां गुणः खतंत्रत्वं, पंगुत्वं, चालकत्वं, सोमसूर्यानिलसाम्यत्वं, पोष्यपोषकत्वमाश्रया-श्रयीभावः, आहारसमये स्थितिः, गतिवयदिनरात्रिभुक्तकोष्ठेषु संबंधः, शुक्रार्तव-संबंधः, कालसंबंधः, गर्भाशयसंबंधः, महाभूतविकारप्रकृतिसंबंधः, विसर्गादान-विक्षेपाः, शरीरधारणस्थानसंश्रया इत्येते विषया विवेचनीयाः।

३ विकृतिविज्ञानं नाम तृतीय प्रकरणम् ।

अस्मिन् प्रकरणे त्रिधातुनां दोषत्वप्राप्तिः, चयादिषट्कं, संसर्गाः, संनिपाताः, आमपच्यमानपक्वावस्थाः, क्षयोवृद्धिः, विपरीतगुणरुचिकर्तृत्वं, समानगुणरुचिकर्तृत्वं रूपवृद्धिः, रूपक्षयः, कोपेन शीव्रदेहन्यापित्वं रोगकर्तृत्वं, न्याध्युपद्रवकर्तृत्वं, संस्थानविशेषः- स्थानांतरगमनं, दूष्यदेशादिसंबंधः, मळ-रूपत्वं, क्षयवृद्धिभेदसंख्या, अतिप्रवृत्तत्वं, संगः, स्ववणं देहनाशकत्वं, इत्यादीनां विषयाणां संग्रहः कार्यः।

इतिवृत्तम्-पूर्वपीठिका

प्रकरणं चतुर्थं चिकित्सा।

अस्मिन् प्रकरणे रोगकारणभूतानां त्रिधात्नां प्रकृतिप्रापणार्थं लंघनबृंहण-रामनशोधनसाधनीभूतानां स्नेहस्बेदवमनविरेचननस्यादिपंचकर्मणां तथा त्रि-धातूनां अल्पाल्पनिवर्तनं, क्षीणानां वृद्धिः, वृद्धानां क्षयः, प्रधानप्रशमे प्रशमः, इत्यादिविषयाणां विवरणं कार्यम् ।

लेखकैर्निबंधलेखनं पत्रकस्य एकस्मिन्नेव पृष्ठभागे कार्यं । अक्षराणि सु-वाच्यानि लेखनीयानि । प्रतिपृष्ठे सामान्यतया शद्धसंख्या सार्धित्रशतपर्यन्ता नियोजयितव्या । लेखकैर्लिखतप्रबंधे स्वनामलेखनं न कार्यं, किंतु किमपि चिन्हं अंकितव्यं तिचन्हसहितं स्वनाम अन्यस्मिन् पत्रे मंत्रिणः सविधं प्रेषि-तव्यं । निबन्धलेखनस्याविधस्तु आंग्लफेब्रुवारीमासपर्यंतं सुनिश्चितः ।

समागतिनवंधानां परीक्षणं भारतमान्येस्तत्तः प्रांतीयप्रतिनिधिभूतैः पंडितप्रवरैः भिष्यवरैर्भवेत् ।

तेषां नामानि यथाकालं सुस्पष्टानि भविष्यंति । पारितोषिकार्हस्य प्रबन्धस्य स्वामित्वं स्वागतकारिणीसभायाः सर्वथा भवेत् ।

निबंधविषयकं अन्यदिप किंचिद्विचारणीयं स्यात् तदायुर्वेदाचार्य-पुरुषोत्तमशास्त्री नानळ सदाशीवपेठ नं.९८५ पुण्यपतनं इत्येतेभ्यः सकाशात् पत्रप्रापणेन वेदितव्यं।

लिखिताः प्रबंधाः वैद्यभूषण वामनशास्त्री दातार [जनस्थान] नासिक इस्प्रेतेषां सविधे रजिष्टरीद्वारा प्रेषणीयाः ।

भवताम्

- १ वैद्यभूषण वामनशास्त्री दातारः
- २ वैद्यरत्न विष्णुशास्त्री केळकर.
- ३ डॉ. दत्तात्रय बळवंत खाडीलकर.
- ४ डॉ. विष्णु महादेव भट.
- ५ शिवशंकरशास्त्री शौचे.

१९ वैद्य संमेळन स्वागतसमितिमंत्रिणः जनस्थानम्,

त्रिधातुसर्वस्यनिबंधपरीक्षणवृत्तम्

ले.-वै. भू. वामनशास्त्री दातार, नासिक.

फत्तेपरीये अष्टादशवैद्यसंमेळनसमये सम्मीळितानां महाराष्ट्रीयप्रमुख-वैद्यानां मिथः संलापे एकोनविंशतितमं वैद्यसंमेलनं महाराष्ट्रप्रांते जनस्थाने कृत्वा, तत्र तिद्वसंभाषाणां प्राथम्येनैव संमेलनांगीयं प्रचारणं संसाध्य, पंच-शतरूप्यकपारितोषकदानेन आयुर्वेदम्लानां त्रिदोषाणां प्राचीनतंत्रानुगतम् , रह-स्योद्घाटकं, विपक्षाक्षेपप्रशामकं, यथाबद्दस्तुवर्णनक्षमं, 'त्रिदोषसर्वस्वनामकं' सरल-सुबोधगीर्वाणगद्यमयं, प्रबंधं भारतीयायुर्वेदविक्ठेखंकभ्यो विलिख्य तस्य प्रकाशनं कार्यमिति विचारनिर्धारणं समभूत् । तदनुसारं एकोनविंशतितमं वैद्यसंमेळनं महता समारोहेण जनस्थाने वर्षद्वयात्पूर्वमेव संमीलितमिति विदितचरमेव। तदानीं संमेलनसमयात्रागेव षण्मासं त्रिधातुसर्वस्वनिबंधलेखनार्थं विज्ञापिता आयुर्वेदज्ञाः । लेखनसौकर्यार्थं विद्वद्रवैद्यानुमोदितमेकं पत्रकं चतुर्थक्रमां कितं मुद्राप्य सर्वस्मिन् प्रांते प्रेषितमासीत्। त्रिधातुसर्वस्वनिबंधे, त्रिधात्नां १ आकृति-विज्ञानं, २ प्रकृतिविज्ञानं, ३ विकृतिविज्ञानं, ४ चिकित्सा इति प्रकरण-चतुष्टये चरकसुश्रुतवृद्धवाग्भटाष्टांगहृदयगतित्रदोषविषयकशह्भकल्पनाविचाराणां अरोपतया संग्रहणं कृत्वा दोषाणां साकल्येन स्पष्टतया ज्ञानं यथा स्यात्तथा प्रयतनीयम् । येन प्रबंधेन ' परसंशयोच्छेदसामर्थ्यं लभेयुरायुर्वेदविदः। प्रबन्ध-लेखनहेतुस्तु' ' दोषधातुमलमूलं हि शरीरमिल्यनेन दोषा धातवो मलाश्व सम-कक्षीयाः पदार्था अंगीकृता आयुर्वेदशास्त्रे । तत्र यथा धात्नां मलानां च यथावत् ज्ञानं स्पष्टतया मंवति तथा दोषाणामपि साकल्येन स्पष्टतया च ज्ञान-मावश्यकम् इति । ' निबंधस्तु ' पंचविंशत्यधिकशतपृष्ठात्मको आवश्यकः । ' प्रबन्धलेखकेन स्वलेखनपरिपाट्या तथा यत्नः कार्यो येन आधुनिकानां शास्त्री-यत्वापवादनिरसनं प्राचीनग्रंथप्रणेतृभिः साभिप्रायं योजितत्रिधातुविषयकसंज्ञा-शद्भानां अपरिवृत्यैव भवेत्, इत्यादिकं सर्वमिप क्रमांकचतुर्थमिते पत्रके प्रका-शितमासीत्। अत ऊर्धं 'वैद्यभूषण पुरुषोत्तमशास्री हिर्लेकरैः' वातपित्तकफानां

त्रिदोषसंज्ञासत्वे ' त्रिधातुसंज्ञयोच्चारणं शास्त्रविरुद्धम् । ' केचन वैद्या हटादेव त्रिदोषसंज्ञोचारणे बद्धपरिकरास्तेषामेवायं 'त्रिधातुसंज्ञाप्रचारणार्थं समुद्योगः त्रिधातुसर्वस्वानिबन्धलेखने '। पंचशतरूप्यमितपारितोषकदानेन वृथा धन-व्ययः स्यादिति विवादः समारब्धः। तन्निराकरणार्थं अष्टमं पत्रकं निष्कासि-तमभूत् । तस्मिन् पत्रके 'प्रथमं तावदंगीिक्रयते वातिपत्तकफानां आयुर्वेदशास्त्रेः तत्कर्मवैशिष्ट्यज्ञापनार्थं, रसादिसप्तधातुम्यस्तेषां व्यवच्छेदनार्थं, त्रिदोष इति संज्ञाकरणं प्रामुख्येन परिभाषितमिति । तथापि ' तेषां केवलं खयं दुष्टत्वं परदूषकत्विमिस्येतदेकमेव कर्म नास्ति अपि तु शरीरोत्पादनधारणपोषणादिकमपि कर्मजातमायुर्वेदशास्त्रे गदितमिति प्रथितमेव । तथैव प्रथितसर्वायुर्वेदतंत्रेषु वात-पित्तकफानां त्रिदोषत्वेनेव त्रिधातुत्वेनापि परिभाषणं मुक्तकंठतयाऽनेकस्थलेषु कृतमिति दरीदृश्यते चान्यरप्यायुर्वेदेतरभिनाभिनशास्त्रविद्भिश्च इति विलिख्य धातुसंज्ञायुतवाक्यानां पंचविंशन्मितानामुद्धारं कृत्वा धातुसंज्ञाकरणं सर्वथा शास्त्रसिद्धमेवेति दर्शितम्'। तथापि मृषाविवादनाशार्थं तदानीमेव तस्मिन्नेव पत्रेके वातादीनां धातुसंज्ञयोचारणमशास्त्रीयमितिमन्यमानैविद्वाद्भः स्वप्रबंधस्य लेखनं दोषसंज्ञाकरणेनापि कार्यमिति सनति विनिवेदितम्। नास्माकं धातुराद्धे हटाम्रहः । केवलं वातादीनां साकल्यस्वरूपकार्यावबोधे प्राचीनम्रथगतवातादि-विषयकं सकलवचनकल्पनोद्धारेण संकलनार्थं समुद्यम इति च प्रकाशितमेव। पत्रकद्भयप्रकाशनादनंतरमुद्धोषितसमयपर्यन्तं द्वादश प्रबन्धाः समागता आसन्.

क्रमसंख्या

लेखकाः---

- उमामपेश्वर शर्मा होसमने, गोकर्ण पृष्ठसंख्या १३
- २. कविराज नानकचंद्र आयुर्वेदाचार्य छवपुरम् पृष्ठसंख्या ३४
- ३. एम्. व्यंकटशास्त्री, पेडुगोन्र्र पृष्ठसंख्या १२६
- वैद्यराज मूळजी महात्मा बडीसादडी (मेवाड) पृष्ठसंख्या १४
- ५. पी. वासुदेवन् नांवेसन् त्रिचुर (कृष्णा डिस्ट्रिक्ट) पृष्ठ-संख्या १२७

- ६. वैद्यरन वासुदेवशास्त्री कडेगांवकर, सातारा पृष्ठसंख्या २०३
- ७. वैद्य महेश्वर राम जोशी पुराणिक, मालवण (रत्नागिरी) पृष्ठ-
- ८. वैद्य त्र्यंबकशास्त्री जोशी, सांगली पृष्ठसंख्या १२३
- ९. पं. भिकाजी विनायक डेग्वेकर, एम्. ए., एम्. एस्सी., एट्. एट्. बी. जबटपूर पृष्ठसंख्या १२४
- १०. श्री. अनंत भास्कर कर्डिले बी. ए., बी. एस्सी., जनस्थानं पृष्ठसंख्या १२७
- ११. वैद्य दुर्गादत्तपंत, अमीनाबाद (लखनऊ) पृष्ठसंख्या ७४
- १२. कविराज धीरेंद्रनाथराय् एम्, एस्, सी. कलकत्ता पृष्ठसंख्या ६४

प्तेषु प्रबंधेषु ११।१२ इति प्रबंधी समयातिपातमागती क्र<mark>मांक-</mark> १।२।४।११।१२ एते प्रबन्धाः निर्दिष्टपत्रसंख्यया न्यूनाः, षष्टः प्रबन्धः यथा दर्शितपत्रसंख्यया द्विगुणितः, क्रमांकः द्वादशीयः प्रबन्धः आंग्लभाषायुतः इस्येते प्रबन्धा भिन्नैभिन्नैः कारणैः चतुर्थपत्रकदत्तनियमबाह्यत्वेन मंत्रिणा अ-स्वीकार्या एव । तथापि प्रबन्धानां संख्याल्पत्वात्सर्वेऽपि निबंधाः परीक्षणार्थं परीक्षकेभ्यः प्रदत्ता एव । अष्टसंख्याके पत्रके प्रबंधपरीक्षणार्थं १. वैद्यराज गुणेशास्त्रिणः २. पं. लक्ष्मीराम स्वामिनः ३. कविराज शामदासं वाचस्पतयः ४. कॅ. जी. श्रीनिवासमूर्तयः ५. पं. जादवजी आचार्याः ६. पं. कृष्णशास्त्री देवधराः ७. पं. नानल्हाास्त्रिणः ८. पं. डेग्वेकराः ९. पं. ठाकूरदत्तवर्माणः १०. पं. श्रीनिवासशास्त्रिणो वाराणसीस्थाः ११. पं. एम्. व्ही. शास्त्रिणो मंगळुरस्थाः १२. पं. के. शेषशाश्चिणः १३. कविराज गणनाथसेन महा-भागाः इत्येते महाभागा विज्ञापिताः । एतेभ्य एव प्रबन्धपरीक्षणार्थं परीक्षका भवेयुरिति च प्रकाशितमभवत । एतेषु सेनमहाशयैः रुग्णत्वेन, पं. जादवजी रार्मभिः कार्यबाहुल्यात्, पं. डेखेकरैः स्वयं प्रबन्धलेखकत्वेन नांगीकृतं परी-क्षणकार्यम् । पं. श्रीनिवासशास्त्री, पं. शामदास वाचरपति, पं. के. शेष-शास्त्री इत्येतैः पत्रोत्तरमेवादत्तम् । पं. देवधरशास्त्रिभेः परीक्षककार्यमकृत्वैव

प्रबन्धावलोकनं स्वीकृतम् । अतः १. पं. लक्ष्मीरामस्वामी जयपुरम् २. कॅ. जी. श्रीनिवासमूर्ती मदास, ३. पं. ठाकूरदत्तवर्मी छाहोर, ४ पं. नानलशास्त्री पुण्यपत्तनम्, ५. पं. दुर्गाशंकर केवलराम मोहमयी. ६. पं. जगनाथप्रसाद वाजपेयी वाराणसी, ७. पं. रामेश्वरशास्त्री ग्वाल्हेर, इत्येते परीक्षका नियुक्ता आसन् । परीक्षणार्थं १. वाक्यसंप्रहे २५ गुणाः । २. वाक्यानां विषयसंगत्या वर्गीकरणे २५ गुणाः । ३. विषयबोधने २० गुणाः । ४. प्रचितशास्त्र-तुल्नायां २० गुणाः । अवांतरकौशल्ये १० गुणाः । इति शतगुणिमतं पत्रकं चतुर्थपत्रकेण साकं प्रेषितम् । संमेलनसमये पं. लक्ष्मीरामस्वामीनामेव परीक्षणं पूर्णमभूत । ततोऽनंतरमांग्छताछिका २४।३।३१ मितकाछपर्यन्तमन्यैः षट्भिः परीक्षकैः प्रबन्धपरीक्षणं कृतम् । परीक्षणार्थं पर्याप्तः कालो दत्तः । सर्वेरिप समाहितेन मनसा परीक्षणं कृतम् । प्रायो वत्सरद्वयादधिकः कालः परीक्षणकरणे व्यतीतोऽभवत्। अतोऽधिकपरीक्षकेभ्यः परीक्षणार्थं कालाति-पातभयात् लेखकनां प्रबन्धपरीक्षणफलश्रवणात्मुकानां, अलौत्मुक्यात्, प्रबन्ध-प्रेषणं न कृतम् । परीक्षकेभ्यः प्रबन्धलेखकानां नामानि तथा लेखकेभ्यः परीक्षकनामानि अज्ञातान्येवासन् । अस्मिन्नेव समयाभ्यन्तरे पुनरिप वैद्यवर हिर्छेकरशास्त्रिभिः पं. देग्वेकराः प्रवन्धलेखकाः सन्तोषि नियुक्ता इति सर्वथा अनृतप्रायो मात्सर्ययुतः परावहेलनप्रचुरः आक्षेपः वैद्य-संमेळनपत्रिकायां आयुर्वेदपत्रे च गृहीत्वा यत्किमपि छेखनमारब्धम्, इत्यने-नैवापरिसमाप्तमिति मन्वानैः कैश्चित् पं.डेग्वेकरमहाशयाः पंचशतरूप्यकमित-पारितोषकं लब्धवन्त इत्यपि प्रकाशितम् ।

एततु सर्वमिप दृष्टिपातिनपातायोग्यमेवेति सिद्धं । सर्वैरिप निबन्ध-लेखकैर्विशेषतो पं. डेग्वेकरमहाभागैः खप्रबन्धे त्रिदोषशब्दे त्रिधातुशब्द-प्रयोगकरणे हटाप्रहो नैव खीकृत इति प्रबन्धावलोकनानन्तरम् सुविज्ञात-मभवत् । खागतसिन्त्याः केवलं त्रिधातुशब्दप्रयोगकरणार्थमेव पंचशतरूप्यक-पारितोषकदाने समुद्योगस्सर्वथा नैवाऽभवत् न लेखकानां खप्रबन्धलेखने सत्यपि शास्त्रमान्ये त्रिधातुशद्धे । भवतु, सर्वैः परीक्षकैः खपरीक्षणफलं गुणांकितम्

कृत्वा प्रेषितम् । कैश्वन परीक्षकैर्गुणांकदानसाकमेव प्रबन्धविषयकं स्वमतं विलिख्य प्रेषितम् । विशेषतस्तु पंडितप्रकांडैर्लक्ष्मीरामस्वामिभिः स्वीयं मतं प्रति-प्रबंधं सुविस्तरं विलिख्यैव प्रदत्तं वर्तते । सर्वेषां परीक्षकाणां प्रबन्धपरीक्षणफलं निम्नलिखितमिव तालपर्यतो वर्तते १ नैकोऽपि प्रबंधः स्वपरीक्षकैकमत्येन प्रथमकक्षीयः । २ नैकोऽपि प्रबन्धः परीक्षकबहुमतत्वेनाऽपि प्रथमकक्षीयः । ३ दशमक्रमांकितः श्री. अनंत भास्कर कार्डिले इत्येषां प्रबन्धः परीक्षकत्रयमते प्रथमकक्षीयः । ४ सप्तमक्रमांकितो श्रीराम महेश्वरशास्त्री जोशी महाभागानां प्रबंधः प्रीक्षकद्वितयमते प्रथमकक्षीयः । ५ अष्टनवैमकादशक्रमांकिताः प्रबन्धाः एकैकपरीक्षकमतेन प्रथमकक्षीयाः । गुणांकसंकलनेन पं. डेग्वेकरमहाभागानां प्रबंधस्त ३९१ गुणांकप्राप्ता सर्वतोऽप्यधिकोऽपि एकं विहाय षट्परीक्षकैः न सर्वश्रेष्ठः. 'प्रथम ' इति नैव संबोधित इति । ३-५-७-८-९-१० इति क्रमांकितेष्वेव प्रबंधेषु अहमहिमका परीक्षणसमये समभूत परीक्षकमहोदयान्तः-करणेष्ट्रित दश्यते । क्रमांकाः १-२-४-६-८-१२ इति संज्ञिताः प्रबन्धाः परीक्षकमत्या अनु अस्थानत्वे परिगणिता इति दश्यंते । आंग्छताछिकायां (२४-४-३१) सर्वेपि निबंधाः मंत्रिसकाशं प्रत्यागतास्तदनंतरम् ये षट्-प्रबन्धा अवरत्वेन परीक्षकैर्गणितास्ते सत्वरमेव छेखकमहोदयसकाशं प्रेषिता अभवन् । अपरेषां पण्णां प्रबन्धानां गु. प्रा. कृष्णशास्त्री देवधर, वैद्यरत विष्णुशास्त्री केळकर, वैद्यभूषण वामनशास्त्री दातार इस्रेतैः पृथक्त्वेन वाचनं कृत्वा तेषां त्रयाणामपि परीक्षकमतानुकूलमेवाजनि मतम् । १ अन्ततः नैकाऽपि प्रबन्धः ' त्रिधातुसर्वस्व ' संज्ञा शद्बार्हः । २ नैकोऽपि प्रबन्धः आयुर्वेद-वाग्विलासे अत्युत्कृष्टत्वेनाऽद्वितीयः। ३ नैकोऽपि प्रबन्धः आयुर्वेदपिपठिषूणां आदर्शत्वेनाभ्यसनानुकूळः । ४ नैकोऽपि प्रबन्धः आधुनिकानां त्रिदोषाक्षेप-गृहींतृणां सर्वाक्षेपनिरसनकरोद्घोधकः । ५ नैकोऽपि प्रबन्धः गृहीताऽयुर्वेदानां प्राचीनानां नाविन्यत्वेन चित्तहत्तोषक इति कृत्वा, तथा च सर्वथा सर्वोत्कृष्टत्वेन गरीयानेव प्रबन्ध आवश्यकः येन चरकसुश्रुतवाग्मटादीनां समकक्षीयत्वेन स्थानं स्वगुणैर्छन्धं भवेत् । अयमेव स्वागतसामित्याः पारितोषकदाने

प्रधानो हेतुः । अतः सखेदमपि तथ्यं प्रकर्टाकरोति स्वागतसमितिर्यत् सर्वेऽपि समागताः प्रबन्धाः प्रबन्धलेखकैर्महता प्रयत्नेन पांडित्यभरेण लिखिताः। तेषु च नवमदशमांकितौ प्रबन्धौ सर्वेभ्योऽतिशायितौ यद्यपि वर्तेते तथापि पूर्विलिखितविचारेण पंचशतरूप्यकमितपारितोषकदाने प्रथमकक्षायामपि प्राथ-म्यत्वेन परीक्षकैरैकमस्येनागणितत्वात् अनहीं । अतः नैकेनापि छेखकमहा-भागेन लब्धमिदं पारितोषिकं तथैव वर्तते इति । इदं तावत्प्रथमतः, खेदास्पदं यदखिले भारते वर्षे परमविख्यातपंडितानां आयुर्वेदविदुषां विद्यमानत्वे, आयु-र्वेद वृक्षस्य मूळ एव त्रिदोषतत्वे सत्यपि, तदुपरि नानाक्षेपेषु परकीयवैद्याविद्या-विद्धिगृह्यमाणेषु सत्खपि, तन्त्रिराकरणार्थं पंचरातरूप्यकप्रदानेन याच्यमाने प्रबन्धे द्वादरीव प्रबंधा आभारतात्समागता इति । आगतेषु प्रबन्धेषु नैकोऽपि प्रबन्धः पारितोषकदानयोग्यः सम्पन्न इति त्रिनिवेद्यितं दुनोति नः स्रांतम् । तथापि यत्प्राप्तं तत्कार्यमेवेति न्यायेन सखेदमेव निवेदयामः । एतद्विषये फत्तेपरसंमेळने संमीळितानां वैद्यवर मुणेशास्त्री, वैद्यराज पराडकरशास्त्री, वैद्यश्रेष्ठ नान्छशास्त्रिणामपि पत्रीत्तरछब्ध्या संमतिरपि समासादिता एव । तथापि 'प्रारव्धमत्तमजना न परित्यजंतीति' न्यायेन पुनर्पि त्रिधातुसर्वस्वनिबंध-लेखने लेखकवराः समभ्यर्थंते । तदेव पारितोषिकं पुनरपि श्रष्टनिबंधलेखकः प्राप्स्यति । निबंधलेखनार्थं पर्याप्तकालप्राप्तिभीविष्यति । प्रबंधपरीक्षणं जीव्रमेव समाप्तं भवेत् । पारितोषकदाने प्रबन्धमुद्रणे पर्याप्तं धनं सुगुप्तं यथापूर्वं वर्तत एव । स्वागतसमितिः सर्वश्रेष्ठनिबंधलब्ध्या तन्मद्रणेन विना नैव स्थगिता भाविष्यति खोद्यमादिति । अन्ततः यैर्यैः लेखकवरैः स्वागतसमितिविज्ञप्यनंतरं श्रमशतं स्वीकृत्य प्रबन्धलेखनं कृतम् , सार्घद्विहायनमितः कालोपि प्रतीक्षितः । यैश्च पंडितप्रकांडैः प्रबन्धपरीक्षणं खोद्योगरातं परिखज्य खीकृतं. नि:पक्ष-पाततया पारितं च, तेषां तेषां सविनयं सांजल्बिंधं क्षमायाचनपूर्वकमभिनंदनं कत्वा विरंग्यते।

त्रिधातुसर्वस्विनिवंधपरीक्षणवृत्तम् अस्मादनंतरम् पुनश्च स्वागत-समित्या निवंधाः अस्मिन्विषये समाहूताः । प्रदत्ता च वृत्तपत्रेषु मासिकपत्रेषु



प्रगटा विज्ञतिः । पुनरिप निष्कासितम् पत्रकम् । प्रेषितं चासीदाभारतीयेषु प्रसिद्धेषु स्थलेषु पंडितवरेषु पाठशालाविद्यालयेषु च । समागताः षट् निवंधाः । तेषां परीक्षणं पुनरिप कृतम् । तस्यापि परीक्षणस्येतिवृत्तं दीयते ।

॥ श्री ॥

१८५५ शाकीये वैशाखीये शुक्रपक्षे तृतीयायां गुरुवासरे, नासिक.

त्रिधातुसर्वस्वनिबंधपरीक्षणफलम् ।

१ जनस्थानमध्ये एकोनिवंशितितमे निखिल-भारतवर्षीय-वैद्यसम्मेलन-समये परीक्षणार्थं पुनः प्रार्थितानां " त्रिधातुसर्वस्वं " इति विषयमधिकृत्य निबंधानां षट्संख्यकानां परीक्षणानंतरं परीक्षकमंडलेन यश्च प्रादायि अभिप्रायः

२ षट्संख्याकेषु, निबंधेषु, एकोऽपि निबंधः " विद्यमानाक्षेपाणां '' निरासकरः तथाच शास्त्रीयतासिद्धिदश्च नैव दृश्यते । निखिल-भारतवर्षीय-वैद्यसंमेलनस्य यादृशी अपेक्षाऽस्मिन्विषये आसीत् तस्याः पूरणं नैकेनाऽपि भिवतुमहिति ।

३ प्रतिनिबंध वाक्यानां संग्रहः, तथा कृतो दश्यते यथा स प्रविविश्करणां साहाय्यसंपादनमपि कर्तुमसमर्थ एव ।

४ सर्वेषामपि परीक्षकाणां परीक्षणविधौ गुणप्रकर्षेण नैकोऽपि निबंधः सर्वातिशायित्वेन वरीवर्ति ।

५ यद्यपि नैकोऽपि निबंधः परीक्षकाणां मनांसि आकर्षयितस्म, अतः पारितोषिकमि नैकेन संप्राप्तम्, तथापि निबंधलेखकानां प्रोत्साहनार्थं वयिमत्थं निवेदयामः यत् श्रीशंकर—डबल्डी खड्धारी च एते निबंधलेखकाः प्रोत्साहकपारितोषिकप्रदानार्हाः तदर्थं प्रतिनिबंधलेखकाय पंचाशद्रूपकपरि-मितं पारितोषिकं प्रदेयमिति। *

एतेभ्यः पंचाशद्रूप्यकमितं पारितोषिकं स्वागतसामित्या प्रदत्तम् ।
 सार्धशतरूपकाः प्रदत्ताः
 वामनशास्त्रीदातारः

६ वयिषदानीं जनस्थानीयस्वागतमंडलाय सादरिमत्थं संसूचयामः यदयं आयुर्वेदस्य प्राणभूतो विषयः तस्य च निश्चितस्वरूपस्य प्रस्थापनार्थं विचारार्थं च अचिरादेव महाराष्ट्रीयतज्ज्ञवैद्यानां एका परिषद् विधेया तया सोयं प्रश्नः अवश्यमेव तथा विचारणीयः यथा अस्य गंभीरस्य विषयस्य सर्वेभ्यः सम्यक् ज्ञानं भवेत् इति निवेद्य ।

विरमामः

गंगाधरशास्त्री गुणे, वैद्य. पु. स. हिर्लेकर, वैद्य. पुरुषोत्तम गणेश नानल वैद्य.

ततो परीक्षकिवचारानुरोधात् कुत्रापि एतादृशी त्रिदोषपरिषत् संमीलिता चेत्सुमहत्कार्यं भवेदिति विचार्यमाणेन मया मदीयपरमसुहृद्धरवैद्यराजपंडित-नान्छशास्त्रीणां सहाय्येन पनवेछग्रामिन्यासिभिः प्रथितनामधेयेस्सुनिपुणकार्य-कर्तृभिः आरोग्यमंदीरव्यवस्थापकैः श्रीयुक्तर्गगाधरशर्मभिः पुराणिकाव्हयैर्यदि इयं परिषद् स्वीयं नगरे मंदिरे च समाहूता पारिता चेत् समीचीनं स्यात् इति मनिस विचित्र विज्ञापितास्ते अस्याः परिषदः आमंत्रकास्सानंदं बभूवः। ततो उत्साह्मरितमानसेन मया समाहूता परिषत्। निष्कासितानि पत्रकाणि। निर्मापिता च स्वागतकारिणी परिषत्। निर्वाचिताश्च भिषगाचार्याः त्रिंबकशास्त्री-आपटे महाभागाः परिषद्ध्यक्षाः। नियोजिताश्च वे. शा. सं. नारायणशास्त्री वाडीकरोपाव्हा न्यायरत्नास्तथा आयुर्वेदाचार्या पुरुषोत्तमशास्त्री नानलाः, भिषग्वराश्च पुराणिकोपाव्हा दत्तात्रेयशास्त्रिणो आवेक्षकाः। निर्धारितश्च २९-१२-३३ दिनमारभ्य १-१-३४ दिनपर्यंतं चतुर्थदिनात्मकश्च परिषत्कालः सा च परिषत् यथावसरं पनवेळग्रामे महतोत्साहमरेण श्रीमतां नानासाहेब-पुराणिकमहाभागानां भव्ये आरोग्यमंदिरे संमीळिताऽभवत्। यस्याः परिषदः सर्वेपि द्रव्यव्यः श्रीमद्विरेवोदारतया कृतः।

तत्परिषदोऽदन्तं अंशभूतं सारगर्भं चाधस्ताद्दीयते ।

पत्रकं चतुर्थंम्।

समागच्छति डिसेंबरमासे ता. २९-३०-३१ वत्सरे १९३३ तथा ता. १-१-१९३४ एतेषु चतुर्ष दिनेषु निर्दिष्टपरिषदि त्रिदोषविषयस्यैव प्रामुख्यतो भवेद्धिचारः । आयुर्वेदे त्रिदेशषविषयस्य वर्तते अतितराम् महत्वम् । नन् स विषयो आयुर्वेदस्य मूलभूत एव । आधानिकाः त्रिदोषाणां पाश्चात्यवैद्यकीयेन्द्रियशार्रार्-शास्त्रपणाल्या नैव वर्तते प्रस्यक्षमस्तित्वमिति समामनंति । इयं हि प्राचीनानां विद्यते कापि कल्पना । विद्यंते त्रिदोषाश्चेत तेषां अस्तित्वं प्रस्यक्षसिद्धं श्रीमद्भिर्दर्शनीयमिति तेषां विद्यते आव्हानं । स चायं वादो विद्यते पंचारात् वत्सरात्मकः । अनेकैरस्मिन्विषये स्त्रीयानि मतानि विचाराश्च प्रदर्शिताः नैकमस्यं भवस्यस्मिन्विषये अद्यापि । १ त्रिदे।षाः कल्पनामया एव । २ त्रिदोषाः पंचभूतोत्पन्नाः । ३ त्रिदोषा एव पंचमहाभूतानि । ४ त्रिदोषाः सुक्ष्मा अनुमानगम्या विद्यंते । ५ त्रिदोषाः शक्तिरूपाः । ६ त्रिदोषा द्रव्याणि ७ त्रिदोषाः स्थूलाश्च सूक्ष्मा इति द्विविधस्तरूपा इत्याद्यनेकानि प्रचलितानि विद्यंते मतानि सांप्रतम् । अतो भिन्नभिन्नमतसंकरप्रचुरेऽस्मिन्विषये अस्मिन् काले अस्य विषयस्य शास्त्रग्रद्ध उहापोह आवश्यको वर्तते । येन विद्वां वैद्यानां ऐकमस्यं भवेत् । वर्तंतेSस्मिन्विषये विद्वद्वैद्यवराणां मतैक्यस्यावस्थकता । सर्वेषु मतप्रकारेषु १ त्रिदोषाः प्रत्यक्षद्दया नित्योत्पत्तिमंतो स्रवणशीलाः पदार्थाः (द्रव्याणि) २ त्रिदोषाः शक्तिरूपाः अनुमानगम्याः पदार्थाः परमसूक्ष्मा अदृश्याश्च न द्रव्याणि प्रस्यक्षदृश्याणि । एतयोर्मतयोरेव वर्तते प्राधान्यम् । अतोऽस्मिनेव मतद्वैविध्ये भवेत्परिषदि विचारः । अतो भवद्भिः स्वीयानि मतानि शास्त्रपूतानि प्रमाणसहितानि परिषदि उपस्थापयितव्यानि । श्रीमाद्भः पांडित्यस्य, शास्त्रीयाध्ययनस्य, साहाय्यं आबश्यमेव दातव्यम् । अस्यां परिषदि विवादविचारसमये विषयानुकुलानामन्येषामपि विषयाणां यथावश्यक एव स्पष्टीकरणसमर्थोऽन्यविषयविमर्शोऽपि स्वीकृतो भवेत् । सर्वैरिप इयं चर्चा सुहृद्भावजन्यसहजप्रेम्णा, शास्त्रनिष्ठान्तःकरणेन स्पष्टतया, आवश्यं कार्या । नैवाऽत्र खीयजयपराजयाकांक्षाऽत्र कार्या । प्रथमं श्रीमद्भिः

विषयस्यास्य परिशोलनं कृत्वा स्वकीयविचाराणां सारोद्धारं कृत्वा लिखित्वा च मंत्रिसमीपे परिषत्कालादवीगेव प्रेषणीयः । विद्यते खल्ल एतावान् कालावकाशः । श्रीमद्भिरस्याः परिषदःसुमहत्कार्यसाहाय्यं दत्वा साफल्यं संपादनीयम् आवश्यं चोपस्थातव्यमिति प्रार्थना ।

श्रीमतां

परिषदः स्थानं—पनवेल, श्रीधूतपापेश्वर आरोग्य-मंदिरम्। गंगाधर विष्णु पुराणिक.
स्वागताध्यक्ष.
पुरुषोत्तम सदाशिव हेर्लेकर वैद्य.
वामनशास्त्री दातार वैद्य.
मंत्री, त्रिदोषचर्चा परिषद्.

॥ श्री ॥

१८५५ शाकीये वैशाखीय ग्रुक्रपक्षे तृतीयायां गुरुवासरे, नासिक.

त्रिदोषचर्चापरिषद् ।

चर्चापद्धतिः ।

- आयुर्वेदतत्वरूपाणां वातिपत्तिश्चेष्मणां खरूपनिर्धारणं अस्याः परिषदो हेतुः ।
- २. चर्चाविषयभूतानां दोषाणां खरूपनिश्चये सभासद्भिः खाभि-प्रायः संक्षेपतो विलिख्य तदनुसारेण विवेचनं करणीयं येन विवेचन-विषयस्यावबोधः सुकरः।
- ३. विवेचनं सर्वमप्यायुर्वेदप्रामाण्यानुसारेण भवेत् । आयुर्वेदीयतंत्र-प्रामाण्याधिष्ठितस्तर्कयुक्तिवादोप्यवश्यं स्वीकरणीयः स्यात् ।
- ४. मतानां परस्परं विभिन्नानां विवेचनं खाभिप्रायप्रगटीकरणायप्रथमं विधेयं । ततः खल्पतरमतभेदविमर्शः ।

- ५. वातिपत्तकपानां किं खरूपं, कथमवबोध्यं, कान्यवबोधक्षमानि लक्षणानि, कथं वा खस्थातुरशरीरिक्रियाकरत्वमेतेषु, व्याधीनां विविधानां विज्ञानार्थमुपशमनार्थं च दोषविज्ञानेन को लाभ इति स्पष्टीकरणमेवाऽस्मिन् विवेचने प्राधान्येन खीकरणीयं।
- ६. प्रमाणभूतानां तत्रांतरीयवाक्यानां समुच्चयस्तत्वप्रतिपादनानुसारं प्रसंगात् करणीयः । न चात्र वाक्यसमुच्चयस्य प्राधान्यम् ।
- ७. वातादितत्विविचेचने आयुर्वेदप्रतिपादितसंज्ञार्थ एव प्रमाणीकर्तव्यः आयुर्वेदेतरशास्त्राणां न्यायसांख्यादीनां विवेचनसहाय्यक्त्वेन उपयोगो विधेयः।

८. विवेचने-

- १ दोषाणां द्रब्यशक्तिमूर्तामूर्तप्रस्थक्षानुमानगम्यपंचमहाभूत-पंच-भूतविकारवेनोपवर्णितानां स्वरूपनिश्चयः ।
- २ निश्चितेन तेषां खरूपेण सर्वशरीरव्यापीनां सामान्यानां विशिष्टानां च अवयवांतरसंभवानां कर्मणां कथं संपादनं भवति ।
- ३ व्याधिविज्ञाने दोषविज्ञानात् व्याधयो विविधास्तेषामवस्थाश्च कथमवगतव्याः १
- ४ दोषविज्ञानेन कथं चिकित्सासीकर्यं किं वा चिकित्सायां प्रयोजनं दोषज्ञानस्य ?
- ५ शारीरेदियविज्ञाने दोषविज्ञानस्यांतर्भावः करणीयो न वा, करणीयश्चेत् कथं ?
- ६ वातादिदोषाणां रसवीर्यविपाकप्रभावानां च संबंधः कीट्राः ?
- ९. दोषज्ञानात्सुस्पष्टमिद्रियविज्ञानं भवेत्र वा ?
- १०. निदानचिकित्सादिन्यवहारे दोषाणां तथा तैः संपादितानां क्रियाणां विक्रियाणां च लौकिकभाषायामवबोधक्षमं वर्णनं शक्यं न वा ? (सर्वमपि विवेचनमुदाहरणैरवबोधसुलभं करणीयं)

विवेचनोपयुक्तानां द्रव्यशक्तयादिशास्त्रीयशद्धानां स्वाभिप्रायेण सुस्पष्टो-ऽर्थनिश्वयः करणीयः ।

> पु. स. हिर्लेकर, वैद्य. वामनशास्त्री दातार, वैद्य.

पनवेल त्रिदोषचर्चापरिषद् ।

विदितचरमेव सर्वेषां निखिलभारतायुर्वेदमहामण्डलवैद्यसंमेलनसंबद्धानां विदुषां यन्नासिकवैद्यमहासंमेलनप्रसंगे खागतकारिण्या सामित्या ' त्रिदोषसर्वस्वं ' इति विषयमधिकृत्य लिखितस्य सर्वोत्तमस्य निबंधस्य कृते पंचरातमुद्रात्मकं [५००] पारितोषिकं प्रोद्घोषितमासीदिति । यथानियमं द्विवारं समागतेषु निबंधेषु सर्वातिशायित्वेन परीक्षकाणां संतोषाय भवेदित्येवंविधो न कोऽपि निबंध आसीत् । कारणादेतस्मात् अतःपरं प्रथमं तावत् महाराष्ट्रीयवैद्यविदुषां काचित् परिषद् संयोजनीया । तस्यां च एतद्विषये साकल्येन चर्चा कार्या । तद्यंतरं च सर्वसंमतनिर्णयानुरोधेन निबंधप्रार्थना ग्रंथरचना वा करणीया इत्येवं निश्चितवती खागतकारिणीसमितिः ।

निश्चयमेनमनुस्त्य केंाकणप्रान्ते पनवेल्प्रामे ता. २९-१२-३३ दिनादारभ्य ता. १-१-३४ दिनपर्यंतं 'श्रीधृतपापेश्वर आयुर्वेद ट्रस्ट ' इत्याख्यायां संस्थायां परिषदेषा प्रचितता । अस्याः संस्थाया ये च कार्यदर्शिनः श्रीमंतो महानुभावाः नानासाहेव पुराणिक इत्याख्याः तैः यथार्थमेव स्वार्थत्यागपूर्वकं स्वागताध्यक्षत्वं स्वीकृतमासीत् । नासिकस्वागतकारिण्याः प्रधानमंत्रिभिः 'वामनशास्त्री दातार' महाशयैः तथा च 'वैद्यभूषण पुरुषोत्तमशास्त्री हिर्लेकर' 'आयुर्वेदाचार्य पुरुषोत्तमशास्त्री नानल ' इत्यादिभिः सशरीरक्केशमपि सभाया

अस्याः संयोजना कृता । बृहन्महाराष्ट्रीयेषु विद्वत्सु वैद्योत्तमेषु पुरस्तानिर्दिष्ट-नामधेयाः प्रमुखसदस्यत्वेन उपस्थिता आसन् । ते च यथा-वैद्यराज भि. वि. डेग्वेकर एम्. ए., एम्. एस्. सी., एल्. एल्. बी. जबलपूर; डॉ. तपस्वी बाबासाहेब परांजपे यवतमाळ, वैद्यपंचानन गंगाधरशास्त्री गुणे, वैद्यतीर्थ विनायकशास्त्री एकतारे, आयुर्वेदविशारद वेणीमाधवशास्त्री जोशी अहमदनगर; डॉ. विष्णु महादेव भट बी. ए., एम्. बी. बी. एस्. येवला, वैद्यभूषण पुरुषोत्तमशास्त्री हिर्छेकर अमरावती, वैद्यराज रानडेशास्त्री सातारा, आयुर्वेदाचार्थ नानलशास्त्री, भिषम्रत्न गंगाधरशास्त्री जोशी, वैद्यराज दत्तात्रयशास्त्री पुराणिक, उपाध्यक्ष—निखिल भारतायुर्वेदमहामण्डल, आयुर्वेदविशारद रघुनाथशास्त्री जोशी विद्यापीठपरीक्षक, आयुर्वेदाचार्य पांडुरंगशास्त्री देशपांडे, आयुर्वेदविशारद रांकरशास्त्री नानल, श्री. बाबासाहेब पटवर्धन बी. ए., एल्. एल्. बी., पुण्यपत्तनम् , आयुर्वेदभूषण गुर्जरशास्त्री, वैद्यराज तांबवेकर, अभ्यंकर मोहमयी; तथा अन्ये च बहवः सभ्याः समागता आसन् । एतस्मिन्नेव किल दिनचतुष्टये मोहमय्यां अखिलभारतवर्णाश्रमखराज्यसंघस्य विशेषमाधिवेशनमासीत् । एतद्ध-र्मकार्यदत्ताचित्ताः वैद्यश्रेष्ठाः ' प्राणाचार्य वासुदेवशास्त्री ऐनापुरे बम्बई ' तथा च ' वैद्यपंचानन कृष्णशास्त्री कवडे बी. ए. प्रधानमंत्री निखिल भारतायुर्वेद-महामण्डल ' इस्येते धर्मकार्यमग्रिमं मन्यमाना एतत्कार्यं त्यक्त्वा त्रिदोषचर्चार्थं नागन्तुमशक्नुवन् । 'वैद्यतीर्थ अप्पाशास्त्री साठे मोहमयी ' इत्येतैरपि कारणां-तरेण आगन्तुमसामर्थ्यं स्वकीयं पत्रद्वारा कथितमासीत् । एतेषां पण्डितवरेण्यानां अनुपस्थितिः सर्वसदस्यैः सभायाः वैगुण्येनैव अनुभूता । प्रचालिते च समाकार्थे सर्वसदस्यैः सभापतिमुखेन तंत्रीद्वारा ते पुनरिप साम्रहं आमंत्रिताः किंतु धर्मी हि रक्षितो आयुर्वेदं रक्षतीति कृत्वा तेषामागमनं अशक्यं सञ्जातम् । अस्याश्च सभायाः सभापातिस्थाने ये किल सर्वसम्मल्या नियोजितास्ते प्रथितनामधेयाः पुण्यपत्तनस्था 'भिषगाचार्य त्र्यंबकशास्त्री आपटे' इत्येते निखिल भारतायुर्वेद-विद्यापीठमंत्रिण इति सर्वछोकेषु विश्रुता एव ।

तत्र प्रथमदिवसे प्रातः खागतपरपद्यगायनेन सभाकार्यं समार्ब्धम् ।

तदनंतरं च स्वागताध्यक्षैः स्वकीयं मुद्रितं भाषणं पिठत्वा सर्वसदस्यानां उपस्थितानां सुस्वागतं अतीव सौहार्दपूर्वकं कृतम् । अनुपस्थितानां वैद्यवर्याणां द्युभसंदेशाश्च संप्राप्ताः मंत्रिमहाशयैः कथिताः । अनन्तरं च स्वागताध्यक्षैः श्री. नानासाहेव पुराणिक महाशयैः सभापतिपदे 'भिषगाचार्य त्र्यम्बकशास्त्रीं आपटे' महाभागानां नियोजना संसूचिता । एतद्विषये च पं. देग्वेकरशास्त्री, पं. गुणेशास्त्री, पं. गुजेरशास्त्री तथा च पं. रानदेशास्त्री इस्थेवं तत्तमण्डल-प्रतिनिधिभः स्वानुमितः प्रदत्ता । पं. त्र्यम्बकशास्त्रिभः सभापतिस्थानं च स्वीकृत्य गीर्वाणवाणीमाश्रिस्य स्वकीयं भाषणं कृतम् । तच्च भाषणं एवम् ।

॥ श्रीधन्वन्तरये नमः॥ महाराष्ट्रे पनवेलनगरे १८५५ शाके पौषशुक्कत्रयोदस्यां तिथौ त्रिदोषचर्चापरिषदि सभापतिभाषणम्।

सभापतिः-ज्यम्बकशास्त्री आपटे भिषगाचार्यः, आयुर्वेद्विद्यापीठमंत्री ।

अयि भोः आयुर्वेदोद्धारबद्धपरिकराः महाराष्ट्विद्वद्वैद्यवरेण्याः सुरगुरु-तुल्यविद्वज्जनाः, वैद्यबांधवाश्च ।

श्रीभगवता धूतपापेश्वरेण अमृतकलशधारिणा धन्वन्तरिणा च कृपा-कटाक्षवीक्षिता वयमय अस्मिन् पर्णविष्ठीग्रामे सम्मीष्ठिताः । संमेलनस्यास्य प्रयोजनं सर्वेषां श्रुतचरमेव । त्रिदोषचर्चापरिषदियं नासिकवैद्यसंमेलनस्य स्वागतमण्डलेनेव निमंत्रिता । अत्रास्मिन्दिनचतुष्टये यथा त्रिदोषचादस्य सांगो-पांगा समग्रा चर्चा स्यात्तथा प्रयतितव्यमस्माभिः सर्वैः इत्येतदेव संमेलनादस्मा-दपेक्षितम् । वादस्यास्य समुत्पन्नस्य केचन त्रिशचत्वारिशत्संख्याकाः संवत्सराः संजाताः । त्रिदोषास्तु प्राणिशरीरसंलग्ना उत्पत्तिस्थितिलयात्मिकासु सर्वास्वव-स्थाखेव । किं बहुना उत्पत्तेः प्रागपि तथा लयस्य पश्चादि । एतेषां

असंदिग्धामुपपत्तिं कथयितुं यस्य किल ईदशोऽधिकारो वर्तते यथा ' बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि ' किंच ' तान्यहं वेद सर्वाणि ' एवं यो वक्तं प्रभवति तादशस्येव कस्यचन त्रिकालज्ञस्य महात्मनः अस्मिन् सभापतिस्थाने प्रतिष्ठा कर्तुं योग्यासीत् । तदभावे विषयेस्मिन् येन चीरतं किल दुश्वरं तपः एतादशं कंचन तपस्विनं पदेऽस्मिन् स्थापयितुं उचितमासीत् । अथवा अनेकशास्त्र-पारंगतानां विपुलप्रगल्मबुद्धीनां इहोपस्थितानां पण्डितानां मध्यादेकतमस्य अधिकारेऽस्मिन् नियोजनं वरमासीत् । सर्वमेतद्विहाय विनैव पात्रापात्रीवचारं यदिदमासनं भवद्भिर्मह्यं दत्तं तेन दातारः खलु भवन्तः, परंच अपात्रस्य प्रतिगृहीतुर्मे कीदशी अवस्था सञ्जाता तच्छ्यताम् । ' सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति । वेपशुश्च शरीरे मे रीमहर्षश्च जायते । पत्रकं संसते हस्तात् त्वक्चैव परिदद्यते । न च शक्तोम्यवस्थातुं भ्रमतीवच मे शिरः '। इमानि तादृशानि लक्षणानि सन्ति येषां खल्ल वर्णनं ' स्नंसन्यासन्यधस्तापसा-दरुक्तोदभेदनं । संगांगभंगसंको चवर्तहर्षणतर्षणम् ' एवंप्रकारेण क्रियते । इमानि वातप्रकोपलक्षणानि । किन्तु वातस्योपऋमः स्नेहः । अतीव स्निग्धाःखलु सर्वेऽत्रभवन्तः । अपरंच । 'खाद्दम्ललवणोष्णानि मोज्यान्यभ्यंगमर्दनम्'। तदपि सर्वमत्र सुसंपन्नं भवेत् । अतः सञ्जातिवश्वासोऽहं 'आज्ञा गुरूणां हाविचारणीया' तथा च 'कार्यं कर्म समाचर' इत्येवं मनसि कृत्वा यथाकथंचिदत्र तिष्ठामि।

मदीयेऽस्मिन्नियोजने को वा हेतुः कस्य वा प्रभावोऽयं इस्रेतद्विषये किंचिदनुमीयते मया। एतद्विषये समरसाः एतत्परिषत्संयोजकाः यस्मिन् हि प्रस्तरे सिन्दूरलेपनं कुर्युः स हासीवा यस्मिन् वा पूर्गाफले अक्षताः प्रक्षिपयुः स गणोवा भविष्यति। एते हि संयोजकाः अस्मत्सुहृद्धराः श्रीमन्तो दातारशाश्चिणः (दातारो नोऽभिवर्धन्ताम्!) तथा श्रीः हिर्लेकरशाश्चिणः तथा च श्रीः नानलशाश्चिणः इस्रेवं सर्वेषां सुविज्ञातमेव स्यात्। एतेषां एकस्त्रवन्धनमेतन्न काचमणिकाञ्चनानां तुल्यम्। कुतः। सर्वेऽपि वैद्यभूषणाः। एते हि अधिवेशनस्यास्य धारणाद्धातवः। त्रयोऽपि मद्विषये समाः। अतः समधातुरहं। अत्र अन्त्यस्तावत् नानलः—न विद्यते अनलः यस्मिन्। अतीव शीतलः।

म्र्तिमती हिमसंतानिका । स्निग्धःशीतो गुरुर्मंदः श्रक्षणो मृत्स्नः स्थिरः खलु । एतयोः पुरुषोत्तमयोरपेक्षया आद्यः यद्यपि किंचिद्वामनरूपेण भासते तथापि स सर्वोत्तमः । कुत इति चेत् स एव प्रमुखस्तन्त्रयन्त्रयरः । प्रवर्तकश्चेष्ठानां उच्चावचानाम् । मध्यमस्य तु तेजस्विता बुद्धिमेधामिमानिता च सुप्रसिद्धा । इदं च भूषणत्रयं धातुत्रयं वा दोषत्रयस्य सांगोपांगां चर्चां कारियतुं सर्वेषां च विदुषां पुनरैकमत्यं स्थापियतुं किंविद्धं । अतः सर्वेरिप अत्रभवद्भियेथाशाक्ति साहाय्यप्रदानं करणीयिमिति संप्रार्थ्य सर्वान् भूयोभूयो नमाम्यहम् । ज्ञानसत्रे ऽस्मिन् मयापि किंचित्कार्यं करणीयमिति प्रथममेव मया चिंतितं । किंतु अध्यक्षपदमेव स्वीकर्तुं आज्ञा भवेदिति नासीन्मे मनिस कल्पनालेशः । आज्ञप्ते च मिय प्रत्याख्यानमिप नामवच्छक्यम् । कुतः । एते हि दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति । अकुपितास्तु सर्वेषामस्माकं देहं वर्तयन्ति ।

ईहरां परिषत्कार्यं कियद्दुष्करमिति विदुषां न कथनीयम् । अतीव प्रमोदास्पदमेतत् यदद्यतनीयाः खागताध्यक्षाःश्रीः नानासाहेबपुराणिकमहोदयाः सभाकार्यमिदं सम्पादियतुं पुरतः स्थिताः । आयुर्वेदोद्धारकार्यं सर्वदा सन्नद्धैस्तैः आद्यामिमां महाराष्ट्रीयामेषिधिनिर्माणशालां प्रतिष्ठाप्य आयुर्वेदस्य आधारो दृढीकृतः । अधुना तु तैरीहराः प्रचण्डः आयुर्वेदट्रस्टः तथा प्रतिष्ठापितः यथा स कस्मिन्नपि विषमकाले नैव त्रस्तः स्यात् ।

प्वमेषा परिषत्संयोजना सुकरा सञ्जाता । अतः सर्वेरप्यस्माभिः अमीप्सितार्थिसिद्ध्यर्थं सर्वात्मना प्रयत्नः करणीय इति क्रमप्राप्तमेव । सा च सिद्धिः सर्वेषामत्रभवतां साहाय्येन आवश्यं भवेदेव इति मे दृढो विश्वासः । भवन्तो हि नैकशास्त्रपारंगताः । अतस्तत्तच्छास्रदृष्ट्या विषयमिमं सम्यग् विचार्य विषयस्यास्य के के विभागाः शास्त्राणामविरोधेन समर्थनीयाः सन्ति, यदि कुत्रचिद्विरोधः समापचेत तर्हि स कथं निवारणीय इति श्रीमद्भिः संसूचनीय-मिति साञ्चित्वन्धं प्रार्थये । तथा च न का अपि आपद आपतेयुरिति 'आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसंपदां । छोकााभिरामं श्रीरामं भूयोभूयो नमाम्यहम् ।

जानन्स्येव अत्रभवन्तः यदस्य त्रिदोषवादस्य चर्चाविषयीभूतस्य केचन चत्वारिंशत्संख्याकाः संवत्सरा व्यतीता इति । अन्दिकालिसद्धश्चायुर्वेदः शरीरखारध्यरक्षकः । त्रिदोषास्तु शरीरस्य मूलभूताः सन्त आयुर्वेदग्रंथेषु प्रतिपत्रं नैकवारम्। छिरूयंते । यदि पुनस्तेषां कल्पना अयुक्तिकी स्यात् तर्हि एतावदीर्घकालपर्यंतं स्यादा आयुर्वेदः एवमप्रतिहतप्रचारः ? यद्यपि मध्ये नैकविधा आपदः संप्राप्तास्तथापि अद्ययावदायुर्वेदो जीवति । न केवलं जीवति अपि त खकीयां तेजिखतां प्रकटयति । एति इषये प्राचीनवैद्यानां न कदापि मनिस संशयः समुत्पन्नः । अथ किमर्थमाधुनिकानां वैद्यानामेव मनः साशंकं भवति । किमथवा अत्रांतरे अतक्येघटनाः काश्चित् घटिता याभिरयं विषयः सूर्याचन्द्रमसौ इव प्रस्तो जातः । एतदेवानुमानं समीचीनं मन्ये । साकमेव पाश्चात्यराजवृत्या पाश्चात्यसंस्कृतिस्तथा च पाश्चात्यानामाचारविचारसरणिः अत्र भारतवर्षे संप्रचलिता । गणितभौतिकज्यौतिषादिशास्त्राणां, न केवलमेतेषां अपितु गीर्वाणभाषाया अपि किं बहुना स्वभाषाया अपि अध्ययनं पाश्चात्य-भाषाद्वारैव कर्तुं प्रवृत्ताः स्मः । यथा इतरशास्त्राणां तथैव आयुर्वेदस्यापि पाश्चात्यभाषासु रूपान्तराणि भाषान्तराणि च समभवन् । किन्तु तानि सर्वाणि पारिभाषिकस्य विशेषार्थस्य ज्ञानाभावात् प्रमादप्रचुराणि । कारणादेतस्मात् आयुर्वेदस्योपिर आक्षेपान्वयः समुत्पनः । यज्ञार्थं क्रीतमजं स्कन्धे कृत्वा गच्छतो ब्राह्मणस्य ' नाजोऽयं देवदत्त त्वं स्कन्धे वहास कुक्कुरं ' इति क्रमेण त्रयाणां धूर्तानां वचनं श्रुत्वा यथा श्वा एवायमिस्येवं मतिर्वभूव तथा ' आयुर्वेदो मणिर्नास्ति काचः किं बध्यते गले ' इत्येवंविधानि आक्षेपकाणां विधानानि श्रत्वा केषांचिद् वैद्यानामपि हृदयान्दोले (कदाचिदर्धशिक्षितानां वैद्यानां स्यात्) स्थितानि । यदातु आयुर्वेदतत्वानि स्वतन्त्रतया विचार्यन्ते तदा न कोऽपि संभ्रमः समुखबते न वा व्यवहारे कोऽपि व्यव्ययः संजायते। किंतु आक्षेपकाणां कल्पनाभिः सह आयुर्वेदतत्वानां तुलनां कर्तुं प्रयतनः क्रियते चेत् तदा एतत्सदृशमिदं, तत्तुल्यमेतत् इत्येवं उभयत्रापि तुल्यगुणानां अपरिपूर्णत्वात् व्याकुललं संजायते । अपरं च, या च परिभाषा आक्षेपकाणां तस्याः

सुतरामज्ञानं आयुर्वेदीयानां । अथ एतेषां च या परिभाषा सा आक्षेपकाणां दुर्वेधा । आक्षेपकास्तु अन्यथा बलवत्तराः सन्ति । तथापि तेषामेव परिभाषां उपयुज्य यद्ययं विषयस्तेषां पुरस्तात् सम्यक्तया प्रतिपाद्येत तदा ते आयुर्वेदं मानियण्यंतीति वर्तते केषांचिन्मनिस विश्वासः । यदि च आक्षेपः केवलमेवंरूपः स्यात् यद् वैद्याः स्वकीयं त्रिदे।पविज्ञानं पाश्वास्यवैद्यान् आधुनिकांश्व सुशिक्षितान् ज्ञापयितुं न समर्था इति, तर्हि वैद्यानां मनो न दूयेत । अपर च, पाश्चास्यवैद्यकं यथा राजाश्रयपरिपुष्टं न तथा आयुर्वेद इस्पेतदवले। क्य यद्यपि वैद्यानां विमनस्कता विद्यते, तथापि राजाश्रयविषये ते अप्रत्याशाः किंबहुना उदासीना एव सन्ति । किन्तु आयुर्वेदीयं तत्वज्ञानं पाश्चात्यवैद्यक-तत्वज्ञानेन न संगच्छते, नच तुल्रनामर्हति, अतस्तत्सर्वथा अज्ञानम्लकं, शास्त्रमिति संज्ञामपि नार्हति इत्येवंप्रकार आक्षेपो वैद्यानां मनसि शल्यत्वेनैव संस्थितः । किं पाश्चात्यवैद्यकेन सह सर्वथा तुल्यता एव आयुर्वेदस्य शास्त्रीयत्वसिद्धौ परीक्षा ? पाश्चात्यवैद्यकानां सर्वेषामायुर्वेद एव मूलमिति सर्वैः अनुमन्यते । यदि पुनरेतैः सह आयुर्वेदस्य सर्वथम तुल्यता स्यात्तार्हे नवीनानां एतेषां जन्मापि किमर्थं स्यात् ? मदीया तु मतिरीदशी, यत् शास्त्रस्य कस्यापि अनेकप्रस्यसंभिद्धस्य खातंत्र्येण तत्परिभाषयैव समन्वयबुध्दा विचारं कृत्वा यदि सर्वे विभागाः सुसंबद्धाः भवेयुः, यदि च न कुत्रापि विसंवादः स्यात्तर्हि तत् ससंघटितं शास्त्रं इति संज्ञामहीति ।

विदितचरमेव श्रीमतां यत् षोडरावत्सरात्प्राक् अस्य विंशरातकस्य सप्तदशे वर्षे मद्रपुरे राजाज्ञया ' उस्मानकिमटी ' इत्याख्या समितिरेका नियोजिता। किमर्थमिति चेत् आयुर्वेदः शास्त्रीयः अशास्त्रीयो वा, राजाश्रयं अहिति वा न वा, इति परीक्षितुम्। समित्रा चानया स्विप्रान्तस्थानां वैद्यानां यच्च वक्तव्यमासीत् तत् व्याख्यानलेखनसंभाषणप्रश्लोत्तरात्मकैरुपायैः संकल्य्य सम्यक् च विचार्य मनिस कृतम्। अनन्तरं अभिप्रायश्च एवंविधो दत्तः यदायुर्वेदः शास्त्रसंज्ञामहिति तस्मै च राजाश्रयोऽिप देयः। अनन्तरं च राजधान्यामेतस्यां आयुर्वेदमहाविद्यालयस्य, औषधालयस्य, रुग्णालयस्य चापि

संस्थापना संजाता । एतस्मिश्च महाविद्यालये, निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य आयुर्वेदाचार्यपरीक्षायां समुत्तीर्णा एव वैद्या अध्यापकत्वेन नियोजनीया इति निर्णीतम् । एवं च आयुर्वेदोद्धारविषये अंशतः कार्यं संसिद्धम् । भविष्यति काले अचिरादेव सा राजसंस्था निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठसदशानां शिक्षण-पीठानां ये स्नातकाः तान् प्रत्यभिज्ञातुं मितं करिष्यतीति मे दढो विश्वासः। पाश्चास्वैद्यकपदवीधराणां ये च सन्ति अधिकाराः, तेषां मध्याःकेचन एतेषामिप स्नातकानां भवेयुः । संयुक्तप्रांतीयराजसंस्थया तु गतसंवत्सर एव एतत्कार्यं कृतम् । एतद्विषये घटिताश्च ये विधिनियमाः ते निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठाय सूचिताः, तेन च पीठेन सम्मेलनपत्रिकायां अन्यासु वार्तापत्रिकासु च उद्घोषिताः । विद्यापीठस्नातकानां च केषांचित् प्रस्मिज्ञानपत्रकाण्यपि हस्तगतानि । एवमेता राजसंस्था आयुर्वेदस्य शास्त्रीयत्वं स्त्रीकर्तुं प्रवृत्ताः । सत्वरं च आयुर्वेदः सर्वत्र राजमान्यो भवेदित्याशास्महे । ' आयुर्वेदीयपद्भत्या उपचारार्थं यश्च धनव्ययो राजाज्ञया भारतवर्षे भवति स सर्वथा अदेशकाले अस्थाने च भवति ' इत्येवंविधाः प्रलापाः केषांचन अज्ञातस्वाधिकाराणां पुरुषाणां मुखात् श्रृयंते । तथापि सामान्यतः आयुर्वेदस्य शास्त्रीयत्वे यच मूळे कुठारमयं समुत्पन्नमासी त्तन्मंदी भूतिमिति मन्यामहे । किन्तु आयुर्वेदस्य आधारभूतं यत् त्रिदोषविज्ञानं तच पाश्चात्यवैद्यपंडितान् किंबहुना साधारण्येन सुशिक्षितानपि कथिमव यथावत् ज्ञापियतुं प्रभविष्यामः इत्येवंविधा आकांक्षा या च वैद्यानां मनासि प्रचिलताक्षेपसमुत्पत्तिकारणात्संजाता सा नैव मंदीभूता। आयुर्वेदो न केवलं वैद्यानामेव विषयः । किन्तु सर्वेरिप आयुःकामयमानैः व्याधिपरिमोक्षाय स्वास्थ्यरक्षणाय च आयुर्वेदो यथाशक्ति अध्येतव्यः । आधुनिकैः सुशिक्षितैः एतद्विषयजिज्ञासुभिः परकीया परिभाषा परकीया च थिचारसरणिरवलंबिता आत्मसात्कृता वा दस्यते । आयुर्वेदस्तु तेषां प्राचीन-परंपरया खकीयः, अतो यदि एतस्मिन् शास्त्रे तेषां विश्वासः स्थिरीभवेत् तर्हि तत् यथा तेषां तथा आयुर्वेदस्यापि लाभाय भवेत् ।

एतत्कार्यसिध्द्यर्थं त्रिदोषाणां सप्रमाणं कार्यकारणसंबंधप्रदर्शनपूर्वकं

साविस्तरं वर्णनं कर्तुमावस्थकम् । अत्र यच भवति काठिण्यं तदित्थम् । यथा माधवनिदाननामको प्रथः निदानविषयप्रधानः तत्र नान्यविषयमधिकृत्य किमपि उल्लिख्यंते, ताद्दशः त्रिदोषविषयप्रधानो प्रयः आर्यप्रयेषु न कोऽपि विद्यते । सर्वेषु प्रथेषु त्रिदोषवर्णनं सर्वत्र प्रसृतम् । यथा तण्डुलराशौ सम्मीलितानां कंगुकोद्भवनीवारस्यामाकादीनां परस्परपृथक्करणं कठिनं भवति तथा एतद्विषयक-वचनानां तत्तस्थानास्थितानां प्रथमं तावदेकीकरणं, अनन्तरं च विषयविभाग-वशात्तेषां पुनः पृथक्करणं कठिनतरं कार्यं विद्यते । अद्य यावत् नैकप्रयत्नेषु कृतेषु सत्खिपि कार्यमिदं यथा सर्वेषां सन्तोषाय भवेत्तथा नैव संसिद्धम् । प्रायः सर्वेष्वेव वैद्यसंमेळनेषु एतद्विषये चर्चा सञ्जाता । बहुभिर्वेद्यवरेण्यैः विषय-मिममधिकृत्य सुविचारपरिष्ठुता निबंधा लिखिताः, प्रथाश्च रचिताः । नासिक-संमेलनखागतमंडलस्य इयं च पारितोषिकार्थं निबंधलेखनयोजना उपरिनिर्दिष्ट-प्रयत्नेषु विशेषा एव । तस्याश्च वृत्तांतः सर्वेषां सुविज्ञात एव । एतेषां प्रथ-कर्तुणां निबंधलेखकानां वा मध्यादेकतमस्य योजना पदेऽस्मिन् योग्यासीत् । किन्तु केचन खागतमण्डलेन सह आत्मीयत्वेन संबद्धाः कैश्वन जनैः लिखितैः निबंधेः खर्कीयं मतं पूर्वमेव स्पष्टतया प्रकटीकृतम् । अतः खागतसमिला एतादशः सभापतिर्निर्मितः यस्य खलु सत्यमेव अध्ययनाभावात् न किमपि खकीयं मतं न कोऽपि पूर्वप्रहः न वा खाग्रहः । आस्तां नाम । अल्पन्नोऽहं असमर्थोऽहमपि अत्रभवतां साहाय्येन कार्यमेतत्सम्पाद्यितुं प्रयतिष्ये । यद भवद्भिर्मह्यमेतत्पदं दत्तं तदर्थं सर्वेषां उपकारभरान् साञ्जलिबन्धं शिरसा वहामि ।

ननु ज्ञातपूर्वा एव सर्वेषां आवेक्षकाणां नामाविलः । तस्यामेव प्रमुख-मिन्त्रमहारायेभ्यः श्रीमद्भ्यो दातारशाश्चिमहोदयेभ्य आसनमेकं कल्पनीयमिति मे सविनया प्रार्थना । येन च 'अध्यक्षो मुख्यमंत्री च चत्वारश्चाप्यवेक्षकाः । ऐतेषामधिकारः स्याद्वादस्यास्य नियन्त्रणे । अन्ते च एवमेव प्रार्थये '।

' संगच्छध्वम् ' संबदध्वम् । सं वो मनांसि जानतां । समानो मंत्रः समितिः समानी । समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु बो मनः । यथा वः ससहासति '। अतोऽनंतरं सार्धो दिवसः त्रिदोषिवषयकव्याख्यानार्थं दत्तः । तिस्मश्च दशैकादशानां वैद्यवर्याणां साविस्तराणि व्याख्यानानि समजायन्त । कान् कान् प्रश्नानुद्दिश्य त्रिदोषचर्चेयं करणीया इति विचार्य काचित् पञ्चपञ्चाशतप्रश्नात्मिका विषयाविल्रेका मुद्राप्य सदस्येभ्यः सर्वेभ्यः प्रेषितासीत् । सा च एवम्—

महाराष्ट्रप्रान्तीयवैद्यानां त्रिदोषचर्चापरिषद् ।

१८५५ शाकीयायाः पेषश्चिक्तत्रयोदशीमारम्य दिनचतुष्टयपर्यंतं पन-वेल्प्रामे श्रीधूतपोपश्चरआयुर्वेदीयोषिधशालिधिपानां निवासस्थाने त्रिदोषचर्चा-परिषदः कार्यं सुनिश्चितपद्धत्या निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदिवद्यापीठमन्त्रिणां त्र्यम्बकशास्त्री आपटे महाशयानां सभापितत्वे भवेदिति पुरुषोत्तम सखाराम हिलेंकर तथा वामनशास्त्री दातार इति मन्त्रिभ्यां सूचितम् । भविष्यत्यां चर्चापरिषदि समागमिष्यतां विद्वद्वराणां त्रिदोषचर्चासौकर्यार्थं वैद्यभूषण वामनशास्त्री दातारमहाशयैर्दिग्दर्शिताश्चर्चायोग्या विषयांशा निखिलभारतवर्षीय-वैद्यानां विचारार्थमत्र प्रकाश्यन्ते ।

त्रिदोषचर्चापरिषदि चिंतुं योग्या विषयां शाः ।

- १. आयुर्वेदमतः सृष्ट्युत्पादनक्रमः कथं वर्तते ?
- २. जीवसृष्टेरुत्पादः।
- ३. पंचतन्मात्रत्वम्।
- इन्द्रियाणां भौतिकत्वम् ।
- ५. आत्मनां असर्वगतत्त्वम् ।
- ६. पंचमहाभूतोत्पादः गुणवृद्धिः परे परे।
- ७. अतिवाहिकशरीरम्, लिंगशरीरम्।
- ८. पंचमहाभूतशरीरीसमवायः पुरुषः चिकित्साधिष्ठानम् ।
- ९. आयुर्वेदीयाः पदार्थाः सामान्य-विशेष-द्रव्यगुणकर्मसमवायाः ।

- १०. सामान्यादीनां निरुक्तिः व्याख्यानं च परस्पराणां संबंधः ।
- ११. आयुर्वेदीया गुणाः के ?
- १२. शक्तेर्छक्षणम् तस्याः पदार्थत्वं वा द्रव्यत्वं वा गुणत्वं तथा आयुर्वेदें सांख्ये वैशेषिके च तस्या गृहणं केन खरूपेण कृतम् तस्य विचारः ।
- १३. मूर्तत्वामूर्तत्वविचारः ।
- १४. भूतसर्जने त्रिदेशिषाणां उत्पत्तिः कदा कुत्र कथं संभवति वा तेषां स्वतः सिद्धत्वम् ।
- १५. पंचतन्मात्रावस्थायां तेषां अस्तित्वं न वा ?
- १६. पंचमहाभूतावस्थायां तेषां अस्तित्वं न वा ?
- १७. पंचमहाभूतशरीरावस्थायां तेषां अस्तित्वं न वा ?
- १८. अतीतवर्तमानागामिनि देहे वातिपत्तकपानां संततं अनुस्यू-तत्वेन गतागतत्वं वर्तते न वा ?
- १९. गर्भावकांती यानि कारणानि (मातृजपितृजसात्म्यजरसज आत्मज) तेषु त्रिदोषाणां कारणत्वं वर्तते न वा ?
- २०. शुक्रस्य च रजसः पंचभूतवत्वं वा त्रिदोषवत्वं ?
- २१. त्रिदेाषवत्वे तयोर्निर्दोष-गर्भजननशीलत्वं वर्तते न वा ?
- २२. त्रिदोषाणां स्वरूपिनश्चयः (तत्र रूक्षेत्यादि, पित्तं-सस्नेहे-त्यादि, स्निग्धःशीतेत्यादीनि त्रिदोषाणां व्यस्तत्वेन वा सामस्त्येन वा स्वरूपाणि ?
- २३. तेषां स्वरूपतः पंचभूतत्वं वा पंचभूत्विकारमयत्वम् ?
- २४. त्रिदेशिषाणां प्रत्यक्षतया निर्धारणवत्वं वा सूक्ष्मतया वा उभाभ्यामपि ?
- २५. तेषां त्रयाणामपि अनुमानगम्यत्वराक्तिमत्सूक्ष्मद्रव्यत्वसूचकानि कानि आयुर्वेदीयानि वचनानि ?
- २६. तेषां यथावस्थितरूपाणां दोषधातुमलवत्-शरीरवत्सु प्राणिषु

- अवस्थितिर्वा तद्रहितेषु अन्येषु प्राणिषु तथा वनस्पत्यादिषु।
- २७. जीवितस्थित्ये उपयोक्तव्यस्य द्रव्याश्रितस्य पड्रसस्य नित्यं दोषैः सह मेळनं, तेषां अन्योन्यसन्निपातः भवति न वा ? (रसदोषसन्निपातः)
- २८. उपयुक्तेन षड्सेन त्रिदोषाणां निस्योत्पादो भवति न वा ?
- २९. रसविपाकवीर्यप्रभावाणां दोषै रसैश्व संबंधः कथम् ?
- ३०. "यदनं देहधात्वोजोबलवर्णादिपोषणं । तत्राग्निहेतुराहारा-नह्यपकाद्रसादयः ॥ '' आदौ षड्समप्यनं मधुरीभूतं सत् फेनीभूतं कफं ईरयेत्, विदाहात् आम्लतां गतं, आमाशयात् च्यवमानं सत् पित्तं कुर्यात्, पुनः च्युतं अग्निना शोषितं, पकं, कहु, पिण्डितं, च सत् मारुतं कुर्यात् इत्यनेन दोषाणां नित्योत्पादो विद्यते न वा ?
- ३१. रसदोषसंनिपातैः कृतसंस्कारेण आहारपरिणामाख्येन रसेन सर्वेषां धातूनां नित्यशः पुनरुत्पादनं भवति न वा ?
- ३२. ते धातवः रसदोषाणामेव विपरिणाम (सांख्यपरिभाषायां विकारो वा) इति वक्तुं युज्यते न वा ?
- ३३. दोषाणां सर्वदेहव्यापित्वं स्वतंत्रतया वा तद्विपरिणामजानेतधा-तुमलक्ष्पेण वा ?
- ३४. तेषां त्रयाणामपि प्रत्येकशः पंचित्रधत्वं तद्वास्तवस्वरूपेण वा क्रियातो वा गुणतो वा सैंवरेव एभिः ?
- ३५. वास्तवस्वरूपत्वेन चेत् तत् पंचविधत्वं तेषां पूर्णस्वरूपतो वा कियता अंशभूतस्वरूपेण वा ?
- ३६. स्वतंत्रतया तेषां सर्वदेहच्यापित्वे सति पद्माशयकटीत्यादि वातस्य, नाभिरामाशयेत्यादि पित्तस्य, उरःकंठशिर इत्यादि कप्तस्य इति त्रयाणामपि उक्तानां स्थानानां तेषु च पद्माधानं विशेषतः, नाभिरत्र विशेषतः, कप्तस्य सुतरां उर इति,

विशेषत्वेन स्थाननिर्देशे को हेतुः ? एभिश्व स्थानैः तेषां त्रयाणामपि स्वतंत्रतया सर्वदेहव्यापित्वं सिद्धं वाऽसिद्धं भवति ?

- ३७. तेषां त्रयाणामिष पृथक्पंचिवधत्वं वास्तवपूर्णस्वरूपत्वेन गृहीतं चेत् 'तत्रस्थमेव पित्तानां रोषाणामप्यनुग्रहं । करोति बलदानेन' इति पित्तस्य, ''सित्रिकस्य स्ववीर्यतः । हृदयस्यान्नवीर्याच तत्स्य एवांबुकर्मणा । कप्तधाम्नां च रोषाणां यत्करोत्सवलंबनं'' इति कप्तस्य वर्णनं कथं संगच्छते ?
- ३८ पंचिवधानां त्रिदोषाणां स्वेनैव रूपेण पूर्णतया स्वातंत्र्येण अविकृतत्वेन अवस्थितानां सतां पाचकत्वरंजकत्वसाधकत्व- भ्राजकत्वआले।चकत्वादि विभिन्नं एकमेकमेव कार्यं पित्तं, तथा अवलंबकत्वक्रेदकत्वबोधकत्वतर्पकत्वश्लेषकत्वादिविभिन्नं, एकमेकमेव कार्यं कफः, तथा प्रत्येकशो विभिन्नं च विशिष्टं कार्यं वातः कथं कुर्यात् ?
- ३९. खतंत्रतया स्वेनैव खरूपेण तेषां सर्वदेहप्रविसृतत्वं स्वीकृतं चेत् अविकृतावस्थायामपि, "तत्रास्थिनि स्थितो वायुः पित्तं तुँ स्वेदरक्तयोः । श्लेष्मा शेषेषु तेनैषां आश्रयाश्रयिणां मिथः । यदेकस्य तदन्यस्य वर्धनक्षपणौषधं "। इत्यस्य कथं संगतिः ?
- ४०. वाय्वाकाराधातुभ्यां वायुः, आग्नेयं पित्तं, अंभःपृथ्वीभ्यां श्लेष्मा, इत्यनेन त्रिदोषाणां पंचमहाभूतत्वं वा पंचमहाभूत-विकारवत्वं सिध्वति ?
- ४१. दोषाः कुपिताः शाखाकोष्ठास्थिसंधिषु विविधान् व्याधीन् कुर्वन्ति । तत्र शाखायां मध्यमरोगमार्गे च धातुसंमिश्रत्वं विनैव खतंत्रतया दोषाणां रागजनकत्वं तथा कोष्ठस्थाने तेषां रागकरणे धातुसंमिश्रणस्य आपेक्षत्वं वर्तते न वा ?
- ४२. दोषाणां क्षयः स्थानं च वृद्धिश्च, उर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च, कोष्ठशाखाममीस्थिसंधिष्ठ, इत्यादिरूपा त्रित्रिविधा गतिः किं बोतयति ?

- 8३. निजै: कारणैर्दुष्टा दोषा निजान् व्याधीन् कुर्वति इत्यनेन दोषाणां द्रव्यत्वं उत्पत्तिमत्वं सिध्यति न वा ?
- ४४. व्याधीनां आगंतुत्वे दोषप्रकोपस्य उपादानकारणत्वं विद्यते न वा ?
- 88. "आमन तेन संप्रक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः । सामा इत्युपदिश्यंते ये च रोगास्तदुद्भवाः । " इत्यनेन तथा सर्वदेहप्रविस्तान् धातुषु लीनान् अनुत्विल्ष्टान् इत्यनेन तथा न्यायामादित्यारम्य कोष्ठात् शाखास्थिममाणि यान्ति, तथा तेम्यः स्नातोमुखविशोधनादित्यारम्य कोष्ठं, (यान्ति वायोश्च निप्रहात् इत्यनेन) तथा प्रायस्तिर्यग्गता देषा इत्यारम्य सुखं वा कोष्ठमानयेत्, तथा तेषां कोष्ठप्रपन्नत्वं ज्ञात्वा यथासन्नं विनिर्हरेदित्यनेन दोषाणां खरूपं कथं विणितं दृश्यते ?
- ४६. 'दोषा दुष्टा रसैर्घातून् दूषयंत्युभये मलान्। मला मलायनानि, अतस्तेषु यथा स्वं गदाः स्युः ' इत्यस्य विचारः।
- ४७. वातिपत्तकपत्समप्रकृतीनां विचारः।
- ४८. शोधनशमनरूपायाश्चिकित्साया विचारः (पंचकर्मचिकित्साया अपि अत्रैवांतर्भावः)
- ४९. " वृद्धिः समानैः सर्वेषां " इति नियमात् अनुमानगम्यैः शक्तिमद्भिः सूक्ष्मेर्द्रव्यैः अनुमानगम्यानां शक्तिमतां सूक्ष्माणां द्रव्याणामेव वृद्धिः । नित्योत्पत्तिकृद्धिः प्रत्यक्षसिद्धैर्द्रव्यैः प्रत्यक्षसिद्धानाम् नित्योत्पत्तिमतां द्रव्याणां वृद्धिः । अत्र कथं वैपरीत्यं संगच्छते ?
- .५०. 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इत्यस्याः श्रुतेर्विचारः?
- ५१. ''अविशेषाद् विशेषारंभः, तस्मात् शरीरस्य, तद्वीजात् संसृतिः, मातापितृजं स्थूलं प्रायशः, इतरं न तथा, सप्तदशैकं लिंगं, अणुपरिमाणं तत्कृतिश्रुतेः, तदन्नमयत्वं श्रुतेश्च, पांचभौतिको-

देहः, चातुर्मीतिक इस्रेके, ऐकभौतिक इस्रपरे, "इस्रादि-सांस्यसूत्राणां विचारः।

- ५२. 'सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पंच'' इति, ''न वायु-क्रिये पृथगुपदेशादिति, '' '' एतस्मात् जायते प्राणो मनः सर्वेदियाणि च । खं वायुज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी। ''(कैवल्योपनिषद्) इस्यादिसांख्यसूत्रवेदांतसूत्र-श्रुतीनां विचारः
- ५३. ''मज्जमेदावसाम्त्रिपत्त श्लेष्मशकृत्यस्क् । रसो जलं च देहे-स्मिन्नेकैकां जलिवधितम् । समधाते रिदं मानं'' इत्यस्य विचारः ।
- ५४. " कफः पित्तं मलः खेषु " इत्यस्य विचारः।
- ५५. ये अन्ये केऽपि भवेयुरंशा विज्ञानस्य तेषांमपि विचारः।

प्रश्नानां उत्तराणि ।

- सांख्यगृहीतः क्रमः सुश्रुत शारीरस्थान अध्याय १ सूत्रें १६ ।
- २. ,, ज्यस्क शारीरस्थान अध्याय १ श्लोक ६१-६६ ।
- ४. इंद्रियाणि भौतिकानि चरक, सुश्रुत, शारीरस्थान ।
- ५. आत्मनां असर्वगतत्वं सुश्रुत ज्ञा. १ ।
- ६. पंचतन्मात्रेभ्यः पंचमहाभूतोत्पादः, गुणवृद्धिः परेपरे चरक शारीरस्थान ।
- पंचमहाभूत (विकार) शरीरीसमबायः पुरुषः अधुत,
 चरक " शरीरं नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पंचमहाभूत-विकारसमुदायात्मकं समयोगवाही "।
- ९. अभावरहिताः षट्पदार्थाः चरक सूत्रस्थान अध्याय १
- १०. सामान्यादीनां निरुक्तिः चरक सूत्र अ. १।

इतिवृत्तम्-पूर्वपीठिका

- ११. विंशतिः ... च. सू. व वाग्भट, परादयोऽपि अमुख्यागुणाः ।
- १२. शक्तिः—कारणानिष्ठः कार्यीत्पादनयोग्यः कश्चन धर्मविशेषः ।
 सर्वकारणानां कारणत्वनिर्वाहकः अद्रव्यविशेषः शक्तिः ।
 यतींद्रमतदीपिका ।
- १३. मूर्तिमंत इति असर्वगतद्रव्यपारिमाणवंतः । "असर्वगतपरिमाणं हि मूर्तिरुच्यते'' च. वि. अ. ५ । मूर्तत्वं परिच्छिन्नपरिमाणवत्वं क्रियावत्वम् वा । अमूर्तत्वं अदृश्यत्वं । च. सू. २१-३१ मूर्तत्वं ः इश्यत्वं ः मूर्तानामिस्याश्यखाद्यानाम् ः । च.वि.२ अमूर्तत्वं इति ः अकठिनत्वं ः । संप्रहे इंदुरीका, शा. ६ ।
- १४. पंचमहाभूतविकारशरीरीसमवायप्रारंभावस्थायां, शुक्रशोणित-संयोगे । तेषां स्वतिस्सिद्धत्वं न ।
- १५. नास्तित्वं।
- १६. ,,
- १७. चतुर्दशप्रश्लोत्तरं द्रष्टव्यम् ।
- १८. न वर्तते।
- २२. सामस्त्येन एव।
- २३. अष्टमप्रश्लोत्तरं द्रष्टव्यम्।
- २४. कचित् प्रसक्षतया, कचित् अनुमानेनापि । संप्रहसूत्रस्थान-अ. २० चरक सूत्रस्थान अ. १२ ।
- २७. भवति एव।
- २८. भवत्येव।
- २९. चयापचयात्मकः।
- ३०. विद्यते एव ।
- ३१. भवत्येव।
- ३२. युज्यते एव ।

- ३३. विपरिणामजनितधातुमलरूपेणैव युज्यते, वा उभयथा ।
- ३४. सर्वेरिप युज्यते।
- ३५. अंशांशेनेव।
- ३६. एषे स्थानेषु तेषां उत्पत्तिः प्रस्यक्षतो भवति, अत्र दोषाः आहारपरिणामजन्याः, चिकित्सासीकर्यार्थं च सिद्धमेव।
- ३७. आमाशय एव कपस्य मुख्यं स्थानं, उरः दोषोत्पत्तिदृष्ट्या, बलदानेनानुप्रहं कुरुतः।
- ३८. स्थळगुणतार्तम्यभेदतः।
- ४०. पंचमहाभूतविकारवत्वं सिद्धं।
- ४१. सर्वत्रैव दोषाः संमिश्रीभूताः संत एव व्याधीन् कुर्वंति ।
- ४२. सर्वदेहसंचारं प्रदर्शयति।
- ४३. सिद्धस्येव।
- ४४. नैव, आगंतु-अवस्थायाम् ।
- ४५. द्रव्यात्मकं खरूपं वर्णितं दश्यते।
- ४६. सेवितैरयुक्तैः षड्सैदींषदुष्टिर्भवति । दोषदुष्ट्या धातु-दुष्टिः । धातुदुष्ट्या मलदुष्टिः । मलदुष्ट्या मलायनदुष्टिः । मलायनदुष्ट्या च रोगसंभवः ।
- ४७. तार्तम्येन विचारः करणीयस्तुलनया ।
- ४८. शोधनचिकित्सैव मुख्या । शमनचिकित्सा अल्पान् दोषान् शमयेत्। आधिक्ये च तेषां कोष्ठमानीय शोधनीयम्। "ये-तु संशोधनैः शुद्धाः, न तेषां पुनरुद्भवः।
- ४९. नैव वैपरीत्यं युज्यते । अतो दोषाः सर्वथा न सूक्ष्माः, वा राक्तिस्तरूपा वा अनुमानगम्याः ।
- ५०. अन्नरसमयः पुरुषः (श्रुतिः)। 'रसजं वपुषो जन्म वृत्तिर्वृद्धिः-' (आयुर्वेदः)।
- ५१. तज्ज्ञाः प्रष्टब्याः ।

- ५२. तज्ज्ञाः प्रष्टव्याः ।
- ५३. निर्दिष्टपरिमाणवत्वात् सर्वेषामेतेषां प्रत्यक्षत्वं ।
- ५४. अन्नरसस्य पच्यमानस्य मलो वातः, प्रसादो रसः, रसस्य पच्यमानस्य, किंद्रं कफः, प्रसादो रक्तं, रक्तस्य पच्यमानस्य, मलः पित्तं, सारः मांसं अतस्तेषां मलसंज्ञा [संग्रह सू. अ.२०]
- ५५. चयः प्रकोपः प्यसरः स्थानसंश्रयः अभिव्यक्तिः भेदः शोधः असाध्यः शोफे त्रिदोषवर्णनं विद्वधिः प्रतिविधः — व्रणः त्रणे, व्रणस्रावे च त्रिविधत्वं -कोथः
- ५६. अन्नस्य पक्ता, दोषधातुमलादीनां उष्मेति आत्रेयशासनं । दोषाणां उष्माश्रयत्वात् द्रव्यत्वं ।
- ५७. आमावस्था, तथाच सामरोगे त्रिविधत्वम् ।
- ५८. त्रिविधकुक्षीयविमाने दोषाणां कुक्षी तृतीयभागस्य अवकाश-दान वर्णनेन द्रव्यत्वं, आहारविधी च उत्पत्तिमत्वं स्पष्टं भवति ।

अंशे षड्विंशे चर्चाविषयीभूते वैद्यराजमहाभागैः गोपालशास्त्री-गोडबोले इत्येतैः वृक्षायुर्वेदे वृक्षेष्विप दोषधातूनां उत्पत्तिर्वृद्धिःक्षयचोपवर्णित— इति सोदाहरणं प्रतिपादितम् ।

तथैव ५३ संख्याके अंशे विचार्थमाणे दोषाणां परिमाणं पालकाध्ये-यद्वर्णितं तदिप तैरेव सप्रमाणं प्रदर्शितम् । यथा--

> पित्तस्य कुडवं ज्ञेयं कफस्याधीढकं तथा। वार्ताज्ञुदपलं ज्ञेयं पलानि दश मेदसः। पलत्रयं महारक्तं मजा रक्तात् चतुर्गुणा। शुक्राधिकुडवं ज्ञेयं तदर्धं देहिनां बलं [ओज:]—

इतिवृत्तम्-पूर्वपीठिका

मांसस्य चैकपिंडेन पलसाहस्रमुच्यते । रक्तं पलशतं ज्ञेयं विण्मूत्रंचाप्रमाणतः । इति देहगृहं राजन् नित्यमन्वेष्यमात्मनः ।

इति परिषदि सर्वेष्वंशेषु सावधानतयैकमत्येन उत्तरितेषु पश्चात् आवेक्षकैः स्वीयानि मतानि प्रदत्तानि, यथा--

न्यायरत्न नारायणशास्त्री वाडीकराणां मतम् ।

पर्णवर्ष्ठीम्नामे त्रिदोषचर्चापरिषत् समजानि । तस्यां परिषदि आवेक्षक-त्वेन योजनाऽभविक्षिल । तत्र ताबिह्नचतुष्टयपर्यंतं भिषम्बराणां सहवासेन, व्याख्यानेन, आयुर्वेदीयम्रन्थानां विचारेण च त्रिदोषविषये यन्मदीयं मतं निष्पन्नं तद्धो लिख्यते ।

त्रिदोषास्तावद्द्रव्यस्ररूपाः तत्रापि पाञ्चभौतिकाः, मूर्ताः, गुणवन्तः, क्रियावन्तः, वृद्धिक्षयशालिनः, नित्याः, प्रस्रक्षादिप्रमाणगम्याश्च विद्यन्ते। तथाहि

द्रव्यखरूपाः

१. लोके तावच्छरीरं पार्थिवमिति व्यव-हीयते । श्रुतितः पञ्चीकरण-जन्यमिति प्रतीयते । पञ्चीकरणं तु पृथिवीजलतेजोवाय्वाकाशादीनामेव । तेन च पञ्चानामपि द्रव्यस्करूपत्वं निश्चितम् । एवंच शरीरं द्रव्यस्करूपमिति सिद्धं । 'दोषधातुमलमूलमिदं शरीरं ' इस्रायुर्वेदीयवचनेन त्रिदोषाणां देहकार्यस्योपा-दानकारणत्वं ज्ञायते । द्रव्यमेव ह्युपादानकारणं भिवतुमर्हति । समवायिकारणं द्रव्यमिति तल्लक्षणात् । त्रिदोषाणां निमित्तकारणत्वं न संभवति, कुत इति चदुच्यते-निमित्तकारणस्य दण्डस्य कार्ये घटेऽनुप्रवेशो नास्ति, किंत्पादानभूताया मृद प्वानुप्रवेशो घटे । त्रिदोषाणां तावद्द्व्यस्वरूपे कार्यभूते शरीरे [देहे] अनुप्रवेशो वर्तते । अतो न निमित्तकारणभूताश्विदोषाः, किंत्पादानकारणभूता-स्विदोषाः । त्रिदोषाणामसमवायिकारणत्वमिप न संभवति । कुतः, असमवायि- कारणत्वं गुणकर्मणोरेव नान्यस्य (इत्यस्य) । त्रिदोषाणामुपादानकारणत्वमेव युक्तितः सिद्धं भवति । यदि कार्यभूतं शरीरं इत्यखरूपं तदा तदुपादानभूता- स्त्रिदोषाऽपि इत्यखरूपा एवाङ्गीकर्तव्याः ।

पाञ्चभौतिकाः

२ "आकाशवायुभ्यां वातः, तेजसः पित्तं, अम्भःपृथिवीभ्यां कपः," इति वचनेन त्रिदोषाणां पाञ्चमौतिकत्वं स्पष्टं भवति । यदि देहस्य पाञ्चभौ-तिकत्वं, तदा तदुपादानभूतत्रिदोषाणामपि पाञ्चभौतिकत्वं निर्विवादमेव ।

मूर्ताः

३ मूर्तत्वं तु क्रियावत्वं परिच्छिन्नपरिमाणवत्वं वेति शास्त्रे कथितम् । आयुर्वेदीयप्रंथे तावास्त्रदोषवहा नाड्यः प्रदर्शिताः । तेन त्रिदोषेषु वहनरूपा क्रिया विद्यते इति सिद्धं भवति ।

विसर्गादानाविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा। धारयन्ति जगदेहं कफपित्तानिलास्तथा॥

इत्यनेन वचनेन धारणरूपा क्रिया त्रिदोषेषु प्रतीयते । ' पित्तं पंगु कपः पंगुः पंगवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयंते तत्र गच्छंति मेघवत् । ' इत्यनेन गमनरूपा क्रिया प्रतीता भवति । अन्यच ' पित्तं प्रस्थं कपस्यादकं ' इति वचनेन शरीरे विद्यमानित्रदोषाणां परिमाणवत्वं स्पष्टं प्रतीयते । तथाचि क्रियावत्वात्परिच्छिन्नपरिमाणवत्वाचोभयथापि त्रिदोषाणां मूर्तत्वं स्पष्टं भवति । (अतएव ते द्रव्यख्रूपाः)

गुणवन्तः

४ ' तत्र रुक्षाे लघुः शीताे ' इत्यादिवचनेन त्रिदोषाणां गुणवत्ता

प्रतिपाद्यते । यद्धि गुणवत्तद्द्रन्यभिति द्रन्यलक्षणात् । गुणवत्वप्रतिपादनेनैव त्रिदोषाणां द्रन्यत्वमर्थापत्या सिध्यति । द्रन्यं विहाय गुणा नान्यत्र वर्तन्ते । गुणे गुणानंगीकारात् इति न्यायात् ।

कियावन्तः

५. त्रिदोषवाचका ये वातिषत्त स्रेष्टमादिशद्वा विद्यन्ते। तेषां प्रकृति-प्रत्ययपूर्वकालोचने कृते सित क्रियावत्वं प्रतीतं भवति । अपि चोपरितनमूर्त-खरूपविचारे क्रिया त्रिदोषे वर्तत इति प्रतिपादितमेव। क्रियापि द्रव्यं विद्याय अन्यत्र [गुणे, कर्माणे, वा] न विद्यते । अतः क्रियावत्वात् त्रिदोषाणां द्रव्यखरूपता सिद्धा भवति ।

वृद्धिक्षयशालिनः

कुर्वते हि रुचि दोषा विपरीतसमानयोः ।
 क्षीणावृद्धाश्च भृथिष्ठं लक्षयन्त्यबुधास्तु न ॥

इति वचनेन 'चयो वृद्धिः खधाम्येव ' इत्यादिवचनेन च वृद्धिक्षयापरपर्यायावुपचयापचयौ त्रिदोषेषु विद्यते । अपरं च ' रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता ' इत्यनेन त्रिदोषविकार एव रोगः । अन्यच 'विक्वताविक्वतादेहं ग्नंति
ते वर्तयंति च' इति वचनेन दोषविकार एव [प्रकोपः] व्याधिरिति प्रतिमाति ।
एवं चोपचयापचयभावः विकार्यविकारीभावश्च त्रिदोषाणां आयुर्वेदीयप्रन्थतो
ज्ञायते । द्विविधोऽपि सःत्रिदोषाणां द्रव्यस्कर्पत्वांगिकारं विना न निर्वहति ।
तदित्थं-यस्य वस्तुनो अवयवा भवेयुः तस्यैव वस्तुनोपचयापचयभावोऽथवा
विकार्यविकारीभावः संभक्ति । नान्यस्य वस्तुनः । 'द्रव्यसमवायिकारणं अवयवा'
इति अवयवलक्षणम् । तथाच अवयवाभावे उपचयापचयभावो विकार्यविकारिभावश्च न दृष्यते । अवयवसत्वे एव तयोः स्थितिः, इत्यन्वयव्यतिरेकात् 'यत्र
यत्रोपचयापचयभावो, विकार्यविकारिभावो वा तत्र तत्र सावयवत्वं' इति व्याप्तेः
सत्वात् त्रिदोषाणां तावदुपचयापचयभावो विकार्यविकारिभावश्च दृष्यते ।
इत्यतः सावयवाक्षिदोषा इति सिद्धं भवति । सावयवत्वादेवद्रव्यत्वं सिद्धम् ।

नित्याः

७. यथा प्रवाहो वर्षतीं वृद्धिं गतो भवति, ग्रीष्मकाले कृशो भवति, एवमृतुभेदेनोपचयापचयवानि प्रवाहो लोकेऽनादीति व्यवव्हीयते । यथा वा वृद्धिक्षयवती, परिणामवती च सांख्यानां प्रकृतिः " प्रकृतिं पुरुषं चैव विष्वनादी उभाविप " इत्यनेन वचनेनानादिरित्युच्यते तथैवोपचयापचयवन्तो विकारशालिनिश्चिदोषा नित्या इति सिष्वति ।

प्रत्यक्षादिप्रमाणगम्याः

८. त्रिदोषकार्यस्य शरीरस्य प्रस्यक्षप्रमाणवेद्यत्वं सार्वजनिनम् । अत्र प्रस्यक्षत्वं त्विद्रियार्थसिन्निकर्षजन्यज्ञानविषयत्वस्त्ररूपं । यदि शरीरं प्रस्यक्षं तदा तदुपादानभूतास्त्रिदोषाऽपि प्रस्यक्षादिप्रमाणगम्या एव भवितुमहैति, कुतः अदृश्यस्य वस्तुनो दृश्यानुपादानत्वात् । दृश्यत्वमदृश्यत्वं वा न स्वाभाविकं, किंतु महत्पिरमाणोभ्दूतरूपादिकारणकलापादिकं यत्र स्यात् तद्वस्तुनः प्रस्यक्षं भवेत् । पूर्वीक्तकारणकलापो यत्र न स्यात् तस्याप्रत्यक्षत्वम् । त्रिदोषे तावत्पूर्वप्रदर्शितः कारणकलापोऽस्थेव । अतस्तेऽपिप्रस्यक्षादिप्रमाणगम्या प्वेति सिद्धं ।

केषांचिन्मते शक्तिस्वरूपास्ति । तदेतदसमीचीनम्। कथिमति चिद्रित्थं--शक्तिस्तावत् केषांचिन्मते इच्छास्र रूपा, केषांचिन्मते च कारणनिष्ठ--कार्योत्पादनयोग्य-धर्मविशेषस्र रूपा। तथाचेच्छास्र रूपगुणभूता धर्मस्र रूपाऽतै-वामूर्ता शक्तिरिति सिद्धम्। एवंभूतशक्तिस्र रूपेषु त्रिदोषेषु मूर्तत्वाऽसंभवः। मूर्तत्वं-परिच्छिन्नपरिमाणत्वम्। मूर्तत्वं हि द्रव्ये वर्तते, न गुणेऽन्यत्र धर्मे वा। गुणवत्वमपि एवंभूतशक्तिस्र रूपत्रिदोषेषु न संभवति। द्रव्यस्यैव गुणवत्वात्। तथा कियावत्वमपि न विद्यते। द्रव्यस्यैव कियावत्वात्। उपचयापचयभावो, विकार्यविकार्यभावो वा शक्तिस्र रूपेषु त्रिदोषेषु न संभवति। अवयवरहितत्वात् कियाहीनत्वाच्च। किया तथाऽवयवाश्च द्रव्यस्यैव संभवन्ति नान्यस्य। एवं च सर्वमेवायुर्वेदशास्त्रमाकुर्लो भवेत्। प्रंथसंगतिश्च न युज्येदिति सुधियो विभावयंतु।

पदार्थेति संज्ञापेक्षया द्रव्यखरूपेति विशेषसंज्ञया एव निर्देशः समीचीनः । यतः सित विशेषेण नाम्ना निर्देशे सामान्येनाभिधानमनुचितम् । अतो द्रव्यखरूपास्त्रिदोषा इति वक्तव्ये नासंबद्धता । तस्मादेवं सिद्धं भवति पाञ्चमौतिकत्वान्म्र्तत्वाद्गुणवत्वात्क्रियावत्वात् वृद्धिक्षयशालित्वाच द्रव्यखरूपा-स्तिदोषा इति सिद्धम् । इति शम् ।

नारायणशास्त्री वाडीकर अध्यापक, संस्कृत कॉल्डेज पुणें.

आयुर्वेदाचार्याणां नानलानां तथा भिषग्वराणां पुराणिकानां मतम् ।

आवेक्षक-मण्डलेन निर्मितः, त्रिदोषपरिषद्विषयः अभिप्रायः।

- अस्यां परिषदि एकादशसंख्याकानि व्याख्यानान्यभूवन् । तथाच
 वैद्य श्री महेश्वर राम पुराणिक जोशीशास्त्रीणां निवंधस्याऽपि पठनमभवत् ।
- २. एतेषां व्याख्यानानां तथा अस्माभिः श्रवणमकारि यथा प्रचिलतदोषवादस्य सम्योव निर्णयो भवितुमईति ।
- ३. एतेषां मध्ये दोषाः शक्तिस्वरूपा इति मतमंगीकृत्य समभूत् व्याख्यानद्वितयम् ।
- ४. तथाच इतराणि व्याख्यानानि दोषा द्रव्यत्वविशिष्टा इतिन्यायादिशास्त्रघटितं पक्षमंगीकृत्य अभूवन् ।
- ५. अत एतेषां सर्वेषां समाछोचने कृते सित--पं. वेणीमाधव, ढेग्वेकर, गुणे प्रमृतिभिवैँद्यवर्थैः प्रतिपादितस्य युक्तियुक्तस्य, न्यायादिशास्त्र-समुपबृंहितस्य एव पक्षस्य स्वीकारः प्रस्तावरूपेण विधेय इति सादरं सूचयामः।

- ६. अपरमस्माभिर्यश्चायं निरदेशी अपरः पक्षः स कर्थ आयु-र्वेदोपकारक इति चेत्-वयमित्थं निवेदयामः —
- ७. आयुर्वेदप्रमाणभूतः सोयं सुप्रथितः " शरीरदोषसंप्रहः " तकीदिशास्त्रप्रतिपादितसप्तपदार्थांतरित्व आविभेवति ।
- ८. एतेषां दोषाणां पाश्चभौतिकत्वं, उत्पत्तिमत्वं, द्रव्यत्वं, च कथमुपलभ्यते इति चेत्-संक्षेपतो मिरूपयामः आदावायुर्वेदशास्त्रे-पदार्थाः अभावरहिताः षडेव गृहीताः।
- ९. तद्घिटतं च द्रव्यं, तादृशे द्रव्ये पंचपदार्था गुणादयः अवतिष्ठते । एतादृशद्रव्यस्य छक्षणिमितिचेत्—गुणवत्वं कर्मवत्वं च । यथाह्र भगवान् चरकः—'' यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत् । तद्द्रव्यं '' इस्यनेन चरकस्त्रेण गुणवत्वं कर्मवत्वं च छक्षणं संजातम् च समवायिकारणत्वं अपि गुणकर्मणां निश्चितम् । अध्याय १ सूत्र ५० ।

तथाच " सामान्यं नाम जातिः " सा-समवायेन-अपृथक्भावेन चरका-चार्योदितेन-द्रव्ये संप्रतिष्ठिता विद्यते ।

- १०. तथाच विशेषा अपि परमाणुरूपे-निखद्रव्ये एव वर्तते इति षट्पदार्थविवेचनं न्यायचरकमतेन ।
- ११. तत्तु गुणकर्मादिवत्वं वातादिदोषेषु अनुस्यूतत्वेन दृश्यते, अत्राव ते दोषा द्रव्यात्मकाः।
- १२. एते एव दोषा न्यायसंख्यानुरोधेन पाञ्चमौतिकजन्मत्वा-बाच्छित्नाः, तानिच पृथिवीत्यादिपंचसंख्याकानि महाभूतानि, एतेषु त्रिषु, पाञ्चमौतिकजन्यत्वं, "व्यपदेशस्तु भूयसा " इति नियमेन-वातादिदोषाणां

अवस्थावरोन चक्षुर्जन्यप्रत्यक्षविषयत्वमपि संभवति । वातादिसंज्ञावत्वं निश्चय-विषयं वरीवर्ति ।

अथ च अपरः पक्षः-

- १३. प्रथमं यदभूत व्याख्यानद्वितयं शक्तयात्मकं पक्षमधिकृत्य तिद्विषयं वयिनत्थं निवेदयामः, यथा शक्तिपदार्थस्तु पृथक्त्वेन आयुर्वेदानुकुलेषु न्यायसांख्यादिशाश्चेषु न परिगणितो दृश्यते । यतः " अस्मात् पदात् अयमर्थो बोधव्य इति ईश्वरसंकेतः शक्तिः " इति काणाद्यिन वचसा इच्छायामेव शक्तेरतर्भावः । तथा-कचित् गुणे-कचित् द्रव्ये-शक्तेरतर्भावः यथासंभवं समज्जिन । यथा अग्नौ दाहानुकूला शक्तिः दृश्यते तस्या अंतर्भावोग्न्यारब्धे द्रव्ये । एवमेव न्यायसांख्यादिभिर्यथासंभवं तदात्मकावच्छिना प्रतिपादिता, अतः सोयमपरः पक्षो दोषनिर्णयविधौ असमर्थ एव प्रतिभाति ।
- १४. अतोऽनया सभया सोयमस्माकं तत्वनिर्णयः सर्वथा अंगी-कृतश्चेत् दोषविज्ञानग्रंथलेखकानां उपकारी भवेदिति द्रढीयानो विश्वास इति सादरं निवेद्य विरमावः।

द. म. पुराणीकः नानलः पुरुषोत्तम शर्माः

चर्चापद्धतिः

प्रथमं कृतैवर्यास्यानैर्विषयोऽयं सांगप्रसंगः तथा सर्वसदस्यानां पुरतः स्थापित आसीद्, यथा चर्चासमये समुद्भूतस्य कस्यापि प्रश्नस्य आशयः, संदर्भः, तद्विषयकाश्च प्रंथाशाः, सर्वमप्येतत् मुखोद्गतमेव प्राय आसीत् सर्वेषां । अतो व्याख्यानानंतरं साधिदिवसपर्यंतं एकैकं प्रश्नं गृहीत्वा तदनुरोधेन साधकबाधकचर्चा संजाता । कैश्चन पञ्चिभः सदस्यश्रेष्ठैः प्रतिप्रश्नं यथायोग्यं

1.

उत्तरमपि विलिख्य सभापतिहस्ते पूर्वमेव दत्तमासीत् । अतश्चर्यायां प्रचिलतायां उत्तरावल्याः अस्याः प्रतिप्रश्नं तदुत्तरमपि सूचनार्थं सभायाः पुरतः स्थापितं । यत्र तदतीय समीचीनमिति सर्वेषां मितरभवत् तत्र तदेव खीकृतम् । यदा पुनः किंचित् परिवर्तनमपेक्षितमासीत् तदा वाक्यशः, शद्धशः, अक्षरशोऽपि वा परिवर्तनं कृत्वा उत्तरं रचितं। यतो हि प्रश्नाविशिरंयं सूचनार्थमेव रचितासीत्। त्रसात् प्रश्नानामेतेषां मध्यात् केचन पुनरुक्तिकराः केचन विषयांतरसंख्या इति सर्वसम्मस्या निष्कासिताः । ये केचन पूर्लर्थं प्रश्नाः पुरतः स्थापितास्ते-षामिप चर्चा सञ्जाता । अथ यानि खलु सर्वसम्मतानि प्रतिप्रश्नमुत्तराणि आसन् , तेषां सूची सम्यग् विलिख्य मंत्रिमहारायानां सकारो स्थापिता । याश्व प्रश्नावल्यः सदस्येभ्यो दत्ता आसन् तासु यस्य किल प्रश्नस्य सर्वसम्मतं उत्तरं केनापि कारणेन अनुमतं नाभवत्तस्य पुरतः खकीयां अमान्यतां विलिख्य अंते च खकीयं हस्ताक्षरं कृत्वा एतानि प्रश्नपत्राणि सदस्यैमीत्रमहारायेभ्यो दत्तानि । अत्र यस्य प्रश्नस्य पुरतो न किमपि लिखितमासीत् तस्य यत्सर्वसंमतं उत्तरं तदेव सदस्यस्यास्य संमतिमिति संकेत आसीत्। व्यक्तिशः सदस्यैः दत्तानि पत्राण्येतानि सम्यक् परीक्ष्य सभया अतिमो निर्णयः कृतः । स च निर्णयः प्रस्तावरूपेण पुरतः स्थापितः, अनुमोदितः, सर्वसंमस्या च मान्य इति उद्घोषितः ।

प्रथमः प्रस्तावः पनवेलित्रदोषचर्चापरिषदियं दिनत्रयं सांगोपांगं चर्चां कृत्वा एवं निश्चितवती यत् त्रिदोषा नाम प्रस्थक्षादिप्रमाणसिद्धानि, निस्रोत्पत्तिमन्ति, स्वभावतश्चापि वृद्धिक्षयशीलानि प्रस्थक्षद्रव्याणि सन्तीति ।

प्रस्तावकः--पं. डेग्वेकरशास्त्री एम् , ए. एम् . एस् . सी. एल्एल्. बी.

अनुमोदकः -- पं. गोपाळशास्त्री गोडबोळे वैद्यराज।

समर्थकाः — रानृहेशास्त्री सातारा, तांववेकरशास्त्री, मुंबई। एकतारेशास्त्री अहमदनगर, भिषप्रत्न गंगाधरशास्त्री पूना, वैद्यरत्न केळकरशास्त्री नासिक। प्रस्तावोऽयं प्रचण्डबहुमतेन मान्यः। (द्वे मते प्रतिकूछे)

द्वितीयः प्रस्तावः — पनवेलित्रदोषचर्चापरिषदियं अधीनिर्दिष्टनाम-धेयानां सदस्यानां कार्यकारिमण्डलमेकं नियोजयित, येन च मण्डलेन, दिनत्रय-पर्यंतं सांगोपांगां चर्चां कृत्वा या च सामान्येन षष्टिविषयात्मिका निर्णयाविलः परिषदा सर्वसम्मत्या स्वीकृता तामनुसृत्य त्रिदोषविषयकोऽधिकृतो प्रंथो गीवीणभाषायां विरचनीयः । प्रंथस्यास्य रूपरेखां तत्तदिद्वद्भ्यः संप्रेष्य तेषामिप आक्षेपसूचनाभिप्रायादिकान् मनिस कृत्वा प्रन्थोयं निखलभारतायुर्वेदमहामंड-लाय अभिप्रायार्थं प्रेषणीयः । अनन्तरं च प्रकाशनमस्य अंगीकर्तन्यम् । इयं-किल मण्डलस्यास्य घटना—

अध्यक्षः-—श्री. नानासाहेब पुराणिक, त्रिदोषचर्चापरिषत्स्त्रागताध्यक्षः पनवेल ।

सभासदः—१ भिषगाचार्य त्रयंबकशास्त्री आपटे पनवेलित्रिदोषचर्चा-परिषदध्यक्षः, पूना । २ पं. भि. वि. डेग्वेकरशास्त्री एम्. ए. एम्. एस्. सी. एल्. एल्. बी. जबलपूर । ३ वैद्यपंचानन गंगाधरशास्त्री गुणे, अहमदनगर । ४ आयुर्वेदाचार्य पुरुषोत्तमशास्त्री नानल, पूना । ५ वैद्यभूषण वामनशास्त्री दातार, १९ वैद्यसंमेलन मंत्री, नासिक ।

> सम्मन्त्री—वे. शा. सं. नारायणशास्त्री वाडीकर, पूना । मन्त्री—वैद्यपंचानन गंगाधरशास्त्री गुणे । सहमन्त्री—आयुर्वेदर्तार्थ विनायकशास्त्री एकतारे, अहमदनगर ।

द्वाविधिको सदस्यौ खींकर्तुं मण्डलमेतत्प्रभवति । ग्रंथिनर्माणकार्यमेतत् अस्य (१९३४) संवत्सरस्य समाप्तिपर्यंतं संपूर्णं स्यात् । एतदर्थं यश्च द्रव्यनिधिरपेक्षते यानि च साधनान्यनानि, तेषां समवाप्तिविषये मण्डलायास्मै सर्वेधिकाराः परिषदा चानया प्रदीयन्ते ।

प्रस्तावकः -- तपस्वी डॉ. बाबासाहेब परांजपे, यवतमाळ ।

अनुमोदकः - विष्णू महादेव भट बी. ए. ९म. बी. बी. एस्. येवला । समर्थकाः - पं. रघुनाथशास्त्री जोशी आयुर्वेदिक्शारद, पूना । श्री. अनंतराव कर्डिले एम्. ए. एस्. टी. सी. नासिक । पं. वैद्यराज दत्तात्रयशास्त्री पुराणिक उपसभापितः निखलभारतायुर्वेद-महामंडल । वैद्यराज पं. अनंत विनायक गुर्जर, मुंबई । मान्योऽयं प्रस्तावः सर्वसम्मत्या ।

तृतीय प्रस्तावः——अस्याः परिषदः अधिकृतं समग्रं वृत्तांतं प्रकाश-यितुं अधीनिर्दिष्टं मण्डलं नियुज्यते ।

पं. त्र्यम्बकशास्त्री त्रिदोषचर्चापरिषदध्यक्षः ।
श्री. नानासाहेब पुराणिक खागताध्यक्षः ।
पं. वामनशास्त्री दातार १९ वैद्यसंमेळनप्रधानमन्त्री ।
प्रस्तावकः—वै. पं. गुणेशास्त्री ।
अनुमोदकः—वै. अभ्यंकरशास्त्री, मुंबई ।
समर्थकौ—वै. वेणीमाधवशास्त्री, नगर ।
वै. बापुशास्त्री पराडकर, पनवेळ ।
असमिप प्रस्तावः ऐकमत्येन सम्मानितः ।

चतुर्थः प्रस्तावः---वातिपत्तकपाः नाम शारीरघटकांतर्गताः अस्यंत-सूक्ष्मः सामर्थ्यसंपन्नाः क्रियाकारिणश्च पदार्था द्रव्याणि वा सन्ति । नैते दृष्टिगोचराः किंतु कार्यानुमेयाः ।

प्रस्तावकः—वैद्यभूषण पुरुषोत्तमशास्त्री हिर्हेकर, अमरावती । अनुमोदकः—आयुर्वेदाचार्य पांडुरंगशास्त्री देशपांडे, पूना । समर्थकः—न कोऽपि ।

प्रस्तावकानुमोदकयोरेव मतमनुकूलम् । अन्यथा सर्वसम्मत्या असम्मत एव प्रस्तावः ।

परिषदो विशेषाः।

१. अस्यां परिषदि यानि व्याख्यानानि संजातानि, प्रश्नान् बहुविधाननुसृत्य या च चर्चा सम्भूता, ये च निर्णयाः कृतास्तेषां सर्वेषां न्यायशास्त्रानुरोधेन सर्वथा सुसम्बद्धत्वं स्यादिति कृत्वा अधोनिर्दिष्टानां पण्डित- बरेण्यानां आवेक्षकत्वेन निर्वाचनं कृतमासीत् । तैश्च स्वकीयोऽभिप्रायः सर्वथा सभाया अनुकूलो विलिख्य प्रदत्तः ।

आवेक्षकाः—पं. नारायणशास्त्री वाडीकर न्यायशास्त्राध्यापक आचार्यकुळ, पूना ।

- पं. दत्तात्रयशास्त्री पुराणिक--उपाध्यक्ष--निखिलभारतायुर्वेदमहामण्डल पं. पुरुषोत्तमशास्त्री नानल प्रधानाध्यापक आयुर्वेदमहाविद्यालय पूना ।
- २. विना हि प्रन्थवचनप्रमाणात्र किमपि विधानं करणीयमिति आसीत् परिषदो दण्डकः स च सर्वैरनुपालितः ।
- ३. सर्वाऽपि चर्चा प्रस्तुत एव विषये केन्द्रीभूता । पस्टिअज्येनं न कापि चर्चा संजाता ।
- प्रायशः सर्विरेव सदस्यैः सर्वथा सहानुभातिपूर्वकं चर्चा कृता ।
 वयैक्तिकमतभेदस्य कल्हे परिणतिर्न कुत्रापि दृष्टा ।
 - ५. प्रस्तुतस्य विषयस्य अन्तिमं निर्णयं कृत्वैव परिषदेषा परिसमापिता ।
- ६. अस्यां च परिषदि भोजनादिप्रबन्धः सर्वसदस्यानां यथा सर्वथा स्वास्थ्याय च सुखाय च भवेत् तथा दक्षैः खागताध्यक्षैर्नियोजितविविधा-धिकारिद्वारा कृतः ।

एवमेषा परिषत्सर्वथा अपूर्वेवाभवत् ।

त्रिदोषचर्चापरिषदि निमंत्रितानां तथा समुपस्थितानां वैद्यविदुषां नामानि ।

| १ | प्राणाचार्य कृष्णशास्त्री देवधर | नासिक | * |
|-----|---|---------------|----|
| २ | ,, वासुदेवशास्त्री ऐनापुरे | मुंबई | * |
| ३ | आयुर्वेदमार्तंड जादवजी त्रिकमजी आचार्य | ,,, | * |
| 8 | वैद्यराज अपाशास्त्री साठे | " | * |
| 4 | ,, दुर्गाशंकर केवळराम | " | * |
| દ્ | ,, गोपाळशास्त्री गोडबोले | चिंचवड | |
| O | ,, विष्णुशास्त्री केन्द्रकर | नासिक | |
| Z | रा. रा. अनंतराव कर्डिले, एम्. ए. बी. एस्. सी. | " | |
| ९ | आयुर्वेदाचार्य घाणेकर, एम्. बी. बी. एस्. | बनारस | * |
| १० | वैद्यराज महेश्वर राम पुराणिक | माछवण | * |
| ? ? | ,, त्रिंबकशास्त्री धामणकर | मुंबई | |
| १२ | ,, रघुनाथशास्त्री तांबयेकर | ,, | |
| १३ | ,, अनंतशास्री गुर्जर | " | |
| 8 8 | ,, रामचंद्र महादेव पुराणिक | ,, | |
| १५ | वे. शा. सं. नारायणशास्त्री वाडीकर | પુ ળેં | |
| १६ | डा. बाळकृष्ण चिंतामण लागू | " | * |
| १७ | वैद्यराज रामचंद्र विनायक पटवर्धन | , | |
| १८ | ,, रघुनाथ वासुदेव जोशी | ,,, | |
| | ,, दत्तात्रयशास्त्री पुराणिक | " " | |
| | भिषप्रत्न गंगाध रशा स्त्री जोशी | | |
| | वैद्यराज हरीशास्त्री साने | 77 | * |
| | | " | T. |

| २२ वैद्यपंचानन कृष्णशास्त्री कवडे, बी. ए | पुणें * |
|--|---------------------------------------|
| २३ आयुर्वेदाचार्य पांडुरंगशास्त्री देशपांडे | ,, |
| २४ भिषगाचार्य त्रिंबकशास्त्री आपटे | • • • • • • • • • • • • • • • • • • • |
| २५ आयुर्वेदाचार्य पुरुषे।त्तमशास्त्री नानल | 27 |
| २६ डॉ. नीळकंठ भालचंद्र भाटवंडेकर | मुंबई * |
| २७ श्रीमंत गंगाधर विष्णू पुराणिक | पनवेल |
| २८ ,, पुंडरीकाक्ष गदाधर पुराणिक | " |
| २९ वैद्यराज पराडकरशास्त्री | |
| ३० ,, दादाशास्त्री शेंडे | 37 |
| ३१ ,, साठेशास्त्री | 77 |
| ३२ ,, कोनकरशास्त्री | 3 9 |
| ३३ ,, सदाशिव बळवंत कुळकर्णी | कोल्हापूर * |
| ३४ ,, सी. ना. रानडे | सातारा |
| ३५ ,, गोविंदराव बिनिवाले | सांगली * |
| ३६ वैद्यभूषण गणेश त्रिंबक जोशी | पुणें * |
| ३७ वे. शा. सं. नृसिंहाचार्य गर्जेंद्रगडकर | सातारा * |
| ३८ डॉक्टर मेरिश्वर नारायण आगाहो | ,, * |
| १९ वैद्यराज वासुदेवशास्त्री कडेगांवकर | ,, * |
| ४० वैद्यपंचानन गंगाधरशास्त्री गुणे | अहमद नगर |
| ४१ आयुर्वेदतीर्थ विनायकराव एकतारे | ,, |
| ४२ आयुर्वेचार्य वेणीमाधव बाळाजी जोशी | नगर " |
| ४३ वैद्यराज बोरकर (मुकुंद रामचंद्र) | ,, |
| ४४ वैद्यराज शंकर गणेश नानल | पुणे |
| ४५ डॉ. विष्णू महादेव भट बी. ए. एम्. बी. बी. एस्. | येवलें येवलें |
| ४६ वैद्यराज गोपाळशास्त्री बायीवारु | नगर * |
| ४७ म. मो. श्रीधरशास्त्री पाठक | धुळें * |
| | - |

| ४८ वैद्यराज विश्वनाथ श्रीधर पाठक | धुळें * |
|---|----------------|
| ४९ वैद्यभूषण माधवराव हरी गोखले | जळगांव * |
| ५० डॉ. नरहर शिवराम ऊर्फ बावासाहेब परांजपे | नागपूर |
| ५१ वैचराज लक्ष्मणशास्त्री पणशीकर | * |
| ५२ ,, गोवर्धनरामी छांगाणी | ,, * |
| ५३ ,, हरीशास्त्री पराडकर | आकोला * |
| ५४ ,, भिकाजी विनायक डेग्वेकर एम्.ए. एळ्. एर | ठ्. बी. |
| एम्. एस्. सी. | जबलपूर |
| ५५ वैद्यभूषण पुरुषोत्तमशास्त्री हिर्छेकर | उमरावती |
| ५६ वैद्यराज पंढरीनाथ दामोदर मुळे | ,, * |
| ५७ 🔑 दिगंबरजी बक्षी | बोरिवली * |
| ५८ ,, परशुराम रघुनाथ गोडबोले | पुणं * |
| ५९ ,, गणेश महादेव अभ्यंकर | मुंबई |
| ६० वैद्यभूषण वामनशास्त्री दातार | नासिक ु |
| | |

^{*} येषां नाम्नः पुरतो क्तते चिन्हं ते अनुपस्थिता इति विज्ञेयम् ।

त्रिदोषचर्चापरिषदि प्रस्थापिते चर्चापत्रके उत्तरपत्रके च यैः स्वसंमतिदार्शिका स्वाक्षरिः कृता तेषां नामानि स्थानसहितानि।

| 8 | वैद्यपंचानन गंगाधरशास्त्री गुणे | अहमदनगर |
|---|--|---------------|
| २ | भिषगाचार्य त्रिंबकशास्त्री आपटे | પુ ળેં |
| 3 | आयुर्वेदाचार्य पुरुषोत्तमशास्त्री नानल | ,, |
| 8 | वैद्यसज दत्तात्रयशास्त्री पुराणिक | 17 |

| 1. 411 | | | | | | एल्. बी. |
|--------|----------|-----------|---|------|-----------|----------|
| . (4 | 13376174 | T PATIFIC | नागस्य | ITIT | LL LLEX | T = 3T |
| | 14141151 | 124112 | S 4401 | ٧٦. | 4 60 | ५७. भा |
| | | | ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,, | 2.7 | , , , , , | 2 - |

| 전 30 이렇게 되었습니다. 그는 10 그는 이는 인하는 사람들이 살아 하는데 살아 되는데 그래 하다. 하는데 하는데 그래 하는데 그래요? | |
|---|------------|
| एम्. एस्. सी. | जबलपूर |
| ६ वैद्यरन विष्णुशास्त्री केळकर | नासिक |
| ७ वैद्यराज गोपाळशास्त्री गोडबोले | चिंचवड |
| ८ आयुर्वेदाचार्य वेणीमाधव बाळाजी जोशी | नगर |
| ९ वैद्यराज मुकुंद रामचंद्र बोरकर | ,, |
| १० आयुर्वेदतीर्थ विनायकराव एकतारे | अहमदनगर |
| ११ वैद्यराज अनंतशास्त्री गुर्जर | मुंबई |
| १२ ,, रघुनाथशास्त्री तांबवेकर | "" |
| १३ ,, गणेश महादेव अभ्यंकर | 99 |
| १४ ,, शंकर गणेश नानल | पुणें |
| १५ ,, रघुनाथ वासुदेव जोशी | 5 7 |
| १६ ,, सी. ना. रानडे | सातारा |
| १७ रा. रा. अनंतराव कर्डिले, एम्. ए. बी. एस्. सी. | नासिक |
| १८ भिषग्रत्न गंगाधरशास्त्री जोशी | पुणें |
| १९ वैद्यराज परशुराम रघुनाथ गोडबोळे | , |
| २० श्रीमंत गंगाधर विष्णु पुराणिक | |
| २१ " पुंडरीकाक्ष गदाधर पुराणिक | ,, |
| २२ वैद्यराज पराडकरशास्त्री | ,, |
| २३ वैद्यभूषण वामनशास्त्री दातार | " नासिक |
| 요즘 돼지 않아 얼마를 하다면 하는데 있었다면 얼마나 하는데 없는데 이 하는데 그렇게 나가 되었다면 하다니까 전기 | |

अस्मिन्पत्रके वैद्यानामेव केवलानां खाक्षरिर्गृहीता न दक्षतराणां। परिषदि उपस्थितेषु चतुक्षिंशत्सु मध्ये द्वौ दक्षतरौ, एकश्च प्राच्यविद्यापंडितः, त्रयश्च मतप्रदानवेलायां सभास्थले अनुपिश्यिताः, द्वौ च सुतरां विपक्षौ इति तेषां अगणनया त्रिभिरेव वैद्यैः खीयं मतं नैव प्रदत्तम्।

पंचमहाभूत-त्रिदोषचर्चापरिषादितिवृत्तप्रस्तावः ।

हरिशरणानंदकृत त्रिदोषमीमांसासाराद्धारः ।

इत्येवं पर्णवर्छीमामे संजातायां त्रिदोषपरिषदि ये च प्रस्तावाः पुरस्कृताः तेषां सामान्यतः खरूपमिदमेव त्रिदोषानैव काल्पनिकाः किंतु प्रत्यक्षसिद्धानि द्रव्याणि, तथा त्रिदोषाः केवलं नैव शक्तिस्वरूपाः परमसूक्ष्मा अनुमानग्राह्याः पदार्थाः, किंतु नित्योत्पत्तिमन्तो दृद्धिक्षयस्थितिशीलाः परिमाणवन्तः स्थूल-सूक्ष्मोभयाविधा द्रव्यस्वरूपा एव, इदं शास्त्रवचनप्रामाण्यसिद्धं उपस्थितविद्वत्-श्रेष्ठपारिषदैरनुमोदितं तेषां विद्यते सामान्यखरूपम् । नैतन सामान्यखरूप-दिग्दर्शनेन चारितार्थ्यं, परं इमं मतमेत्र केंद्रत्वेनाङ्गीकृत्य त्रिदोषविषयकः समग्रः शास्त्रपृतः सूक्ष्मातिसूक्ष्मभिन्नभिन्नकक्षागतविषयोपबृहितः पठनपाठनो-पयुक्तो प्रथराजः समित्या विरचय्य प्रकाशयितव्य इत्युदेशं मनसि निधाय निर्मिता चैका समितिः । यश्च प्रबंधो भारतीयविद्वद्वरेण्यसंमत्यर्थं निखिलभार-तवैद्यसंमेळनसमीपे स्थापितो भविष्यति । यश्च भारतीयवैद्यवरप्रदत्तमतानुकूल्य-मुद्रांकित एव भारतीयस्वरूपं प्राप्नुयात् । यस्य च छेखका अहमदनगरवा-स्तव्याससुप्रसिद्धनामधेया वैद्यपंचाननाः श्री गंगाधरशास्त्रीमहाभागा निर्धारिताः सन्ति, यस्मिन् सहायकाः समितिसभास्ताराश्च आयुर्वेदाचार्य पुरुषोत्तमशास्त्री-नानल, भिषगाचार्य त्रिवकशास्त्री आपटे, वैद्यराज भिकाजी विनायक डेग्वेकर, न्यायरन नारायणशास्त्री वाडीकर सदशा विद्यन्ते । यस्याश्च समित्याः प्रमुखाः पर्णवल्लीग्रामवास्तव्या अपि भारतप्रसिद्धाः श्री धृतपापेश्वरारोग्यमंदीरसंचालकाः श्री गंगाधर विष्णु पुराणिका नियुक्ताः सन्ति ।

सैषा समितिः प्रंथराजिनिर्मित्यर्थं उद्योगभरं कृत्वा प्रयतते, स च प्रबंधोपि संपूर्णप्राय एव विद्यते । शीघ्रमेव प्रकटरूपं स्वीकृत्य बहिर्यास्यति । अस्तु । एतावति प्रयत्ने संजातेऽपि एक उद्योग अस्मिन् विषये आवश्यक एव उर्वरित आसीत्। यथा त्रिदोषविषयकं मतैक्यं संपादियतुं त्रिदोषपरिषद् महाराष्ट्रे पनंबल्ग्रामे महतोत्साहमरेण संजाता, तथैव आभारतीयपंडितवरेण्यानां वैद्यानां अपि केवलं त्रिदोषविषयस्यैव विचारोहापोहकरणोद्देशकं संमेलनमावश्यकम् । यच्च नाद्यापि संजातं । येन सम्मेलनेन भारतीयवैद्यवराणामिप प्रश्नेऽस्मिन् सामान्यत्वेन ऐकमत्यं निश्चितस्वरूपप्रदर्शकं दक्षपथमेत्य नैकिविधमतानां निरासो भूत्वा महत्कार्यं साधितं भवेदिति । एतादृशं संमेलनं कुत्र, कदा, कश्च कर्तव्यं इति संदेहाकुलितान्तः करणे त्रिदोषविषयकिष्वतित्रे वैद्यवृन्दे सिति एतादृशं एकः समुद्भूतः प्रसंगः । येन एतादृशं भारतीयवैद्यसम्मेलनं केवलं त्रिदोषविषयविचारकरणे एव बद्धादरं शिव्रमेवावश्यं मानयितव्यमेव । केवलं वैद्यविदुषामेव संमेलनेन प्राप्तप्रसंगस्य प्रतिक्रिया समुचितास्यादिषतु आभारतीयानां प्राच्यतत्विद्याप्रवीणानां दार्शनिकानां तथा प्रतीच्यभौतिक-शास्त्रपार्ष्य सम्मन् सहकार्यमवश्यमेवाभवत् ।

अमृतसरनगरे कृतवास्तव्यानां '' पंजाब आयुर्वेदिक फार्मसीति '' औषिसंभारसंस्थाध्यक्षाणां आयुर्वेदिविज्ञानमासिकपत्रसंपादकानां 'मंथरज्वरकी-अनुभूतिचिकित्सा,' 'क्षारिविज्ञान,' 'आसवविज्ञान ' इत्याद्यनेकप्रबन्धकर्तृणां प्रथितनामधेयानां खामी हरिशरणानंदनामधारकाणां एका कृतिस्त्रिदोषमीमांसा इति अत्रान्तरे प्रादुरभूत्। यया सर्वेपि पंडितप्रकांडा वैद्यवरा दार्शनिका अपि व्यथितान्तःकरणा जागरूका अभवन्।

एतावत्कालं प्रतीच्यविद्याविभूषिता एव नैव त्रिदोषाणां सल्यत्वेन अस्तित्वं केत्रलं प्राचीनानां सा कल्पनैवेति संगिरन्तिस्म । परं स्वामी हिरिशरणानन्दास्तु वैद्यनामधारका भूत्वा केवलं त्रिदोषाणामेव न हि अपितु पंचमहाभूतानामपि पूर्णतया असल्यत्वं प्राचीनर्षीणां मौर्स्यं काललवमि शास्त्रीयपरिभाषायां स्थित्यक्षमत्वं उद्घोषयन्तः स्वप्रतिपादितमतःखंडनकर्त्तृभ्यः पंचशतः स्प्रतिपादितमतःखंडनकर्त्तृभ्यः पंचशतः स्प्रतिपादितमतःखंडनत्वं प्रतिपादयन्ते।ऽविनतले प्रादुर्भृताः । एतेश्च यक्षिदोषमीमांसास्त्यःप्रवंधो व्यलेखि

तेनायुर्वेदिविन्मूर्धन्यमंडले, वृत्तपत्रेषु, मासिकपत्रेषु, खंडनात्मकलेखानां प्रसिद्धीकरणेन, सभासु स्वमतस्थापकव्याख्यानदानेन च किंमपि समारव्धमान्दोलनम् । सोयमवसरः संप्राप्त इति विचार्य अस्माभिरपि पूर्वाभिलिषता आसेतुिहमाचलप्रथितवैद्यविदुषां दार्शिनकानां च त्रिदोषित्रिषये विचारकरणनैमित्तिकी काप्यपूर्वा परिषद् अस्मित्रवक्तसरे कर्तुं समुद्योगः प्रारव्धः । सोऽयं काकतालीयन्याय एव, बहुकालं मनित निर्धारितं भारतीयं तत्विदिसम्मेलनं हिरिशरणानन्दिनिमत्तं पुरस्कृत्य प्रत्यक्षरूपेण सपन्नं, हिरशरणानन्दानामेव कृते एतत् सम्मेलनं संजातिमितितु नैव । एतादृशं व्यक्तिमहात्म्यं, पांहित्यमाहात्म्यं वा नैवावलवन्ति स्वामिमहाशया यद्यपि ते समुत्साहिन उद्योगिनष्ठाः । पर्णवर्ष्ठीप्रामे पूर्वसंजाताया महाराष्ट्रीयत्रिदोषपरिषद एवायं परिपाको यश्च भारतीयत्रिद्धोषपंचमहाभूतपरिषद्भेपण परिणतोऽभवद्वाराणश्याम् । कोनाम सामान्यपश्चहनने पंचाननमृगयासामग्रीको भवेत् ! भवतु । अधुना स्वामीहिरिशरणानन्दमहाभागैः स्वकीये त्रिदोषमीमांसानामके प्रबंधावमासे ये च त्रिदो-पर्चमहाभूतिविषयका गृहीता आक्षेपास्तान् संक्षेपत उद्धरामः ।

आक्षेपाः

१ आयुर्वेदचिकित्सा—तु नैव पृथ्वीलोकचिकित्सा, यतः पुलस्यादि-मुनिभिः सम्मील्य भारद्वाजः स्वर्गे-देवलोके इंद्रसमीपे प्रेषितः । तेन देवलोकं गत्वा इन्द्रात् समनुप्राप्ता चिकित्सापद्धतिः प्रससार पृथ्वीलोके । अत इयं नैव भारतीया चिकित्सा अन्यदेशादानीता । पृष्ठ ३ ।

२ प्राचीनैर्ऋषिभिः स्वीयाः सिद्धांतास्तर्कवादेन [कल्पनया] एव स्थिरीकृता, अतएव तैः 'एतावत्दृश्यम्'--इत्युक्त्वा दृश्यपदार्थानां निर्देशं कृत्वा 'अतः परं तर्क्यम्' इत्युक्तं, इत्यनेनैव त्रिदोषिसद्धान्तस्तर्कवादेनैव स्थिरीकृतो न प्रस्यक्षत्वेन । पृष्ठ ९ ।

३ सर्वं जगत् पंचमहाभूतमयं विद्यते । जनन्या रजः, पितुः शुक्रं, चापि पंचभूतात्मकमेव । अद्यापि भारतीयः प्रत्येकः संप्रदायः समामनित यदयं सर्वोऽपि जीवलोकः पंचतत्वमय इति । त्रिदोषवादस्थापने अयमेव सिद्धान्तः प्रधानं कारणम् । पंचानां भूतानां गुणास्त्रिदोषेषु सम्मील्य त्रिदोष-वादः स्थिरीकृतो विद्यते न वास्तविकः । पृष्ठ १० ।

४ पंचमहाभूतानां गुणेषु वास्तवत्वं न हि दृश्यते। तथा मृदुत्वं आका-शस्य, तथा जलस्यापि गुणोऽभिहितः। लघुता तु आकाशस्य वायोस्तथा अग्न-रिपगुणः प्रोक्तः। तथा शीतलत्वं वायोर्जलस्य च गुण उक्तः। रूक्षता वायो-रग्नेश्च गुणः। खरोगुणस्तु वायोः पृथिव्या अभिप्रोक्तः। अतो भिन्नेषु तत्वेषु सत्स्विपि गुणास्तेषां मिश्रिता इति दृश्यते। शद्धस्पर्शरूपरसगंधास्तु पंचतन्मात्राः स्मृताः। तन्मात्रानाम पंचमहाभूतानां सूक्ष्मावस्था याभिः पंचमहाभूतानां प्रस्थक्षत्वं साध्यते। एतासां तन्मात्राणां ज्ञानं पंचज्ञानंद्रियभवति। यदि एतेषु ज्ञानंद्रियेषु मध्ये कतरत् ज्ञानंद्रियं नष्टं स्यात् तदा तत्वानां ज्ञानं नैव भवेत्। पंचमहाभूतत्वानां आधुनिकलक्षणेन नैव सिध्यित तत्वत्वम्। आधुनिकन्तत्वलक्षणं यथा—

- (अ) तत्वस्य परमं सूक्ष्मखरूपं आवश्यकम् ।
- (आ) तत्वे घनत्वं, आयतनं, भारः, रूपं इति चतुर्णां अस्तित्वं आवश्यकम् ।
- (इ) तत्वस्य अंतिमं स्वरूपं एतादृशमावस्यकं यस्य कयापि प्रबलया शक्त्या छेदोनैव भवति ।
- (ई) तत्वेन अन्ये अनेके पदार्था उत्पन्ना भवेयुः, परं तत्वं नैव केनापि संभिवतुं शक्यम् । तस्योत्पित्तिस्तु खयं सिद्धैवावश्यकी । अपरं च तत्वं तु सृष्टिरचनायां पदार्थैः संमीलितं भवदिप तस्यान्तिमं खरूपं यथावदेव स्थायि भवेत् ।
- (उ) एकं तत्वं अन्यतत्वस्य गुणैः खभावेनच सर्वथा भिन्नमेव भवेत्।
- (ऊ) सृष्टिरचनायां द्वित्रिचतुराणि तत्वानि परस्परं मिछितानि

भवेयुः, तदा तेषां सम्मेळनं निश्चितानुपातेनैव भवति, तेषु न्यूनत्वं अधिकत्वं केनापि कर्तुं न शक्यं भवति । एतादृश-लक्षणलक्षितं तत्विमिति आधुनिकशास्त्रेषु कथ्यते। अस्माकं आकाशादिपंचतत्वेषु 'उक्ततत्वलक्षणेषु नैवैकमपि संगच्छते । पृथिव्यां न्यूनेभ्यो न्यूनानि द्वादशतत्वानि उपलब्धानि वर्तन्ते । जले उदजनऊष्मजननामकतत्वद्वयमुपलभ्यते । वायुरपि समीरनऊष्मज्नतत्बद्वयसंभूतो दश्यते। अग्नेस्तु तात्विकं अस्तित्वं नैव सिध्यति, परं शक्तेविवधितं स्वरूपमेवामिरिति-उच्यते । आकाशतत्वं तु एतादृशं आधुनिकतत्वविचिकित्सा-प्रसंगे लिजतं भूत्वा जून्यत्वं गतं वर्तते नैव तस्यास्तित्वमुप-लभ्यते । सोयं पंचमहाभूतानां तत्ववादस्तु केवलं तर्कतुरंग-माधिष्ठित एव इतस्ततो दशसु दिक्षु मनोवेगेन भ्रमति न वास्तवतामधिरोहति। पृष्ठ २२॥ अस्मिन् समये सृष्ट्यां द्विनवति तत्वानि आधुनिकतत्वविद्भिरिधग्तानि । यानि नक-दापि छेद्यानि वा भेद्यानि भवन्ति, नैतानि केनापि स्त्रीयभारा-यतनघनत्वरूपधर्मचतुष्टयेषु न्यूनाधिकत्वं कर्तुं भवन्ति सर्वाण्यपि परस्परतो भिन्नभिन्नगुणस्वभावप्रभावयुतानि विद्यंते । एतेषां संयोगव्यापारस्तु शास्त्रसिद्ध एव निश्चितो दृश्यते । तेषां पारस्परिकं सम्मेळनं नियताणुसंख्यया नियतानु-पातेनैव भवति । नैते कदापि स्वयं नियमात् प्रभइयन्ति । अस्माकं पंचभूततत्वानां तु नैतादशी कापि स्थितिर्विद्यते अतस्ते तर्कानिमिताः कल्पनारूढा एव । पृष्ठ २३ ॥ अतः पंचभूतानि तु नैव तत्वानि अपि तु विकारा एव।

५ पंचतन्मात्राणां विकाराः पंचभूतानि तु नैव तत्वानि इस्येवं ये भाषन्ते तैस्तावत् पंचतन्मात्राणां स्वरूपं दर्शयितव्यं, न हि पंचतन्मात्राणां स्वरूपं शारीरं उपलक्ष्यते, अतः शरीरं विना कथं तेषु गुणानां अस्तित्वं सिद्धं भवति । " गुणाः शरीरे गुणिनां निर्दिष्टाश्चिन्हमेव च " इति न्यायेन शरीरं गुणिनं विना पंचतन्मात्राणां तेषु गुणाधिष्ठानत्वं कथं संभाव्यते । अत उच्यते कल्पनैवेयं तावत् पंचतन्मात्रत्वं नाम । पृष्ठ ४०।

६ दोषा धातवो मलाश्चेति मूलपदार्थाः शरीरस्येति शास्त्रकथनस्य आधुनिकप्रयोगविज्ञानेन विचारे कृते नैव सत्यत्वं प्रतीयते ।

७ भारतीया दार्शनिका आत्मानामकं पदार्थं निस्नं, अविनाशिनं, अक्षयं, निर्विकारं, विभुं, व्यापकं, सनातनं, मन्यंते, तथा च मृष्ट्यां आत्मानं विना चेतनत्वं नैव प्रतिभातीति च वदन्ति । सर्जावत्वं निर्जीवत्वं च आत्मक्षकत्या-मेव निर्भरं विद्यते, अतएव 'खादयश्चेतनाषष्ठाधातवः पुरुषः स्मृतः' इत्युक्तम् । पंचतत्वं तु जडस्वरूपं चेतनारहितं विद्यते । अस्मिन् जडद्रव्यं चेतनाया-आत्मनो यदा प्रवेशो भवति तदैव तद्द्रव्यं सर्जीवमिति संद्यायते । प्राणिनां शुक्रशोणिते गर्भाधानकारणद्रव्येऽपि निर्जीव एव शास्त्रकारैः प्रोक्ते । आत्मा तु "स गर्भाशयमनुप्रविश्य शुक्रशोणिताभ्यां संयोगमेत्य गर्भत्वेन जनयत्यात्मना-त्मानमात्मसंज्ञाहि गर्भे" । चरक शारीर अ. ३ ।

एवं प्रकारेण दार्शनिकैर्निर्जावतत्वेभ्यो जीवनसत्ताया भिन्नत्वं समामन्य, तैः सह संयोगन सजीवसंसारस्य रचना प्रदर्शिता वर्तते। परन्तु अस्मिन्काले विज्ञानविदो जीवस्य वा आत्मनः शरीरे बाह्यतः प्रवेशं नैव सल्यत्वेन मन्यन्ते। नैव वा प्तादशस्याऽत्मनः प्रवेशस्याऽवश्यकतापि प्रतीयते। अपितु आधुनिक-विज्ञानविदः प्रयोगैः प्रात्यक्षिकैः शरीरस्यात्मनश्च समवायसंबंधो नित्य एव प्रत्यहं पश्यन्ति यः संबंधः शरीराह्वहिर्वा पृथक्कर्तुं न शक्यः। अतो जीवनश्चाक्तिर्वा जीवनद्रव्यं केषांचन, द्रव्याणां विशेषसंयोगस्य परिणाम एवाऽद्यतने प्रयोगपरिपूते काले सम्मानितो भवति। अस्य जीवद्रव्यस्य प्रारंभावस्थातु अत्यन्तस्वस्मखरूपेण भवति, या चक्षुर्प्राह्या कदापि नैव भवति। इमे जीवकणा अत्यन्तस्वस्वरूपधारिणे विद्यन्ते। एतेषामेव जीवकणानां परमस्वस्माणां मेलमेनैव अस्मिन् जगित स्थूलात् स्थूलतरं शरीरं प्रादुर्भूतं।

मानुषं शरीरमपि एतेषामनन्तानां जीवकणानां समूह एव । अतो गर्भकाळे शुक्रशोणितसंयोगे शुक्रशोणितयोविंद्यमानानां स्वस्थाविश्वितानां सजीवजीवा-णूनां संयोगो भवति । येन मेळनेन गर्भिश्वितिभवति । "अतो मातृतः पितृतो आत्मतः सात्म्यतो रसतस्यवत इत्येभ्यो भावेभ्यः समुदितेभ्यो गर्भः संभवति"। एतच्चरकवचनमपि सर्वं असिद्धमेव । पृष्ठ ४५ ॥

सृष्टी केवलं पदार्थश्च राक्तिश्चेति द्वावेवोपलभ्येते । राक्तिस्तु पदार्था-श्रयिणी विद्यते । पदार्थास्तु द्विनवति, सृष्ट्यां विद्यन्ते । पदार्थेषु विशेषविधि-द्वारा राक्तिर्निर्मिता भवति । एवमेव केषामि तत्वानां विशेषण रासायनिक-संघटनेन जीवनाम्नी राक्तिः प्रादुर्भवति । वस्तुतस्तु जीवनमि भौतिकघटना-रूपमेव विद्यते । पृष्ठ ४७ ॥

१ पोषणं, २ अभिवृद्धिः, ३ गतिमत्वं, ४ संतानजननं इत्येते सर्जावत्वावच्छेदका विशेषा विद्यन्ते । इमे विशेषास्तु सर्वस्मिन्नपि सर्जावशारी-रेषु समाना एव दश्यन्ते । सूक्ष्मशारीररचना तु सर्वेषां वृक्षकीटपशुमानुषादीनां समानेव । शुक्रं शोणितमपि एतादशजीवकणसंपन्नं विद्यते । ये जीवकणाः पोषणादिविशेषत्वधारका विद्यन्ते । अतः शुक्रशोणितयोरेव सर्जावत्वे विद्यमाने अन्यस्य कस्यापि शरीराद्वहिर्वर्तमानस्यात्मनः सर्जावत्वहेतोः शरीरप्रवेशस्या-वश्यकतापि नैव प्रतिभाति " अतः गर्भस्तु खळु आंतरिक्षवाय्विष्रतोयभूमि-विकारश्वेतनाधिष्ठानभूतः " इत्येतदपि नैवावश्यकम् । पृष्ठ ५४ ॥

अत ऊर्ध्वं दोषाणां शरीरे योऽभिसंबंध आयुर्वेदेनोक्तः स कथं अयुक्तस्तदिप प्रयोगवादसाहाय्येन पश्यामः । तत्र वातस्य " रौक्ष्यं, लाघवं, वैश्वां, शैलं, गितः, अमूर्तत्वं चेति वायोः आत्मरूपाणि " । पित्तस्यः— " औष्ण्यं, तैक्ष्ण्यं, लाघवं, अनितस्नेहो, वर्णश्च शुक्कारुणवज्यों, गंधश्च विस्रो, रसौं च कटुकाम्लो, इति पित्तस्य आत्मरूपाणि"। श्लेष्मणः-- सेहशै-त्यशौक्रयगौरवमाधुर्यमान्द्यानि श्लेष्मण आत्मरुपाणि"। तत्र के इमे वातपित्त-श्लेष्मण इति नैव ज्ञायते । तथा " बस्तिः, पुरीषाधानं, कटिः सिक्थिनी

पादावस्थानि, वातस्थानानि । खेदो, रसो, लसीका, रुधिरमामाशयश्च, पित्त-स्थानानि । उरः, शिरो ग्रीवा, पर्वाण्यामाशयो, मेदश्च, श्लेष्मणः स्थानानि"। तथा हृदयादिस्थानानि प्राणादिपंचप्रकाराणां वायूनां कथितानि विद्यन्ते । अस्मिन् वर्णने प्राणव्यानयोस्स्थानं हृदयमुक्तं । तथा अपानोऽदानयोर्नाभ्युरु-स्थाने दर्शिते । एकैकस्मिस्थाने द्विप्रकारस्य वायोर्वसातिरेकेकोषे खङ्गद्वयवन्नि-र्दिष्टा । सा तथैवायुक्ता अचरितार्था च । "किद्दान्मूत्रस्वेदपुरीषवातश्चेष्माणः" इत्याद्यक्तं तदिप सर्वथा ' आत्मावै जायते पुत्रः ' इत्यादिवदेव दश्यते, नैव तस्य संगतिरात्रेयेणोक्ता । तथैव पंचमहाभूतेम्य एव शारीरा वातिपत्त-कफा उत्पन्नाः । वायुतत्वात् वातदोषः, अग्नितत्वात् पित्तदोषः यत्र कुत्रापि जलतत्वतोऽपि पित्तस्योत्पत्तिरुक्ता दृश्यते तत्कथं संगुच्छते ? जलतत्वं अग्नि-तत्वतो सर्वथा विपरीतं, अतो अन्युद्भवं पित्तं उष्णं, तथैव जलाद्भवं पित्तं शीतलं भाव्यं, परं पित्तं उष्णमेवोक्तं इति वैसदृश्यं दृश्यते । जलतत्वतः श्लेष्मापि संभूतः । इति भूतत्रयात् त्रयाणां दोषाणां उत्पत्तिर्गदिता वर्तते । परं आका-शपृथ्वीभूताभ्यां नैव करयापि दे।षस्योत्पत्तिरुक्ता । किमर्थं ते भूते निपुत्रिके कृते शास्त्रकारैरिति विचारणीयम्। उपरि यानि दोषाणां आत्मरूपाणि गदितानि तान्येव तेषां गुणाः अन्यत्र कथिताः । अतो द्रव्यं गुणाश्च किं एकमेव वस्त वर्तते ? सर्वथा शास्त्राविरुद्धं असंगतं चैतत्। शास्त्रेण तु " द्रव्य-कर्मभिन्नत्वे सित सामान्यवान् गुणः " (वैशेषिकदर्शनं) इत्युक्तम् । तथा वाताग्रिजलानां वातिपत्तिश्लेष्माणः परिणामितरूपा उत्पद्यन्ते भिन्नस्वरूपाः तदा न हि वायुरूपो वातदोषः, पित्तं अग्निरूपं, कपश्च जलगुणः। तदा कथं तेषां वाय्वाग्निजलानां त एव गुणाः भिन्नरूपेषु वातिपत्तकफदोषेषु संक्रामयेयुः । यदि कारणस्थितगुणाः कार्येपि संगता भवेयुस्तदा सृष्ट्यां गुण-वैभिन्न्यं कथं दरयते वा ज्ञायते ? गुर्वाद्या ये विंशतिर्गुणाः शरीरस्यायुर्वेदे उक्तास्ते अस्मन्मतेन नैव गुणा भवन्ति । यथा गुरुता, छघुता, च गुणा उक्तास्तथा शीतता, उष्णता, च । न हि एतद्दंद्रं पार्थक्येन प्रहीतं योग्यं, यथा गुरुताया अभाव एव लघुता, शीतताया अभाव एव उष्णता, अत्र गुणपार्थक्यं निरर्थकम् ।

तथा वायदोषो रूक्षः शीतलश्च उक्तः । सांप्रतं विज्ञानप्रयोगेण वायौ अन्यद्रव्यस्य संयोगेन उष्णता रूक्षता तथा शीतलता संक्रामितुं शक्यते, अती वायोर्न हि इमे आत्मरूपा गुणाः। तथा पित्तमपि स्निग्धं, उष्णं, तीक्ष्णं, लघु, इत्यादि गुणयुक्तं आत्मखरूपमपि । अतो यदात्मखरूपं तत्कथं गुणरूपं भवेत् ? गुणास्तु द्रव्यात्सर्वथा भिन्ना एव । तथा पित्तं स्नेहगुणयुक्तं उक्तं तत्तु नैव युक्तं, नैव पित्तं स्नेहगुणयुक्तं, अपि तु स्निग्धपदार्थपाचकं वर्तते। यदेव स्निग्धं भवेत् तत्कथं स्नेहपाचकं स्यात् ? पित्तं तु यदा स्निग्धपदार्थमिश्रितं भवति तदा तस्मिन् क्षारीयता प्रतीयते न हि माधुर्यं फेनभावश्च । तथा पित्तस्य उष्णता गुणः प्रोक्तः सोपि नैव युक्तः । तथा पित्तेन शरीराष्णताऽभिरक्षिता भवती-त्युक्तं तदिप नैव संगतं। तथा पित्तं छघु इति कथितं तदिप अयुक्तमेव। तथा श्लेष्मणो यान्यात्मरूपाण्युक्तानि तान्येव गुर्वादिविंशतिद्रव्येषु समाविष्टानि विद्यन्ते, तथा कथं तानि आत्मरूपाणि; कथं नैव ते गुणाः ?। अतः प्रथमिदं वेदितव्यं यत् त्रिदोषाः शरीरस्य कारणमिति नैव सिद्धं भवति । द्वितीयं तु त्रिदोषाणां ये आत्मरूपत्वेन पठितास्त एव अन्यत्र गुणा उक्ताः तथा त एव प्रकुपितलक्षणान्युक्तानि । (पृष्ट ५५-७७) द्रवता, सूक्ष्मता, लघुता, वायोः, द्रवता, कटुता, अम्छता पित्तस्य, स्निग्धता, ग्रुक्कता, मधुरता, पिच्छिलता कफस्य, खरूपबोधका विद्यन्ते। यदि च एते गुणास्तदा कान्येतेषां प्रकोपलक्षणानि ? यदि सूक्ष्मलब्बादीनां यदा प्रकोपो भवति, किं तदा शरीरं सूक्ष्मं छघु च भवति ? उत्पतनकर्मकारी भवति ?। यदा पित्तस्य द्रवाम्छ-कटुकादीनां प्रकोपो भवति तदा शरीरं जलमयं भवति १ वा अम्लं कटु च भवति १ एवमेव श्लेष्मणो विज्ञेयम् । आधुनिकसमये उक्तानां दोषाणां शरीरे कोऽपि संबंधो नैव लभ्यते । तथा न हि एते देहाः त्रिदोषजनिताः । शास्त्र बस्तिः, पुरीषाधानं, कटिः, सिन्थिनी, पादावस्थीनि वातस्थानानि इति यदुक्तं, एतेषुस्थानेषु न किमपि स्थानं विद्यते यस्मिन् वातो ।निवसति, नवा वात-निवासयोग्यमतेषु एकमपि स्थानम् । पृष्ठ ८३ ॥

पित्तविषयेपि एतदेवयत् यकृति विद्यमानायाः पेश्याः सकाशानिर्ग-•छन् यः पाचकरसः, यस्य रचना यकृदवयवरूपा एव विद्यते, तदेवपित्तं, नैवा- न्यत्पाचकं, रंजकं, भ्राजकं, आलोचकं, साधकं, पित्तं । बस्तुतस्तु यद्द्रव्यं शरीरे मूलत एव नैव विद्यते तत्कथं दृष्टं भवेत् ?। पृष्ठ ८९ ॥

श्रेष्मणः स्थानं हृदयं, प्राणवायोः स्थानं हृदयं, साधकपित्तस्य स्थानमि हृदयं, किं हृदयं एतादृशं धर्मनिवासस्थानम् (धर्मशाला) 'नूरमहृलसरायम् 'विद्यते । यस्मिन्नेकेकस्यां हृदयप्रासादकोष्ठ्यां वा एकस्मिन्नेव हृदयभवने सममेव वसन्ति श्यिद एककालमेकत्र निवासिन एते दोषा भवेयुस्तदा हृदयावयवस्योपिर किमत्यिहितमापतिष्यिति शा श्रेष्मणस्तु स्वस्थमानवशरीरे नेविकमिपि किचिन्मनागिप चिन्हं दृश्यते । अस्वस्थदशायां तु नासामुखगुद्यान्यादिमार्गेभ्यः स्रवन्तं कमिप पदार्थं पश्येयुर्यं मूढाः कफ इति वदेयुः । श्रेष्मणो यः स्रावो वहमानो दृश्यते सतु शरीरस्थायाः श्रेष्मकलाया विकृतिस्यको विद्यते । न शरीरकारणभूतः कोपि कफरूपः पदार्थः । अतः शरीरांगेषु न कफस्य नवा पित्तस्य किमिपि स्थानं विद्यते । पृष्ठ ९४ ॥

तथैव रोगा अपि दोषसंभूता इति यदायुर्वेदे प्रोक्तं तदपि सर्वथा असंगतमेव, न हि रोगाणां दोषैस्सह कोपि संबंधः । पृष्ठ १०४ ॥

द्रव्याणां शीतोष्णरुक्षश्रक्षणादिभिन्ना गुणाः भिन्नाः प्रभावाश्च भिन्नाः प्रकृतयो विद्येते । प्रतिद्रव्ये प्रकृतिश्च गुणश्चेति विद्येते द्वे शक्ती, प्रभावो गुणेन्तर्भूतो भवति । अतः प्रकृत्याः स्थाने वातिपत्तकपानां निवेशनं कृत्वा द्रव्यप्रकृत्याः स्वरूपमेव विकृतं कृतं । अस्माभिस्तु द्रव्यप्रकृत्याः शरीरप्रकृतौ विकृतिर्भवतीति सस्यत्वेन ज्ञातव्यम् । शरीरापेक्षया न्थूनोष्णतां शीतिमिति अधि-कोष्णतां ऊष्णमिस्यभिधातव्यम् न वातिपत्तकपा इति मन्तव्यम् । पृष्ठ १०७॥

षड्रसाः—पंचमहाभूतोत्पनाश्चिदोषाः शास्त्रकारैः प्रोक्ताः। तथा षड्रसा अपि पंचमहाभूतोत्पना इति प्रोक्ताः। तथा यैर्थेरसैर्वात पित्तकपानां अकोपः शमश्च भवति तदपि शास्त्रकारैर्दिशितम्। तथा षड्रसा अपि परस्पर-विरुद्धगुणाः सन्तः परस्परशामकाः कथिताः। तथा रसज्ञानं जिव्हास्पर्श

एव 'रसो निपाते द्रव्याणाम् ' 'इत्यनेन उक्तम्। परं केवलं रसास्वाद-ज्ञानं जिव्हानिपातेनैव रसस्य न भवति, अपि तु रसयुक्तद्रव्यं मुखे प्रक्षिप्तं यदा मुखद्रवेण संयुक्तं वा संमिश्रं भवति, तदैव रसास्वादज्ञानं जायते। न केवलं रुक्षं द्रव्यं सुवर्णरजतादि मुखे निपतितेऽपि नैव स्वद्यीत। अतो 'रसो निपाते द्रव्याणां ' इदमिष परास्तमेव। पृष्ठ १२७॥

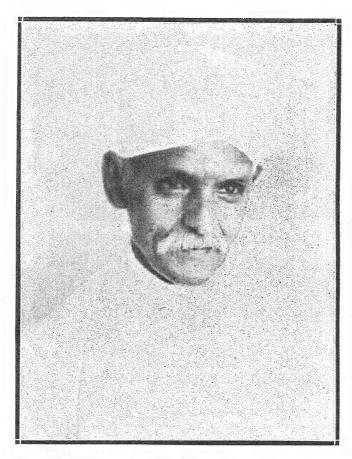
शास्त्रकारैरू ध्वं षड्रसानां अस्तित्वं स्वीकृतं । परंतु मनोविज्ञान-पंडितेस्तु मधुराम्ळळवणकटुकाश्चत्वार एव रसा विद्यन्ते इति निर्धारितम् । कषायितक्तो रसो न वास्तवत्वेन । तथा द्रव्याणां ये विश्वतिर्गुणा उक्ताः तेऽपि वास्तवत्वेन पदार्थानां मौतिका गुणा एव, न ते पदार्थानां रास्नायिनका-गुणाः । तथा तेषां शीतोष्णादि, न वीर्यं, अपि तु गुणा एव । तथेव द्रव्याणां, रसानां, वा गुणानां, त्रिदोषेः सह यः संबंधः शास्त्रकारेः प्रोक्तः, स सर्वथा असिद्ध एव प्रतिभाति त्रिदोषाणामसिद्धत्वात् । प्रकृतिरिप वात्रापित्तक-फेर्युक्ता भवतीति न सत्यं, अतः पूर्वं शास्त्रकारैर्यस्त्रिदोषवादः स्वीकृतः, स तु पूर्वस्मिन्समये साधनानाम्भावात् पर्याप्त आसीत्, अधुना तु त्रिदोषवादः सर्वथा असिद्धत्वात् अनुपयोगित्वादशास्त्रीयत्वाच सर्वथा त्युक्तं योग्य एव । २१६॥

एतावता त्रिदोषमीमांसानाम्नि पुस्तके खामीहरिशरणानन्दैः सर्वमिष पौरस्यं तत्वज्ञानं अज्ञानजित्पतिमिति कथितम् । १ भौतिकतत्वसंयोगोभ्दूतं चैतन्यं, तदन्यथा नैव कश्चिदन्यश्चेतन्यंकदो ईश्वरः, २ न पुनर्भवः, ३ नवा भूतानि पृथिव्यादिपंचसंज्ञकानि, ४ नैवदं दृश्यमानं भौतिकं पंचभूतोत्पन्नं, ५ नैव त्रिदोषा, वातिपत्तकानाम, न वा ते भूतोत्पन्नाः, ६ नैव मधुरादिरसाः पर्, ७ आयुर्वेदोपवर्णिता रसविपाकवीर्यप्रभावा नैव तथा, । इदं सर्वमिष अज्ञानकालप्रोक्तं साधनहीनं ऋषिजित्पतं, सर्वथा असत्कलपनामयं आधुनिकप्रत्यक्षविज्ञानप्रयोगासिद्धमप्रयोजकमनर्थावहं सर्वथा त्याज्यमेविति खामिकृतग्रंथतात्पर्यम् ।

पौरस्यानां सर्वदार्शनिकः सिद्धान्तः पंचमहाभूतोत्पत्तिमत् सर्व

जगिदिति । न तत्र एकोऽपि दार्शनिको व्यभिचरित । अस्तुनाम आस्तिको नास्तिको वा । तथेव चैतन्यं तु नैव भूतसंयोगजानितं, किंतु भूतमोतिकेभ्यस्तथातत्संयोगेभ्यः पृथंगेव सनातनमनिर्वचनीयं स्वयंसिद्धं किमि वस्तु इति चार्वाकदर्शनातिरिक्तान्यदार्शनिकसिद्धान्ते वर्तते । त्रिदोषा अपि सेन्द्रियसृष्ट्युत्पादने चैतन्यसंयोगसंयुक्तानां पंचमहाभूतानां निरिद्रियाणां अचेतना चेतनासंयोगजः कोऽपि मूलभूतः सोन्द्रियः सचेतनो विपरिणाम इति आयुर्वेदीयं मतम्। अतस्खामिमहाभागजित्पतं सर्वदार्शनिकतत्वोच्छे-दकमिति सर्वेऽपि भारतीया वैद्या दार्शनिकाश्च तत्प्रवंधखंडने बद्धादरा बभूवुः।

अस्माभिरपि निमित्तमेतिदिति पुरस्कृत्य वाराणस्यां एका अपूर्वा पंचमहाभूतत्रिदोषचर्चापरिषत्समारब्धा ? प्रथममेकं स्वागतमडळं स्थापितम्, यस्य प्रधानमंत्रिणो मान्या विद्वद्दरेण्या जादवजी त्रिकमजी आचार्याः संजाताः । उपमंत्रिणस्तु आयुर्वेदाचार्याः सांख्यन्यायन्याकरणतीर्था दिल्ली आयुर्वेदयुनानीतिन्वीविद्यालयाध्यापकाः प्रथितनामधेया उपेन्द्रनाथदासास्तथा ळवपुरस्थदयानन्दायुर्वेदिकविद्यालयप्रमुखाः सुरेन्द्रमोहन बी. ए., तथा एकोऽहमपि एते नियुक्ताः । प्रथमं श्रीमद्भिजीदवजीमहाभागैर्वाराणस्यां गमनं मयासह कृत्वा स्वागतसभापतिपदार्थे परममान्या विश्वभूषणा महा-मनसः पंडित मदनमोहन मालवीयाः संप्रार्थिताः । परिषद्थे हिंदुविश्वविद्या-ल्यानं स्थानमपि । तैस्तु सानन्दोल्हासं द्रयमपि संप्रश्रितम् । सजातोत्साहभैर-र्जादवर्जामहाभागैर्वाराणशीस्था दार्शनिकमूर्धन्यास्तथा आयुर्वेदपारदृश्याना भिषक्श्रेष्ठाः, प्रतीच्यपंडितप्रकांडा अपि परिषत्कार्यसिध्यर्थं सर्वथा सहाय्यदान सादरं अभ्यर्थिता बभूवुः। वाराणशीस्थैर्विद्वत्प्रकांडमूर्धन्यैः सर्वेरिप परिषत्कार्यं स्वीयमिति मन्वानैस्साश्वमासिता आचार्या अभूवन् । ततश्च मोहमय्यां समागत्य पत्रव्यवहारेण आभारतप्रथितनामधेयास्तत्तत्प्रांतालंकृतयो दार्शनिका, भिषग्वराः प्रतीच्यपंडिता अपि परिषत्कार्यार्थं संप्रार्थिताः समाहूताश्च । तथैव परिषदि चर्चायोग्या विषया अपि प्रथममेव सर्वभारतश्रेष्ठपंडितवरेण्य-मतानुकृला एव निर्धारिताः । तथैव पंचमहाभूतपरिषदः सभापतयः



स्वागत सभापति पं. मदन मोहन मालवीय.



परमविद्वांसस्तपोनिष्ठा वाराणसीहिंदुविश्वविद्यालयस्थप्राच्यविद्यालयप्रधानाधि-पतयो बृद्धाः पंडितप्रकांडाः पंचाननतर्करता महता प्रयासभरण निर्धारितास्तथा त्रिदोषचर्चापरिषद्ध्यक्षा महामहोपाध्याया भारतभिषङमूर्धन्या गणनाथसेन-सरस्वतीमहाभागाश्च । तथैव उभयोरपि परिषदोर्भध्यस्था निरीक्षका अपि भारतभृषणभृता पंडितास्तथा प्रतीच्यभौतिकविद्यापारदस्वानो, मान्याश्च विद्वत्श्रेष्ठा भिषजस्तथा दक्षतराश्च प्रवीणा नियोजिताः। परिषिचित्तं आभारतीयाः प्रथितविद्यावयश्वरिताः पांडित्येन, कीर्स्या, च दुदुंभितदिकालाः प्रायशः सर्वेऽपि भिषक्श्रेष्ठाः पंडितगरीयांसो दार्शनिकास्तथा भौतिकविद्या विशारदा अपि निमंत्रिता अभवन् । परिषत्कालोऽपि १९३५ तमांग्लशाकीय-नोव्हेंबरमासस्य द्वितीय (२) तारिकां आरम्य अष्टम (८) तारिकापर्यंतं सुनिश्चितः कृत आसीत् । तत्सर्वमि पुरस्तात् सविस्तरमुपवर्ण्यते । इयं च परिषद् पौर्वात्यप्रति यज्ञानविज्ञानवादिनां सृष्ट्युत्पादनोपादानकारणभूतानां तत्तदभिज्ञातशास्त्रीयतत्वानां समन्वयार्थमेव यदि निमंत्रिताऽभवत् तदा पौर्वास्यज्ञानविज्ञानवादिभ्यः प्रतीच्यभै।तिकशास्त्रप्रतिपादितसृष्ट्युत्पादने।पादा-नकारणीभूततत्वानां प्रक्रियाज्ञानमावश्यकिमिति मनसि विचार्य प्रथमं आधु-निकपरमाणुवादनामिका कापि व्हस्वा पुस्तिका " आयुर्वेदाचार्य दत्तात्रेय अनंत कुलकर्णी ९म्. एस्. सी. प्रोफेसर आयुर्वेदिक कॉलेज हिन्दू विश्व-विद्यालय काशी " इत्येतेभ्यः संपाद्य प्रकाशिता । सर्वेभ्यः प्राच्यपंडितवरेभ्यः परिषत्कालात्पृर्वमेवोपायनी कृता।

तस्यां अधोनिर्दिष्टाः विषयाः समागता वर्तन्ते । आधुनिकपरमाणुवादतात्पर्यम् ।

अस्यां सृष्टौ ये असंख्यास्सजीवनिर्जीवैपदार्थास्सन्ति ते सर्वेऽपि द्विनवितम् छतत्वसंयोगेनैव समुत्पना इति वैज्ञानिकैराधुनिकैर्निश्चत्य प्रतिपादि-तमस्ति । समस्ताः पदार्था मृष्ठतत्वे रासायनिकयौगिकैस्तथा भौतिकामिश्र- णेन त्रिधा विभक्ता दृश्यंते। तन्मूलतत्वं भवति यस्य पदार्थस्यांतिमविश्लेषणेऽषि अंतिमे अंशे तएव परमाणवो विद्यन्ते ये च स्थूल्रूपे तस्मिन् पदार्थे दृश्यन्ते यथा सुवर्णताम्रपारदगंधकादिपदार्थाः । अत्तर्व एते मूलतत्वानीत्युच्यन्ते । रासायनिकयौगिकाः पदार्थास्ते उच्यन्ते ये पूर्वोक्तेर्मूलतत्वैरेकाधिकपरमाणुसंयुक्तास्सन्तो उत्पद्यन्ते, तथा येषु अवयवीभूतानि मूलतत्वानि अविच्लिनियमप्रमाणनिष्पन्नानि भवन्ति । मौतिकं मिश्रणं तिकरुच्यते यस्मिन् पदार्थे नेव रासायनिकसंयोगो, नेव वा तदीयावयवेषु विशिष्टा निष्पत्तिर्भवति इत्यादि ।

यथा वालुकारार्करयोः केनापि प्रमाणेन मिश्रीकृतयोर्मिश्रणमेव भवति न रासायनयोगिकं । परं रासायनिकयोगिकं तु सर्वथा भिन्नमेव। रासायनिक-यौगिकपदार्थनिष्पत्तौ अनुकूलाया परिस्थित्या आवश्यकता विद्यते । अस्मिन्पदार्थे अवयवेषु विशिष्टा निष्पत्तिर्भवति ।

जाते च संयोगे संयुक्तावयवानां पार्थक्यं वालुकाशकरावत् सारतयेऽव कर्तुं नैव शक्यते । तथेव संयुक्तावयवेषु स्वकीयमूलगुणधर्मनाशो मूल्वाऽन्य-गुणधर्माणां समुद्भृतिः संयोगेन उत्पन्ना भवति । यथा सुधाश्मनस्तोयेन चूर्णरूपभवनं भवति, प्राप्तचूर्णरूपस्य तस्य पुनर्पि सुधाश्मनस्तोयेन चूर्णरूपभवनं भवति, प्राप्तचूर्णरूपस्य तस्य पुनर्रपि सुधाश्मनस्त्राप्तिः सारल्येन नैव शक्यते, संपद्यते च सुधाश्मनचूर्णस्य गुणपार्थक्यम् । इयं सुधाश्मनचूर्णरूपापादनिक्रया रासायनिक्रियेति निरुच्यते । कापि रासा-यनिका क्रिया तापेन, कापि पूर्वं कृतसंयोगेन, पश्चात्तापेन भवति । यथा-पूर्वं रसगंधककज्ञिलसंयोगोदेव पश्चादत्तत्तापाद् रसिसंदूरिनष्पत्तः । एतेनदं निष्पन्नं भवति यद्वासायनिकसंयोगे पदार्थानां एक्रीकरणस्यावश्यकता विद्यते हित्यं भवति । दर्रते असिङ) द्रव्ययोः शुष्कयोः कृतमिश्रणेन नैव किमिपि निष्यनं भवति । परंतु तिस्मिन् मिश्रणेन कृतजलाभियोगेन सोडाक्रपं चिचा-म्लस्याग्लतं नष्टं भूत्वा भिन्नगुणधर्मयुतस्य पदार्थस्य पात्रे निष्पत्तिर्जायते ।

तथा कश्चन वायुः (ग्याँस) वायुमंडले समाविष्टो भवति। भवतु। काऽि रासायिनका क्रिया सूर्यप्रकारोन, काऽि विद्युत्साहाय्येन संपन्ना भवति। कदा कदा इयं रासायिनका क्रिया केवलेनाऽघातेनाि निष्पन्ना भवति। यथा दारुगोलकस्य यंत्रात् (बंदुक वा तोफ) विनिर्गतस्य प्रदत्तवेगेनोत्पन्नाघातस्य अग्निक्तपतां प्राप्तस्य पश्चात् प्राप्तवायुरूपस्य (ग्याँस) वेगेन निर्गनमं (केवलेनाघातेनैव संपन्नमेतद्भवति)। एतेन रासायिनकयौगिकपदार्थानां कषामि अनुकूलायां परिस्थितौ संयोगो भवतीति न वेद्यं, किंतु एतेषु पदार्थेषु पारस्परिकायाः प्रीत्या अपि विद्यते आवश्यकता। [क्रेमिकल एफिनिटी] सा यदि नेव विद्यमाना भवेत्तदा त्रिकालेऽपि एतेषां संयोगो नैव कर्तुं राक्यते। यदि च सा प्रीतिः सुप्तावस्थायां स्थिता स्यात्तदा तस्यां परिस्थितिपरावर्तनेन संपाद्य जागक्कतां पश्चाद्रासायिनका क्रिया कर्तुं शक्यते। प्रीत्यामावे नेव भवति पारस्परिका रासायिनका क्रिया।

अन्यदिष, अस्मिन् रासायिनकसंयोगे इदं विशेषेणावधार्यम् । यत् रासानिकसंयोगे पदार्थेषु भारः, आयतनं, आकारमानं, तौळं च नियतमेव पारस्परिकं समुपळभ्यते । यथा जळे हैड्रोजनः भागद्वयात्मकः आविसजनः षोडशभागात्मक एव विद्यमानो भवेत् । आयतनेन, आकारमानेन च जळे भागद्वयात्मको हैड्रोजनग्यांसः । एकभागात्मकश्च ॲक्सिजननामको ग्यांसो विद्यमानो भवित । जळे विश्लेषिते सित तिस्मिन् हैड्रोजन ॲक्सिजन नामवायू निष्पचेते । तथा निष्पत्रस्याविसजननामकवायोः आकारमानं एकमिति सम्मानितं चेत्, संप्राप्तस्य हैड्रोजननामकवायोः आकारमानं द्विगुणं भवेत् । तथा संप्राप्तस्य हैड्रोजननामकवायोः आकारमानं द्विगुणं भवेत् । तथा संप्राप्तस्य हैड्रोजननामकवायोः आकारमानं द्विगुणं भवेत् । तथा संप्राप्तस्य हैड्रोजननामकवायोः आकारमानं द्विगुणं भवेत् । अकिसजनतौळमेछगुणं भवेत् । आयतनतौळयोरनुपति स चायं भेदः । हैड्रोजननामकवायोरपेक्षया ॲक्सिजननामको वायुः षोडशगुणात्मको विद्यते इति । अनयोर्वाय्वार्यदि पुनरिप रासायिनके संयोगे कृते अष्टादशमागात्मकं जळं निष्पन्नं भवेत् । एतन्मानापेक्षया भिन्नपरिमाणेन कृतसंयोगाभ्यां एताभ्यां वायुभ्यां निश्चितप्रमाणोत्पत्तिमत् जळं निष्पन्नं भूत्वा यस्य वायोः परिमाणाद-

धिकामात्रा उर्वरिता भवेत् सा तथैव स्थिता भवेत्। तथा हैड्रोजनाविस-जननामको हो वाय् (ग्यांस) स्वकीयान् मूळभूतान् ज्वालाग्राहीज्वलन-पोषकादिगुणान्, तथा एतयोभीतिकमिश्रणोत्पन्नं स्फोटकगुणं च रासायनिक-संयोगे परित्यज्य जळरूपोद्भवनेन ज्वलनाशकगुणान्तराधानं स्वीकुरुतः, तथैव प्राप्तज्ञरूपं पुनरिष रासायनिकपृथक् क्रियां विना नैव परित्यजतः। तथा प्राप्तपृथक् करणावस्थायां इमे रासायनिकयौगिकाः अवयवीभूततत्वानां गुणधर्मान् नैव प्रत्यक्षीकुर्वन्ति। उत रासानिकयौगिकौत्पन्नगुणान्नेव धारयन्ति। सर्वेषा-मेव रासायनिकयौगिकानां इयमेव स्थितिभविति। भौतिकिमिश्रणे तु अवयवीभूततत्वानां गुणाः प्रत्यक्षा भवन्ति।

अणु:--तथा यस्य द्रव्यस्य (रासायनिकयोगिकस्य) कमि छिन्नमंशं गृहीत्वा तस्य अंशांशीकरणेन या सूक्ष्मतमावस्था प्राप्यते, यस्यां विभाजितपदार्थस्य गुणधर्मास्समुपलब्धा भवन्ति । अतःपरं तस्य विभाजने कृते तद्गुणधर्म-नाशो भूत्वा अवयवीभृतमूलतत्वानां गुणधर्माः समुपलभ्यंते । एतादृशपदा-र्थाशं वैज्ञानिकाः अणु इति भाषन्ते ।

परमाणुः—तथा अस्यैव कल्पनागम्यस्य सूक्ष्माणोर्ज्ञापितमूलतत्वगुणस्य रासायनिकविधिना विच्छेदने संपादिते पदार्थगुणा नष्टा भवन्ति तथा संयुक्त-रूपिस्यतमूलतत्वानां निश्चितसंख्यास्थिता अंशा दृश्यंते, त एव परमाणव उच्यंते। एतेषां खरूपं सूक्ष्मदर्शकयंत्रेणापि नैव दृश्यते। नैते परमाणवो विच्छेत्तुं शक्या भवन्ति। अतएव परमाणवो मूलतत्वस्य अंतिमखरूपिमिति उच्यते। यस्मिन्खरूपे स्थिताः संतो रासायनिकित्रयासंयुक्ता भूत्वा यौगि-करूपधारणे ते सिद्धा भवन्ति। परमाण्विषये अन्यदिप अवधार्यमाणमेतद् वर्तते यत् परमाणवो न हि स्वतंत्रतयाऽस्तित्वं धारयन्ति। व्यक्तिरूपाः परमाणवो न हि दृष्टा भवन्ति। प्रत्युत्त ते संयुक्तावस्थावस्थिता यौगिकेषु अणुरूपत्वेनैव विद्यमाना वर्तते। शुद्धे मूलतत्वे यस्याणौ एकरूपा एकप्र-कारकाः परमाणव एव स्थिता भवेयुस्तिस्मन् एकाधिकपरमाणवस्संयुक्ताः

संतरतस्य तत्वस्य अणुत्वं निर्मापयन्ति । अतस्तत्वं वा योगिकं वा भवतु तस्यास्तित्वं अणुरूपत्वेनेव स्थितं भवति, न परमाणुरूपत्वेन । यथा अक्सिजन-तत्वस्य एकोऽणुस्तस्यैव परमाणुद्धितीयसंयुक्तो भवति । एवमेव सर्वाणि वायवीयमूळतत्वानि तेषां परमाणुद्धयेनैव संयुक्तानि भवन्ति । अतएव तानि तत्वानि परमाणुद्धितयसंयोगसंयुक्तनिदर्शकस्त्रेण स्त्रितानि भवन्ति ।

रासायनिकशास्त्रानुसारेण समस्तोऽयं विश्वसंसारो द्विनवतितत्वैः संभूतो वर्तते । एतेषां तत्वानां वारंवारं शास्त्रव्यवहारार्थं उचारणमावस्यकमेवापति ।

इमानि तत्वानि कुत्र लम्यंते १ शुद्धावस्थायां इमानि कथं लम्यंते १ एतेषां स्वाभाविकगुणधर्माः के वर्तन्ते १ तथेव एतेषां व्यावहारिकोपयोगः कथं भवित १ इतरैः भिन्नभिन्नतत्वैः संयुक्ताः संत एते अनेक प्रकारा योगिकाः कथं भवित १ तथेवेतेषां योगिकानां कथं वा भवित गुणधर्मः १ इत्येतेषां सर्वेषामेव विचाराविवरणं वारंवारं कर्तुं आवश्यकं भवित । अत एतेषां तत्वानां वारंवारं नामोछेखस्तथा एतैः प्रादुर्भूतानां योगिकानामिप वारंवारं नामोछेखः शास्त्रान्वस्यको भवित, अतो लेखने, वा भाषणे, सौकर्यार्थं भिन्नभिन्नानां तत्वानां वैज्ञानिकैर्नामसंकेतस्तेषां नामाद्याक्षरैः, तथा नामस्थितमहत्वपूर्णाक्षरैः कृतो-वर्तते । तथेव योगिकेषु प्रतिष्ठितमृत्वत्वानां अणुषु नियतपरमाणुसंख्याज्ञाप-कानि, उच्चारणे, लेखने, परिज्ञाने च सुलभानि, सूत्राण्यपि संख्यासूचकांकैः संकेताक्षराधस्ताद्दक्षिणभागैः लिखितैः प्रदर्शितानि भवित । तथा च अनेकानां पदार्थानां पृथकरणे कृते वैज्ञानिकैर्विज्ञातं—यत्, "केपि नियताः परमाणुसमूहाः अनेकेषु पदार्थस्त्रेषु अविच्छिनस्वरूपेणोपलब्धा भवंति । ते समूहा वैज्ञानिकैर्मुलक्ससंज्ञ्या संज्ञिताः । रसायनशास्त्रे एतादशा अनेक मूलका विद्यन्ते ये योगिकौत्यत्ती परमाणुसहशाः वर्तनं कुर्वन्ति अतोपि ते मृलका इत्युच्यन्ते ।

परमाणवस्तु अत्यन्तं सूक्ष्मास्तथा अविभाज्यांशा वर्तन्ते । तथा रासा-यनिकािक्रयायां एते एव व्यापारं कुर्वन्तीित प्रोक्तमेव । एते अत्यन्तं सूक्ष्मा यद्यपि तथापि जडपदार्थानामेव अंशा ह्येते इत्यतस्तेषां कोऽपि भार आव- रयक एव । अयं हि भार एतादशःसृक्ष्मो वर्तते यः कयापि तुल्या तुलितुं अशक्य एव । तथापि समस्ततत्वेषु हैं ड्रोजनतत्वं अत्यन्तं लघु वर्तते । अतोऽस्य किमप्यायतनं खीकृत्य यदि तोलनं कृतं तदा तत्समानपिस्थिल्यात्मकस्यान्यतत्वस्य तदेवाऽयतनं गृहीत्वा कृते तोलने तदन्यत्तत्वं हैं ड्रोजनतत्वस्यापेक्षया कियद्गुरुभारात्मकिमिति ज्ञायते । यथा है ड्रोजनापेक्षया ऑक्सिजनद्रव्यं षोडशगुणभारात्मकं वर्तते । अत एव निर्गलितं भवति यत् समाने आयतने द्वयोरिप समानेषु संख्यात्मकेषु परमाणुषु हें ड्रोजनपरमाणोर्यदि भार एकसंख्यात्मकोऽनुमानितस्तदा अक्सिजनपरमाणुभारः षोडशात्मकः सिध्वति । अनेनैव प्रकारेणाऽन्येषामिप तत्वानां परमाणुभारा वैज्ञानिकैनिक्षिता विद्यंते ।

एवं तत्वानां परमाणुभारिनश्चये संजाते योगिकानामपि अणुभारः सरलया पद्धत्या ज्ञातो भवति । केवलं तदर्थं यौगिकसूत्राणां ज्ञानस्यावश्यता विद्यते । अनेन सूत्रेण तिस्मन् यावन्तः परमाणवः स्युस्तेषां सर्वेषां भारस्य गणनया यौगिकस्याऽणुभारज्ञानं भवेत् ।

परमाणुबन्धनक्षमताः—भिन्नभिन्नानां परमाणूनां तथा मूलकानां परस्परसंयोगक्षमताऽपि निश्चिता भवति । यथा है ड्रोजनतत्वपरमाणोः इतर-तत्वपरमाणुसंयोगे एकाङ्केन क्षमता निर्देष्टा भवति । अतोऽन्येषां तत्वानामेकः परमाणुः है ड्रोजनतत्वस्य यावद्भिः परमाणुभिस्संयुक्तो भवति सा तस्य तत्वस्य तावत्संख्याका परमाणुबन्धनक्षमतेति निगद्यते । यथा अक्सिजनतत्वस्य एकः परमाणुः हे ड्रोजनतत्वस्य परमाणुद्वये संयुक्तो भवति । अतोऽस्याविस-जनतत्वस्य परमाणुवंधनक्षमता द्विसंख्यात्मिका गृहीता भवति । यत्तत्वं हे ड्रोजनतत्वेन स्योगं कृत्या तस्य व्यस्य परमाणुबन्धनक्षमता ज्ञातुं शक्या भवति ।

एकं तत्वं वा एकोमूलको अन्यतत्वस्य वा मूलकस्य परमाणुबन्धन-क्षमतायास्समानत्वेनैव स्थिरयौगिकोत्पादकं भवति । परमाणुबन्धंनक्षमताया-स्समानतया अभावे नैब भवति यौगिकोत्पादः । यदि वा यौगिकोत्पादो जातश्चेत् सोऽस्थिर एव संपद्यते ।

इतिवृत्तम्-पूर्वपाठिका

पूर्वमेवकथितं यद्भ्मंडलं समस्तानां पदार्थानां द्विनवितत्वपरमाणूनां संयोगेनैव संजाता उत्पत्तिरिति । तथिप व्यवहारावस्थायां निस्यं उपयुज्य-मानानां पदार्थानां संभूतिस्तु त्रिंशत् वा चत्वारिंशत् तत्वानां संयोगेनैवाभ-विदिति व्यक्तं अवलोक्यते । निम्नलिखिततालिकायां द्विनवितत्वानां, १ क्रमसंख्या, २ नामानि, ३ संकेताः, ४ परमाणुभारः, ५ परमाणुबन्धनक्षमता, निवेशिता विद्यते । द्विनवितत्वानां नामानि आंग्लभाषया दत्तानि । तथा संकेतास्तु ग्रीकभाषायुता वा न्याटिनभाषास्त्रीकृता एव दत्ताः । अधस्ता-त्तानि सर्वाणि तालिकायां दीयंते—

द्विनवतितत्वानि।

| क्रम संख्या | नाम | संकेत | परमाणु- भार | परमाणु वंधन क्षमता | विशेषता |
|----------------|------------------|---------|----------------|--------------------------|---------|
| 8 | है ड्रोजन | Н | | ę | |
| ર | हीलियम | Не | 8 | , | |
| ३ | लिथियम | Li | ६.९ | 8 | |
| 8 | बेरिलियम | Be | ર | 2 | |
| بع | बोरान | В | १००८ | 3 | |
| ६ | कार्बन | С | १२ | 8 | |
| ૭ | नैट्रोजन | N | 88 | ₹,५ | |
| 6 | ऑक्सिजन | О | १६ | રં | |
| ९ | क्रो रिन | ${f F}$ | १९ | 8 | |
| १० | निओन | Ne | २०.२ | • | |
| 33 | सोडियम | Na | २३ | 8 | |
| १२ | मैग्ने(सेयम | Mg | २४ | 7 | |
| १३ | ऐछुमिनियम् | Al | २७ | 3 | |
| १४ | सिलिकान | Si | २८.३ | 8 | |
| १५ | फास्करस | P | 38 | ३,५ | |

| क्रम संख्या | नाम | संकेत | परमाणुभार | परमाणुबंधन क्षमता | विशेषता |
|----------------|--------------------|-------|-----------|----------------------|---------|
| १६ | सल्फर | s | ३२ | ર | गंधक |
| १७ | क्रारिन | Cl | ३५.4 | 8 | |
| 25 | आर्गान | A | ३९.९ | 0 | |
| १९ | पोटासियम | K | ३९.१ | 8 | |
| २० | कैल्सियम् | Ca | 80.8 | २ | |
| २१ | स्कैंडियम् | Sc | 84.9 | 3 | |
| २२ | टिटानियम् | Ti | 85.8 | 8 | |
| २३ | वैनेडियम् | V | 49.0 | 3 | |
| २४ | क्रोमियम् | Cr | 42.0 | २,६ | |
| २५ | मैंगेनिज | Mn | 48.9 | २,४ | |
| २६ | आयर्न (फेरम्) | Fe | ५५.८ | २,३ | लोहा |
| २७ | कोबाल्ट | Co | 49.0 | २ | |
| २८ | निकल | Ni | 49.0 | 2 | |
| २९ | कौपर (क्यूप्रम्) | Cu | ६३.६ | १, २ | ताम्र |
| ३० | इं सिक | Zn | ६५.४ | २ | जस्ता |
| ३१ | गैलियम् | Ga | 9.00 | ३ | |
| ३२ | जर्मेनियम् | Ge | ७२.५ | 8 | |
| ३३ | आर्सेनिक | As | ७५.० | 3 | |
| ३४ | सेलेनियम् | Se | ७९.२ | 3 | |
| ३५ | <u>ब्रो</u> मिन | Br | ७९.९ | 8 | |
| ३६ | क्रिप्टान | Kr | ८२.९ | 0 | |
| ३७ | रुबीडियम् | Rb | 24.8 | 8 | |
| ३८ | स्ट्रौन्शियम् | Sr | ८७.६ | 3 | |
| ३९ | याद्रियम् | Yt | ८९.३ | 3 | |
| 80 | झिर्कोनिमम् | Zr | ९०.६ | 8 | |
| 88 | निओबियम् | Nb | ९३.१ | 3,4 | |

| - | | | | | Maria Managaran Angaran |
|--------------|--|------------------------|---------------------------------------|----------------------|-------------------------|
| ऋम संख्या | नाम | संकेत | परमाणुभार | परमाणुबंधन क्षमबा | विद्योषता |
| | | | | | |
| ४२ | मोलिव्डिनम् | Mo | ९,६.० | २ | |
| ४३ | मस्रियम् | | नेश्चित | 8 | |
| 88 | रुदीनियम् | Ru | १०१.७ | 3 | |
| 80 | होडियम् | Rh | १०२.९ | २,३,४ | |
| ४६ | पैलेडियम् | Pd | १०६.७ | २,४ | |
| 80 | सिल्वर (आर्जेंटिनम्) | Ag | १०७.९ | १,३ | चांदी |
| 85 | केड्मियम् | Cd | ११२.४ | २ | |
| 86 | इन्डियम् | In | ११४.८ | ३ | |
| 40 | तिन् (स्टैनम्) | Sn | ११८.७ | २,४ | |
| ولم | ऐंटिमनी (स्टिबियम्) | Sb | १२१-८ | ३ | |
| 42 | टे लुरियम् | Te | १२७.५ | २ | |
| ५३ | आयोडिन | 1 | १२६.९ | ₹ | |
| 48 | झेनान् | Xe | १३०.२ | 0 | |
| ५५ | साञ्जियम् | Cs | १३२.८ | 8 | |
| ५६ | बेरियम् | Ba | १३७.४ | 2 | |
| ७० | हैं थेनम् | La | १३९०० | 3 | |
| 46 | सीरियम् | Се | १४० २ | 8 | |
| 49 | प्रेक्षे।डिनियम् | Pr | १४०.८ | अज्ञात | |
| ६० | निओडिमियम् | Nd | १४४ ३ | " | |
| ६१ | इछिनियम् | ঞ্চ | नेश्चित | " | |
| ६२ | सेमेरियम् | Sa | 840.8 | ,,, | |
| ६३ | यूरोपियम् | Eu | १५२.० | " | |
| ६४ | गैडोलिनियम् | Gd | १५७-३ | •, | |
| ६५ | टेर्बियम् | $\mathbf{T}\mathbf{b}$ | १५९.२ | 17 | |
| ६६ | डिस्प्रोसियम <u>्</u> | Dy | १६२.५ | ,, | |
| ६७ | होलिमयम् | Но | १६३.५ | ,, 1 | |
| | Development of the Control of the Co | | · · · · · · · · · · · · · · · · · · · | | |

| ऋम सं ख्या | नाम | संकेत | परमाणु- भार | परमाणु बंधन क्षमता | विशेषता |
|---|---------------------------|-----------------------------|----------------|--------------------------|---------|
| ६८ | एर्बियम् | Er | १६७.७ | अज्ञात | 1 |
| ६९ | थुल्डियम् | Tm | १६८.५ | 79 | |
| 90 | र्टेर्बियम् | Ϋ́b | १७३.५ | 3 | |
| | लुटेसियम् | Lu | १७५० | 17 | |
| ७२ | है फिनयम् | Hf | १७८.६ | 77 | |
| ७३ | टैटेलम् | Ta | १८१.५ | بغ | |
| ७४ | टंग्स्टेन (बुल्फम्) | W | ₹८८.० | २,६ | |
| | - हेनियम् | आं | निश्चित | | |
| ७६ | औ स्मियम् | Os | 1990.8 | 2,3,8,6 | |
| ७७ | इरीडियम् | Ir | १९३.१ | २,३,४ | |
| 96 | हैटिनम् | Pt | १९५.२ | २,४ | |
| ७९ | गोल्ड (औरम्) | Au | | १,३ | सुवर्ण |
| 60 | मर्क्यूरि (हैड्रार्जिरम्) | Hg | २००१ | १,२ | |
| 28 | थैलियम् | Tl | २०४.० | | |
| ८२ | लेड [प्लंबम्] | Pb | २०७.२ | १,२ | सीस |
| | बिस्मथ | Bi | २०९.० | २,३ | |
| 58 | पोलोनियम् | Po | 510.0 | 2 | |
| 64 | इस तत्वक | । ज्ञान अर | भीतक हुवा | नहीं है. | |
| | रैडोन [निटोन] | Nt | | 0 | |
| ८६ | इस तत्वव | | | | |
| ८७ | रेडियम् | | | | |
| | | | २२६ श्चित | 3 | |
| 560 PHS 76 PK | ऐक्टिनियम् | | | ₹ | |
| 300 A 100 A | थोरियम् | | २३२.१ | ₹,8 | |
| | युरेनियम् एक्स २ | $\mathbf{U}_{\mathbf{x}_2}$ | २३४.२ | ३ | |
| ९२ | युरेनियम् | U | २३८.२ | 7 | |

परमाणुसिद्धान्तः — किस्निन् पदार्थे विभाजिते, प्रथमं, तिस्निन् अणवः समुपल्लभ्यन्ते। यिस्मिन् पदार्थे एकजातीया एव अणवस्समुपल्लभ्यंते ते रासायिनकयौगिका इति विज्ञानवादिभिः कथ्यंते। यस्मिन् पदार्थे भिन्न- जातीया अणवो दश्यन्ते स पदार्थे भिन्नभिन्नाणुसंपन्नयौगिकानां भौतिकिमिश्रण- युत्तस्तंपद्यते। यस्मादिस्मिन्मिश्रणे संयुक्तानां यौगिकानां पार्थक्यं सार्ल्येन कर्तुं शक्यदे।

शुद्धयौगिकाणूनां पृथक्करणे कृते एतेषां यौगिकानां अवयवीभूतपरमा-णवः प्राप्ता भवंति । सचायं पदार्थो वैज्ञानिकभाषया यौगिक इत्युच्यते । परं यस्मिन्पदार्थे विश्लेषिते तथाणुषु विच्छिन्नेष्विप एकजातीया एव परमा-णवो विद्यमाना भवंति एतादृशाः पदार्था द्विनवतिसंख्याविच्छिन्ना विद्यन्ते ।

पदार्थानामणुवत्वं तथा परमाणुबत्वं प्राचीनेऽपि काले विज्ञातमासीत् । कणादमहर्षिणा खकीयया दिव्यदशा सचायं सिद्धान्तो ज्ञातएवासीत् । खैस्तीये पंचमे शताद्वकाले डेमािकटस्नाम्ना वैज्ञानिकेनापि विज्ञातप्रायएवायं सिद्धान्तः । प्राकैस्तथा रामनैवैज्ञानिकेरपि सिद्धांतोऽयं पूर्वं विदितप्राय एवाभवत् । अतऊर्ध्वं एपीक्यूरस्नामकपंडितेन तथा ल्युकेटियस् नाम्ना पंडितश्रेष्ठेन विस्तारितोऽभिवधितश्चामूदयं सिद्धान्तः ।

अस्मिन् समये एकोनविंशत्यां शताब्द्यां डाल्टननामकप्रसिद्धेन वैज्ञा-निकवरेण्येन आधुनिकरसायनशास्त्रस्याभिनवोऽत्पत्तिरस्य सिद्धान्तस्य पुनरुज्जी-वनेन कृता वर्तते ' डाल्टननामक पंडितस्य परमाणुसिद्धान्तः '—

- १ इयं जडा सृष्टिःपरमाणुसमुभ्दूता वर्तते ।
- २ परमाणवा अविभाज्या वर्तन्ते ।
- ३ भिन्नभिन्नानां तत्वानां परमाणव आकारमानमुज्झित्वा भारे गुण-धर्मादिके च परस्परं [एकस्मादन्यो] भिन्ना एव वर्तन्ते ।
- ४ कस्यापि तत्वस्य परमाणवः परस्परं सर्वास्त्रपि वृत्तिषु एकरूपा एव भवंति ।

- ५ एकस्य तत्वस्य एको वा एकाधिका वा परमाणवे। द्वितीयस्य तत्वस्य एकेन वा एकाधिकैः परमाणुभिः पारस्परिकरासायनिकप्रीत्यां सत्यां संयुक्तास्संतो भिन्नभिन्ना यौगिका भवंति ।
- ६ रासायनिकस्ररूपं घृत्वा तत्वानां परमाणवः खकीयान् गुणधर्मान् परित्यजंति तथाच यौगिकावस्थोत्पन्नगुणधर्मान् धारयन्ति । परं पुनरपि यौगिकानां कृते पृथक्करणं तत्वानां परमाणवस्खीयान् मूळ-भूतगुणानभिन्यंजयन्ति । इत्यनेनेतदनुमीयते यत् यौगिकावस्थायां परमाणवो व्यक्तिगतं खीयमिक्तित्वं नैव परित्यजन्ति । केवळं संयु-क्तावस्थायां प्राप्तानपरान् गुणधर्मान् खीकुर्वन्ति इति ।

परमाण्नां विभाज्यत्वम्ः — एकोनविंशस्य शताद्वस्यान्तिमकालपर्यन्तम् सचायं परमाणुसिद्धांतस्तथा तस्याऽविभाज्यत्वं वैज्ञानिकजगत्यां गृहीतप्रायमेवाऽसीत् । परं १८९८ संख्याके ऐशवीयाद्वे मादामक्यूरीनाम्न्ये
वैज्ञानिकालंकृत्ये स्वीयेन भन्नी संशोधनप्रवीणेन साकं संशोधनकार्यतत्पराये
रेडीयमनामकधातोस्समुपलिधर्जाता । अस्य च धातोर्गुणधर्मान्वेषणावसरे
तत्वस्य परमाणवो नैवाऽविभाज्याः किंतु स्वयंविभजनस्वभावास्संतीति तथा
विज्ञातम् । रेडियम्तत्वस्य परमाणोस्स्यं विभजनं भूत्वा स्वीयपरमाणुभाराचतुर्थभारन्यूनस्याऽन्यस्य तत्वस्य परमाणोःप्राप्तिभवति इति दृवपथमागतम् । तथा
परमाणुषु स्वाभाविकत्वेनैव केषामि किरणानामुत्पादंभेन परमाणुविच्छेदनं
भूत्वा तेषामन्यप्रकारकपरमाणुभवनं स्वगतिक्रययेव भवति । इतीयं क्रिया
रेडियमधर्मिता वा रिक्षक्षेपकता इति संज्ञया सांप्रतं संज्ञायते ।

रेडीयमपरमाणोः खयं विभजनशीळस्य सकाशादन्ये दशिवधानवीनाः परमाणवस्संपद्यन्ते । एवभेव थोरियमनामकतत्वमि खयंविभज्य अन्येषां कितिधाप्रकाराणां नवीनानां परमाण्नां उत्पादकं भवति । अस्मिन् खयंविभज्जनप्रकारे कृत्रिमया रीत्या कैरिप वैज्ञानिकैः किमिप परिवर्तनं नेव कृतम् । खयंसिद्धप्रकृतिधर्मेण खयंविभजनिकया यथा जायमाना भवति तथैव दश्यते ।

परंतु इंग्लंडदेशनिवासिना प्रोफेसररुदरफोर्डनामकवैज्ञानिकप्रवरेण केष्वपि कनिष्ठेषु तत्वेषु कृत्रिमया रीत्या परमाणुविभजनं सम्पादितं । येन वैज्ञानिक-जगित एवं प्रायो विश्वासः समुद्भूतो दृश्यते—यत् यं कमपि परमाणुं विच्छिद्य कमप्यनिर्वचनीयं पदार्थं वयं निष्पादयिष्याम इति । यथा सीसस्य पारदं, पारदस्य च सुवर्णामिति । अनेनाऽविष्कारेण परमाणुसिद्धान्ते किमपि स्वरू-पपरिवर्तनं संभूतं । प्राचीनपरमाणुसिद्धान्तस्यापि समुत्पना हानिः । तथापि तत्वानां द्विनवतित्वस्याद्यापि वैज्ञानिकजगित वर्ततेऽस्तित्वं । तथा रेडियम् -थोरियमसदृशोच्चतरतत्वपरमाणूनुच्झित्वाऽन्यतत्वानामविभाज्यपरमाणुवत्वं तथैव मानितं वर्तते । इत्येतदेव सिद्धमभवत् --यत्परमाणुषु इल्टेक्ट्रान् , प्रोटान्, नामकाविद्युत्करणानां वर्ततेऽस्तित्विमिति । प्राचीनतमे कालेऽपि इदं विज्ञातम-भूदेव यत् कस्मिन्नीप काचदण्डे कौशेयेन वर्षिते तस्मिन् काचदण्डे लघुप-दार्थाक्रवणकारी प्रादुर्भवति गुण इति । तथैव लोहदण्डेऽपि कौहोयघर्षिते कोऽपि तत्सदृशा गुणः समुद्भवतीति । अनयोर्द्वयोर्दण्डयोर्विगुदावेशसम्प-न्योरसतोरेव तथाविधः समायाति पदार्थाकर्षणात्मको धर्मः । अस्मिन् धर्मे शास्त्रतो विश्लेषिते काचदण्डे धननामकविद्युत्प्रवेशस्तथा लोहदण्डे ऋणना मकविद्याः प्रवेशो भवतीति तयोर्द्वयोरपि कैषियघर्षितयोः परिज्ञातमनेनावेशद्वयेन ।

तदुःपादंके द्वे विद्युतं वर्तेते इति प्रथमं मतमासीत् । परं वैज्ञानिकानां संशोधनाधिक्यात् " इलेक्ट्रान " नामकाकिरणानां अल्पसंख्यात्वेन वाऽधि-कसत्वेन विद्यमानानामियमेकेव विद्युच्छक्तिर्वतते इति परिज्ञानमभवत् । पदार्थेषु विषितेषु एकस्य वस्तुनः परमाणुगता इलेक्ट्राननामकिकरणा निर्मृक्ता भूत्वाऽन्य-स्मिन्वस्तुनि समायान्ति । यस्मिन् वस्तुनि समायान्ति तद्वस्तु ऋणनामकिष्युच्छि किसमाविष्टं भवति । इलेक्ट्रान् ऋणविद्युद्धमाणां विद्यन्ते । प्रत्येकिस्मिन् तत्वे परमाणौ यावन्तो ऋणविद्युद्धमाणो इलेक्ट्रानकणा विद्यमानाः संख्यया भवेयुस्तावन्त एव संख्यायृता धनविद्युत्कणा अपि विद्यमाना भवन्ति । धनविद्युत्कणाः प्रोटान् इति संज्ञासंज्ञिता भवन्ति । प्रोटानकणाः इलेक्ट्रानकण-म्यो १८४५ संख्याधिका मारेणं विद्यन्ते । परंत्वेतेषु कणेषु विद्युत आवेशः

परिमाणेन समानस्तथा गुणेन विपरांतिस्तष्ठति । अत एव कस्मिन्निप परमाणो प्रोटानानां तथा इलेक्ट्रानानां संख्यासाम्येन विद्युद्गुणावेशः परस्परं बाधित्वा (न्यूट्लायझेशन्) स्फुटो न भवति । तथा एतद्धनऋणविद्युत्कणसम्पन्नपरमाणुप्रादुर्भूतपदार्थेऽपि विद्युदावेशगुणो नैवाविष्ठिति । घिषति पदार्थे तद्धत-परमाणुस्थइलेक्ट्राननामककणाः स्वतंत्रा भवति । परिस्थित्यानुक्ल्येन कस्मिनिप पदार्थे भवति तेषामाधिक्यम् तथैवान्यस्मिन्पदार्थे भवति तेषां न्यूनत्वम् । यस्मिन्तेषां इलेक्ट्राननामककणानां भवत्याधिक्यम् स पदार्थो ऋणविद्युत्कणाः । यस्मिन्पदार्थे इलेक्ट्रानानां संख्यान्यूनत्वं संजायते स पदार्थो ऋणविद्युत्समा-विष्टो भवति । साधारणायामवस्थायां कस्मिन्नपि पदार्थे संख्यासाम्येन द्वयोरिप विद्युदावेशयोर्निराकरणं (न्यूट्लायझेशन) भूत्वा नैव प्रादुर्भवति तदाऽवेशगु-णानां प्रत्यक्षता ।

भिन्नविभिन्नानां तत्वानां परमाणुषु इलेक्ट्रानानां तथा प्रोटानानां विद्यमानसंख्यासंबंधेऽपि वैज्ञानिकै: कोऽपि समयः परिज्ञातो वर्तते । एतेषां वैज्ञानिकानां विद्यते अनुमानं यत् तत्वानां या ताल्कितायां प्रथमे रेखांकित-विभागे प्रदर्शिता विद्यते क्रमसंख्या तावन्त एव तत्वानां प्रतिपरिमाणुषु स्वतं-न्नाणां इलेक्ट्रानानां स्थितिर्विद्यते । तथा यावन्त एव इलेक्ट्राना विद्यमाना भवेयुस्तावन्त एव तस्मिन्परमाणां प्रोटाना अपि भवन्ति । यथा हैड्रोजन-परमाणां एको इलेक्ट्रानस्तथा एक एव प्रोटानो विद्यते । ऑक्सिजनपरमाणां अष्ट इलेक्ट्रानास्तथा अष्ट प्रोटाना विद्यन्ते । तथैव रेडीयमपरमाणां अष्टाशीति (८८) इलेक्ट्रानास्तावन्त एव प्रोटाना विद्यमानास्संति । परमाणां प्रोटाना परमाणुमध्ये पुर्जीमूत्वा स्थिता भवन्ति । तथा स्वतन्त्रा इलेक्ट्रानास्तावत् स्वसंख्यानुसारेण एकानेकवलयरूपेण प्रोटानपुंजेषु समन्तात् परिश्रमणशीला भवन्ति । परमाणोर्बाद्यवलये यावतां इलेक्ट्रानानां स्थितिस्त्यात् तावत्या संख्यया एव तस्य तत्वस्य परमाणुबंधनक्षमता विद्यमाना प्रतीयते । इदं परमाणुस्थइलेक्ट्रानप्रोटानपरिश्रमणदृश्यं सूर्यमालावत् इश्यते यथा—पृथ्व्या-

याम्रहाः स्वयंपरिश्रमणर्शालाः संतः सूर्यपरिश्रमणं कुर्वन्ति । सूर्योऽपि स्वयं अस्थिर एव, तथैव इलेक्ट्रानाः प्रोटानपुंजानामिनतः परिश्रमणर्शाला वर्तन्ते । पृथिव्यादिम्रहेस्सूर्यमालायां स्वल्पावकाश एव व्याप्तो वर्तते । अवांतरावकाश-बाहुल्यं सूर्यमालायां अतिरिक्तमेव वर्तते । एतादश एव परमाणावकाशमागोऽपि स्वल्पएव इलेक्ट्रानकणर्भिव्याप्तो वर्तते । विद्यतेच परमाणौ अन्योपि रिक्तानंत-गुणाऽवकाशो यो इलेक्ट्रानकणर्भव्याप्त एव तिष्ठति । एतेन यत् पिंडे तद्ब्रह्माण्डे इत्ययं सिद्धान्तः प्रचीनर्षीणां सत्यपूर्ण एवेति प्रतिभाति । योयं उर्ध्वं निर्दिष्टः परमाणुषु विद्यमानानां इलेक्ट्रानप्रोटानानां संख्याक्रमः तस्मिन् सिद्धान्ते नाद्यापि परिपूर्णता समागता विद्यते । विद्यते कापि तस्मिन्वद्यापि तृटिः । अत एव केरिप वैज्ञानिकेस्तदर्थं अन्येषां न्यूट्रान, पाझिट्रान नामककणानामीप अस्तित्वं गृहीतं वर्तते ।

तथैव प्रोटानानां इलेक्ट्रानानामपि किमात्मकं सत्यं स्वरूपिमित्यस्मि-न्विषयेऽपि रहस्याद्घाटनमपि नैवाभवदद्यापि । परमाणुविषयकज्ञानं सांप्रतं अल्पतरमेव विज्ञानजगति वर्तते । वैज्ञानिकाः संततं प्रयतमाना अस्मिन्विषये दश्यन्ते अतस्ते सफला भविष्यन्तीति महती विद्यते आशा ।

को विद्यते ईथरः — केषांचन वैज्ञानिकानां विद्यते मतं अयं हि सर्वोऽपि विश्वसंसारो अत्यंतेन सूक्ष्मेण तरलतमेन पदार्थेन परिपूर्णो वर्तते । यत् स्थानं जनाः शून्यमिति मन्यंते तस्मिन्नपि सोयं पदार्थः परिपूर्णो विद्यते । आकाशं गृहीत्वा कठिनात् कठिनतरपदार्थाऽणुष्वपि अन्तः स्थितोऽयं पदार्थो वर्तते । परमाणोरभ्यन्तरेऽपि विद्यमानो भवति । किमपि स्थानमनेन पदार्थेनाऽशून्यं न हि वर्तते । सोऽयं पदार्थं एव ईथर इति अनुमानितः कल्पनान्मृष्टो विद्यते । वयं सर्वेऽपि ईथरार्णव एव तिष्ठामः ।

ईथरपदार्थस्यास्तित्वे गृहीते प्रकाशचुंबकिवयुदित्यादिशास्त्रगतात्यन्त-किठिनानां प्रश्नानामि भवति सौकर्यम् । केऽपि वैज्ञानिका एवं मन्यंते अस्मिन्नाकाशे एवं एतादृशा गुणा विद्यन्ते यैरेवोपरिनिर्दिष्टप्रकाशविद्युदादि-घटनानां प्रादुर्भूतिः संभवतीति ।

॥ समाप्तं आधुनिकपरमाणुवादतात्पर्यम् ॥

विद्वद्वरेण्यदार्शनिकवैज्ञानिकवैद्यादिसेवायां साविनयप्रणति परमावस्यकं निवेदनम् ।

सर्वेष्वपि भारतीयदर्शनेषु (सांख्यवैशेषिकादिषु वैदिकदर्शनेषु, बौद्ध-जैनादिषु तदितरदर्शनेषु च) सर्वमपि दृश्यमिदं जगत् पञ्चभूतविकारमय-मेवेति, पञ्चभूतान्येव सर्वेषां दश्यपदार्थानामुपादानभूतानीति सिद्धान्तः सर्व-संमतः प्रस्थापितो दृश्यते; तथा आयुर्वेदस्यापि तदभिमतानां त्रिदोषाणां पञ्चभूतान्येवोपादानानीति विद्यते सिद्धान्तः । परमाधुनिका वैज्ञानिकास्तन्म-तानुयायिनः पाश्चात्यचिकित्सकाश्च पञ्चभूतेषु केषांचिद्यौगिकत्वं कस्यचिच्छक्ति-रूपत्वं च मन्यमाना न तानि सृष्ट्युपादानानि मूलभूतानि द्रव्याणि, किन्तु ' एलिमेन्ट ' संज्ञकानि द्विनवति तत्त्वान्येव सर्वेषां दश्यपदार्थानामुपादानभूता-नीति प्रभाषन्ते, आयुर्वेदस्तम्भभूतास्त्रिदोषा अपि काल्पनिका एव, न प्रत्यक्ष-प्रमाणसिद्धा इति च संगिरन्ते । तदेवं पंचभूतानाममूळभूतत्वे वातादीनां च काल्पनिकत्वे दर्शनशास्त्रकाराणामायुर्वेदप्रणतृणां च महर्षीणां स्नान्तत्वं, पंच-भूतित्रदोषसिद्धातन्तयोश्चावैज्ञानिकत्वं समापचते । पाश्चात्यविज्ञानेऽपि प्रति-दिनमाविर्भवन्ति नवनवानि मतानि, स्वज्यन्ते च प्राचीनानि । दक्षतरैः खण्ड्यमानं त्रिदोषसिद्धान्तं पाश्चात्यविज्ञानेन सह समन्वयं विधाय नानारूपेण समर्थयत्सु वैद्येष्वपि दृश्यन्ते विभिन्नानि मतानि । एवं विभिन्नवादिभिराकुलितं त्रिदोषसिद्धान्तमैकमत्येन पुनः प्रस्थापयितुं नासिकक्षेत्रे १९८५ तमे विक्रमाद्धे मंपनस्य १९ तमवैद्यसंमेळनस्य खागतकारिसमित्या त्रिदोषविषये सर्वीत्तम-निबन्धलेखनार्थं पंचशतरूप्यकमितं पारितोषिकमुद्धोषितं, तदनन्तरं पनवेल-ग्रामे महाराष्ट्रीयवैद्यानां त्रिदोषचर्चापरिषदपि १९९० तमे विक्रमाद्वे संपा-दिता । तथाऽपि नायं विषय: केवलं महाराष्ट्रीयवैद्यानामेव, अपि च त्रिदो-षयाथातथ्यनिर्णयात् पूर्वं तदुपादानभूतपंचभूतनिर्णयोऽपि परमावश्यक इति

पंचभूतित्रदोषचर्चा, तथा आयुर्वेदीयशारीरनिदानादिप्रतिसंस्कारं,नवाविभूतानां रोगाणां भेषजद्रव्याणां चायवेंदे संप्रहं चाधिकृत्य सर्वेषामपि भारतीयविद्या-मेका परिषत् श्रीकाशीक्षेत्रे संपादनीयेति सर्वभारतीयवैद्यानां मतमभिलक्ष्य १९ तमवैद्यसंमेळनस्वागतकारिण्या समया तथा कर्तुं निश्चयो व्यधायि । तदनुसार-मागामिनि ऑगष्टमासे भगवता धन्वन्तरेर्जन्मभूमौ संस्कृतविद्यायाः पीठभूते च श्रीकाशीक्षेत्रे श्रीहिन्दुविश्वविद्यालये पंचमृतित्रदोषादीनां संधायसंभाषया तत्त्रविनिर्णयार्थमष्टाहव्यापि विद्रत्परिषदधिवेशनं भविष्यतीति सानन्दं विज्ञा-प्यते । नायं वैद्यानामेव विचार्यो विषय इति अत्र दार्शनिका. वैज्ञानिकाः. प्राच्यपाश्चात्यचिकित्साशास्त्रनिष्णाताश्च निमंत्रिताः सन्ति, ते च संमिलिताः सन्तः संधायसंभाषया तत्त्वनिर्णयं विधास्यन्तीत्याज्ञास्यते । अस्याः परिषदो द्यौ विभागौ भविष्यतः एका पंचभूतचर्चापरिषद् , द्वितीया त्रिदोषादिचर्चा-परिषदिति । तत्र प्रथमायाः पंचभृतपरिषदः अध्यक्षस्थानं काशीहिन्दुविश्व-विद्यालये प्राच्यमहाविद्यालय (Oriental College) प्रधाना महामहो-पाध्यायाः श्रीप्रमथनाथतकेभृषणमहोदया अलङ्कारिष्यन्ति, द्वितीयायाश्चिदो-षादि चर्चापरिषद श्वाध्यक्षस्थानं प्रथितयशसः महामहोपाध्यायाः कविराज श्रीगणनाथसेनसरस्रती ९म्. ए.; एल्. एम्. एस्. महोदया मण्डियध्यन्ति । अस्यां परिषदि वादिप्रतिवादिद्वारा जायमानस्य वादस्य निरीक्षका अपि भारतप्रथिताः खखविषयपारदश्वानः केचन दार्शनिकाः केचन वैज्ञानिकाः केचन वैद्याः केचन दक्षतराश्च भविष्यन्ति ।

श्रीमन्तोऽप्यस्यां परिषदि यथावसरं समागत्य तत्त्वनिर्णयसाहाय्यं कुर्वन्तु, स्थापनापक्षं खण्डनपक्षं वा प्रहीष्यन्तीति च विज्ञापयन्तु मंत्रिण इति च सादरं विधीयते सर्वविधविद्वत्सु प्रार्थना ।

निमंत्रणपत्रेणानेन सहैव प्रेष्यमाणां विचार्यविषयसूचीं समवलीक्य, प्रतिविषयमप्रे स्वाभिमतं विलिख्य एकमासादवीक् सा प्रतिप्रेषणीया मंत्रिणः समीपे । अस्यां परिषदि कं कं विषयं भवन्तः स्थापिष्यन्ति, प्रतिषेधिष्यन्ति वेत्यपि निवेदियत्वयः सहैव मंत्री ।

परिषदः पूर्वपत्रकाणि

परिषत्समये विविदेषुभियीवच्छक्यं स्वाभिमतं सप्रमाणं नातिंसंक्षेपिव-स्तरं लिखित्वैव समानेतव्यम् ।

अस्याः परिषदः कार्यनिर्वाहार्थमेका कार्यकारिणी (खागतकारिणी) समितिरपि अधोलिखितनामधेयानां महोदयानां संस्थापिताऽस्ति ।

अध्यक्ष:--प्रममाननीयो महामनाः पण्डितः श्रीमदनमे।हनमालवीय-महोदयः ।

उपाध्यक्ष:--कविराज श्रीप्रतापसिंहः रसायनाचार्यः (काशी)।

,, भिषङ्मान्य:--कविराज श्रीधर्मदासः चरकाचार्यः (काशी)

प्रधानमंत्रीः-वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्यः (कालबादेवीराड, बंबई)।

सहायकमंत्रिण:--कविराज श्री उपेन्द्रनाथदासः काव्य-व्याकरण सांख्यतीर्थः (सदरबाजार, पहाडीधीरज, दिछी)

- ,, वैद्यभूषण वामनशास्त्री दातारः (नासिक)
- ,, दुर्गादत्तशास्त्री आयुर्वेदाचार्यः [मारवाडी हिन्दुहोस्पिटेळ काशी)।
- ,, कविराज श्री सुरेन्द्रमीहनः B. A. (दयानंद आयु-वैदिक कॉल्डेज, लाहोर)।

सभासदः--पं. श्रीहरिनाथशर्माशास्त्री दर्शनाचार्यः ।

,, डॉ. भास्कर गोविंद घाणेकरः आयुर्वेदाचार्यः B.Sc.

preje pit. M. B., B. S.

मिलिसिमिनिन्ने, किलिसेस्य दत्तात्रेय अनंत कुलकर्णी आयुर्वेदाचार्यः M. Sc. प्रभृतयः। । ।

इतिवृत्तम्-पूर्वपीठिका.

विद्वत्परिषदो नियमाः।

१ अस्यां परिषदि निमंत्रितानां संधायसंभाषया तत्त्रनिर्णयार्थमुपस्थि-तानां विदुषामेव प्रवेशो भविष्यति, नान्येषां दर्शकानां संवाददातॄणां वा ।

२ अस्याः परिषदः कार्यविवरणं [रिपोर्ट] मंत्रिण एव निरीक्षकाणा मध्यक्षाणां च स्वाक्षरसहसंमत्या प्रकाशियण्यन्ति, अन्यैस्तु सभ्यैः स्वतंत्रतया न किञ्चिदपि कार्यविवरणं संवादपत्रादिषु पुस्तिकारूपेण वा प्रकाशनीयम्।

३ अस्यां परिषदि बादसमये विगृह्यसंभाषायां प्रवृत्तायां तां निरोध्दुं सभापतिमहोदयाः समर्थाः स्युः ।

४ अस्यां परिषदि संधायसंभाषया जातं वादं निरीक्षकमहे।दुश्यः सिद्धान्तं प्रस्तावरूपेण स्थापियण्यन्ति । स एव सिद्धान्तः सर्वसंगल्या बहुसं-मल्या वा स्वीकृतो भविष्यति ।

५ पूर्वं कमप्यात्मविषयं वादी स्थापियष्यति, ततः प्रतिवादी ते खिण्डे-यिष्यति, वादी तमेव दूषणोद्धारपूर्वकं द्रढियिष्यति, वादिनः प्रतिवादिनश्च सभापतिनिरक्षिकानुरोधावध्येव खण्डनप्रतिखण्डने प्रभविष्यन्ति नाततः प्रस्स्।

> निवेदको स्टब्स् स्टब्स् स्टब्स् पं. मदनमोहनमालुद्दीय

वै. याद्वजी त्रिकमजी आचायेः।

PENNO

्र महामहोचा वाराणमीस्थ

:।इंक्सिक्शिक्

परिषदः पूर्वपत्रकाणि

अयि माननीया विद्वद्योः !

विदितमेव स्यात्तत्रभवतां भवतां यत् १९३५ खिस्ताद्वस्य आगस्टमासे श्रीवाराणसीक्षेत्रे पञ्चमहाभूतित्रदेशादिविषयाणां संधायसंभाषया तत्त्वनिर्ण-यार्थमेका विद्वत्परिषद्भवितेति । अस्यां परिषदि समुपस्थातुं सादरं निवेदिता एव तत्रभवन्तो भवन्तो महाभागा मासचतुष्टयात् पूर्वं ग्रेषितानिमंत्रणपत्रद्वारा । ग्रेषिता च निमंत्रणपत्रेण सहैव तस्यां संसदि समुपस्थापयितुं योग्यानां विष-याणां सूचिकाऽपि । आशास्यते च तांस्तान् सूचीनिबद्धविषयान् यथावदा-छोच्य तत्र तत्र विषये खमतं नातिसंक्षेपविस्तरतो विछिद्ध्य पूर्वप्रकाशित-सूचनानुसारमागस्टमासात् पूर्वमेव मंत्रिणां समीपे भवद्भिः ग्रेषितं स्यात् । येनैतत् परिज्ञातं भवत् यत् कं कं विषयं भवन्तः स्थापयिष्यन्ति कं कं वा प्रतिसेत्स्यन्तीति । अधिवेशनं चोभयोरिप परिषदोरिसमन् आगस्टमासे भवि-तेति पूर्वमुद्धोषितेऽपि निरीक्षकमहोदयानामन्येषां च विदुषां संमतिमनुसृत्य आगामिनो नवम्बरमासस्य २ तारिकात आरम्य ८ तारिकापर्यंतं स्यादिति निश्चितम् ।

अध्यक्षपदं त्वनयोर्यथाक्रमं प्रियतनामधेयाः पण्डितप्रवरा महामहो-पाध्यायश्रीप्रमथनाथतर्कभूषणमहाभागास्तथा महामहोपाध्यायकविराजश्रीगण-नाथसेनसरस्वती एम्. ए. एल्. एम्. एस्. महाशया अलङ्कारिष्यन्तीति पूर्वपत्र-द्वारैव सूचितम् । निरीक्षणकार्यसंपादनार्थमपि चेमे विख्यातकीत्यस्तत्तच्छा-स्वनिष्णाता विद्वद्वराः प्रार्थिताः सन्तिः, येषां नामानि चेमानि—

- १ महामहोपाध्याय डॉ. श्रीगङ्गानाथ झा एम्. ए. डी. लिट्. महाभागाः प्रयागस्थाः ।
- २ महामहोपाध्यायकविराज श्रीगोपीनाथ एम्. ए. महाशया वाराणसीस्था।
- ३ पंडितप्रकांडाः **श्रीमधुस्रद्नसरस्वती**विद्यावाचस्पतयो जयपुरस्थाः।

- ४ चरकाचार्याः श्रीधर्मदासकविराजमहाशया वाराणसीस्थाः ।
- ५ पंडितवरेण्याः पंडितराजश्रीराजेश्वरशास्त्रिणो दविडा वाराणसीस्थाः
- ६ माननीयाः कॅप्टन जी. श्रीनिवासमृति B. A., B. L. M. B. & C. M. महाभागा मदासस्था: ।
- ७ आयुर्वेदमार्तंडाः श्रीलक्ष्मीरामस्वामीन आयुर्वेदाचार्या जयपुरस्थाः
- ८ प्रसिद्धवैज्ञानिकाः डॉ ए. बी. मिश्राः D. Sc., Ph. D. काशीस्थाः।
- ९ वैज्ञानिकवर्याः डॉ. एस्. एस्. जोशी महाभागाः M. Sc. D. Sc. (London) काशीस्थाः ।
- १० प्रिथिताभिधेयाः डॉ. **बालकृष्ण अमरजी पाठक** महामागा अहमदाबादस्थाः ।

अस्याः परिषदः प्रमाणनिर्णयो वादनियमाश्च अध्यक्षमहोदयानां निरीक्षकमहो-दयानां च संमत्या विचारारम्भात् प्राङ्निर्णीता भवेयुः ।

आशास्यते विद्वद्रतेष्वेषु येषां स्वीकृतिमूचनाऽद्याविध न समागता तेषामि शीघ्रमेव समायास्यतीति । परिषत्कार्यनिमित्तमायास्यती निमंत्रितिविद्धुषां स्थानासनभोजनादिव्यवस्थां स्थागतसमितिः स्वव्ययेनैव सम्पादियष्यति, नैत-दर्थं समागतसम्येः किंचिदि देयं भवेत् । वाराणसीस्थधूमशकटावतरणस्थाने (वनारस केंट स्टेशन) परिषत्समासदां स्थागतार्थं स्वयंसवकाः स्थास्यन्ति । आगमनितेथः सप्ताहात् प्रागेव समागमनसमयादिसूचनापत्रं "किवरा ज प्रतापसिंह रसायनाचार्य, उपसभापितः स्थागतसितिः पञ्चभूतित्रदोषादिचर्चा-परिषद्, काशीहिंदुविश्वविद्यालय, बनारस "इस्येतेन संकतेन प्रेषणीयम् । तंत्रीसंवादश्च (टेलिग्रामश्च) 'किवराज प्रतापसिंहजी, बनारसिहंदुयुनिव-सिटी 'इस्यनेन स्थानसंकतेन प्रेषणीयः ।

भवन्तो यथावसरं समागत्य संघायसंभाषया तत्त्वनिर्णयं विधायास्मान-नुप्रहिष्यन्तीति सानुनयं निवेदनम्—

> मदनमोहनमालवीयस्य आचार्योपाह्नवैद्ययादवशर्मणश्च ।

ता. १०।८।३५.

परिषदः पूर्वपत्रकाणिः

पंचभूतचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

- १ पञ्चमहाभृतविचारप्रयोजनम् ।
- २ भूतलक्षणं [किं नाम भूतत्वम् ?] ।
- ३ मृतानामकैकिन्द्रियार्थाश्रयित्वम्, अनेकिन्द्रियार्थाश्रयित्वं वा ?
- ४ भूतस्वरूपगुणधर्मादीनां विवेचनम् ।
- ५ भूतसंख्याविमर्शः।
- ६ भूतानां सादित्वम्, अनादित्वम्, उभयत्वं वा ? सादित्वं चेत्त-दुत्पत्तिः सक्रमा अक्रमा वा ?
- ७ गुणेभ्य: कारणान्तरेभ्यो वा भूतानामुद्भवप्रकारः कः ?
- ८ भूतानामितरेतरव्यवकीर्णत्वं कथं संपद्यते ?
- ९ भूतानां सृष्टिकारणत्वं कीदक ?
- १० परिणामारम्भित्रययोर्विशेषः ।
- ११ दृश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वं न वा ?
- १२ एलिमेन्टसंज्ञकानां द्विनवतिसंख्यकानां प्रतीच्यरासायनिकेर्म्ल-तत्त्वतयाऽङ्गीकृतानां भूतत्वं न वा ?
- १३ इलेक्ट्रोनप्रोटोनसंज्ञकयोर्भृतत्वं न वा ?
- १४ परमाणुतन्मात्रयोर्विवेचनं, तयोर्भेदो वा, अभेदो वा ?
- १५ द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वम् गुणाद्भेदो वा, गुणसमुदायत्वेन तदभेदो वा ?
- १६ तेजसी द्रव्यत्वं न वा ?
- १७ आकाशस्त्ररूपविमर्शः । स भावरूपोऽभावात्मको वा ? भावत्वेपि तस्य सावयवत्वं निरवयवत्वं वा ? सावयवत्वं चेत् के नाम तदवयवाः ? किमाकाशिक्कं ? शद्धः अवकाशो वा ?

- १८ पश्चमूलभूतेभ्य एकैकमहाभूतानामुद्भवः कीदशः ?
- १९ ईथराख्यस्यास्तित्वं चेत् तस्य कुत्रान्तर्भावः ? आकाशे, तेजसि, वायौ वा ? कथं च सः ?
- २ मनुष्यादिशरीरेषु चैतन्यमात्मजन्यं पञ्चभूतादिसंयोगविशेषजन्यं वा ?

त्रिदोषादिचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

- १ त्रिदोषविचारप्रयोजनम् ।
- २ वातादीनां दोषत्वं, धातुत्वं, मलत्वं वा ! त्रिविधत्वमपि चेतद्
- ३ दोषसंज्ञायां हेतुः।
- ४ कथं त्रय एव दोषाः ?
- ५ वातादीनां द्रव्यरूपत्वं शक्तिरूपत्वं वा ?
- ६ वातादीनां स्थूलस्वं सूक्ष्मत्वमुभयस्वं वा ?
- ७ किं वातादीनामुपादानम् ? उपादानात्तेषामुत्पत्तिक्रमश्च कीदशः ?
- ८ वातादीनां गुणाः कर्माणि च।
- ९ वातादीनां खरूपं, तेषां प्रस्थेकशः पञ्चविध्यः वास्तविकं काल्प-ानिकं वा ? तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पन्नं वा तत्खरूपभेदोत्पन्नं वा ?
- १० वातादीनां रेगिकारणत्वं कीदशम् ? तेषामेव रेगिकारणत्वमुतान्ये-षामपि कीटादीनाम् ?

अन्ये विचाराही विषयाः।

१ नवाविभूतानां रागाणामायुर्वेदे संग्रहप्रयोजनविचारः ।

परिषदः पूर्वपत्रकाणि

- २ नवाविष्कृतानामुपयोगिनां भेषजद्रव्याणामायुर्वेदे संप्रहप्रयोजन-विचारः ।
- ३ आयुर्वेदीयशारीरानिदानादिप्रतिसंस्कारप्रयोजनाविचारः ।
- अनुमत्या समुपस्थापिता भवेयुः ।

पंचभृत त्रिदोषचर्चा परिषदोः कार्यकारि-समित्या स्वीकृता शास्त्रार्थ विचार नियमावली ।

उद्देश्यम्---

१ अनयोः परिषदोभीरतीय-तत्त्वज्ञानान्तर्गतपञ्चमहाभूतानां तथा त्रिदोषाणां च सत्स्वरूपप्रकाशनम् ।

२ संभाषापद्धतिः

२ इमे परिषदौ संधाय-संभाषा--पद्भक्षेत्र प्रचिष्यतो न विगृह्य-संभाषापद्भव्या ।

३ सभापतयः।

३ काशी हिंदुविश्वविद्यालयान्तर्गत प्राच्यमहाविद्यालय-प्रधानाः श्री प्रमथनाथ तर्कभूषण भट्टाचार्याः, तथा महामहोपाध्यायाः कविराज गणनाथसेन सरखती महोदयाः यथाक्रमं सभापतिपदमलङ्करिष्यन्ति।

४ निरीक्षकाः ।

ये च पूर्व निर्वाचिताः पंडितवरण्यास्ते द्वयोरिप परिषदोर्निराक्षका
 भविष्यन्ति ।

५ कथा-पद्धतिः।

५ प्रश्नोत्तरप्रणाल्येव स्वीकृता भवेन व्याख्यानप्रणाली ।

६ प्रश्नोत्तर संकलम्।

६ प्रश्लोत्तरयोरुभयोरपि लेखबद्धयोः प्रश्नसमाधात्रोर्हस्ताक्षरेण साकं संकलनं भविष्यति ।

वादि-प्रतिवादि-संख्या।

- ७ वादि-प्रतिवादी-संख्यायाश्च तत्तन्मतावलिम्बनां मध्यादेव साम्येन [समसंख्यया] निर्वाचनं भवेत्।
- ८ निर्वाचितवादिप्रतिवादि-व्यतिरेकेण कस्यापि भाषणे नाधिकारः । सर्वेऽपि सहायका भविष्यन्ति ।
- < वादिप्रतिवादिनां मध्ये एकस्यैव यस्य कस्याऽपि भाषणेऽधिकारः । अनेन साकमस्यैवेति तु न व्यवस्था ।
- १० निर्वाचितवादिप्रतिवादिन्यतिरेकेण तत्तन्मतावलम्बनां प्रतिनिधी-नामिष सतां, खस्वमतावलंबिनां निर्दिष्टस्थाने दर्शकरूपेणैवोपवेशः समुचितः ।

प्रामाण्यम् ।

११ प्रत्यक्षानुमानप्रमाणाभ्यामेवेयं कथा [बादः] प्रचिष्यिति । प्राचीनसिद्धान्तविषये मतद्देधे तु श्रुति-श्रुत्युपजीवि-दर्शनशास्त्रादीनां, चरक-सुश्रुताद्यार्षप्रन्थानां तन्मतानुयायिनां च वचनान्येव प्रमा-णतया गृहीतानि भवेयुः ।

विषय विचारः।

- १२ प्रकाशितविचरांशप्रक्रमानुक्रममनुसृत्येव क्रमशो भवदिचारः ।
- १३ एकस्मिन्समये एकस्यैव भाषणेऽधिकारो न बहूनाम् ।

वाद-भाषा

१४ समाकार्यं गीर्वाणवाण्येव पारितं भवत् । हिन्दीभाषया कथयितॄणां तु कथनं सभानिर्दिष्टप्रतिनिधिना संस्कृतभाषायां वादकथारीसैवो-पन्यस्येत ।

परिपत्ऋमः ।

प्रथमं पंचभूतिवचारपरिषत्कार्यं त्रिभिर्दिवसैः संपादितं भवेत्, पश्चात् त्रिभिर्दिनैश्चिदोषविचारपरिषत्कार्यम्।

अन्तिमे च दिने सभापतिमहोदयानां निरीक्षकमहोदयानां च संमस्या निर्णयः प्रकाशितः स्यात् ।

परिषदः पूर्वपत्रकाणि

परिषत्कार्य-समयः ।

१६ समाकार्यं प्रतिदिनं-मध्यान्हवेलायां एकवादनादारभ्य पंचवादन-समयपर्यंन्तं नियतवेलायामेव भवेत् ।

दर्शक व्यवस्था।

१७ दर्शकाणां पृथक् स्थानप्रबन्धो व्यवस्थाप्येत । न तेषां चर्चा-परिषदि सदस्यत्वेन कोऽपि अधिकारः ।

निरीक्षकमहोदयानां अधिकाराः कार्याणि च।

- १ विचारविषयस्य, कथाविषयस्य, वादिप्रतिवादिनोश्च नियमनम् ।
- २ वादिप्रतिवादिनोर्भाषणे औचित्यानौचित्यावधारणम् ।
- ३ वन्तुः खविषयमुत्मस्य अप्रासंगिकविषयप्रतिपादने नियमनम् ।
- ४ सति प्रयोजने निरीक्षकाणामेव वादिप्रतिवादिनोर्मतानुवादाधिकारः ।
- ५ संधायसंभाषया जातस्य वादस्य निर्णयरूपेण निरूपणम् ।

श्री सभापतिमहोदयानां कार्याधिकारः ।

- १ परिषन्नियन्त्रणम् ।
- २ परिषदि अर्खाकृताया विगृह्यसंभाषयाः केनाऽपि प्रवर्तिताया निप्रहः।
- ३ परिषदः सर्वमिष कार्यं पर्यालोच्य निरीक्षकाणां मन्तन्यमिष समाकलस्य निरीक्षकैः कृतस्य निर्णयस्य सभायामुद्धोषणम् ।

इतिवृत्त-प्रकाशनाधिकारः।

४ परिषद्मधानमान्त्रिण एव सहकारिमांत्रिसाहाय्येन निरीक्षकाणां सभापतिमहोदयानां च संमत्या परिषदोरितिवृत्तं विलिख्य प्रकाशिय्यन्ति ।

> आचार्योपाह्व यादव शर्मा मन्त्री.

इतिवृत्तम्-पूर्वपीठिका.

पंचभूतित्रदोषचर्चापरिषदि समाहूतानां सभ्यानां नामानि ।

| ?. | डॉ. के. एम्. ह्यसकर, एम्. ए. वी. एम्. सं | |
|------------|--|-------------------|
| | डी. पी. एच्. डी. आय्. एम्. अन्ड एच्. | मुंबई. |
| ₹. | वैद्य के. जी. नटेशशास्त्री. | मैलापूर (मद्रास |
| ₹. | डॉ. वाय्. लक्ष्मीनरसिंहशास्त्री सुपरिन्टेंडेंट | |
| | आयुर्वेदिक हास्पिटल अन्ड फॉर्मसी. | होसूर. |
| 8. | वैद्यराज पंडित हरिप्रपन्नजी. | मुंबई. |
| ч. | कविराज धरमदासजी चरकाचार्य. | बनारस. |
| ξ. | वैद्य स्वामी हरिशरणानन्द पंजाब आयुर्वेदिक | |
| | फॉर्मसी. | अमृतसर. |
| ৩. | वैद्यराज पंडित के. शेषशास्त्री आयुर्वेद विद्वान् | शृंगेरी. |
| ८. | महामहोपाध्याय डॉक्टर गंगानाथजी झा एम्. | Ų. |
| | डी. लिट्. | आलाहाबाद. |
| 6," | पंडित जियालालजी वैद्य प्रभात आयुर्वेदिक | |
| | फॉर्मसी. | श्रीनगर (काइमीर) |
| ξο. | राजवैद्य जिवराम कालिदास रसशाळा. | गोंडल (काठियावाड) |
| ११. | वैद्यरत्न डॉ. पी. सुभारंगारू, बी. एस. सी. | |

कोकोनाडा.

कोलंबी.

१२. आयुर्वेदभूषण कॅप्टन पन्नीकर, एल्. आर. सी. पी. ॲन्ड एम्. आर. सी. एस्. ब्रिन्सिपॉल आयुर्वेदिक कॉल्डेज.

प्रेसिडेन्ट आन्ध्र विश्वविद्यालय,

१३. डॉ. ए. लक्ष्मीपति बी. ए. एम्. बी. सी. एम्. प्रोप्रायटर आन्ध्र आयुर्वेदिक फॉर्मसी माउन्टरोड, मद्रास.

पंचभूतत्रिदोषचर्चापरिषदिसमाह्तानां सभ्यानां नामानि २४४

| 88 | पंडित दामोदरजी रथ षड्दर्शनतीर्थ. | लाहोर. |
|---------------------------|--|------------------------|
| | वैद्यराज पंडित घनानंदजीपंत, सिताराम बाजार | दिल्ली. |
| १६ | वैद्यराज पंडित मनोहरलालजी, मनवारीलाल- | |
| | आयुर्वेदविद्यालय, सिताराम बाजार, | दिल्ली. |
| १७ | कविराज हरिरंजन मजमुदार एम् ए. प्रिन्सिपॉल | |
| | आयुर्वेदिक ॲन्ड युनानी टिब्बी कॉलेज. | नवी दिल्ली. |
| 26 | प्रिन्सिपाल लिलतहारी आयुर्वेदिक कॉलेज | ो. पिल्लिमेट (यू. पी.) |
| 19 | पंडित सुखलालजी प्रोफेसर जैनदर्शन ओरि- | |
| | एन्टल कॉलेज, हिंदुयुनिव्हर्सिटी, | पो. बनारस. |
| २० | पंडित भगवानशास्त्री धारूरकर. | पंढरपूर. |
| २१ | श्री जगद्गुरु भारतीकृष्णतीर्थस्वामी शंकराचार्य | पुरी (ओरिसा) |
| २२ | महामहोपाध्याय श्रीधरशास्त्री पाठक. | धुळें (प. खान्देश) |
| २३ | पंडित भद्दाचार्य, एम्. ए. पी. एच्. डी. | |
| | लायब्रेशेरयन् ओरिएन्टल इन्स्टिटयुट. | बडोदा. |
| २४ | महामहोपाध्याय सुरेन्द्रनाथदास गुप्त एम्. ए. | |
| | पी. एच्. डी. प्रिन्सिपॉल संस्कृत कॉलेज. | कलकत्ता. |
| २५ | पं. हरिनाथजीशास्त्री दर्शनाचार्य ब्रह्मविद्या संस्कृ | ন- |
| | पाठशाळा काल्रिकाघाट, | बनारस सिटी. |
| २६ | डॉ. गिरीन्द्रनाथ मुकरजी बी. ए. एम्. डी. | |
| | एडिटर, जर्नल ऑफ आयुर्वेद. कार्पेरिशन- | |
| | स्ट्रीट ई. होरोकुमार टागोर स्केअर. | कल्कत्ता. |
| २७: | कविराज भूदेव मुकर्जी एम्. ए. | |
| * | रसायनाचार्य, ४१ ए. ग्रे स्ट्रीट | कलकता. |
| २८ | वैद्य गोपाळशास्त्री गोडबोले पो. | चिंचवड जि. पुणें. |
| २९ | आचार्य श्रीकुमारस्वामी, जंगम बारीघाट | बनारस. |
| The state of the state of | पंडित जगन्नाथ प्रसाद वाजपेयी आयुर्वेदा- | |
| | चार्य | अस्ति. पो. बनारस. |

| ३१ | पंडित सत्यनारायणशास्त्री आयुर्वेदाचार्य | |
|-----|--|------------------|
| | आयुर्वेदिक कॉलेज बनारस हिंदुयुनिव्हर्सिटी | बनारस. |
| ३२ | कविराज प्रतापसिंह, आयुर्वेद काँलेज बनारस | |
| | हिंदुयुनि व्ह िंदी | बनारस. |
| 33 | दी प्रिन्सिपाल गन्हर्नमेंट आयुर्वेदिक कॉलेज पो | . त्रिवेंद्रम. |
| | | ताऊथ इंडिया |
| 38 | वैद्यमणी एम्. निलकंठ पिल्लाई, हेड आयु- | |
| | र्वेदिक डिपार्टमेन्ट पो. | . त्रिवेंद्रम. |
| ३५ | वैद्यशास्त्री कविराज ठाकुरदत्तजी मुळतानी, | |
| | गुमटीबाजार | लाहोर. |
| ३६ | वैद्यरःन श्रीकांतरामी काव्यतीर्थ कदमकुवा | बांकीपुरा (पाटणा |
| ३७ | आयुर्वेद भूषण के. सुत्राणिशास्त्री, चितादिपेठ, | मद्रास. |
| ३८ | एन्. बी. नटराजशास्त्री, आयुर्वेदिक पंडित पो. | . त्रिचनापछी. |
| | | बिकानर. |
| | (: | राजपुताना) |
| 80 | दुर्गाशंकर केवळरामशास्त्री С/о झंडू | |
| | फारम्यास्युटिकलवर्कस् , सयानीरोड | मुंबई (१४) |
| 88 | डॉ. भास्कर गोविंद घाणेकर बी.एस्.सी, एम् | |
| | बी.बी.एस्. आयुर्वेद कॉलेज हिंदुयुनिव्हर्सिटी | बनारस. |
| 83 | प्रोफेसर आनंद शंकर ध्रव एम्. ए. | |
| | | बनारस. |
| 8 ३ | वैद्य पंडित श्रीनिवासशास्त्री, नारायण दिक्षीत छेन | बनारस. |
| 88 | वैद्यरत्न पंडित त्र्यंबकशास्त्री, नारायण दिक्षीत छेन | बनारस. |
| ४५ | प्रोफेसर दत्तात्रय अनंत कुळकर्णी एम्. एस् | |
| | सी. आयुर्वेद कॉलेज हिंदुयुनिव्हर्सिटी | बरनास. |
| ४६ | पंडित राजराजेश्वरशास्त्री द्रविड, | |
| | नारायण दिक्षीत हेन | बनारस. |

पंचभूतत्रिदोषचर्चापरिषदिसमाहृतानां सभ्यानां नामानि. २४६

| ४७ |) पंडित बाळकृष्ण मिश्र न्यायाचार्य ओरिएन | टल |
|----|--|--------------------------------|
| | | बन(रस. |
| 80 | महामहोपाध्याय कविराज गोपीनाथजी एम्. | |
| | प्रिन्सिपाल, किंग्ज कॉलेज | बनारस. |
| 88 | महामहोपाध्याय पंडित प्रमथनाथ तर्कभूष | |
| | प्रिन्सिपॉल, ओरिएन्टल कॉलेज, हिंदुयुनिक | |
| 40 | वैद्यरान वासुदेवशास्त्री कडेगांवकर | |
| | डॉ. मोरेश्वर नारायण आगाशे एल्. एम्. एस् | |
| ५२ | | पो. पनवेल जि.कुलाबा |
| | वैद्य प्राणाचार्य कृष्णशास्त्री देवधर, गंधीआंळ | ति । स्थापना चार्चारम् । ति |
| | आदितवार | नासिक. |
| 48 | वैद्यभूषण गणेशशास्त्री जोशी, शुक्रवार पेठ | |
| | न्यायरान नारायणशास्त्री वाडीकर संस्कृत- | |
| | माहाविद्यालय, सदाशिव पेठ | पुणे |
| ५६ | महामहोपाध्याय वासुदेवशास्त्री अभ्यंकर | |
| | सदाशिव पेठ | पुणें शहर |
| ५७ | वैद्य वासुदेवशास्त्री ऐनापुरे, डॉक्टर देशमुख | गल्ली गिरगांव मुंबई |
| 46 | वैद्य आप्पाशास्त्री साठे, काकडवाडी, गिरगां | व मुंबई |
| 49 | वैद्य पंडित हरनारायण चतुर्वेदी गव्हर्नमेंट, | |
| | आयुर्वेदिक स्कू | ल बांकिपूर [पाटणा] |
| ६० | | पो. कोट्टाकल[मलबार] |
| ६१ | पंडित टी. रुद्र पाराशव राजवैद्य ऑफ | |
| | माहाराजा | कोचीन (मलबार) |
| | हिज हॉयनेस श्रीमान् माहाराजा रविवर्मा | कोचीन [मलबार] |
| ६३ | वैद्यराज पंडित नौरीरामशास्त्री | पो. बेझवाडा |
| ६४ | डॉ. हनमंत व्यंकटेश सावनूर | पो. बेळगांत्र |
| ६५ | स्वामी कुवलयानन्द कैवल्यधाम | पो. लोणावळा जि.पुणें |
| | | |

| ६६ | तर्कतीर्थ रघुनायशास्त्री कोगजे | पो. लोणावळा जि.पुणे |
|-----------|---|------------------------|
| ६७ | तर्कतीर्थ छक्ष्मणशास्त्री जोशी | पो. वाई [सातारा] |
| ६८ | वैद्य महेश्वर राम पुराणीक | पो. मालवण (रत्नागिरी) |
| ६९ | डॉ. मुकुंदसरूप वर्मा बी. एस्. सी. | |
| | एम्. बी. बी. एस्. हिंदुयुनिव्हार्सिटी. | वनारस |
| 90 | यो. पंडित भगवतदत्तजी बी. ए. | लाहोर (पंजाब) |
| 30 | वैद्यराज हरीशास्त्री पराडकर | अकोला (बऱ्हाड) |
| ७२ | डॉ. बाबासाहेब परांजपे | नागपूर |
| ७३ | वैद्य त्रिंबकशास्त्री आपटे, सदाशिव पेठ | પુ ખેં |
| 98 | वैद्य नागरलाल मोहनलाल पाठक | पो. पाटण (गुजराथ) |
| ७५ | राजवैद्य पंडित रामेश्वरजी शुक्र आयुर्वेदाचा | र्य ग्वाल्हेर |
| ७६ | पंडित श्रीपादशास्त्री हसूरकर प्रिन्सिपाल रा | ा.सं.वि. इन्दोर |
| ७७ | पंडित गणेश दत्तजी सारस्वत बी. ए. | हरिद्वार (यू. पी.) |
| ७८ | वैद्यशास्त्री पंडित रामेश्वर मिश्र नयागंज | कानपूर |
| ७९ | कविराज ज्ञानेंद्रनाथ सेन बी. ए. | हरिद्वार |
| 60 | स्वामी दयानन्दजी आयुर्वेदाचार्य हर्षाकेश | जि. डेहराडून (यू. पी.) |
| 23 | कविराज ललितमोहन कविसागर | यो. बारिसाल [बेंगाल] |
| ८२ | महामहोपाध्याय पंचानन तर्करत | भाटपारा (बेंगाल) |
| ८३ | कविराज विमलानन्द तर्कतीर्थ में स्ट्रीट | कलकत्ता |
| 58 | कविराज हराणचंद्र चक्रवर्ती ग्रे स्ट्रीट | कलकत्ता |
| ८५ | वैद्यराज भिकाजी विनायक डेग्वेकर एम्. | ए |
| | एम्. एस्. सी. एल्. एल्. बी. | जबलपूर |
| ८६ | वैद्यभूषण गोवर्धन रामी छांगाणी सिताबडी | नागपूर |
| ८७ | वैद्यभूषण पुरुषोत्तमशास्त्री हिर्छेकर | अमरावती(बन्हाड) |
| 22 | आयुर्वेदाचार्य वैद्य पुरुषोत्तम गणेश नानल | |
| | आयुर्वेद माहाविद्यालय | યુળે 💮 |

पंचभृतित्रदोषचर्चापरिषदिसमाहृतानां सभ्यानां नामानि. २४८

| | 민준이는 가는 그들은 사람들이 되었다는 사람이 하게 되었다면 모든 것은 | |
|-----|--|------------------|
| ८९ | समहामहोपाध्याय पंडित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी | जयपूर(राजपुताना) |
| ९० | राजवैद्य पंडित नंदिकिशोरजी आयुर्वेदाचार्य | जयपूर[राजपुताना] |
| ९१ | आयुर्वेदमातैंड पंडित लक्ष्मीरामजाखामी | |
| | आयुर्वेदाचार्य | जयपूर |
| ९२ | राजवैद्य हरिवक्षजी जोशी, मारवाडी दवाखाना | कलकता |
| ९३ | ेवेद्य पंडित हरिदत्तजीशास्त्री, एडिटर अश्विनीकुमार | |
| 68 | डॉ. आशानंद पंचरत्न एम्. बी. बी. एस्. | लाहोर |
| ९५ | एडिटर धन्यंतरी | पो. विजयगड |
| | | [जि. अलीगड] |
| ९६ | वैद्यरत्न कॅप्टन् जी. श्रीनिवासमूर्ती बी. ए. बी. ए | z. |
| | एम्. बी. अन्ड सी. एम्. | मद्रास |
| २७ | डॉ. व्ही. एम्. भट बी. ए., एम्. बी. बी. एस्. | येवला |
| | | कानपूर |
| ९९ | वैद्य पंचानन पंडित जगन्नाथप्रसाद शुक्क दारागंज | आलाहाबाद |
| 200 | 2 | पतियाला[पंजाब] |
| १०१ | आयुर्वेद महामहोपाध्यायजी पं. भागीरथजीस्वामी | कलकता |
| १०२ | कविराज नरेंद्रनाथ मित्र | लाहोर |
| १०३ | वैद्यपंचानन गंगाधरशास्त्री गुणे | अहमदनगर |
| 808 | महामहोपाध्याय हाथीभाईशास्त्री जामन | गर (काठियावाड) |
| १०५ | डा. बाळकृष्ण ए. पाठक एम्. बी. बी. एस्. | |
| | टॉकसाल राेड | अहमदाबाद |
| १०६ | वैद्य नारायणशंकर देवशंकर, स्वामीनारायण | |
| | मंदिराजवळ | अहमदाबाद |
| १०७ | राजवैद्य पंडित मस्तरामजीशास्त्री, पुराणा किल्ला रा | बळपिडी (पंजाब) |
| २०८ | डॉ. जी. डी. आपटे एम्. बी. बी. एस्. | पुणे |
| 909 | राजगुरु पंडित हेमराजजी धोकातील | नेपाळ |

| 220 | राजवैब पंडित शाळिमामजीशास्त्री, आबटरोड छखनी |
|-------|--|
| 888 | पंडित नंदलाल कील खारियर श्रीनगर (काइमीर) |
| | वैद्यपंचानन कृष्णशास्त्री कवडे वी. ए. पुणे |
| ११३ | पंडित नित्यानंद रामी जोशी आयुर्वेदाचार्य धोकतोल नेपाळ |
| | महामना पं. मदनमोहन मालवीय हिंदुयुनिव्हर्सिटी बनारस |
| ११५ | राजवैद्य अमृतलाल प्राणशंकर पृष्टणी पो.लिमडी(काठियाबाड) |
| ११६ | वैद्य लक्ष्मीशंकर रामकृष्णशास्त्री, रिचीरोड अहमदाबाद |
| | वैद्य रिवशंकर जटाशंकर त्रिवेदी, रिचीरोड अहमदाबाद |
| 886 | वैद्य पंडित दुर्गादत्तजीशास्त्री वनारस |
| ११९ | कविराज उपेंद्रनाथदास, सदरबाजार दिछी |
| १२० | पंडित बनशीधरजी जोशी आयुर्वेदाचार्य ग्वाल्हेर |
| | पं. कृष्णम्माचार्यशास्त्री, संस्कृत पाठशाळा पो. बढताळ व्हाया आनंद |
| | वैद्यराज पंडित शामनारायणजी आयुर्वेद- |
| | शिरोमणी चोक पाटणा (बिहार) |
| १२३ | वैद्यराज पंढरिनाथ दामादर मुळे, अंबादरबाजा अमरावती [बव्हाड] |
| १२४ | आयुर्वेदरत्नाकर पंडित ब्रिजबिहारी चतुर्वेदी सुरादपूर पो. बांकीपूर पाटणा |
| १२५ | आयुर्वेदाचार्य पं.रामदेवशमी शाहारियागंज पो. मुजफरपूर (बिहार) |
| | पं. श्रीदत्तर्जाशर्मा वैद्यराज ऑनररी म्याजिस्ट्रेट |
| , , , | पो. भित्रानी जि. हिसार |
| १२७ | वैद्य पांडुरंग हरी देशपांडे आयुर्वेदाचार्य |
| | ३७२ शुक्रवार पेठ पुणे |
| १२८ | कविराज लिलतमोहन शर्मा, २१ विवेकानंद रोड कलकत्ता |
| | पं. रवींद्रनाथशास्त्री एडिटर ''रॉकेश'' वरालोकपूर इटावा (यू. पी.) |
| | वैद्यरत्न हरदत्तजी पांड्ये पो. पिलिभट (यू. पी.) |
| | लक्ष्मीनाथ बद्रिनाथशास्त्री बी. ए. राजकीय |
| | संस्कृत पाठशाळा बडोदें |

पंचभृतत्रिदोषचर्चापरिषदिसमाहृतानां सभ्यानां नामानि. २५०

| | [27] [[[| |
|------|---|-------------------|
| १३२ | प्रोफेसर दिनकरराव मणिशंकर एम्. एस्. सी. | |
| | प् छिस् ब्रिज | अहमदाबाद. |
| १३३ | पंडित शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य प्रसाद मकरध्वज | |
| | फार्मसी, रेल्वे रोड | · लाहोर |
| १३४ | | पुणे २ |
| १३५ | वैद्यराज विनायकराव एकतारे आयुर्वेद सेवाश्रम | अहमदनगर |
| १३६ | राजवैद्य रामप्रसादशास्त्री वैद्यविनोदिनी सभा | मथुरा |
| १३७ | वैद्यराज माहादेवप्रसाद एन्. शास्त्री काळूपुरा | अहमदाबाद |
| १३८ | कविराज पंडित त्रिश्चनाथ बी. ए. | जम्मू (काम्मीर) |
| १३९ | वैद्यराज पुरणचंद्रशमी रथ काव्यव्याकरणतीर्थ | |
| | दक्षिणद्वार | पुरी [ओरिसा] |
| 880 | वासलम् तिल्लाई लंका आयुर्वेदिक कॉलेज पो. | जाफना (सिलीन) |
| 888 | पंडित मणिरामशर्मा आयुर्वेदाचार्य पो. राम | गड [सिकार-जयपूर] |
| 183 | वैद्यराज दत्तात्रयशास्त्री पुराणीक ९०६ सदाशिव | पुणें |
| 383 | एडिटर अनुभूत योगमाला बराले।कपूर | इटवा [यू. पी.] |
| \$88 | महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन | |
| | ९म्. ए. एल्. एम्. एस्. | कल्कता |
| 884 | दि एडिटर " वैद्य " | मुरादाबाद [यू.पी] |
| १४६ | डॉ. त्रिलोकिनाथ वर्मा एम्. बी. बी. एस्. | |
| १४७ | डॉ. प्रसादीलाल झा एल्. एम्. एस्. मेयोरोड | कानपूर [यू. पी.] |
| १४८ | वैद्यराज हरिप्रसाद सी. भट्ट, रावपुरा | बडोदा |
| १४९ | कविराज आदित्यनाथ सांख्यतीर्थ भवानीपूर | कलकता |
| १५० | पंडित स्यामकांत तर्कपंचानन, ५५ सोनारपूर | बनारस |
| १५१ | महामहोपाध्याय पंडित फणि भूषण तर्कवागीश | |
| | गणेश मोहल्ला | बनारस |
| | डॉ. रामदास गौड ९म. ए. | बनारस |
| १५३ | दि एडिटर " विज्ञान " | अलाहाबाद |

| १५४ | डॉ. काल्किनाचन्द्र बोस एम्. बी. बी. एस्. | कलकता |
|-------|---|----------------------|
| وبوبع | श्री. जी. एम्. जोशी एम्. ए. ६०४ सदाशि | प्रणे २ |
| १५६ | पंडित रामकृष्ण वैद्य | सोछापूर |
| १५७ | वैद्यरत धीरजराम दयारामशास्त्री आयुर्वेद- | |
| | विद्यालय | राजुला[काठियावाड] |
| १५८ | वैद्यरःन पंडित एम्, दोरायस्वामी अय्यंगार | मद्रास |
| १५९ | वैद्य पंडित नारायणप्रसाद द्विवेदी ग्वालतोली | कानपूर |
| १६० | पंडितप्रवर मधुसूदन झा विद्यावाचस्पती | जयपूर (राजपुताना) |
| १६१ | वैद्यराज प्रागाचार्य सुखरामदासजी टी. ओझा | |
| | लक्ष्मीदास स्ट्रीट | कराची |
| १६२ | वैद्यरःन विष्णुशास्त्री कळकर | नासिक |
| १६३ | वैद्यराज पंडित चंद्रशेखर शर्मा रत्नामला पो | . बागहा जि. चंपारण्य |
| १६४ | वैद्य पंडित विधेश्वरीप्रसाद आयुर्वेदाचार्य | बेटटीया जि.चंपारण्य |
| १६५ | कविराज ताराचरण सर्वदर्शनतीर्थ २५ | |
| | गोपिका छेन बडाबाझार | कलकता |
| १६६ | कविराज सुरेशचंद्र गोस्वामी १२३ माणिक- | |
| | तोला स्ट्रीट | कलकत्ता |
| १६७ | कविराज अनिलकुमार मुख्योपाध्याय पैकपाडा | |
| | राजवाडी | कालीपूर (वेंगाल) |
| १६८ | | कलकता |
| १६९ | | कलकता |
| १७० | | मद्रास |
| १७१ | | कलकता |
| १७२ | | बंगलो र |
| १७३ | पंडित ब्रिजिकिशोर हाटगी आयुर्वेदाचार्य | |
| | बारीकोठी | बेगमपूर (पाटणा) |
| १७४ | पंडित सहदेविमश्रजी आयुर्वेदाचार्य | खगौछ (पाटणा) |

पंचभृतत्रिदे।षचचीपरिषदिसमाह्तानां सभ्यानां नामानिः २५२

| १७५ पंडित घोरामिश्रजी विद्यामूषण | राघवपूर (बिहार) |
|---|----------------------|
| १७६ पंडित हरिनन्दन झा प्रोफेसर गव्हर्नमेंट | |
| आयुर्वेदिक स्कूल | पाटणा |
| १७७ पं. वामदेव शर्मा गन्हर्नमेंट आयुर्वेदिक स्कू | छ पाटणा |
| १७८ पं. नुस्रगोपाल बंडोपाध्याय बडाबाजार | मोंगीर |
| १७९ पं. सुखरामप्रसादजी, बी. एस्. सी. | |
| गव्हर्नमेंट आयुर्वेदिक स्कूल | पाटणा |
| १८० पंडित सिद्धेश्वरनाथ उपाध्या गव्हर्नमेंट | |
| आयुर्वेदिक स्कूल | पाटणा |
| १८१ कविराज पं. विद्युभूषणसेन आयुर्वेदाचार्य | पाटणा |
| १८२ पंडित शंमुसरन चतुर्वेदी आयुर्वेदाचार्य | आरा (चप्रा-बिहार) |
| १८३ पंडित बनमाली त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य | आरा (चप्रा-बिहार) |
| १८४ पंडित प्रसिद्धनारायण चतुर्वेदी | रांची (बिहार) |
| १८५ पंडित नर्मदेश्वर झा जुठणी | चप्रा |
| १८६ पंडित जगदीशशमी आयुर्वेदाचार्य सितामढी | आरा (चप्रा-बिहार) |
| १८७ पं. पुरुषोत्तम नारायण चतुर्वेदी आयुर्वेदाचार्य | चप्रा (बिहार) |
| १८८ पं. स्यामनारायण चतुर्वेदी संस्कृत विद्यालय | चप्रा [बिहार] |
| १८९ पं. राम झा आयुर्वेदाचार्य मौजे सरसाहा | पो. निगादी जि.दरभंगा |
| १९० पंडित हरिशंकर मिश्र आयुर्वेदाचार्य | मौजे माड पो.वाजिदपूर |
| 경기 (2012년 전 경기 전기 전기 기계 전기 시간 전기 기계 | ाजि. दरभंगा |
| १९१ पंडित मुक्तिनाथ झा आयुर्वेदाचार्य | समास्तिपूर [दरभंगा] |
| १९२ पंडित रामकरण मिश्र आयुर्वेदाचार्य | समस्तिपूर [दरभंगा] |
| १९३ पंडित सुरेंद्रमोहन भट्ट आयुर्वेदाचार्य | दर्शिसंगसराई " |
| १९४ पंडित श्रीकृष्ण मिश्र आयुर्वेदाचार्य | मधुवारी [दरभंगा] |
| १९५ पंडित सारदासन ठाठावास माहाराज | |
| माह।विद्यालय | दरभंगा |
| 있으므로 하고 하면 있다면 하게 살아먹는 하게 되었다. 그는 사람들은 그 그를 보는 것이 없는 것이 되었다. | |

| १९६ | पंडित कृपाशंकर अवस्थी आयुर्वेदाचार्य | हाजीपूर (मुझफरपूर) |
|-----|--|------------------------|
| १९७ | पंडित भागवत मिश्र आयुर्वेदाचार्य | हाजीपूर (मुझफरपूर) |
| १९८ | पंडित रामदेव मिश्र आयुर्वेदाचार्य | मुझफरपूर |
| १९९ | पंडित भैरवगिरी आयुर्वेदाचार्य, मारवाडी र | कल मझफावा |
| 200 | पंडित दामोदर मिश्र आयुर्वेदाचार्य, संस्कृ | त |
| | महाविद्यालय | मुझफरपूर |
| २०१ | पंडित कालिकामिश्र आयुर्वेदाचार्य | सितामरी [मुझफरपूर] |
| २०२ | पंडित शिवशर्मा मिश्र | मोतिबारी [चंपारण्य] |
| २०३ | वैद्य बाषारारजी शाहा | हनसोट (भडोच) |
| २०४ | वैद्य नागरदास अंबाशंकर | पो. पाचगांव(काठियावाड) |
| २०५ | वैद्य माहाशंकर नरोत्तम भट्ट | भुज (कच्छ) |
| २०६ | वैद्य वासुदेव मूलशंकर त्रिवेदी | पो. घांगधा (काठियाबाड) |
| २०७ | दि शिन्सिपाल पोपट प्रभुराम, आयुर्वेद | |
| | कॉलेज, अनंतवाडी | मुंबई |
| २०८ | दि प्रिन्सिपाल महाराष्ट् आयुर्वेद विद्यालय | |
| | मुगभाट छेन | मुंबई |
| २०९ | दि प्रिन्सिपॉल आयुर्वेदाश्रम | अजमीर |
| २१० | दी प्रिन्सिपाल जैनश्वेतांबर पाठशाला | विकानेर |
| २११ | दि प्रिन्सिपॉल हरनन्द राजरत्न, संस्कृत | |
| | कॉलेज | रामगड (राजपुताना) |
| ११२ | दि प्रिन्सिपॉल राजकीय आयुर्वेद विद्यालय | भरतपूर (राजपुताना) |
| ११३ | दि प्रिन्सिपॉल दरबार संस्कृत पाठशाला | जोधपूर |
| ११४ | दि प्रिन्सिपाल कृष्णदास आयुर्वेद पाठशाल | ापपूर । कराची |
| ११५ | दि प्रिन्सिपॉल संस्कृत पाठशाला | |
| ११६ | दि प्रिन्सिपॉल बाबा कालीकंबलवाला | मथुरा |
| | आयुर्वेद विद्यालय | ह्रपकिश |
| | : 19 : 19 : 19 : 19 : 19 : 19 : 19 : 19 | @114141 |

पंचभ्तत्रिदोषचर्चापरिषदिसमाहृतानां सभ्यानां नामानि. २५४

| | दि प्रिन्सिपाल राजेश्वर संस्कृत कॉलेज मिरघाट | . बनार स |
|-----|--|---|
| २१८ | दि प्रिन्सिपॉल एम्प्रेस संस्कृत पाठशाला | बहराईच (यू. पी.) |
| २१९ | दि प्रिन्सिपॉल वैद्यक माहाविद्यालय | मीरत (यू. पी.) |
| २२० | दि प्रिन्सिपॉल आयुर्वेदिक कॉलेज | |
| | हिंदु युनिव्हिंसैटी | वनारस |
| २२१ | दि प्रिन्सिपॉल रामनारायण आयुर्वेदिक | |
| | विद्यालय | कानपूर |
| २२२ | दि प्रिन्सिपॉल वसिष्ट आयुर्वेद विद्यालय | कराची |
| २२३ | दि प्रिन्सिपाल आयुर्वेद वैद्य पाठशाला | सातारा |
| २२४ | दि प्रिन्सिपाल संस्कृत महाविद्यालय, | |
| | सदाशिव पेठ | पुणें |
| २२५ | दि प्रिन्सिपाल आयुर्वेद महाविद्यालय | राजापूर [रस्नागिरी] |
| २२६ | दि प्रिन्सिपॉल आयुर्वेद महाविद्यालय | 4. 1718 201. 2014 Animatan |
| | सदाशिव पेठ | पुणें |
| २२७ | दि प्रिन्सिपॉल आयुर्वेद कॉलेज | म्हैसूर |
| २२८ | दि प्रिन्सिपाल संस्कृत महाविद्यालय | जयपूर |
| २२९ | दि प्रिन्सिपाल मोहता आयुर्वेद विद्यालय | विका नेर |
| २३० | दि प्रिन्सिपाल आयुर्वेद महाविद्यालय | अहमदनगर |
| २३१ | दि प्रिन्सिपॉल गंगाराम छिबलदास | 일 - 보이 기계 (1952) 하기 - 12 식 기계 (1953) 하기 (1953) |
| | आयुर्वेद विद्यालय | येवला |
| २३२ | दि प्रिन्सिपॉल हितकारिणी संस्कृत पाठशाला | |
| | दि प्रिन्सिपॉल गव्हर्मेन्ट आयुर्वेद विद्यालय | गवालियर |
| २३४ | दि प्रिन्सिपाल गब्हर्मेन्ट संस्कृत महाविद्यालय | इन्दोर |
| २३५ | दि प्रिन्सिपॉल आयुर्वेद पाठशाळा | अहमदाबाद |
| २३६ | दि प्रिन्सिपॉल अनंत आयुर्वेद पाठशाळा | अहमदाबाद |
| २३७ | दि प्रिन्सिपाल भारत आयुर्वेदिक विद्यालय | अमरावती [व-हाड] |
| | | |

| २३८ | दि प्रिन्सिपॉल पुराणीक आयुर्वेद विद्यालय | नागपूर |
|-----|--|-----------------------|
| २३९ | दि प्रिन्सिपाल विदर्भ आयुर्वेदिक कॉलेज | अमरावती (वन्हाड). |
| | दि प्रिन्सिपॉल आयुर्वेद कॉलेज | रावळपिंडी |
| २४१ | दि प्रिन्सिपाल सिद्धायुर्वेद कलाशाळा | मद्रा स्तरपट्ट |
| | दि प्रिन्सिपॉल रायपूर संस्कृत पाठशाला | |
| २४३ | दि प्रिन्सिपाल श्रीनगर संस्कृत पाठशाळा | |
| २८८ | दि प्रिन्सिपाल गव्हरमेंट संस्कृत महाविद्यालय | |
| | दि प्रिन्सिपाल मद्रास आयुर्वेद कॉलेज | मद्रास |
| | दि प्रिन्सिपाल म्युनिसिपल आयुर्वेदिक स्कूर | |
| २४७ | दि प्रिन्सिपाल वेद संस्कृत कलाशाला | नेह्योर (आंध्र) |
| २४८ | दि प्रिन्सिपाल म्युनिसिपल आयुर्वेद विद्याशाल | ग कडपा (आंध्र) |
| २४९ | दि प्रिन्सिपाल व्यंकटेश आयुर्वेदिक कलाशाळ | । वे झवाडा |
| | दि प्रिन्सिपाल आयुर्वेदिक कलाशाळा | वेझवाडा |
| २५१ | दि प्रिन्सिपाल बी. एन्. मेहता, संस्कृत | |
| | विद्यालय | प्रतापगड |
| २५२ | दि प्रिन्सिपॉल गुरुकुल माहाविद्यालय | बदायु (प्रांत ओहा) |
| २५३ | दि प्रिन्सिपाल संस्कृत कॉलेज | नवद्वीप (बेंगाल) |
| २५४ | दि प्रिन्सिपाल संस्कृत माहाविद्यालय | भाटपारा (बेंगाल) |
| २५५ | दि प्रिन्सिपाल आयुर्वेदिक युनानी तिब्बी | |
| | कॉलेज | ्दिछी |
| २५६ | दि प्रिन्सिपाल बनवारीलाल, आयुर्वेदिक | |
| | विद्यालय सिताराम बाजार | दिल्ली |
| २५७ | दि प्रिन्सिपाँ प्रमिशिश सनातन धर्म | |
| | आयुर्वेदिक कॉल्डेज | छाहोर |
| | दि प्रिन्सिपाँ छ छितहारी आयुर्वेदिक कॉलेज | |
| | दि प्रिन्सिपाल दयानन्द आयुर्वेद कॉलेज | |
| 4६0 | दि प्रिन्सिपाल जगत्पूर ब्रह्मचर्याश्रम | चटगांव (बेंगाछ) |

पंचभृतित्रदोषचचीपरिषदिसमाहृतानां सभ्यानां नामानि. २५६

| २६१ दि प्रिन्सिपॉल गुरुकुल आयुर्वेदिक कॉलेज | |
|--|---------------------|
| गुरुकुल कांग्डी | हरद्वार (यू. पी.) |
| २६२ दि प्रिन्सिपॉल ऋषिकुल आयुर्वेदिक कॉलेज | हरदार (यू. पी.) |
| 222 6 66 7 | भिवानी (जि. हिसाळ) |
| २६४ दि प्रिन्सिपॉल संस्कृत कॉलेज | बृंदावन मथुरा |
| २६५ दि प्रिन्सिपॉल संस्कृत कॉलेज | खुर्जा (यू. पी.) |
| २६६ दि प्रिन्सिपॉल आयुर्वेदिक कॉलेज | पाटणा (बिहार) |
| २६७ दि प्रिन्सिपॉल गव्हर्मेन्ट कॉलेज | कु चबिहार |
| २६८ दि प्रिन्सिपॉल विनय चतुर्घाटी | वर्धमान (बेंगाल) |
| २६९ दि प्रिन्सिपॉल संस्कृत समाज | डाक्सा (बेगाल) |
| २७० दि प्रिन्सिपोल कवींद्र कॉलेज जैला | बारिसाल (बेंगाल) |
| २७१ दि प्रिन्सिपाल संस्कृत कॉलेज | म्लागोड (बेंगाल) |
| २७२ दि प्रिन्सिपॉल विश्वनाथ आयुर्वेद विद्यालय | |
| ९४ जुगराज स्ट्रीट | कलकता |
| २७३ दि प्रिन्सिपाल विश्वधनंद आयुर्वेदिक कॉलेज | कलकता |
| २७४ दि प्रिन्सिपाल अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय | कल्कता |
| २७५ दि प्रिन्सिपॉल संस्कृत कॉलेज | कल्कता |
| २७६ दि सेकेटरी यू. पी. आयुर्वेद माहाविद्यालय | पाटणा [गुजराथ] |
| २७७ दि सेक्रेटरी मुंबई आयुर्वेदीय पाठशाला काल | |
| २७८ डॉ. जे. डी. शर्मा एम्. बी. बी. एस्. | सुखतानपूर |
| २७९ कविराज उपेंद्रनाथदाँसँ सांख्यव्याकरणतीर्थ | दिल्ली |
| २८० श्री. मुन्नीलाल गोखामी | दिछी |
| २८१ श्री. शिवनाथशास्त्री | दिर्छा |
| २८२ डॉ. पी. सुब्बाराव बी. एस्. सी. प्रेसिडेंट | |
| आयुर्वेद विश्वविद्यालय | कोकोनाडा |
| २८३ वै. हरिदत्तजीशास्त्री संपादक अश्विनी कुमार | लाहोर |
| | 2080 |

२८४ पं. नित्यानंद शर्मा आयुर्वेदाचार्य २८५ पं. मणिराम शर्मा आचार्य २८६ कविराज पं. नंदलाल कौल खारीयर २८७ कृष्णम्माचार्यशास्त्री संस्कृत पाठशाला २८८ पं. व्रजिकशोर आयुर्वेदाचार्य बिडिकोठी बेगमपूर [पाटणा] २८९ पं. सहदेव मिश्र आयुर्वेदाचार्य २९० पं. सिद्धेश्वरनाथ उपाध्याय आ. स्कूल २९१ प्रि. जगल्पूर ब्रह्मचर्याश्रम २९२ पं. धर्मदत्तजी गुरुकुल आ. वि. २९३ पं. श्रीदत्तजी हार्मा २९४ पं. जी. एम्. जोशी एम्. ए. २९५ वे. सदाशिव बळवंत कुळकणी २९६ वे. वेणीमाधवशास्त्री जोशी २९७ पं. माधवशास्त्री पंडित २९८ पं. पंडित विश्वनाथ महाजन २९९ पं. रामचंद्र शर्मा जाशा, प्रतापमील ३०० वै. भू. वामनशास्त्री दातार ३०१ आयुर्वेदाचार्य पं. रामदेव अवस्थी ३०२ पं. श्रीकृष्ण मिश्र ३०३ पं. शारदासेन लालावास, महाराजा महाविद्यालय ३०४ पं. जगदीश शर्मा आयुर्वेदाचार्य ३०५ वे. मन्नूनाथ झा आयुर्वेदाचार्य ३०६ पं. वनमाली त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य ३०७ पं. नर्मदेश्वर झा ३०८ पं. हरिशंकर मिश्र आयुर्वेदाचार्य ३०९ पं. शिवचरण मिश्र

ढाकाटोल [काश्मीर] सीकर [जयपूर] श्रीनगर [काश्मीर] आनंद पाटणा पाटणा ु चटगांव बेगाल कांगडी - भिवानी [ाजि.।हिस्सार] पुणे कोल्हापूर अहमदनगरः अहमदनगर् पैठण अमळनेर नासिक मुझफरपूर मधुवनी [दरभंगा]

दरभंगा छपरा समस्तीपूर दरभंगा आरा छपरा गुथनी छपरा माड [दरभंगा] मोतीहारी चंपारण्य

पंचभृतित्रदे।यचचीपरिषदिसमाहतानां सभ्यानां नामानिः २५८

| 320 | पं. कालिका मिश्र | सितामढी [मुझफरपूर] |
|--|--|--------------------|
| | कविराज छितमोहन कविसागर | वारिसाङ बारिसाङ |
| | 동생이다. 그는 그는 그들은 그 그 사람이 하지 않게 그는 그리고 있다. 그 그 아 | |
| | कविराज विमलानंद तर्कर्तार्थ | कलकता |
| As Profession 1 | कविराज आदित्यनाथ सांख्यतीर्थ | कलकता |
| ३१४ | कविराज ताराचरण सर्वदर्शनतीर्थ | कलकत्ता |
| ३१५ | कविराज सुरेशचंद्र गोस्वामी | कलकता |
| ३१६ | कविराज अनिलकुमार मुखोपाध्याय | कार्लीपूर |
| ३१७ | कविराज मोहनचन्द्र तर्कतीर्थ | कल्कता |
| ३१८ | डॉ. कार्तिकचन्द्र बोस एम्. बी बी. एस्. | कलकता |
| 386 | पं. सर त्रजेन्द्रनाथ सील | म्हैस्र |
| ३२० | वैद्य नाथशंकर विद्याशंकर | वढवाण गुजराथ |
| 328 | वैद्य दामोदर शहा | जुनागड |
| ३२२ | पं. मणीरामशमी आयुर्वेदाचार्य | रामगड [सिक्कर] |
| ३२३ | प्रि. तक्षशिला आयुर्वेदिक कॉलेज | रावळपिंडी |
| ३२४ | प्रि. आयुर्वेद पाठशाळा | कसौछी |
| ३२५ | वैद्य गोपाळशास्त्री केतकर | एलिचप्र |
| ३२६ | डॉ. एम्. व्ही. आपटे एम्. बी. बी. एस्. | पुणे |
| २२७ | पं. देवनायकाचार्य पंडितप्रकाण्ड | बनारस |
| 326 | पं. रुद्रदेव विद्यालंकार | 4 , 4 4 5 5 |
| ३२९ | पं. रघुवीर दयालजी मिश्र | |
| ३३० | कविराज भूपेन्द्रनाथजी | |
| ३३१ | श्री. पं. पुरुषोत्तमजी उपाध्याय | · ,, |
| ३३२ | राजेश्वर दत्तजी शास्त्री | , |
| ३१३ | पं. भैरवप्रसाद शुक्क | ,, |
| ३३४ | प्रो. गोडबोले बी. एच्. यू. | |
| The state of the s | प्रो. फुलदेव सहाय वर्मा एम्. एस्. सी. बी.एच् | |
| | प्रो. राणे बी. एच्. यू. | |

| ३३७ | डॉ. जोशी बी. एच्. | वनार्स |
|------|--|---|
| ३३८ | | 97 |
| ३३९ | श्री. काटनी प्रसादजी व्याकरणाचार्य | 33 |
| ३४० | श्री. विश्वनाथशास्त्री एम्. ए. | *** |
| 388 | श्री. सिताराम जयराम जोशी साहित्याचार्य | ,, |
| 385 | व्याकरणाचार्य महादेवशास्त्री | 77 |
| 383 | वैद्य बदिनाथजी | 77 |
| \$88 | श्री. श्रीनिवासशास्त्री | 77 |
| 384 | श्री. रामशंकरजी आयुर्वेदाचार्य | 7) |
| ३४६ | क. ज्योतिषचंद्र भट्टाचार्य | 7, |
| 280 | पं. विष्णुदत्तजी वैद्य आयुर्वेदाचार्य | ,, |
| ३४८ | पं. मोहनलालजी | 77 |
| 386 | क. हाराणचंद्र चौधरी | 73 |
| ३५० | बालगोविंदजी वैद्य | 77 |
| 348 | आचार्य श्री कुमारस्वामी | 77 |
| ३५२ | पं. ब्रिजमोहन दिक्षित | 5) |
| ३५३ | पं. लक्ष्मीशंकरजी | 73 |
| ३५४ | पं. रघुवीरजी वैद्य | 77 |
| ३५५ | पं. हनुमान प्रसाद वैद्य शास्त्री | >) |
| ३५६ | पं. नागेश्वरशास्त्री वैद्यभारती | 19 (19 (19 (19 (19 (19 (19 (19 (19 (19 (|
| ३५७ | पं. केदारनाथजी साहित्याचार्य | |
| ३५८ | पं. दामोदर लालजी गोस्वामी | 8 13 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 3 |
| ३५९ | पं. सूर्यनारायण शुक्र | 99 |
| ३६० | पं. अंबिकादत्त उपाध्याय | 79 |
| 388 | श्री. गोपालशास्त्री दर्शनकेसरी | ,, |
| ३६२ | श्री. विन्ध्येश्वरी प्रसाद | |

पंचभृतित्रदोषचर्चापस्पिदिसमाह्तानां सभ्यानां नामानि. २६०

| ३६३ | पं. केदारनाथजी सारस्वत सं. सुप्रभातम् | बनार्स |
|-------|--|--------|
| ३६४ | श्री. महादेवशास्त्री आयुर्वेदाचार्य | " |
| ३६५ | ,, देवदत्त त्रिपाठी | " |
| ३६६ | "रत्नचंद्र आयुर्वेदाचार्य | 23 |
| ३६७ | " आयुर्वेदविशारद देशपांडे | 27 |
| ३६८ | ,, ब्रह्मदेव ओझा आयुर्वेदाचार्य | 13 |
| ३६९ | पं. जगनाथजी आयुर्वेदशास्त्री | 33 |
| 300 | कविराज हेमेन्द्र | 72 |
| ३७१ | कान्यतीर्थ जतीन्द्रनाथ | 79 |
| ३७२ | साहित्याचार्य काल्टिकाचरण बी. ए. | 27 |
| ३७३ | श्री. शर्युप्रसाद द्विवदी | " |
| ३७४ | ,, चंडी प्रसादजी शुक्र | ,, |
| ३७५ | ,, राधािकसनजी झा | " |
| ३७६ | ,, जगदीश झा | " |
| ३७७ | | 13 |
| ३७८ | ,, म. म. हरिहर मृणालजी निलकंठ | " |
| ३७९ | | " |
| ३८० | | त ,, |
| ३८१ | कविराज हरिदासशास्त्री काव्यवेदतीर्थ | ,, |
| ३८२ | श्री. शंकर तर्करन | .)} |
| ३८३ | श्री. डॉ. भास्करदत्त | 29 |
| \$ 68 | Mariana da Maria de M | " |
| ३८५ | of the Mark Mark County Transfer and the county of the Cou | 23 |
| ३८६ | , कालिकाचरण बी. ए. आयुर्वेदाचार्य साहित्याचार्य | " |
| ३८७ | 지, 주민 중요 100 이번을 하는 입니다. 그렇게 되었습니다. 그는 그는 그는 그를 잃어지고 그는 것이다. 그를 하는 것이 그를 했다. | 77 |
| 366 | : श्रीमान् काशीनाथजी एम्. ए. | 17 |

| ३८ | र डॉ. ए. बी. मिश्र बी. एच्. यू. | बनारस |
|-----|---|----------------|
| ३९ | | 2 7 |
| 398 | कविराज पं. ताराचरणजी सर्वदर्शनाचार्य | |
| ३९: | £, | 27 |
| 36 | ३ पं. विश्वनाथशास्त्री द्रविड एम्. ए. | ग्वाल्हेर |
| ३९६ | १ पं. जयरामजी शुक्क | बनारस |
| 390 | ९ ,, रामाचार्य पुराणीक | 27 |
| 398 | ६ ,, हरिरामशास्त्री शुक्र |)) |
| 30, | ० ,, गणपतीशास्त्री हेवार | 99 |
| ३९० | ५ ,, शंभुरामशास्त्री | 99 |
| ३९६ | रे ,, जानकीलालजी | 73 |
| 800 | ,, रघुनंदनप्रसाद शुक्र | ** |
| 80 | ९ ,, गोपालमइ भइ | 13 |
| 800 | र ,, मुकुंदपंत पुणतांबेकर | 79 |
| 80 | ३ ,, गोपीनाथशास्त्री मंडलीकर | *, |
| 808 | ,, निल्कंठशास्त्री जोशी | 79 |
| 800 | र ,, रघुनाथ सुकुछ | 37 |
| 808 | ६ ,, सिताराम जयराम जोशी | " |
| 801 | ९ ,, एम्. व्ही. शास्त्री | मंगलोर |
| 800 | ८ ,, अनंताचार्य आद्य | विजापूर |
| 800 | २ ,, नागेशशांस्त्री उपन बेटीगिरी | धारवाड |

पंचभूत त्रिदोषपरिषदि उपस्थितानां सभ्यानां नामानुक्रमाणिः

| 8 | पं. मदनमोहन मालबीय ब्हॉइसचान्सेलर हिंदु युनिब्हर्सिटी | बनार |
|------|---|------|
| २ | म. म. पा. प्रमथनाथ तर्कभूषण | 37 |
| 3 | म. म. पा. गणनाथसेन सरस्वती कळकत्ता | |
| 8 | पं. मधुसूदन सरस्वती विद्यावाचरपती जयपूर [राजपुताना | |
| ч | म. म. पा. गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी ,, | Es i |
| દ્ | पं. आयुर्वेदमार्तण्ड छक्ष्मीरामस्त्रामी | |
| ૭ | ,, सत्यनारायणशास्त्री भिषगाचार्य बनारस | |
| 4 | ,, राजेश्वरशास्त्री द्रवीड ,, | |
| ९ | ,, देवनायक आचार्य ,, | |
| 80 | दां. बाळकृष्ण अमरनाथ पाठक अहमदाबाद | |
| ११ | डॉ. एस्. एस्. जोशी | |
| १२ | कॅप्टन जी. श्रीनिवासमूर्ती मदास | |
| | डॉक्टर ए. बी. मिश्र बनारस | |
| \$8 | पं. फणिभूषण तर्कवागीश | |
| | . ,, श्रीशंकर तर्करत्न ,, | |
| | ,, बाळकृष्ण मिश्र न्यायाचार्य ,, | i.i. |
| | े ,, हरिनाथशास्त्री | |
| | ः ,, ह्ररीशरणानंदस्वामी अमृतसर | |
| 1000 | , ,, उपेंद्रनाथदास दिल्ली | |
| २० | 5. 작가 없는 가다. 한경기 이렇게 되는 것이다. 일하지는 사이를 하는 사이를 하는 것이다. 그는 사이를 하는 것이다. | |
| २१ | | |
| २२ | 20일 (1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1. 1 | |
| 3 | ्र, भागीरथस्वामी कलकत्ता | |

२४ पं. एम्. विश्वेश्वरशास्त्री H. I. M. P. मद्रास

२५ ,, सत्यदेव पांड्ये, कानपूर.

२६ ,, किशोरीदत्तशास्त्री, कानपूर

२७ ,, जगन्नाथप्रसाद शुक्क, प्रयाग

२८ ,, रुद्रदेव विद्यालंकार, विद्यापीठ काशी

२९ ,, विरमणी उपाध्याय काशी

३० ,, गणेशदत्त सारस्वत ऋषिकुल कांगडी

३१ ,, भानुशंकर निर्भयराम त्रिवाडी भावनगर

३२ ,, नागरलाल मोहनलाल पाठक पाटणा

३३ ,, श्रीकांत रामी पाटणा

३४ ,, घनान्दपंत दिल्ली

३५ ,, महादेवजीशास्त्री काशी

३६ ,, रामदासजी गौड काशी

३७ श्रीयुत प्रो. दत्तात्रय अनंत कुलकर्णी बनारस

३८ डॉ. बी. जी. घाणेकर बनारस

३९ पं. जगनाथप्रसाद वाजपेयी अस्सी पो. बनारस

🛙 • ,, हरीनंदन झा पाटणा

४१ ,, हरीनारायण चतुर्बेदी पाटणा

४२ ,, कविराज प्रतापसिंह काशी

४३ ,, चन्द्रशेखरधर शर्मा चंपारण्य

४४ ,, ब्रिजमोहन दिक्षीत चतुर्वेदी काशी

४५ वैद्य गोपाळशास्त्री गोडबोले चिचवढ (पुणे)

४६ पं. दुर्गाशंकर केवळरामशास्त्री मुंबई

४७ डॉ. बाबासाहेब परांजपे नागपूर

४८ पं. भिकाजी विनायक डेग्वेकर जबलपूर

४९ ,, वैद्यभूषण गोवर्धनदास छांगाणी नागपूर

पं. त्रि. परिषधुपिस्थतसभ्यानां नामानि

५० पं. पुरुषोत्तम गणेश नानल पुणे

५१ ,, राजवैद्य नंदाकिशोरजी जयपूर

५२ डॉ. बिष्णु महादेव गट येवलें

५३ वैद्यपंचानन गंगाधरशास्त्री गुणे अहमदनगर

५४ वैद्यपंचानन कवडेशास्त्री बी. ए. पुणें

५५ पं. श्रीनिवासशास्त्री, नारायण दिक्षीत छेन बनारस

५६ ,, गंगाधर विष्णु पुराणिक पनवेल

५७ वेद्यराज दिनकर कृष्ण देवधर नासिक

५८ पं. रामदांसं कालिदास पाठक यावल

५९ वैद्यरन विष्णुशास्त्री केळकर नासिक.

६० पं. न्यायरत्न वाडीकर पुणें

६१ डॉक्टर मुकुंदस्वरूप वर्मा बनारस

६२ पं. आयुर्वेदाचार्य पांडुरंग हरी देशपांडे पुणें

६३ ,, ना. ब्यं. जोशी पुणें

६४ वैद्यभूषण गंगाधरशास्त्री जोशी पुणें

६५ पं. वैद्यराज हरिप्रसाद भट्टा रावपुरा बडोदा

६६ वैद्यपंचानन भैरविगरी मारवाडी विद्यालय मुझफरपूर

६७ प्रो. एम्. बी. राणे वनारस

६८ रॅंगलर प्रो. नारळीकर

६९ प्रो. फुलदेव सहाय्य वर्मा ,,

७० पं. जादवजी त्रिकमजी आचार्य मुंबई

७१ ,, बापालाल गरबडदास वैद्य हांसोट जि. भडोच गुजराथ

७२ " भागवतजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य छपरा

७३ " विश्वनाथजी आयुर्वेदाचार्य पाटणा

७४ ,, हरनंदन झाजी आयुर्वेदाचार्य पाटणा

७५ ,, धर्मानंद झा गुरुकुल कांगडी

| | | 41.45 |
|----|------------|---|
| ७६ | पं. | खुबचंद शर्मा जोधपूर |
| 00 | 33 | सितारामजी त्रिपाठी बलियां |
| ७८ | " | केदारनाथ ओझा |
| 90 | 79 | कालीप्रसाद मिश्रुवनारस |
| 60 | " | नारायणाचार्य वरखेडकर जबलपूर |
| 28 | 22 | राजितराम पांडे |
| ८२ | ») | देवराजशास्त्री अमृतसर |
| ८३ | 2, | पुरुषोत्तमजी उपाध्यायजी बनारस |
| 68 | 39 | राजेश्वरदत्तशार्का आयुर्वदाचार्य बनारस |
| 44 | 22 | मोहनलाल दांधीच आयुर्वेदाचार्य ,, |
| ८६ | 97 | मुनिलाल ओझा गोस्वामी ,, |
| ८७ | 22 | बदीनाथ शुक्रशास्त्री ,, |
| 66 | 33 | महादेव पांड्ये ,, |
| ८९ | 23 | निरीक्षणपती मिश्र शास्त्राचार्य |
| 90 | 23 | गिरिजादत्त त्रिपाठी न्यायाचार्य |
| 68 | ,7 | कन्हय्यालाल शर्मा जयपुर |
| ९२ | 79 | स्वामी सुरजनदास आचार्य जयपूर |
| 63 | 77 | मंगलदासस्बामी जयपूर |
| 98 | 2.7 | नारायणदत्तशास्त्री इंदूर |
| ९५ | 32 | दामोदरशास्त्री भिषगाचार्य साहोर |
| ९६ | 77 | नानलोपाव्ह मधुसूदन शर्मा |
| ९७ | " | दामोदरशास्त्री कोनकर पनवेल |
| ९८ | 53 | रामचंद्र बलवंत शिराळकर पुणें |
| 99 | 29 | अंविकाप्रसाद उपाध्याय |
| १० | 0 , | , नारायणदत्त सिद्धांतालंकार दिस्त्री |
| १० | ξ, | , कविराज शिवनाथ शर्मा |
| 90 | ₹, | , केदारनाथ शर्मा |
| | | 1. 1990年 - 1 |

पं. त्रि. परिषद्यपरिस्थितसभ्यानां नामानि

| १०३ पं. दुर्गादत्तशास्त्री काशी | |
|---|-------|
| १०४ ,, श्री हाराणचंद्र रॉय चौधरी | बनारस |
| १०५,, कविराज ज्योतिषचंद्र भट्टाचार्य | " |
| १०६ ,, यतीन्द्रनाथ काव्यतीर्थ | ,, |
| १०७,, रामशंकर वैद्य | 77 |
| १०८ ,, हरिहर शर्मा | 77 |
| १०९ ,, बालबोध मिश्र | 33 |
| ११० ,. सिताराम त्रिपाठी | 55 |
| १११ ,, धर्मानंदशास्त्री | 33 |
| ११२ ,, वामनशास्त्री दातार नासिक | |
| ११३ ,, रत्नचन्द्र वैद्य बनारस | |
| ११४ ,, रामचन्द्रशास्त्री खनंग ,, | |
| ११५ ,, हरिरामशास्त्री शुक्र ,, | |
| ११६ ,, त्रिवेणीप्रसाद ,, | |
| ११७ ,, केदारनाथ पंडीत ,, | |
| ११८ ,, पुरुषोत्तम उपाध्याय ,, | |
| ११९ "सरयुप्रसाद द्विवेदी " | |
| १२०,, जगन्नाथ मिश्र | |
| १२१ ,, कालिकाचरणशास्त्री बनारस | |
| १२२ ,, लालचन्द्र वैद्य | |
| १२३,, बालगोविंद रामी वैद्य | |
| , | ारस |
| १२५,, रामाचार्य पुराणिक , | • |
| | , |
| १२७ ,, निलकंठशास्त्री जोशी , | , |
| १२८,, गोपालमङ मङ्, | , |

१२९ पं. रामनाथ सुकुल बनारस १३०,, गणपति हेब्बार 23 १३१ ,, जयरामशास्त्री शुक्र १३२,, लक्ष्मीनाथ झा 39 १३३ ,, रामव्यास ज्योतिषी 9.9 १३४ ,, विश्वंभर दयास्त्र राजवैद्य १३५,, सिताराम जयराम जोशी बनारस १३६ ,, वैद्य अमृतलाल प्राणशंकर पट्टणी १३७ ,, व्यंकटाचार्य वरखेडकर १३८ ,, मुनिश्वर शर्मा मिश्र बनारस १३९, महादेव प्रसाद १४०, पी. बानर्जी 33 १४१ ,, विजयचन्द्र चै।धरी १४२ ,, विश्वनाथशास्त्री द्वीड खालेर १४३ ,, शंभुरामजी १४४ ,, जानकीलालजी १४५ ,, रघुनंदनप्रसाद शुक्र १४६ ,, भैरवप्रसाद शुक्र १४७ ,, वामदेव जीशास्त्री बनारस १४८ ,, बद्रीदत्त झा अलिगड १४९ ,, हनुमानप्रसाद वैद्यशास्त्री बनारस १५० ,, नीळकंठराव देशपांडे आयुर्वेदविशारद १५१ डॉक्टर भास्करदत्त हेल्थ ऑफिसर बनारस युनिव्हर्सिटी १५२ ,, महादेवशास्त्री व्याकरण पास्टाचार्य बनारस १५३ ,, नारायणशास्त्री खिस्ते १५४ .. रामगोपाळ गुप्त

पं. त्रि. परिपबुपरिस्थितसभ्यानां नामानि

१५५ प्रो. बलबंतिसँग ठाक्र हिंदुयुनिव्हिसिटी बनारस

१५६ , रामस्वरूपिसंग हिंदुयुनिव्हर्सिटी बनारस

१५७ वैद्यराज गोगटे अहमदनगर

१५८ डॉ. पाठक आयुर्वेदिक कॉलेज बनारस

१५२ प्रो. आण्णासाहेब खापर्डे

१६० आचार्य आनंदशंकर बापुभाई घुव प्रोव्हाईस चान्सेलर हिं. यु. बनारस

१६१ डॉ. गोंड आयुर्वेदिक का. हि. यु. बनारस

१६२ पं. विन्ध्येश्वरीप्रसाद आयुर्वेदाचार्य

163 Dr. S. K. Maitra

164 Dr. N. N. Godbole

165 Pandit. Shrikrishua Joshi

166 Pandit Maheshwarji Aynuidacharya

१६७ ,, त्रयंवकशास्त्री आपटे पुणे

१६८ ,, बदरीदत्त मिश्र

१६९ ,, नारायणदत्त त्रिपाठी

१७० ,, माथुर प्रिन्सीपाल

१७१ वैद्य रामकृपाल गुप्त

१७२ पं. शोभालालजी अग्निहोत्री साहित्याचार्य

बै:रवाक्षरी कृता तेषामेव नामानि मुद्रितानि। अन्ये च बहवः पंडितास्समागता आसन्। सर्वमपि सभाग्रहं जनसंमर्दभरितं प्रत्यहमासीत्।

पंचमहाभूतत्रिदोषचर्चापरिषद्।

अस्याः परिषदो निर्विन्नपरिसमाप्यै सुशोभनफलावाप्तये च तथा प्रारं-भान्तः समयपर्यन्तम् सर्वव्यवस्थाकरणाय, प्रयतमानानां वाराणसीस्थानां सुप्रहीतनामधेयानां, किवराज प्रतापसिंह, पंडित दुर्गादत्तशास्त्री, प्रो. दत्तात्रेय अनंत कुळकर्णी प्रभृतीनां सहाय्यार्थं परिषक्तालात् पूर्वमेव सप्तदिनं ता. २४ १०।३५ तमे दिने परिषत्सहायमन्त्रिणा वामनशास्त्री दातारा वाराणस्यां गता आसन् । तैस्तत्रस्थसहाय्यकर्तृभिः साकं स्वागताध्यक्षाणां मान्यवरमहामना-पंडितमालवीयानामनुमत्या श्री हिंदुविश्वविद्यालये एव आयुर्वेदविद्यालयस्य भन्ये भवने परिषदः सभापतिसदक्षश्रेष्ठ पुरुषनिवासयोजनां, तथैव, वाराणस्यां विस्तीणीसु सर्वीपकरणसुसजासु धर्मशाळासु, प्रासादेषु च निवासन्यवस्थां कृत्वा सर्वमप्यावश्यकरणीयं कार्थं संपादितम् । तैस्तु वाराणस्यां ये च प्रमुखा वैद्यवरा वैद्यरन त्रिंबकशास्त्री जोशी, श्री निवासशास्त्री, श्री सत्यनारायणशास्त्री प्रभृतयः तथा च ये पंडितप्रकाण्डाः प्रत्नविद्याचार्याः श्रीपण्डितमूर्धन्यो राजेश्वरशास्त्री, पं. देवनायकाचार्य, पं. हरिनाथशास्त्रीप्रमृतयस्तथा च न्रनविद्याविशारदा वैज्ञानिकवरा प्रो. एस्. एस्. जोशी, प्रो. शर्मा, प्रो. राणे, प्रो. गोडबोळे, रॅ. प्रो. नारळीकर, प्रो. खापर्डेप्रभृतयस्तेभ्यः परिषदर्थे निमत्रणं दत्वा सहाय्यमपि याचितम् । श्रीमन्तो जादवजीमहाभागास्तु परिषत्कालपूर्वमेवागत्य वाराणस्यां परिषत्कार्यव्यमा वभूतुः । प्रो. द. अ. कुळकर्णा, डॉ. घाणेकरप्रभृतयस्तु नितरां परिषत्कार्यसिध्ये यतमाना अभूवन् । श्रीमन्तः पण्डितवरण्या राजेश्वरशास्त्रिणो पण्डितश्रेष्ठदेवनायकाचार्यैरसाकं पंचभूतात्रिदोषपरिषाद्विषयकाविचारांशविमर्शे रात्रंदिवं शास्त्रप्रथसमुद्रे गाहमाना अवर्तंत । पण्डित दुर्गादत्तराश्चिणो, रसायनाचार्या प्रतापसिंहा, आयुर्वेदाचार्य

जगन्नाथप्रसाद वाजपेयी, पं. राजेश्वरदत्तशास्त्री, पण्डित भैरवदत्तप्रसादप्रभृतयस्तु सोत्साहभित्तमानसाः श्रमभारमगण्णय्य यथेयं परिषद् यशस्त्रिनी सुफालिता कृतार्था च स्यात् तदर्थं स्त्रीयं गृहकृत्यमेवेदिमिति मन्वानो नितरां कार्यतत्परा अभूवन् । बनारसिंहद्विश्वविद्यालयान्तर्गत-आयुर्वेदिविद्यालयान्तेवासिनो स्त्रयं-सेवकत्वेन, भोजनगृहेषु, सभासदिनवासस्थलेषु, अग्निरथविश्रांतिस्थलेषु (रेल्वे स्टेशन) सभागृहे च तथा नगरे कार्यनिमित्तं गमनागमनेषु, समागतसभ्यानां सर्वतः सुन्यवस्थाविधायिनीं सेवां कर्तुं परमोत्साहभरेण क्रेशशतं सोद्वा विनम्रान्तःकरणयुता सेवातत्परा आसन् । सभास्थानं तु विश्वविद्यालये एव सुविस्त्रीणे आयुर्वेदिवद्यालयस्थाने श्रृंगारितमासीत् । लतापल्लवानां, ध्वजादीनां आयुर्वेदीयत्विविद्यानं, सुभाषितवचनानां, सुप्रथितायुर्वेदपण्डितमूर्धन्यप्रति-कृतीनां (फोटाज्) सुचारुतया रचनया सभास्थानं सुमनोहरं शांतगंभीर-विचारोद्भावकं कृतमासीत् । सभास्थाने सर्वाप्यासनपद्भितस्तु प्राचीनस्वरूपेणैव सुसर्जीकृता ।

अन्ततो निम्नलिखिता निरीक्षका उभययोः परिषदो अवर्तन्त ।

- १ श्री. पण्डित म. म. पा. प्रमथनाथ तर्कभूषण ।
- २ श्री. म. म. पा. डॉ. कविराज गणनाथसेनसरस्वर्ता।
- ३ श्री. म. म. पा. फणि भूषण तर्कवागीश ।
- ४ श्री. पण्डितप्रकांड मधुसूदनसरखती विद्यावाचस्पती ।
- ५ श्री. पण्डित श्रीशंकर तर्करत्न ।
- ६ श्री. पण्डितश्रेष्ठ राजेश्वरशास्त्री दाविड।
- ७ श्री. पण्डित आयुर्वेदमातैंड लक्ष्मीरामस्वामी ।
- ८ श्री. पण्डित वैद्यरन क्या. जी. श्रीनिवासमूर्ती ।
- ९ श्री. पण्डित वैद्यराज सत्यनारायणशास्त्री ।
- १० श्री. डॉ. ए. बी. मिश्र बी. एच्. यू.।
- ११ श्री. दॉ. एस्. एस्. जोशी बी. एच्. यू.।

१२ श्री. डॉ. बाळकृष्ण अमरजी पाठक । १३ श्री. पण्डितगरिष्ठ देवनायकाचार्य ।

पंचभूतपरिषदि श्री. पं. म. म. पा. प्रमथनाथ तर्कभूषणा सभापतय आसन्, अन्ये निरीक्षका आसन्, त्रिदोषपरिषदि डॉ. गणनाथसेनसरस्वतयः सभाष्यक्षा आसन् अन्ये निरीक्षका इति व्यवस्था ।

पंचभूतपरिषत्प्रारंभः।

ता. २-११-३५ दिने माध्यान्हवेलायां सभागृहे महानतः पण्डितवर्या समायाताः येषु म. म. पा. प्रमथनाथ तर्कभूषण म. म. पा. डॉ. कविराज गणनाथसेनसरखती, म. म. पा. फणिभूषण तर्कवागीश, पण्डितप्रकांडा मधुसूदनसरस्वती विद्यावाचस्पतयः म. म. पा. पण्डित गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी, म. म. फणिभूषण तर्कवागीरा, पण्डित श्री. रांकर तर्करत्न, पण्डितप्रकांड श्री. राजेश्वरशास्त्री द्रवीड, पण्डितश्रेष्ठ देवनायकाचार्य, क्यां. जी. श्रीनिवास-म्र्ति, श्री. रामदास गोंड, श्री. श्री. नारळीकर, श्री. गोडबोळे, श्री. वर्मा, प्रो. जोशी, प्रो. राणे. डॉ. वर्मा, वैद्यराज लक्ष्मीरामस्वामी, वैद्यराज हरिरंजन मुद्धमदार, वैद्यराज उपेंद्रनाथदास, स्वामी हरिशरणानन्द, स्वामी भागीरथ, आ. म. पं. मस्तरामशास्त्री, पं. किशोरीदत्तशास्त्री, पं. गोवर्धनशर्मा छांगणी, पं. जगन्नाथप्रसाद शुक्क, पं. सुखदेव पांड्ये, पं. गणेशदत्त सारस्वत, पं. धर्मदत्तजी शास्त्री, प्रो. धर्मानंदजी, पं. त्रजिवहारी चतुर्वेदी, पं. सत्यनारायण-शास्त्री, पं. न्यायाचार्य बाळकृष्णजी, पं. वैद्यराज श्रीनिवासशास्त्री, डॉ. पाठक, डा. भट, पं. चंद्रशेखरधर, पं. डेग्वेकरजी, पं. जादवजी त्रिकमजी आचार्य, पं. कवडेशास्त्री, पं. सुखरामदास टी. ओझा, पं. नानल, पं. आपटे नंदिक्शोर जयपूर, पं. नारायणदत्तजी, स्वामी मंगळदास, स्वामी विश्वंभरदत्तजी वे.पं. गुणेशास्त्री, वे. गोपाळशास्त्री गोडबोले, वैद्यराज देशपांडे, डॉ. बाबासाहेब प्रांजपे इस्राचनेके प्रथितनामधेयाः पण्डिता दार्शनिका दक्षतराश्च समागता आसन् । सर्वमिप भन्यं सभागृहं समागतसभ्यैः पूरितमासीत् । रावळिपिंडितो मद्रपुरपर्यन्तम् तथा सिंधुदेशतो कळिकातापर्यन्तम् तथैव मध्यदेशीया महा- राष्ट्रीयास्सर्वप्रान्तस्थाः पण्डितवरास्संमीलिता बभूतुः । प्रथमं श्रीशस्तुतिपराणि श्री धन्वंतरीस्तुतिवंदनपराणि च कानिचित् पद्यानि मंगलार्थं आयुर्वेदविद्या-लयीनैः छात्रैः श्रुतिमनोहरं गीतानि । अनंतरं पण्डित जगन्नाथशर्मा वाजपयी आयुर्वेदाचार्य एम्. ए. इति नामकैः प्रथितचिकित्सकैः कृता स्वागतकुसुमांजिलेः पठिता सा च यथा—

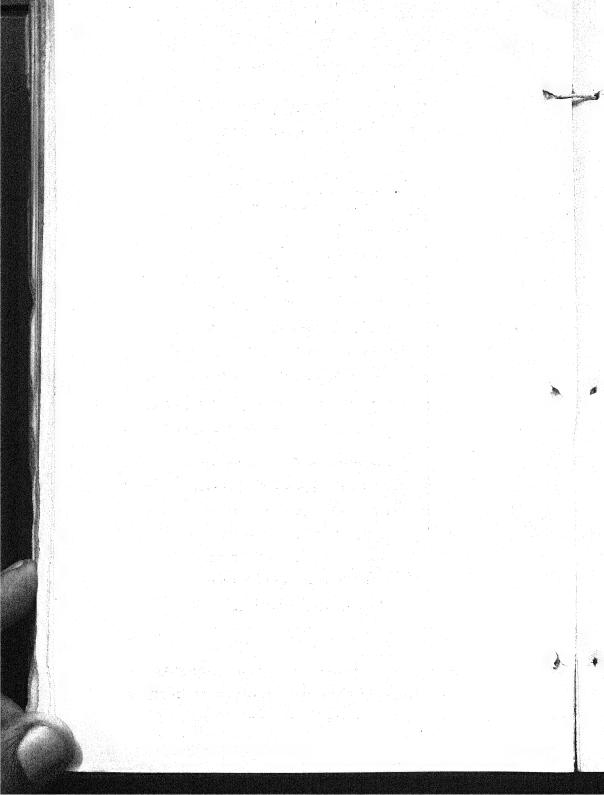
त्रिदोषपंचमहाभूतसंभाषापरिषदारंभे खागतपुष्पांजििः।

660000

श्रीमन्तो माननीयाः सकल गद्कुलध्वंसनाबद्धचित्ताः, आयुर्वेदाब्धिरत्नावचयनचतुराः स्वास्थ्यसन्दानशोण्डाः । आर्तत्राणाप्तकार्तिप्रसर्विरचनालंकृताशावितानाः, धन्वन्तर्यमिवेशप्रतिमगुणगणाः खागतं खागतं वः ॥ १ ॥ रे।गत्रजोनमूलनसम्मतीनां पुरा हिमादेः शिखरे सुरम्ये । महात्मनां संसदभूनमुनीनामितिप्रासिद्धम्परमाप्तवाक्यात् ॥ २ ॥ सेवावतारान्तरमेत्य काऱ्याः, प्राच्यप्रतीच्योभयशास्त्रदक्षे । श्री विश्वविद्यालयभूमिमागे, संराजते विज्ञवरेण्यज्ञष्टा ॥ ३ ॥ हिमादिशृङ्गोन्नतिमादधानैः श्री विश्वविद्यालयतुङ्गहर्म्यैः। ऋषीनुदारान् भवते। वहन्ती सेवेति न भान्तिवहाऽस्तिकस्य ॥ ४ ॥ परं विशिष्टेयमनेक चिन्हैरस्तीति विज्ञाः सुविभावयन्ति । शल्योपदेष्टा निह तत्र साक्षाद धन्वन्तरिर्वा गणनाथ सेनः ॥ ५ ॥ तस्याः सदस्या निाखिला बहुज्ञाः आसन् परिन्नित्यगवेदशुन्याः । अस्याः पुनर्वासववेदतत्वमध्याप्य सम्प्राप्तयशःसमूहाः ॥ ६ ॥ अत्र श्रीमान् महात्मा जगदुपकृतये दत्तर्सवस्वराशिः, राज्ञां चुडािकरीटोज्वलमणिनिचयप्रप्रहैरिचेतां घिः। खामी वर्णाश्रमाणां प्रथितपृथुयशाच्छात्रसङ्घरसंख्यैः ॥ श्रीलक्ष्मीरामनामा सदसि विजयते सर्वतन्त्रखतन्त्रः ॥ ७ ॥



सभापति, पंचमहाभूत परिषद्, काशी. श्री. पं. म. म. प्रमथनाथ तर्कभूषण.



शिष्यप्रशिष्येविंहितोपकारो विद्यप्ततन्त्रोद्धरणप्रयतः । श्रीयादवो वैद्यसमाजनेता संयोजकोऽस्या गुरुरस्मदीयः ॥ ८ ॥ न केवलं वैद्यवराः समेता वैज्ञानिका दार्शनिकास्तथैव । समागतास्तविविनिर्णयेप्सासम्पूर्तिकामा निजशास्त्रदक्षाः ॥ ९ ॥

महामहोपाध्यायोऽत्र, सर्वशास्त्रविशारदः ।
श्रीमान् प्रमथनाथोऽयं विद्वद्वन्दसमर्चितः ॥ १०॥
शक्या नैकेकशो वक्तुं गुणानिरवशेषतः ।
एकस्यापि सदस्यस्य किं समेषां महात्मनाम् ॥ ११॥
दिगतेषु व्याप्ता धवित्विषरा कीर्तिलतिका,
यदीया विद्वद्भिः स्तुतिरचनया दृद्धिततमा ।
सुप्ता द्योर्थेन प्रविद्वितमखामोदपवनैः,
समासां विद्यानामालयमिमं यः सुकृतवान् ॥ १२॥

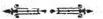
धर्मात्मको विदित्तविश्वजनीनवृत्तः श्रीमानयं कुलपतिर्जनतैकवन्दः । यत्स्वागताधिपपदं समलंकरोति, प्रथः सतां मदनमोहनमालवीयः ॥ १३

> विहाय स्वान् वासानभरगुरु सद्योपमसुखान्, समुत्साहै पुक्ताः श्रममगणियत्वाऽध्वनिभृशम्। विनाशो दोषाणां कथमथभवेन्मर्श्यसुखदः समायाता यूयं सदयहृदयाः संसदिममाम् ॥ १४ ॥ न सेवा संवृत्ता न च समुचितं खागतमभूत् न वासः संप्राप्तो भवदनुगुणः सर्वसुखदः। परं चैतहृक्तं प्रभवति गिरा मेऽञ्जलिरयं हृदुद्यानो एक् स्प्रपुरु सुमानां प्रतिनिधिः॥ १५ ॥

स्वागतकुसुमांजिलवाचनानन्तरम् श्रीमद्भिमेहामनापंडितमदनमोहनमाल-वीयैः स्वागतसामितिसभापतिभिः प्रथमं समागतानां सर्वेषां सभ्यानां प्रेमभरितांतः-करणेन सौहार्दपूर्णया गभीरया वाण्या स्वागतं कृतम् ।

इतिवृत्तम्-पं. मदनमोहनमालवीयानां स्वागतभाषणम्.

श्री महामनापंडितमदनमोहनमालवीयानां स्वागतभाषणम्.



मान्याः प्रथितविद्यावाचस्पतयः, पंडितप्रकाण्डा, दार्शनिका, वैद्यावतंसाः, पाश्चास्यवैद्यक्तिनणा, महाभागाः प्रथमं श्रीमतां महाभागानां स्वीयोद्योगरातं परित्यज्य प्रवासज्जेक्कशभरमध्यऽविगणय्य दूराव्दूरतरं मार्गमाक्रम्याऽत्र केवलं तत्वबुसुरस्या समागतानां सर्वेषां महामहिमभाजां युष्माकं सादरं सोल्हासं सप्रश्रयं च प्रेमपूरितान्तः करणेनोद्गतया सगद्गदया गिरा स्वागतं करोमि। धन्यो ऽयं दिवसः किल यस्मिन् अस्यां वृद्धावस्थायां पौरस्त्याऽपौरस्त्यविद्यासपन्नानां श्रीमतां भारतदेशीयपंडितप्रवराणां भिन्नभिन्नविषयेषु प्रविण्यकोटि समारूढानां अत्र केवलं तत्वसमन्वयबुध्या समागताना वः स्वागतकर्णसमयः संप्राप्त इति नितरां सद्भाग्यस्यावसर एव । इयमेकेव परिषदस्यां वाराणस्यामाधनिके अस्मदायुरन्तःपातिनि, काले संजायते, यस्यां पौरस्यपाश्चात्यतवज्ञानां तथा आयुर्वेदविदामांग्ठवैद्यकविदां च स्वीयतत्वप्रणालीमधिकृत्य संधायपद्धत्या श्री-भगवत्काशीविश्वेश्वर्सनिधौ कोऽप्यपूर्वी विचारविनिमयो भविता। एताहङ्निगृढ-तत्विचारसमाचितं अस्यां भारतभूमौ इदमेवैकं श्रेष्ठतमं स्थानं श्री उमारमण-चरणरजःपृतं, श्री पुण्यसालिलाया भागीरध्याः प्रवाहनिनादितं श्री वाराणसी-क्षेत्रं नाम । अस्मिन्नद्यापि बहवा गरिष्ठाऽनेकशास्त्रनिष्णाताः श्री सरस्वती-कंठभूषणाः पंडितवरेण्या भासुरभूसरा निवसंति येषां निवासोऽपि अस्य क्षेत्रस्य प वित्रये श्रेष्ठये च भगवतः कपर्दस्य तृतीयनेत्रमिव तृतीयमपि प्रथमं कारणं वरीवर्ति ।

अस्याः परिषदो विचाराईविषयानधिकृत्य द्वौ विभागौ नियोजितौ । ययोर्विभागयोर्नामकरणं १ पंचमहाभूतचर्चापरिषद् २ त्रिदोषादिचर्चापरिषदिति । अस्य समस्तस्य ब्रह्माण्डस्योपादानकारणानि पंचमहाभूतानीति पौर्वात्यशास्त्राणाः मतं । पाश्चिमात्यतत्वविदस्तु, द्विनवातितत्वसंबाछितमेवेदं जगदिति समामनंति प्रस्यक्षतया दर्शयितुमपि प्रभवन्ति । अथचानयोभिन्नप्रवाहयोर्नितरां वैभिन्यमेव उत विद्यतेऽत्र कोऽपि संगमस्यावकाशः। तथा च यैस्तत्वदर्शिभिः पुराणैर्मुनिभिः-परः सहस्राद्वाध्ययनात् अनेकेषु शास्त्रेषु स्वीयया तीव्रतपःसमुद्भूतया दिव्याद्-भुतया धिषणया निणीतेषु ब्रह्माण्डोपादानकारणेषु पंचमहाभूतेषु आधुनिक-प्रत्यक्षज्ञानिसद्धे वास्तवत्वं कथं दृग्गोचरतां यास्यतीति महानयं तत्वजिज्ञासाऽव-काशः । तथा च पंचमहाभूतोपादानानां त्रिदोषाणामपि वास्तवस्वं, पंचमहा-भूतत्वसिध्यधीनमेवेति नितरां सत्यम् । त्रिदोषमूलो ह्यायुर्वेदः । स च वेदकालादारभ्याद्ययावत्कालमपि सर्वेषां प्राणभृतां अनाराग्यव्यसको वास्तवाराग्य-प्रापको वरीवर्तीति गभस्तिप्रकाशवत् सुप्रकाशनेव । अथ चायमायुर्वेदो असद्रूप-पंचभूतमूलत्रिदोषमूलक एवस्याचेद्धंत कथं तर्हि तस्यैतन्महात्म्यमस्मिन्नन्यमोति-कशास्त्राऽभासाऽभासिते जने सुप्रतिष्टितं भवेदिस्यपि महानयं गभीरः प्रश्नः । अनयोः प्रश्नयोः श्रीमद्भिस्सर्वेरिप नव्यप्राचीन पंडितैर्दार्शनिकैर्मै।तिकशास्त्रविद्भिः दक्षतरंभिषम्भिश्च सावचितचेतोभिः सत्यान्वेषणपरैः परस्परं सौहार्दभावेन केवछं सत्ततत्वजिज्ञासाहेतुत्वेन कुशाप्रया, शास्त्रपूतया धिया तथा विचारः कार्यो येन अपक्षपातवृत्त्या प्राचीनार्वाचीनशास्त्राणामस्मिन्विषयेऽन्तत ऐत्रयं दक्पथमेष्यति इति । भवन्तो हि भारतप्रसिद्धा महान्तः परमनिपुणा स्वस्तविषयेषु । अनयोः परिषदोस्सभापतयोऽपि सरस्वतीकण्ठाभरणाः परमवन्द्याः अस्मद्विश्वविद्यालयान्त-र्गतप्राच्यविद्याविद्यालयप्रधाना वयसा शरीरेण वृद्धाऽपि नैकशास्रावगाहनप्रवीणया धिया युवानो महामहोपाध्यायाः प्रमथनाथ तर्कभूषणास्तथा भारतभिषंग्मूर्धन्या महामहोपाध्याया श्री गणनाथसेनसरस्वतीमहाभागा विद्यन्तिति सर्वथा समुचित-मेव । तथा च निरीक्षकाणामपि पडितप्रकाण्डमधुसूदनसरस्रतीप्रमुखाणा अन्येषां च प्राप्तिस्तु समुद्दिष्टकार्यसिद्धिविधायिन्येवेति संशयातीतमेव । श्रीमतां स्त्रागतं यथोचितं कर्तुमनीशा वयं, तथापि यथा कथंचन यदस्मत्तो भवेत्स्थाना-सनमोजननिवासादिषु तत्सर्वैरिप सुधिभिः श्रीमद्भिः स्वीकरणीयं । यदत्र भेवन्न्यूनं तदर्थं क्षंतन्यमिति संप्रार्थ्यः, प्रथमायाः पंचभूतचर्चापरिषदः कार्यः स्वीयसभापतिपदस्वीकरणेन श्रीमन्तो माननीयाः श्री प्रमथनाथमहाभागा प्रारमंतु इति संप्रार्थ्यते ।

पंचमहाभूतसभापतिभाषणम् ।

ततः श्रीमन्तो महामहोपाध्यायास्सभापतयो प्रमथनाथ-तर्कभूषणा अभापन्त—"अद्य तावदस्याः पंचमहाभूतचर्चापरिषदः सभापितःवं श्रेष्ठस्सभ्येर्महां प्रदत्तमिति सर्वसभ्यानिमनंदामि । वृद्धावस्थायां वर्तमाने मिय परिषत्कार्यभारो निक्षिप्तः प्रेमणा श्रीमद्भित्तथापि तं कथं वोहुं क्षमःस्याभितिमे चिताविषयो वर्तते । नेऽयं परिषद् सामान्या । अपूर्वोऽयं प्रसंगः । अस्मिन्पाश्चिमात्यशिक्षाकर्षितातः-करणे प्रस्थक्षप्रमाणैकरारणे, नवनवोत्पद्यमानभौतिकराश्चप्रात्यक्षिके काले, पौर्वात्यानामस्माकं प्राचीनराश्चितद्वातिषयेषु नास्तिवयं, संरायो, औदासिन्यं, विपर्यस्तत्वं उपहासः, अज्ञानं, तिरस्कारः इत्यादिविकारेः प्रायो विकृतमानसानां सतां, प्राचीनराश्चितद्वानां आधुनिकराश्चितद्वातिनकषेषु प्रस्यायितुं, योऽयं प्रयत्नः क्रियते स सर्वथा आश्चर्यावहस्तथापि सुतरामावस्यकः प्रशासततमश्चेति । इदमेवास्याः परिषदोऽसामान्यत्वं यदस्मिनस्थले इमे सर्वेऽपि प्रतनन्त्तराश्चविरारदाः प्रथितज्ञानिधयो विद्वत्प्रकाण्डा गरिष्ठा वृद्धा युवानश्च प्राचीनभारतीयराशिक्षविषयिकीं गौरवपूर्णो प्रेमनिष्ठां हृदि निधाय प्राचीनशास्त्र-जीवनार्थं समन्वयबुध्याऽत्र संगताः प्रयतमाना दृश्यते ।

अस्य क्षेत्रस्याऽयमेव महिमा यदत्रैतादृश्यः परिषदः प्राचीनतमकालादारभ्य बहुवः संगताः । श्रीमतो भगवत उमारमणस्य सान्निध्यात् , प्रसनीघायाः पुण्य-सालिलाया भगगतस्या भागीरथ्या निकटवर्तित्वात् , तथानैकविद्वद्भासुरभूसरनिवह-वास्तव्यात्, अस्य स्थानस्य श्रेष्ठयं, पावित्रयं आभारतात् वरीवर्ति । पूर्वमिप यदायदा एतादृशाः शास्रतत्वविवादप्रसंगाः प्रादुर्भृता आसन् तदातदा

विद्वहरेण्यानां ऋषीणां, तत्वज्ञानां, पंडितानां परिषदस्तत्विनर्णयार्थमत्रैव संमीलिता आसन् । समस्तस्य भारतवर्षस्य इदं स्थानं कस्मिन्नपि शास्त्रीये, तात्विके, धर्म-स्वरूपे, वा विषये निर्णायकमेवेति प्रथितचरमेव । वाचमर्थोनुगामिनां आद्यानां ऋषीणां संमूतिरपि अस्मत्स्थानादेवाजनिरिति सुप्रसिद्धमेव । "योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य तु वैद्यकेन ।"योऽपाकरोत्स चरकापरपर्यायो महामुनिः पतंजलिरिपि अत्रैवोषितवानिति । तथा सुप्रथितनामा महाराजो दिवोदासः काशिराजो धन्वंतरिरत्रैवाऽभूत् इति तु सुप्रथितमेव ।

येऽमी विषय।ऽस्यां परिषदि समुपस्थापिता वर्तन्ते तत्वविषयकाऽयुर्वेदविषयकास्तेषां विषयाणां स्वकीयासु संहितासु एमिरेव वाराणसीकृतिनवासैः
महामहिमभी ऋषीभिविवेचनं कृतमित्त । अतोऽस्मिन्स्थले एव पुनरिष संधायपद्धत्या मिथः संगत्योऽहापोहोयुक्त एव । मिथः संगत्या तत्विज्ञासापद्धतिस्तु
नैव नृत्ना, नाष्यस्मदिपिरिचिता । श्रीमद्भिरायुर्वेदस्य चरकसंहितावलोकिता चेत्
तस्यां बहुषु अध्यायेषु हिमवत्पार्श्वे चत्ररथवने, जनपदमंडले पंचालक्षेत्रे कंपिष्ठराजधान्यां, गंगातीरे तत्र तत्र स्थलेषु च मिथः संगतानां नीरजस्तमसां, श्रुतवयावृद्धानां जितात्मनां भद्रकाष्य, शाकुन्तेय, पूर्णाख्य, मौद्रल्य, हिरण्याक्ष,
कौशिक, निमि, बिडश, कांकायन, बाल्हीक वार्योविदादिमहर्षाणां राजषींणां
च आत्रयप्रमुखाणां अर्थवत्यस्तत्ववत्यः कथा बहुवारं संजाता इति दृष्टिपथं
आगळेदव, " यथा वातकलाकलीयज्ञानमिषकृत्य परस्परं जिज्ञासमानाः
समुपिवश्य महर्षयः पप्रछुरन्योन्यं " "सांख्यैः संख्यतसंख्येयैः सहासीनं
पुनर्वसुं । जगद्धितार्थं पप्रछ" "पुरा प्रत्यक्षधर्माणं भगवन्तं पुनर्वसुं । समेतानां
महर्षीणां प्रादुरासीदियं कथा " "वने चेत्ररथे रम्ये समीयुर्विजीहर्षिवः । तेषां
तत्रोपनिष्ठानां प्रियमर्थवती कथा । बभूवार्थविदां सम्यक् " इत्यादि ।

अतोऽयं पंचभूतादित्रिदोषादिचर्चापरिषय्प्रसंगो नैवास्माकमभूतपूर्वो नैवाऽपरिचितः। कतिपयात्कालावकाशादिस्मृता वयं संभाषापरिषत्पद्धतिमित्येव। भवतु।

सांप्रतं यान्विषयान् पुरस्कृत्य चर्चार्थं संगता वयं ते विषयास्तु

शास्त्रकारेरस्मदीयैर्यचपि निर्णातास्त्रथापि तेषां प्रतीच्यतत्वेस्सह संगितर्भवेद्वानवेति तथा प्रतीच्यप्रत्यक्षसिद्धतत्वेस्सह।स्मत्यंचमहाभूतादितत्वविषयाः प्रत्यक्षेकशरण-प्रतीच्यशास्त्रनिकषोद्धषणिसिद्धस्वरूपास्समन्वयसमिन्वताः स्युवीनैवेति महान् विचारावकाशः। यतो प्राच्यप्रतीच्यशास्त्राणां, शास्त्रज्ञानां तत्वज्ञानां च विचारपद्धितस्त्रथा विचारसाधनसामुप्रिस्तु सर्वथा भिन्नेवेति प्रसिद्धमेव। अतः कथं वा एतेषां विषयाणां संगितिभवेदिति महान् प्रश्नः। तथापि परस्परं संवदतां शास्त्रकशरणानां भारतीयसंस्कृत्याः पराभिमानिनां श्रीमतां विदुषां दृक्पथं यत्सत्यं शिवं सुंदरमागछेत्तेनास्मदीयप्राचीनशास्त्रतत्वानां सत्स्वरूपमेव प्रकटीभवि-ष्यतीति मे महान् विश्वासः। सर्वथा श्रीमन्तो परिषिन्नियमानुसारं विवादं कुर्वतो निभत्सराः शान्ता, विषयमनुसृत्येव वाग्मिनो सत्तत्वेकशरणा भवन्तु इति संप्रार्थं प्रारंभे पंचमहाभूतादिचर्चापरिषत्कार्थम्।

पंचमहाभूतपरिषदि संजातो विचारः।

मितिः कार्तिक शुद्ध ६ मंदवासरे विषयः-भूतलक्षणम् किम् ?

तदनंतरम् प्रथमम् श्रीमन्तः पंडितवरेण्या म. म. पाध्यायाः गिरिधर-शर्माणो आभाषन्त । तद्भाषणं तु अग्ने द्रष्टव्यम् ।

प्रतिवादीः-गिरिधररामीजी-बहिरिदियप्राह्यविशेषगुणवत्वं भूतलक्षणं, अन्याप्सादिदोषत्रयरहितत्वात् ।

वादीः-हरिरामशास्त्रीजी-न, इंद्रियेष्वन्याप्तिः । तत्र बहिरिंद्रियप्राह्य-विशेषगुणाभावात् ।

प्रतिवादीः — बदीनाथजी—-बहिरिदियप्राह्मजातिमद्विशेषगुणवत्वस्य पक्षत्वात् ।

११ इतिवृत्तम्--पंचमहाभूतपरिषदि संजातो विचारः

वादीः -नन्वैवमिप, हिल्यम् नामके पदार्थेऽन्याप्तिः तत्र बिहिरिदिय-म्राह्मजातिमिद्विशेषगुणाभावात् । द्विनवितत्वेष्वतिन्याप्तिश्च ।

प्रतिवादीः - द्विनवतितत्वानां पंचभूतेष्वंतभीवानातिव्याप्तिः । वादी: - कथमंतभीवः १

प्रतिवादीः – शद्धस्पर्शरूपरसगधेषु मध्ये एकद्वित्रिचतुष्पंचवत्वहेतुभिः क्रमेण द्विनवतितत्वानामाकाशादावंतर्भावः ।

वादीः-ननु हिल्यम् नामके पदार्थेऽन्याप्तिस्तदवस्थैवेति ?
प्रितवादीः-वैज्ञानिकाः तत्रापि स्पर्शादिगुणस्य सत्तां स्वीकुर्वन्तीति
नान्याप्तिः।

नोटः-एतद्विपयोपरि विचारः सभापत्यनुमत्या अत्रैव समापितः ।

विषयः-पंचमहाभूतविचारप्रयोजनम्।

मितिः कार्तिक शुद्ध ७ रविवासरे ।

विप्रतिपत्ति:-पृथिवीत्व।दिरूपेण पंचमहाभूतानामायुर्वेदे विचारो सप्रयोजनो न वा ?

वादीः—देवनायकाचार्यजी—पृथिवीत्यादिरूपेण पंचमहाभूतिवचारः वैज्ञानिकानां निष्प्रयोजनः अर्थकामाऽप्रयोजकत्वात् काकदंतपरीक्षावत् ।

प्रतिवादीः-उपेनाथजी-''तन्मयान्येव भूतानीत्यादि'' इदं पार्थिवं इदं तैजसिन्साद्यायुर्वेदोक्तप्रयोजनसत्वाद्वाधः ।

गिरिधरशर्माजी—मया पूर्वेद्यरुक्तम्=वर्गीकरणमन्तरेण व्यवहार-कौशलं पदार्थतत्वज्ञानं च न शक्यं प्राप्तुम् । तद्व्यवहारासिद्धिरेव विभाग-प्रयोजनम् । संक्षिप्तत्वाच विभागोऽयमुपादेयः ।

> धर्मदत्तजी — औषधज्ञानं भूतिवचारस्य प्रयोजनम् । रुद्रदेवदत्तजी – पंचमहाभूतिवचारः सप्रयोजनः प्रमेयत्वात्

द्विनवातितत्वविचारवत्।

नारायणशास्त्री वाडीकरजी—पंचमहाभूतिवचारः सप्रयोजनः शरीरद्वारा अर्थकामादिप्रयोजकत्वात् ।

हरिनाथजी — आत्मविचारे वादिनो हेतुर्व्यभिचारितः तत्र अर्थकामाप्रयोजकत्वमस्ति साघ्यं नास्ति ।

वादी: —न केवलं निष्प्रयोजनत्वं साध्यं किंतु वैज्ञानिकानां निष्प्रयो-जनत्वं । आत्मविचारं वैज्ञानिकानां निष्प्रयोजनत्वरूपसाध्यसत्वान व्यभिचारः । वैज्ञानिकैर्हि द्विनवितत्त्वविभागेन विमानादिकं बहुतरं साधितम्, भवद्भिः पञ्चधा विभज्य किं वा साधितम् ?

निरीक्षकः -विद्यावाचस्पतिजी मधुसूदनजी-अल्पद्रव्यव्ययेन सर्व-कार्यसाधनार्थं पंचमहाभूतिविचारः कर्तव्यः। पारदादिवस्तुत्रयेण विमानिर्माण-मस्माभिरिप कर्तुं शक्यते। अलं गर्वेण वैज्ञानिकानाम्। अस्माकं पूर्वजैर्यादशानि विमानानि निर्मितानि, न तादशान्यद्यापि वैज्ञानिकेनिर्मातुं पारितानि। अस्माकं विमानानां साहविक्षेपा प्रदेशतो एकैनैवासा भारतवर्षप्रोप्तरित्वृत्तेषु श्रूयते। अस्माकं विमानानि वा मध्ये मार्गमिप स्थातुं शक्तान्यम्बन्। भारतीयानां तत्ववादरहस्यमिवज्ञाय नैविवधा साहसोक्तिवैज्ञानिकसमाजे शोभत इत्यादिबहुतरं तैः प्रतिपादितम्।

नोटः — एति द्वित्रयोपरिविचारः सभापत्यनुमत्या अत्रैव समापित इति सर्वत्रयोजनीयम्।

विषयः-भूतानामेकेकेंद्रियार्थाश्रयत्वमनेकेंद्रियार्थाश्रयत्वं वा ?

प्रतिवादी:-रुद्रदेवदत्तजी-यिस्मन्यिस्मन्भूते ये ये गुणाः तस्य तस्य प्रस्थक्षं तत्तद्गुणग्राहकेंद्रियेण भवति ।

उपेंद्रनाथजी—तत्तद्गुणवदपंचीकृतभूतस्य तत्तद्भूतारब्धेंद्रिय-प्राह्मत्वम् ।

विषयः भूतस्वरूपगुणधर्मादीनां विवेचनम्।

प्रतिवादी:-अपंचीकृतभूतमहाभूतपंचीकृतभूतभेदात् भूतस्य त्रैविध्यं।

हरिनाथजी—भूतत्वं इंद्रियप्रकृतित्वं, बाह्यैकैकेंद्रियप्राह्याविशेष-गुणवत्वम् ।

रुद्देवदत्तजी – बहिरिंद्रियमाह्यविषयत्वं भृतत्वं, बहिरिंद्रियमाह्य-विषयवत्वं महाभूतत्वम् ।

हरिनाथजी—भूतत्वं इंद्रियप्रकृतित्वं, बाह्येंद्रियप्राह्यविशेषगुणवत्वं, द्रव्यत्वजातिमत्वं, समायिकारणत्वं, गुणवत्वं, कार्यकारणविरोधित्वमिस्याद्यन्यवि-शेषवत्वं, च प्रशस्तपादाचार्यनिर्दिष्टा अन्येपि विवक्षिता गुणधर्मादयः सम्मताः।

- १ अज्ञातनामा कश्चित्-बिहिरिदियमाद्यविशेषगुणवत्वं, बिहिरिदिय-प्राह्यस्वरूपयोग्यत्वमभिप्रेतं तच्च बिहिरिदियजन्यप्रस्यक्षनिरूपितलौकिकविषयता-वन्छेदकधर्मवत्वम् ।
- २ बहिरिंदियजन्यप्रस्यक्षनिरूपितलौकिकविषयताश्रयावृत्तिजाति-शुन्यत्वम् ।
 - ३ आत्मिन्नविशेषगुणवत्वम्।

नोटः - इमानि लक्षणानि तैस्तैर्लिखत्वा दत्तानि यथायथं प्रकाशितानि।

विषयः-भूतानामितरेतरव्यवकीर्णत्वं कथं संपद्यते ?

प्रतिवादीः - उपेंद्रनाथजी - व्यवकीर्णत्वं नाम विश्लेषणं तच्च संप्रति न संपद्यते ।

सभापतिजी-व्यवकीर्णपदस्य संदिग्धार्थकत्वात्स प्रश्नः परित्यक्तः।

विषय: - भूतानां सृष्टिकारणत्वं कीदक ?

प्रतिवादीः—उपेंद्रनाथजी—समवायिनिमित्तात्मककारणरूपेण भूतानां सृष्टिकारणत्वम् ।

हरिनाथजी:--भूतानां सृष्टिकारणत्वं स्वसमवेते स्वजातीये विजातीये चापादानत्वं, अन्यत्र निमित्तत्वं, यथा मानुषादिशारीरे घाणेंद्रिये घटादौ तद्गंधादौ च पृथिव्या उपादानत्वं, तत्रेवेतरेषां निमित्तत्वमात्रम् ।

विषय:-परिणामारंभक्रिययोविंशेषः ?

प्रतिवादीः-गिरिधरशास्त्रीजी-अवयवावयविरूपेण कार्यद्रव्योत्पात्तः, अवयवविभागाःकार्यद्रव्यनाशः इत्यारम्भवादस्य संक्षिप्तं स्ररूपम्, अयं वादो वैशेषिकाणाम् । दुग्धस्य दिधमाव इवैकस्येव द्रव्यस्य विभिन्नावस्थासु संन्नम इति तु परिणामवादः । यथा बीजे पृथिव्यामुप्ते जल्लसेकादिसामग्रीसंन्निधाने च बीजभावः — बीजावस्था तिरोभवति, अंकुरावस्था त्वाविर्भवति, द्रव्यन्तुमदाव-स्थानुगतम् । बीजावयवत्वेन दृष्टस्यैव द्रव्यस्येदानीमंकुरघटताया गृह्यमाणत्वात् । सोऽयं सांख्यानां सिद्धांतः । अयमेव स्वल्पैवलक्षण्येन वेदान्ताभिन्नेतः । व्यावहारिकपदार्थेष्वेवमेव तेषामपि प्रिक्तिया । मूलकारणान्वेषणायां नेयं प्रिक्तिया फलवतीति तेषां विप्रतिपत्तिः । मूलकारणस्य चैतन्यरूपतास्वीकारश्च तेषां विशेषः ।

हरिनाथजीः--आरंभपरिणामिक्रययोविंशेष इति । अत्रायं विशेषः आरंभवादे सक्रमा उत्पत्तिः, परिणामवादे तु अवयवा एव युगपत्तद्वूपेण परिणमंते ।

विषयः — दृश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वं न वा ?

प्रतिवादीः - उपेंद्रनाथ जी - बहिरिंद्रियम्। ह्यविशेषगुणवत्वरूपभूतलक्षण-बत्वात् भूतत्वम् । संकीर्णत्वात्पांचभीतिकत्वम् ।

हरिनाथजी:--दश्यानां पृथिव्यादीनां भृतत्वं नवेति प्रश्ने दश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वं नवेति प्रश्ने दश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वमेव बहिरिदियप्राह्मविशेषगुणवत्वातः, यन्नेवं तनेवं यथा आत्मेति भृतत्वमेवानुमानात्।

गिरिधरशर्माजी-वृक्षादौ भौतिकत्वन्यवहारः । घटपटादीनां महाभूतत्वं । परमाण्वादीनां सूक्ष्मभूतत्वं, भूतत्वं तु सर्वेषां ।

वादीः—देवनायकाचार्यजी—चरमकारणे भूतलक्षणं संगच्छते न वा ? प्रतिवादीः—गिरिधरशर्माजी—संगच्छते । तज्जातीयसूक्ष्मतमत्वं अणुत्वं, .तत्र जातिघटितलक्षणं संगच्छते ।

वादीः—जलपरमाणोर्यादशस्य विश्लेषणे हैद्रोजनादिजलखजातिरहित-.मुपलभ्यते तादशस्य निस्मलं न स्यात् १

प्रातिवादी:-नेष्यत एव तस्य नित्यत्वम् । अंभः, मरीचिः मरं, अपः इति चतुर्धा जलस्य विभागदर्शनात् हैद्रोजनस्य सूक्ष्मजलत्वमेव प्रतिभाति । वादी:-तचातुर्विथ्यं स्पष्टीक्रियतां । प्रतिवादीः—हैदोजनादिकं पाश्चात्याभिष्रेततत्वजातं रुक्षणप्रमाणादिना स्पष्टीक्रियताम् ।

निर्श्यकः --डॉ. जोशी-हैद्रोजनः वान्हिसंयोगात्ख्यं ज्वलि । तिद्विपारितमानिसजनः । ज्वलनिक्षया ऑक्सिजनसापेक्षा । द्वयोः हैद्रोजना-िवसजनयोः अणुभारः क्रमेण १-१६ परिभितः । द्वयो रूपंगधस्पर्शाभावः । बहुशैत्यात् हैद्रोजनः द्वयं भवति । ऑक्सिजनः द्वयं नीलो भवति । हैद्रोजनः द्वयं स्पर्शवान् । आक्सिजनश्च । है० बहुनिबुतत्संयोगे विकार्यते प्रोटान-रूपंण । अतिशैत्ये घनं भवति । विद्युत्संयोगसाहाय्येन द्वयोरनयोः संयोगविभागी ।

रामदास गोडजी--ज्वलनानुकुलत्वप्रतिकूलत्वाभ्यां नीलानील-रूपवत्वाभ्यामनुमीयेते अपि ।

> [अद्यतनकार्यं समाप्तम्] भितिः कार्तिक शुद्ध ८ सोमवासरे।

बादी:--देवनायकाचार्यजी--वैज्ञानिकपदार्थानां उद्देशग्रंथः।

एिंग्रेटसंज्ञकपदार्थाः त्रिविधाः । मूलतत्वानि, संयुक्तानि, मूलतरतत्वानि, चेति । तत्वं च गुरुत्ववत्वं आयतनवत्वं (मूर्तत्विमिति) यावत् । मूलत्वं च विजातीयानारब्धत्वम् । वैजालं च हैद्रोजनत्वादिना बोध्यम् । संयुक्तत्वं विजातीयारब्धत्वम् । वैजालं च हैद्रोजनत्वादिना बोध्यम् । संयुक्तत्वं विजातीयारब्धत्वं वैजात्यं पूर्ववदेव । मूलतत्वानि द्विनवातिसंख्याकानि तानि च द्विविधानि । स्थूलसूक्ष्मभेदात् । सूक्ष्मं परमाणुक्तपं खक्रपतोऽविभाज्यं । चतुर्विधविद्युत्परमाण्वारब्धम् । स्थूलं विभाज्यं । सर्वाणि चैतानि प्रत्यक्षतन्मूल-कार्यक्रियाकारिप्रवृत्युपयोग्यानुमानसिद्धानि ।

संयुक्तानि द्विविधानि । रासायानिकानि, भौतिकानि च । तत्र रासा-यनिकत्वं च रासायनिकायाजन्यत्वे सति पूर्वधर्मविजातीयधर्माधिकरणत्वे सति रासायनिकित्रियातिरिक्तकारणजन्यपूर्वावस्थाभाववत्वं । तिद्वकत्वे सति संयुक्तत्वं भौतिकत्वम् ।

रासायानिकानि द्विविधानि स्थूलसूक्ष्मभेदात्। सूक्ष्ममणुरूपं। विजातीय-

परमाण्त्रारब्धं च । यथा जलाणुः । तदितरद्रासायनिकं स्थूलम् । सर्वाणि चैतानि तापक्रमसंकोचानुकूलव्यापाराभ्यां घनद्रवबाष्पावस्थात्मकावस्थात्रयवंति ।

मूलतरतत्वं तु हैद्रो जनादिम्लतत्वं परमाण्यारंभकम् । हैद्रोजनत्वं च । एकपरमाणुभारवत्वं । जलाण्यारंभकत्वे सति ज्वलनिक्रयानिरूपितेन्धनत्वाविक्छन-कारणतावत्वम् । आविसजनत्वं च ज्वलनिक्रयानिरूपितवायुत्वावािक्छन्नकारण-तावत्वं, षोडशाणुभारवत्वं वा । मूलतत्वपरमाण्यारंभकािन चतुर्विधािन, इलेक्ट्रान्, प्रोटान्, न्यूट्रान्, पासिट्रान् भेदात् ।

इत्यं च वैज्ञानिकानां मते " आरंभपक्षः कणमक्षपक्षः । संघातपक्षश्च भदंतपक्षः । सांख्यादिपक्षः परिणामवादः । वेदांतवादश्च विवर्तवादः ॥ " इत्याद्यक्तचतुर्विधपक्षानामपि यथासंभवं स्वीकारः । इति ।

प्रतिवादी:-गिरिधर शर्माजी-हैद्रोजनः सूक्ष्मभूतात्मकं जलम् द्रवत्व-वत्वात् । आविसजनसंयोगेन जलत्वेन परिणामात् । परिणामवादं सत एव सदुत्यत्तेरंगीकारात्। "अग्निं प्रथमं गर्भे आपः" "अंभः मरीचिः मरं अपः दिव्यं-तिरिक्षेमुव्यधस्ताच्च " इति शतपथन्नाह्मणम् । अंभः परेण दिवः सूर्यमंडलादृपिर त्रेलोक्यं अधस्ताच्च त्रेलोक्यं। 'निवेशयन् अमृतं मर्ल्यं च' इति श्रुतेस्तथा वर्णनात् । तथा च हैद्रोजनस्यातिलघुत्वात्परेण दिवः तत्सत्वं पर्यवस्यति । अतः अम्भ एव हेद्रोजनस्यातिलघुत्वात्परेण दिवः तत्सत्वं पर्यवस्यति । अतः अम्भ एव हेद्रोजनस्यातिलघुत्वात्परेण दिवः तत्सत्वं पर्यवस्यति । अतः अम्भ एव हेद्रोजनस्यात् । मरीचिस्तु अन्तरिक्षं सूर्यादधः। तिक्तरणसंसृष्टजलं स्यात् अम्भसो दिव्यस्य संबंधाविशेषात् गंगा दिव्या सिरिदिति । सूर्यिकरणासक्त-मरीचिसंबंधविशेषात् सूर्यपुत्री यमुनेति च स्यात् । शतपथन्नाह्मणोपवर्णितः आपः, फेनः इत्यादि हिरण्यं इति पर्यंत अष्टविधदशाविशेषक्रमेण जलस्य पृथिवीत्वेन परिणामः । तस्मात् भौमं जलं आप इत्युक्तमेव स्यात् । तत्र च अग्निं प्रथमं गर्भे दधे आप इति श्रुतिवर्णितः पवमान।ग्निरेव अप्सुप्रविष्टः आविसजनस्यात् ।

मणिरामशर्माजी-रूपव्याप्यं द्रवत्वम् । हैद्रोजने द्रवत्वसत्वेपि रूपानुलब्धः बलवद्विजातीयेन अभिभवात्स्यात् । तस्मात्तत्र रूपवत्वं द्रवत्वं च ज्ञायते । सूर्यिकरणाधिकतापिनिमित्तकद्रवत्वसत्वात् नैमित्तिकद्रवत्वं ज्ञायते । हैद्रोजनस्य कर्पूरवत् इंधनरूपेण ज्वलनात् स्नेहप्रकर्षो ज्ञायते । तस्माद्विचार्य-माणे सर्वभूतगुणवत्तोपलब्धे हैद्रोजनस्य पांचभौतिकत्वम् ।

उपेंद्रनाथजी--हैद्रौजनं पांचभौतिकं शद्वस्पर्शरूपरसगंधवत्वात्। अनुपरुन्धिस्तु सर्वगुणानामत्यन्तसूक्ष्मत्वेन । जलापेक्षया लघुत्वेन जलप्राधान्यं न वक्तुम् शक्यम् ।

रुद्रदेवदत्तजी-आकर्षण-संकोचन-व्यापाराभ्यां गुरुत्वमितिहेतोः हैद्रोजनस्य भौतिकत्वं । आकर्षणिवयुत्संबंधात् । बाह्यवस्तुगुरुत्वसंपीडनाच ।

गिरिधर शर्माजी--संधायसंभाषारूपा परिषदियमिति खपक्ष्यान् प्रस्थि किंचिन्निवेद्यते "अपां संघातो विख्यनं च तेजःसंयोगात " इति कणादसूत्रोक्ते जलेऽपि द्रवस्यं नैमित्तिकभेत्र । सांसिद्धिकस्यं तु अल्पतापसा-ध्यत्वात् प्रयत्नसाध्यतापानपेक्षणात् व्यवञ्हीयते । यत्नसाध्यद्रवस्यं तु नैमित्तिक-द्रवस्यमिति । विख्यनपदं च सूत्रे उक्ततास्पर्यक्रमेव युज्यते । तस्मात् हैद्रोजन-तत्वस्थापि अल्पतापद्भतत्वात् सांसिद्धिकद्रवत्वमिति जल्रत्वमेव ।

नहि तस्य पाचमोतिकस्वं युज्यते । सूक्ष्मात् स्थूलोत्पत्तिरितिहि सर्वदार्शनिकानां सिद्धांतः ततश्च सूक्ष्मतमं तस्वं हैद्रोजनिमदं स्थूलभूतजन्यं मिवतुं नार्हति, न च सर्गप्रिक्रियायां तस्माज्ञलमुत्यचेत । जलाद्धि प्रतिसर्गप्रिक्रियया हैद्रोजनतस्वं साधयंति वैज्ञानिकाः, न तु सर्गप्रिक्रियया । विश्लेषणां कृत्वा समुत्यादनं हि प्रतिसर्गप्रिक्रियव। यतु सर्वेऽपि भूतगुणा अनुद्भूतास्तत्र साध्यंते, तदनुपल्रब्धिपराहतम् । एवं तु सत्कार्यवादिसद्भाते सूक्ष्मतया सर्वेषां कार्याणां कारणावस्थायामि स्थितिरभ्युपगम्यत एव, किन्तु यावत्कनचित्प्रमाणेन दृढं तत्तद्गुणसत्ता न प्रमीयेत, तावद्यवहारे नाभ्युपगन्तुं शक्या तत्तगुणसत्ता । यानि तु हैद्रोजनतस्वाविश्लेषणे कृते इलेक्ट्रान्-प्रोटान्-इल्यादीनि तत्वानि लभ्यंते तानि न भूतानि, किन्तु शक्तिविशेषास्ते सत्वादिगुणावस्थाखन्तर्भाव्याः । तस्माच्छ्त्युक्तसोमधर्माणामम्भोधर्माणां च हैद्रोजनतस्व उपलम्भात् सोमजातीय-मम्भोद्रव्यमिदं जलस्य सूक्ष्मावस्थेस्येव न्यायः ।

निरीक्षकः --डॉ. जोशीजी--हैद्रोजनस्य चत्वारः पदार्था आरम्भकाः-

इलेक्ट्रान्, प्रोटान्, पॉसिट्रॉन, न्यूट्रॉन् इति नैकजातीयभूतत्वं सम्भवति । अस्य विचारः प्रोटॉनविषयकप्रश्नविचारे भविष्यति ।

सभापितः --आयुर्वेदे किं दर्शनशास्त्रमतुमृत्य भूतिवचारः सम्मतः ?।
प्रतिवादीः--अपेद्रनाथजी--आयुर्वेदे तत्तास्थानेषु तत्तदर्शनिनेदेशात्
सर्वेदर्शनैः समुचितो विचारो, न किंचिद्दर्शनिवेशेषमात्रे पक्षपातः ।

वामनशास्त्रीजी--सुश्रुते सृष्टिविषये सांख्यदर्शनानुसरणम् । निरीक्षकः --सत्यनार,यणजी--उक्तविषये शारीरे सांख्यदर्शना-नुसरणम् ।

विषयः--एलिमेन्ट संज्ञकानां द्विनवति संख्याकानां प्रतीच्यरासाय निकैः
मूलतत्वतयाऽङ्गीकृतानां भृतत्वं न वा ?

प्रतिवादीः--उपेद्रनाथजी--भूतत्वं भूतल्लक्षणवत्वात । विषयः--इलेक्ट्रान् प्रोटानसंज्ञकयोर्भृतत्वं न वा ?

प्रतिवादीः--उपेंद्रनाथजी--चतुर्धा विभक्तेषु इलेक्ट्रान्-आदिषु विद्युत्क-णषु विद्युत्वेन खसंयोगात्पंचेद्रियेषु खस्वार्थव्यञ्जकत्वसत्वेन पांचभौतिकत्वम् , तत्ताद्गुणवतः तत्ताद्गुणव्यञ्जकत्वस्य शास्त्रसंमतत्वात् । अतः तेषां पाञ्च-मौतिकत्वम् ।

रुद्रदेवजीः--इलेक्ट्रान आदीनां सजातीयत्वं विजातीयत्वं, वा १ निरीक्षकः --डा. जोशी--न्यूट्रॉन विद्युत्शून्यविद्युत्क्षेत्रे संबंधेऽपि प्रकाशकार्यानुत्पादात् । अपृथग्भावात् अन्तर्हितशक्तिरनुमीयते । पॉसिट्रॉन ऋणविद्युत् । इलेक्ट्रान अणुभारः । गतौ वर्धते । प्रोटॉन धनविद्युत् इति वैलक्षण्यं चतुर्षु ।

विषयः--आकाशस्वरूपावेमर्शः।

निरीक्षकः --आकाशः स्पेस इति केचित् , केचिदीथर इति, ईथरनाम, शद्भवाहकं वस्तु ।

वादी--प्रो. कुलकर्णी--अवकाशः ईथर इति केचित् एतच एकाव-यविनः अवयवान्तर्भागेऽपि प्रविष्टं वर्तते । विद्युदादीनां गत्युपपात्तिव्यवस्थापन-

सौकर्याय तस्याङ्गीकारः । अवकाश एव विशिष्टगुणवत्वाङ्गीकारादेव उपपत्ती अतिरिक्त ईथरे प्रमाणाभावः इति केचिद् वैज्ञानिका अभिप्रयन्ति । ईथर राद्धः प्रीकभाषायामवकाशे प्रसिद्धः स एवेष इति ।

प्रतिवादी--गिरधरशर्मा--शद्भगुणकमाकाशम् इति तस्य द्रव्यत्वे न विवादः । अभावरूपावकाशत्वे गुणाधारत्वानुपपिताः, विशिष्टगुणवस्वे तु स्तीकृतं अवकाशस्य द्रव्यत्वमेव सिद्धमिति सोऽयं नाममात्रे विवादोऽविशष्टो वैज्ञानिकानाम् । ईथरपदेन वोच्यताम्, स्पेसपदेन वा, तत्तादशगुणविशिष्ट-पदार्थसत्ता तूभयेषां सिद्धैव । बौद्धनिराकरणप्रसङ्गे आकाशस्याभावरूपता तु श्रीशंकरभगवत्पादैः शारीरकभाष्ये सम्यक् प्रतिक्षिप्ता। अभाव एव यद्याकाशः स्यात्, तर्हि एकः पक्षी यदोत्पताति, तदा परानोत्पतितुं प्रभवेत्, तत्र पक्ष्य-भावाभावात्। 'यत्र पक्षीनास्ति, तत्रोत्पतीष्यति ' इतिचेत्, यत्पदेन यदुच्यते स एवास्माकमाकाश इति हि आचार्यपादानां युक्तिः। शद्बोपादानं च पृथग्द्रव्यमवस्यमाश्रयणीयमेवेति तार्किकैः सावितम् । प्रीकमाषायाम् ईथरराद्वी ऽयं वैदिकेंद्रशद्वस्यापभ्रंशरूपः स्यात् इति संभाव्यते । चतुर्दशेंद्राः श्रुतौ निरूप्यन्ते, तत्र सरखानयभिंदः, यः शद्वस्यापादानं । अतएव तत्र प्रवृत्तेयं शद्भल्हरी-यास्माऽकं श्रोत्रप्राद्या भवति, सा सरखतीत्युच्यते । सरखानेवाकाशः किंच प्रकाशोपादानतापि श्रुताविंद्रस्यैव स्वीकृता । वैज्ञानिका अपि प्रकाश-किरणानामीथराधारत्वमेव मन्वन्त इतीद्रस्येवेथरपद्वाच्यता श्रुत्वनुगृहीता भवति । तस्मादिद्रापरनामा ईथर आकाश एवेति स्पष्ट प्रतिभाति ।

वादीः-हरिशरणजी-वायुशून्ये देशे आधातेऽपि शह्वानुपल्ब्येः वायु-गुणः शद्धः । यथा वायुना सर्वथा रिक्तीकृते सर्वतोऽपिनद्धे भांडे घण्टावादनेऽपि शद्वाश्रवणं प्रयोगसिद्धम् ।

प्रतिवादी:-गिरिधरशर्माजी-इदं वैज्ञानिकानां प्राचीनं मतमासीदिति श्रुतम्। अधुना तु तेरेव निराकृतमिति कथमनेन कारणेन शद्भस्य वायुगुणत्वं ?। अत्र विषये वदन्तु वैज्ञानिकमहाभागा अत्रोपस्थिताः ।

निरीक्षकः -डॉ. जोशी--शद्भमाध्यमाः (वाहकाः) घ्न-द्रव-वायुरूपा

भवंति। तेष्वन्यतममि विद्याय शद्धस्य देशादेशान्तरप्राप्तिर्नसंभवतीति आधुनिक-वैज्ञानिकानां मतम् । वायुगुणत्वं त्विदानीं निरस्तम् । रैडियोद्वारा यथा शीघ्रं शद्धः सहस्राधिकानि योजनानि गच्छति, न तावती गतिर्वायौ विद्यते ।

प्रो. कुलकर्णी:-कंपसापेक्षः शद्ध इस्रेव मन्वते आधुनिकाः। शिरिधरजी:-शद्धरयोपादानं यद्यप्याकाशः, अथापि शद्धस्य वीचीतरंगन्यायेन श्रवणदेशप्राप्तिः, तत्र च तरंगपरंपरायां निमित्तं वायुरिति बायुरान्यदेशे राद्वे।त्पत्ताविप तरंगाभावादस्माभिः राद्वो न श्रयते । राद्वेभ्यः शद्बनिष्यत्तिरिति भगवता कणादेनोक्तं । निर्वाते संयोगविभागाभ्यां शद्बोत्पत्ति-रिस्त, परं शद्भजशद्वस्तरंगरूपो नोत्पद्यते, निमित्तस्य वायोरभावात् । उपादानापेक्षयोपादेयस्य स्थूलत्वनियमात्, शद्वस्य वाय्वपेक्षया सृक्ष्मत्वात्, आकाशगुणः शद्भ इति युज्यते, न वायूपादानकः । वायुवेगापेक्षया अत्यधिक-वेगवत्त्या वितन्त्रीविद्युता राद्वगतिः वायुपादानकत्वे तु न सम्भवति । राद्वो यदि वायूपादानकः स्यात् परदेशस्थशद्भस्य तत्रस्यवायोरप्राप्तावपि तन्त्रीद्वारा खल्पकालेन दूरदेशे प्रत्यक्षं नस्यादिति । यत्वत्र हरिशरणानन्दमहाशयेरुक्तम्= तत्रसः राद्वो नात्रागच्छति, इहाभिनव उत्पचत इति, तदेतन्न समञ्जसं प्रतीयते। इह तादृशराद्वस्योत्पादकाभावात् । दूरस्थगायकराद्वश्रवणाय रैडियोयन्त्र शतशो रूप्यकाणि व्ययी कुर्वन्ति अत्रत्या धनिकाः, नित्वहाभिनवशद्धोत्पादनाय । तस्मादाकाशगुण एव शद्धः । सांख्यादिर्रात्या शद्धगुण आकाशः, स नित्यः । तद्गुणस्तु तरंगरूपोऽयं श्रुयमाणो अनित्य इति सर्वं समञ्जसम् ।

वादी:-रामदासः-दूरतारासु स्फाटशद्वस्तु किं न श्रूयते ?

प्रतिवादीः-गिरिधरशर्माजीः-अभिव्यक्तस्य शद्धस्य वीचीतरंगन्यायेन शद्धान्तरोत्पादकशक्तेः परिमितत्वान श्रूयते ।

निरीक्षकः - डॉ. जोशीः - शद्धः तद्गतिश्च सोर्सकारणं [उपादानं] मेंग्निकलकारणं (निमित्तं) चोपेक्षते । विद्युतो निमित्तत्वं शद्भगतौ दूरतर-तरंगवृद्धिद्वारा । अन्यथा नियतास्तरंगाः । वाय्वभावे तरंगाभावः । तस्मात् वायुशून्येपि शद्धोत्पत्तिर्भवेदेव । अश्रवणं तु वाहकाभावात् । इत्येवाधुनिक-वैज्ञानिकमतम् ।

इति पञ्चमहाभूतपरिषदि संजातिवचारः समाप्तिमगमत् । तदनंतरं गिरिधरशर्मणा एतादशपरिषत्संघटनाय विश्वविद्यालयपरिचालकेभ्यो धन्यवादाः समर्थंत । प्रार्थिताश्च तेन तत्रोपिथता माननीयश्रीमालवीयमहाभागाः, यत्प्रस्यद्वमेतादशी परिषद् भवतु, अनया प्राचीनदार्शानिकानामाधुनिक-वैज्ञानिकानां च विचारिविनिमयेन मतभेदो दूरी-भविष्यति । महानुपकारश्च विद्याविषये लोकस्य सेत्स्यतीति । श्रीमालवीयमहाभागश्चोपिश्यतानां विदुषां कृतज्ञतां प्रकटयद्भिः प्रत्यद्वं परिषत्संघटनं स्वीकृतम् । उपस्थातुं च विद्वांसो ऽभ्यर्थिताः । परस्परप्रेम्णा महाभूतपरिषदियं पूर्तिं गता ।

सर्वारम्भे श्री. म. म. गिरिधरद्यार्भणाम्-

स्थापनायाः प्रथमा वक्तृता ।

इह खलु जगित प्रलेकं पदार्थानां परिगणियतुमशक्यत्वात्, पृथगेकैकशो ज्ञातुमशक्यत्वाच व्यवहारकोशलसम्पत्तये वर्गाकरणप्रक्रियां सर्व एव
विपश्चितो राचयन्ते । न हि वर्गाकरणं विहाय काचिदन्या रीतिः पदार्थविज्ञानस्याद्याविध निर्णाता, आधुनिकं विज्ञानमपि द्विनवितं तत्त्वानां परिगणयद्वर्गीकरणपक्ष एव पतित, न हि द्विनवित्रिजगिति व्यक्तयः, किन्तु तावन्तो
वर्गा इत्येव वक्तव्यं भवेत् । वर्गीकरणे च लाघवपक्षपातः प्रकृतिसिद्धः । तस्माल्राघवमेवानुसृत्यासमाकं दर्शनप्रवक्तिभिः सर्वेषामिन्द्रियसम्बद्धानां द्रव्याणां
पञ्चवर्गाः प्रकल्रसाः, त एव पञ्चभूतशद्धेन व्यवह्रियन्ते । पञ्चवर्गकत्यनञ्चेदं
प्राकृतिकम्, यतो हि मनुष्याणां पञ्चेव ज्ञानेन्द्रियाणि, तैर्प्राह्याश्चविषया अपि
शद्धस्पर्शरूपरसगंन्धाः पञ्चेव, तत एवषां गुणभूतानामाश्रया अपि पञ्चेव
निर्धारिताः, येषु क्रमेणैकैकस्य प्राधान्येन स्थितिर्गुणस्य । इमेव विभागमूलं
लक्ष्यीकृत्य ' बहिरिन्द्रियप्राह्यविशेषगुणवत्त्वम् ' इत्येव भूतलक्षणमुरशिक्रयते
लक्षणिचक्षणैः । न हि पृथिव्याद्याः पञ्चाऽनादय इति इतराऽसंमिश्रितानि
मौलिकानि तत्त्वानि वेत्यस्माकं दर्शनानामभिप्रायः । एषां सृष्टेः परस्यऽपूर्वविष्ठ-

तायाश्च श्रुतत्वात् , किंतु यदिन्दियैगृह्यते किश्चित् , तदिन्द्रियपञ्चकानुरोधेन पञ्चधा विभाज्यमित्येवास्माकं दार्शानेकानां छक्ष्यम् । पंचेन्द्रियैः सूक्ष्मत्वान्नगृह्यते, तत्रापि तद्ग्रहणयोग्यतामनुसंधाय ग्राह्यत्वछक्षणं समन्वेतीति स्फुटीकृतं छक्षण-विचारकैः । तस्मादिदमेव भूतलक्षणं छक्ष्यप्रापकं निर्दोषञ्च स्वीकर्तुमृचितम् ।

द्वितीया वक्तृता।

अहमत्र तथा विवृणोमि, यथा पुरस्ताद्विचारितानामपि बहूनां प्रश्नानां स्फटतरमृत्तरं लभ्येत, अस्याः परिषदो मूलभूतः सिद्धान्ताविरोधश्चापि बहुतरं परिह्रियेत । अस्माकं दार्शनिकाः खलु भूतानां पश्चाऽवस्था अभ्यनुजानते--गुणाः, अणव, रेणवः, स्कन्धाः, सत्त्वानि चेति । तत्र शद्वस्पर्शरूपरसगंधाख्यानि परस्परासंकीर्णस्वरूपाणि-अतएव मौलिकानि तन्मात्रासंज्ञानि गुणभूतानि । एषामुत्तरोत्तरमनुप्रवेशेन क्रमणैकद्वित्रिचतुःपंचगुणानि तु आकाशवायुतेजो-जलपृथ्व्याख्यानि पंचाणुभूतानि । इमे दे विधे " विशेषाविशेषिङ्कमात्रालि-ङ्गानि गुणपर्वाणि " इति योगदर्शन-[२।१८]-सूत्रे अविशेषविशेषपदाभ्यां क्रमेण व्यवहते । अथ भूतानां पंचीकरणेन स्वयस्त्रपाणि च स्फुटं यौगि-कानि पंचमहाभूतानि, सैषा पञ्चीकरणप्रक्रिया प्रस्फुटा वेदान्तप्रंथेषु । एषां यौगिकानां महाभूतानां पुनस्तिस्रो विधाः, रासायनिकप्रक्रियामन्तरेणावयव-विभागक्रमेणाविभाज्या अणवो रेणवः, तैरारब्धा अवयविनः अवयविभिरपि क्रमेणारभ्यमाणानि च शर्रारेन्द्रियविषयपदाभिरुप्यानि सत्त्वानि । अत्र स्कन्धपर्यन्ता अवस्था भूतराद्वेन महाभूतराद्वेनवोच्यन्ते, सत्त्वानि तु भौतिकपदेनाभिल्प्यन्ते । अनया प्रिक्रियया विचारे क्रियमाणे सर्वमिदं दृश्यं भूतभौतिकेष्वन्तर्भवति । आधुनिकैर्वेज्ञानिकैरभ्युपगम्यमानानि द्विनवतिमितानि तत्त्वान्यपि कस्यचिद्भूतस्य कस्याञ्चिदवस्थायामन्तर्भवन्तीति तिद्वेशपरीक्षणेन सेल्यति । यदि नाम स्वाभिमतानां तत्वानां खरूपाणि लक्ष-णानि च वादिभिविविवेरन्, तर्हि कुत्र कस्यान्तर्भाव इत्यस्माभिः स्फुटांक्रियेत । यन्तु वैज्ञानिकाः स्वीयया यन्त्रादिप्रिक्रियया दृश्यमानानां पृथ्वीजलादीनां यौगिकत्वं प्रसाध्य पञ्चभूतसिद्धान्तं प्रतिक्षिपन्ति, तदिदं सिद्धसाधनाय प्रयतन तेषां व्यर्थप्रायम् । दृश्यमानानां महाभूतानां यौगिकताया अस्माकं दर्शनेष्वपि

सुस्पष्टं निरूपितत्वात् । " आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी '' इत्याचाः श्रुतयः, ताः प्रमाणयन्ति तदनुरोधेन प्रवर्तमानानि दर्श-नानि च भूतानां जन्यत्वं परस्परानुप्रवेशं च वैशद्येन व्याचक्षते । दार्शनिकं विषयमारम्भ एव शिक्षामाणानां विनेयानां सौक्यीय परमाणुवादः प्रथमभूमि-कायां काणादैरुपक्षिप्तः । सांख्ययोगादौ तु परमाणायौंगिकत्वं स्फुटं व्याख्या-तम्। तदेतद् दृश्यताम्-- स्थूलस्क्रपसूक्षमान्वयार्थवस्वसंयमाद् भूतजयः " इति (पा. ३ सूत्र ४४) योगसूत्रस्य व्यासभाष्ये " तत्र पार्थिवाद्याः शद्बादयो विशेषाः सहाऽकारादिभिधेमैं स्थूलशद्धेन परिभाषिताः, एतद्भूतानां प्रथमं रूपम्, द्वितीयं रूपं स्वसामान्यम्.....अथ किमेषां सूक्ष्मरूपं-तन्मात्रं भूतकारणम् , तस्यैकोऽवयवः परमाणुः सामान्यविशेषात्मा अयुतसिद्धा-वयवभेदानुगतः समुदाय इत्येवं सर्वतन्मात्राणि, एतत्तृतीयं । अथ भूतानां चतुर्थं रूपं स्यातिक्रियास्थितिशीलाः गुणाः, अथैषां पश्चमं रूपं अर्थवत्त्रम् '' इत्यादि । अत्र गुणभूतपरमाणोरपि समुदायरूपत्वं स्पष्टमुद्घुष्ट-मिति का कथा महाभूतरेणोः । अयन्तु विशेषः – यन्महाभूतसूक्ष्मावयवस्य रेणोविंभज्यानेकतत्वात्मकताप्रसाधनं रासायनिकप्रक्रियया सुगममेव, विभाज्य-मानास्तदवयवा अपि च भूतलक्षणं न जहति, महाभूतानां भूतसंयोगजत्वात्। यानि त्वणुभूतान्युक्तानि, तत्र भूतानां योगो न शक्यते दर्शयितुम् । गुणानां तु तन्मात्राख्यानां योगस्तत्राप्यस्येत्र । अथ गुणेषु वैज्ञानिकानां रासायनिक-प्रक्रियया न संभवति विशक्लनम् । किन्त्वस्मद्दृष्टया तत्राप्यनुस्यूते ततोऽपि सूक्ष्मतरे द्वे अवस्थे लिङ्गमात्रम्, अलिंगं चत्युक्ते प्रागुपदर्शिते योगदर्शनसूत्रे । अथ येयं प्रागुपदर्शिते भाष्यं भूतानां पश्चमावस्था अर्थवत्वमितिपदेन पुरुष-भोगापवर्गार्थता नामाख्याता, तेन पुरुषस्याप्यत्रानुगतत्वं ध्वनितं । पुरुषनिरूपणं च वेदांतेषु, तत्रापि क्षरं अक्षरस्य, तस्मिनन्ययस्य, तत्रापि च परात्परस्यानुप्रवेशः, षोडश च कलाः पुरुषत्रयस्य निरूप्यन्ते प्रस्परानुषक्ता इत्येवं सूक्ष्मतमपर्यंत-मनुधावने क वराकाणि द्विनवति तत्वानि ? तेषां त्वतियौगिकत्वम्, सर्वथा मौलिकत्वं तु ज्ञायमानेषु कापि वस्तुन्यसंभवि। वैज्ञानिका अपि यथा यथान्वेषणे प्रवर्तन्ते, तथा तथा द्विनवतावनुस्यूतमेकमेव तत्वं पश्यन्ति, यथाद्य वादिपक्षे स्थितेः श्री रामदासगौड महाशयरेव खीये वैज्ञानिकाऽद्वैतवादे निबन्धे प्रतिपादितम् । आस्तामप्रकृतिवस्तरः, यादृशींतु मौलिकतां तत्वेषु व्युत्पादयन्ति वैज्ञानिकाः, सा भूतानामपि सूक्ष्मावस्थायामस्त्रेव । तथाहि जलस्य 'अम्मः, मर्राचिः, मरः, आपः—इति चतस्रोऽवस्थाः श्रूयन्ते । तत्र स्थूलानामपां यौगिकत्वं वैज्ञानिकै-रस्मदिष्टमेव साध्यते । सूक्ष्मस्याम्भसस्तु यौगिकत्वं न तैरुपदर्शयितुं शक्यम् । तदित्त्थं भूतत्वं सर्वानुगतम्, भौतिकत्वं तु चतुर्थपंचम्योरवस्थयोः—इति दश्यानां पृथिव्यादीनां मृतत्वं भौतिकत्वं चेत्युभयमिपयुज्यते ।

वादी:-श्री देवनायकाचार्यः -अणुभूतानि यानि भवद्भिरुक्तानि, तेषां यः सूक्ष्मतमोंऽशः परमाणुः, तस्य छक्षणमुच्यताम् ।

प्रतिवादीः - गिरधरशर्मा, -- तज्जातीयस्क्ष्मतमावयवत्वमेव तळ्ळक्षणम् । यावद्भि जळ जातीयं द्रव्यं रक्ष्यते, तावत्तस्य जळपरमाणीविभागो न शक्यते कर्तुम्, यदि तु वैज्ञानिक्या प्रक्रियया तदि विभज्येत, तदा तत्वान्तरं तद्भ-विष्यति, जळजातीयं द्रव्यं तिरोभविष्यति । एतदेववैशेषिकप्रक्रियाखण्डना-वसरे श्रीशंकरभगवत्पादैः शारीरक्षमाण्ये व्यक्तीकृतम् ।

वादीः -श्री देवनायकाचार्यः -तदा कस्यापि भूतस्य नित्यत्वं भवन्मते न सिध्वति ।

प्रतिवादीः --गिरधरशर्मा -- एकरूपावस्थायित्वं नाम कूटस्थनित्यत्वं भूतेषु नेष्यत एव । अवस्थानां प्रतिक्षणं तत्र परिवर्तनाबलोकनात् । निरुक्तेषु भूतानां रूपेषु येन केन चिद्र्पेणाविस्थितिस्तु सर्वेषामप्रत्याख्येया, ''नाभावा विद्यते सतः '' इति सिद्धान्तात् । न्यायनिरूपित आरम्भवाद एव नास्मद्द्रिंनानां चरमं लक्ष्यम्, सातु सौकर्येण बोधनाय प्राथमिकी प्रक्रिया । परिणामवादे कृपया दीयतां मनाग् दृष्टिः । तत्र वादे विभिन्ना भूतानामवस्था अम्युपगम्यन्ते, परस्परं च ताः परिवर्तन्ते । यथा जलस्य चतस्रोऽवस्था मयोपदिश्ताः । तासु भूतावस्थास्रेव भवतां तत्वान्यन्तर्भवन्तीत्युक्तं मया ।

वादीः -श्री देवनायकाचार्यः -जलस्य चतस्रोऽवस्थाः स्पष्टीक्रियताम् । अस्माभिर्जलोत्पादकत्वेनाभिमतयोः 'हैद्रोजन, ऑक्सिजनपदार्थयोः कुत्रांतर्भाव इति च स्पष्टमुच्यताम् ।

प्रतिवादीः – गिरिधरशर्माः – सर्वं स्पष्टीकरिष्यामि । किंतु भवन्तः किं केवछं पृच्छका एव १ भवद्भिः खाभिमतानां तत्वानां छक्षणादिकमेतत्काछपर्यंतं किमपि नोक्तम् । तेषां छक्षणान्यपरिज्ञायान्तर्भावः कथमस्माभिः साध्यताम् १ नेयं वादस्य गौतमाभिमता प्रक्रिया। वादे ह्युभाभ्यामिप ख-ख-पक्षः स्थापनीयो भवति, न तुं एकस्य पक्षस्य प्रश्नमात्रं कर्तव्यम्। न च वितण्डाऽत्रेष्यते। तस्मात् खाभिमततत्वानां छक्षणानि पूर्वमुच्यताम्।

प्रतिवादीः - गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी - इदानीं भवतां तत्वविवरणं श्रुतम्। अथेदं मनागालोच्यते । एवं सूक्ष्मावान्तरभेदेन पदार्थभेदे गण्यमाने न पदार्थेऽ-यत्ता कदापि निष्पतितुमहेंत्, अवान्तरभेदानां कथंचित् प्रतिव्यत्त्येव जाग-रूकत्वात् । यत्र यदाभेददृष्टिः पतेत् , तदैव स भिन्नतया परिगण्येतेति न वर्गीकरणं स्थैर्यमासादयेत् । तत एव चानुदिनं वर्द्धत एव वैज्ञानिकानां तस्वगणना, श्रूयत इदानीं द्विनवतिगणनापि पुराणस्वमापेदे, इदानीतुं शताद-प्यधिका संख्या विराजते, नेयं संख्या सहस्रमप्यतिकामेदिति कः प्रतिजानीते। नायमनुगमस्य पन्थाः । किंच गुरुत्वमेवाधारीकृत्य सर्वेयं भवतां तत्वगणना, गुरुत्वतारतम्येनैव पदार्थभेदस्य भवाद्भिः प्रकल्पित्वात्। इदानीं तु ताम्रादीनामपि सुवर्णभावे परिणमनं चिराद्भारतीयेषु प्रसिद्धं वैज्ञानिकैरप्यभ्युपगतप्रायमिति गुरुत्वस्य भिन्नभिन्नावस्थासूत्पाद्यत्वे सिद्धं मूलमेव तत्वगणनाया विशीर्णप्रायम्। अपि च द्रव्यगुणपरिभाषा भवद्दर्शने नास्तीति तत्वधर्मा भवद्भिरुच्यमानाः कान्तर्भवन्तीति दुःसमाधयोऽयं प्रश्नः । हैद्रोजनप्रभृतयो यथा तत्वेषु गण्यन्ते, तथा गुरुत्व-द्रवत्वाद्या अपि कुतो न गण्यन्ते ? तेषां पृथगुपल्बियनास्तीति चेत् , द्रवत्वात्तु गुरुत्वस्य पृथगुपल्रब्धिरस्ति ? गुरुत्वादिमिश्रणेनैव कदाचिदेषां तत्वानामुत्पत्ति स्यात् , तत्पृथकरणप्रिक्रया चाद्यात्रिध न भविद्वर्जातास्यादिस्यपि संभवति । अथेदमप्याकलनीयम्—तत्वानां घनत्वद्रवत्वबाष्पावस्था या उच्यन्ते, ता अवस्थास्तत्वेभ्यो भिन्ना अभिन्ना वा ? अभिन्नाश्चत् , घनावस्थस्य दुतावस्थस्य च तत्वस्य कथमैक्यम् ? अवस्थाभेदे तदभिन्नस्य तत्वस्यापि भेदसिद्धेः। भिन्नाश्चेत्, कुत्र ता अन्तर्भवति, तासामपि पृथक् परिगणनं प्रसक्तम् ? पृथक्-स्थानानवरोधिका इति न तास्तत्वभूता इति चेत्, अतत्वभूता एव तत्वानि

ब्यवस्थापयन्तीति महदिन्द्रजालम् ? एवं तर्हि यथा मूलतरतत्वानि, मूलतत्वानि, संयुक्ततत्वानीति, त्रैविध्यं गण्यते, तथा नित्यमपराऽश्रिततत्वरूपाचतुर्ध्यपि विधा गण्यताम् , द्रव्यगुणादिपरिभाषा वा स्वीक्रियताभिति । नाद्ययावदियं वैज्ञानिक-पद्धतिर्निरूपणाहितां प्राप्ता । अस्ताम् - अस्माकन्तु भूतानामवस्था भेदा एते, न पृथक् तत्वानि । सुवर्णताम्रपारदाद्याः खल्च तेजांसि गण्यन्त एव न्यायादि-प्रंथेषु । बहवश्च भवदभिमतेषु वायुविशेषा अग्निविशेषाश्च । अवस्थाभेदाहींमे द्विनवतितोऽप्यत्यधिकास्तत्र तत्र निरूपिताः सन्ति । यथाऽग्नरेकस्यैवोनपञ्चा-शद्भेदा विवृता वायुपुराणे, एवं वायुरप्यूनपंचाशद्विधः, ऊनपंचाशन्मरुतः सर्वत्र पुराणेषु निरूपिताः । तदवान्तरभेदारतु न शक्यन्त एव संख्यातुम् । अथ जलस्य प्रथमतश्चतस्रोऽवस्था या मया उक्ताः, तद्विवरणं संक्षिप्योच्यते । श्रयतेहि " आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्, सं इमान् छोकानमृजत— अम्मोमरीचीर्मर आपः । अदोम्भः परेण दिवः, द्यौः प्रतिष्ठा । अन्तरिक्षं मरीचयः । पृथिवींमरः, या अधस्तात् ता आपः " इति । अत्र हि श्रुतौ जलस्य सर्वतः प्रथममुत्पत्तिः श्रूयते, याह्यन्यत्रापि श्रुतिस्मृतिषु सुस्पष्टं विद्-तास्ति ' अप एव ससर्जादी तासु बीजमवासृजद् ' (मनुः) इत्याद्यासु । तस्य च जलस्यावस्थाचतुष्टयं लोकचतुष्टयन्यापि लोकोत्पत्तिहेतुभूतं च लोक-शद्भेन निर्दिष्टम् । पृथिन्यन्तरिक्षंचौश्चोतिभूः, भुवः, स्वरित्याख्यातं लोकत्रयम् । एतन्मर्त्यभित्युच्यते श्रुतिषु । दिवः परं तु महः, जनः तपः, सत्यमिति अमृत-मित्युच्यते । मध्ये सूर्यमण्डलम् [द्यौः] सत्यामृतोभयात्मकममृतमृत्युनियामकम् । ' आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतंमत्येच ' इति भगवान् सूर्यःस्त्यते। अस्माकं हीयं पृथिवी सूर्येण संबद्धा, सूर्यवशगा । इहामृततत्वमपि यत्प्राप्यते, तःसूर्यमेव द्वारीकृत्य, नतु खातंत्र्येण, एतदेवाभिप्रेत्य सूर्यमण्डलादप्युपरिष्ठात् स्थितस्याम्भसः सूर्यमेव प्रतिष्ठां श्रुतिराह । तेनेदं सिद्धम् , सूर्यात्परतः परम-ष्ठिमण्डलसंबद्धाः सोमरूपा या आपः, ता ' अम्भः ' इत्युच्यन्ते । इयमेव-जलस्य प्रथमा सूक्ष्मतमाऽवस्था । एतद् 'अम्मः' एव आधुनिका वैज्ञानिकाः ' हैद्रोजनस्य ' पदेन परिचिन्वन्तीति संभाव्यते, गुणधर्माणां प्रत्यभिज्ञायमान-

त्वात् । हैद्रोजनतत्त्वं हि सर्वतत्वापेक्षया छघुभूतमुच्यते भवद्भिः, तदेतत् सूर्यमण्डलादुपरितनेऽस्मिन् सुतरामुपपन्नम्, पृथिवीसनिकर्षस्य, पृथिव्याक-र्षणबन्धस्य गुरुत्वप्रयोजनत्वातः, अम्भसिदवीयसि गुरुत्वाल्पतायाः सुस्पष्टं । हैद्रोजनतत्वमग्निसंबंधाज्ञ्वलतीत्यपि सोमरूपे तस्मिन् सूपपन्नं, सोमस्यैवाग्निसंबंधाज्ज्वलनस्य श्रुतिषु निरूपितत्वात् " आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष् पर्यन्ति वासरम् " इत्यादिषु मंत्रेषु सूर्यरिमसम्पर्कात् सोमाभिज्वलन-मूलक एवायं दिवाप्रकाश इति स्फुटमाख्यातम्। " त्वमिमा औषधीः सोम सर्वाः, त्वमपो अजनयस्त्वंगाः, त्वमातनो सर्वन्तरिक्षं त्व ज्योतिषा वितमो ववर्ष " इत्यादिषु मन्त्रेष्वपि प्रकाशजनकत्वं सोमस्यातिस्फुटम् । जलस्य चेदमुपादान-मिति जलसूक्ष्मावस्थात्वं तत्रानाख्यातमपि सिद्धं, सूक्ष्मावस्थात एव स्थूलेत्पत्तेः उपगमात् । अथ " आक्सिजन " पद वाच्यस्तु श्रौतः पवमानाग्निरिति संभाव्यते, पवमानी ह्याग्नेयः सोमः श्रुतिषु सिध्द्यति । ' कंखिद्गर्भं प्रथमं द्रध्रआपः ' इति प्रश्नमुत्थाप्य ' अग्निं गर्भं प्रथमं द्रध्रआपः '' इति खयं मंत्र उत्तरमाह । " अप्तु मे सोमो अन्नवीदन्तर्विश्वानि मेषजा, अग्नि च विश्वशंभुवं " इति च मन्त्रः स्पष्टमग्नीषोमसंबंन्धाज्ञातं जलमुद्घुष्यति । ' अग्नीषोमात्मकं-जगत् ' ' सर्वमापोमयंजगत् '। आस्ताम् , ततश्च आविसजनपदेन परिचितं पवमानामि गर्भाकृत्याम्भ इदं योगिकजलरूपेण परिणमते, दवत्वं चात्राग्निसंबन्धादेव प्रस्फुटीभवतीत्यस्माकं प्रक्रियय।ऽपिसिद्धम् । इदमपि प्रसंगा-दुच्यते—इतरलोकासंपुक्तं विद्युद्धमिदमम्भो मेरोरुपरि घनीभूय गङ्गाजलरूपेण परिणमते, तत ९व गंगाया दिव्यनदीत्वं व्यवहरामः । गङ्गायाः स्फुटमभिलक्ष्य-माणः कोऽपि महिमा चेतन्मूलक एव। अथ जलस्य द्वितीयावस्था श्रुतौ " मरीचिः " इत्युक्ता, तिददं सूर्यिकरणसंसक्तं जलम् । एतत्संबंधादेव किरणा अपि मरीचय उच्यन्ते । कचन किरणसंघर्षाद् घनीभावमापनाश्चेमे मरीचय एव यमुनाजलरूपेण परिणमन्ते-इलायीणां दृष्टिः । तत एव सूर्यिकरणेभ्य उत्पन्ना यमुना सूर्यपुत्रीत्याख्यायते । अथ तृतीया जलस्यावस्था 'मर' इत्युक्ता, या पृथिव्या उपादानभावमुपयाति । पृथिवीयं जलोदेवोत्पद्यत इति श्रुतिस्मृति-

पुराणान्येकमुखेन जोघुष्यन्ते । आपः, फेनः, मृत्झां, सिकता, शर्करां, अश्मा, अयः, हिरण्यम् , इत्यष्टाववस्थाः शतपथत्राह्मणस्य पञ्चमश्रष्टयोः काण्डयोः स्फुटतमं विवृता, अष्टाक्षराहीयं गायत्री । अथ पृथिव्यां खन्यमानायां यदिदं जलं प्राप्यते, यज्जल्वेन व्यवहरामः, सयमाप इति चतुर्थावस्था श्रुतौ वर्णिता । "या दिव्या आपः पयसा संबभुवुर्या आन्तरिक्ष्या उत पार्थिवीर्याः " इत्यादिष्विप मन्त्रेषु जलस्य दिव्याद्या अवस्था वर्णिताः सन्ति । तदयं निर्गलितोऽर्थः —भूतानां स्थूला अवस्था यौगिक्य इति अस्माकमिप शास्त्राणि स्फुटं प्रमाणयन्ति, तस्यैतस्य सिद्धस्य साधनाय न वैज्ञानिकैः प्रयत्न आस्थयः । सूक्ष्मास्तु भूतानामवस्था भवद्भिरेलिमेंटनाम्ना व्यवहियन्त इति नामभेदमन्तरेण किमिप वैषम्यमुभयत्र नोपलम्यते । भवतां प्रक्रियाऽद्य यावत् स्थेर्यं न गतेति निरूपणभरं न क्षमते, अस्मद्दर्शनानान्तु प्रक्रिया चिरादाघातान् सहमाना सुस्थेर्यमासादितवती न विद्यावयितुं शक्या । ईश्वराज्ञासिद्धा चयं न मनुष्यबुद्धिप्रसूता, ततो न मनुष्येर्विपरीततां नेतुं शक्यत्समाकं विश्वासः । इतस्ततः परिभ्रम्य विज्ञानिमहै-वायास्यतीत्यन्ततो जयोऽस्याः सुनिश्चितः प्रक्रियायाः ।

कविराज उपेंद्रनाथदासानां-पंचभ्तपरिषदि वक्तृता

१ क्षित्यप्तेजो मरुद्व्योमनामिः प्रसिद्धानां कैश्वित् प्राचीनाचांयेरिप ' भूत ' ' महाभूतनाम्नाऽभिवणितानां मध्ये क्षित्यविन्छास्यानि द्व्याणि विजातीयद्रव्यसंयोगजानि, तेजरतु शक्तिमात्रम्, आकाशं चावस्तु ' इति वैज्ञानिकैः प्रमाणीकृतम् तस्मानेतानि भूतानीति वक्तुं युज्यते । स्थूछपृथिव्या-दीनां विश्वेषणास्त्रव्यानां एिसेंटसंज्ञकानामिप यौगिकत्वं तैरेव प्रमाणीकृतमेव । नाद्यापि वैज्ञानिकैरिप मूलभूताविष्कार आविष्कृतः । वैज्ञानिकपरिकल्पनानां अतिचच्छत्वात्तत्राविश्वासोऽपि विचारशीस्त्रानां, अतो मूलभूतस्ररूपगुणादि-निर्णयायास्त्येव पंचभूतविचारस्य महस्प्रयोजनं। यत्तु पंडितवर्या राजेश्वरशास्त्रि-महाभागा आयुर्वेदशास्त्रज्ञानां पंचभूतविचारे किं प्रयोजनमिति पृच्छंति, परं नेयं केवलमायुर्वेदज्ञानां परिषत् , किन्तु सर्वशास्त्रज्ञा एव विचारार्थमुपस्थिताः तस्मात्साधारणमेव प्रयोजनं युक्तं प्रतीयते ।

२ वैज्ञानिकपक्षसमर्थनोद्यतेन श्रीमता देवनायकाचार्येण चिकित्सा-शास्त्र पंचभूतपरीक्षण काकदन्तपरीक्षणवित्रर्थकिमिति स्थापितम्। तदुत्तरत्वेन— 'पंचमहाभूतशरीरीसमवायः पुरुष इति छक्षणादायुर्वेदवर्णितः पुरुषोऽपि भौतिक एव । भौतिकानि चेन्द्रियाणि आयुर्वेदे वर्ण्यते तथैवेद्रियार्थाः। "भूतेम्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते" इति सुश्रुतवचनाद् भूत-ज्ञानद्वारैव चिकित्साशास्त्रवार्णतविषयोपदेशात् चिकित्साशास्त्रजिज्ञासु।भिरादौ भूतपरीक्षणमेव कार्यमिति।

३ येन भूतेन विशेषाद्यदिन्द्रियमारभ्यते तेनेंद्रियेण तद्भूतस्यैव विशेषगुणो ज्ञातुं शक्यते, यदुक्तं चरकाचार्येण— " यद्यदात्मकमिन्द्रियं तत्तदात्मकमेवार्थमनुधावती''त्यादि, श्री सुश्रुताचार्यणाष्ट्रक्त "मिद्रियेणेंद्रियार्थं हि स्वं स्वं गृण्हाति मानवः। नियतं तुल्ययोनित्वादित्यादि "। तत्र कस्यचिद् भूत-स्याऽनेकेंद्रियार्थत्वे तदारब्धेंद्रियेण तद्भूतगुणाः सर्वे एव ज्ञातुं शक्यन्ते। दश्यते चेंद्रियेण नियमेनकैकेंद्रियार्थगृहणम्। तस्मादनुमीयते यदेकैकेंद्रियाधि-ष्ठानानि भूतानि।

४ भूतानि परमाणुखरूपाणि नित्यानि, नियमेनैकैकेंद्रियार्थाधिष्ठानानि।

५ नियमेन पंचैवेदियाणि, पंच चेंद्रियाथी इति सर्वेषां नः प्रत्यक्षमेव। तस्मात् पंचेदियप्रधानोपादानत्वेन, पंचेदियार्थगुणाश्रयत्वेन, पंचैवभूतान्यनुमी-यन्ते। पंचेतरभूतजन्यानामिदियाणां तद्धीनां, च नियमेन पंचता न संगच्छते इति पंचैव भूतानि।

६ महाभूतादिसंज्ञकानां जन्यानामनित्यत्वेऽपि सर्वादिकारणानां परमाणुखरूपाणां भूतानां नित्यत्वमत अनादित्वमिति ।

८ सर्गादावीश्वरेच्छया परमाणुखरूपेभ्यो भूतेभ्यो द्यणुकादिक्रमेण महा-भूतान्युत्पद्यन्ते, सृष्टिकाले तु महाभूतेभ्यो भौतिकेभ्यो वा भौतिकान्युत्पद्यन्ते, महाप्रलये च पुनरीश्वरेच्छया भौतिकां महाभृतानां च परमाणवो विश्विष्यन्ते। सृष्टिकाले परमाणुपर्यंतं विश्लेषस्य प्रमाणं नोपलभ्यते । परमाणूनां पृथक्करणे नाद्यापि कश्चित्समर्थः ।

९ भूतान्येव कारणव्यापारात् कार्यरूपेण परिणमन्ते, कार्यस्य स्थितिकाले तत्रानुस्यूतानि तिष्ठन्ति, कार्यनाशेऽपि भूतस्वरूपं न नश्यतीति तस्मादुपादान-कारणान्येव भृतानि ।

११ ' पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां समुदयाद् द्रव्यामिनिर्वृत्तिः उत्कर्ष-स्वामिव्यंजको मवतीदं पार्थिवमिदमाप्यमित्यादि '' सुश्रुतवचनात्, ' सर्वं खल्ड पांचभौतिक'मित्यादि चरकवचनात् तथा ' अन्योन्यानुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत् ' इत्यादि सुश्रुतवचनात् तथा दृश्येषु पृथिव्यादिषु सर्वेषामेव मूतानां गुणदर्शनाद् दृश्यानि पृथिव्यादीनि पांचभौतिकानि ।

१२ वैज्ञानिकवर्णितं हैद्रोजनतत्वस्य गुणादिकमाकण्यं सूक्ष्मं जलतत्व-मेतत् भिवतुमर्हतीति श्री. पंडित गिरिधरशर्मभिः कथितं, तथापि ज्वलनसमये सश्चद्वमेतद्दद्धते स्पर्शः रूपं चास्मिन् द्रवीभूते धनीभूते वा स्पष्टमेवोपलम्यते, रसानामुपादानमेतदित्यपि परीक्षासिद्धं, बहूनां गन्धवतामप्येतदुपादानमिति तत्वेऽस्मिन् पंचैवेदियार्था उपलम्यते, तस्मात् पांचमौतिकमतत्तत्वमिति मन्ये। अन्येष्वपि तत्वेषु एलिमेटसंज्ञकेषु पंचभूतगुणाः पंचेदियार्था उपलम्यते तस्मात् पांचमौतिकान्येव तत्वानि, न वा मूलतत्वानीति।

१३ विद्युदेव जगत्कारणमिति वैज्ञानिकपक्षीयेरुक्तं, तत्र एकैवविद्युद्धारा श्रीत्रसंख्या राद्वानुभूतिं जनयति, त्वक्संख्या स्पर्शानुभूतिं, नेत्रसंख्या रूपानुभूतिं, रसनासंख्या रसानुभूतिं, द्याणसंख्या च गन्धानुभूतिमिति परीक्षा- सिद्धमभवत् ततोऽनुभीयते विद्युद्धारायामेव राद्धादयः पंचेदियार्था विद्यन्ते इति । तस्माद्विद्युद्धाराऽपि पांचभौतिकीति । अत्र श्रीमता गणनाथेनाशंकितं यद्दि- द्युद्धारायां सन्ति राद्धादयोगुणाः किन्तु सा इंदियाणामुत्ते। जिनीति वैज्ञानिकानाम- भिष्रायः तत्र मयोक्तम् —विषयसन्तिकषमन्तरेण केवलेन्द्रयोपादानभूतानां भूतानां गुणा नोपखभ्यन्ते, किन्तु विषयसन्तिकर्षाद्वेदियोपादनभूतगुणेषु विभुता संजायते तदैव विषयप्रहणं संभवति । एतद्र्थं श्रीमता चरकेणाप्युक्तं " तत्- स्वभावात् विभुत्वाचेति"।

१४ परमाणुतन्मात्रयोरभेद एवास्माभिर्मन्यते ।

पंचभूत-सम्भाषापरिषदि
एिलेमेन्टसंज्ञकमूलतत्विचारः
वक्ताः—वीरमणी प्रसादोपाध्यायः
[एम. ए., साहित्याचार्यः न्यायशास्त्री]

एिलेमेन्टसंज्ञकानां द्विनवतिसंख्यकानां प्रतिच्यरासायिनकैर्मूलतत्वतयाऽङ्गीकृतानां । भूतत्वं न वेति विचारे ।

तत्र प्रथमं हैद्रोजन-अक्सिजनपदार्थयोः खरूपविवेचनपुरस्सरं भूतेष्वन्तर्भावः संक्षेपेणोपपाद्यते—

नवीनवैज्ञानिकैरुभयत्र गुरुत्वं न्यूनाधिकभावेनाभ्युपेयते, न केवलं गुरुत्वमपि तु वैज्ञानिकविश्लेषणप्रक्रियापर्यालोचनेन समुपनिबद्धसूत्रसमीक्षया च संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगादयोऽप्यभ्युपगताः प्रतीयन्ते, द्रवत्वमप्युभयगतमधि-कतापक्रमापेक्षमल्पतापनिबन्धनं वा खीकियते । इयाश्चात्र विदेशेषोऽपि विनिर्दिश्यते यत्—हैद्रोजनपदवाच्यः प्रज्वलितशलाकापाते प्रकाशनाशकः अक्सिजनपदवाच्यस्तु दीप्तशलाकानिक्षेपे विशेषज्वलनशीलः ।

अत्रदं विचारणीयम् – यत् द्रवत्वदिः रूपव्याप्यतया – द्रवत्वदिगुणोपलम्भकं रूपमेव । 'संख्यापरिमाणपृथवत्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वस्वेहवेगद्रवत्वकर्मणां प्रत्यक्षद्रव्यसमवायात् चक्षुः पर्शनाभ्यां प्रहणादि त्यादि वाक्यानुसारेण—
तत्समानाधिकरणेन व्यापकेन च रूपेणाप्यवश्यम्भाव्यम् , तदाश्रयद्वव्यं च
साधारणतः प्रत्यक्षतोऽनुपलभ्यमानमपि नूनमेव प्रहणखरूपयोग्यं—तथाचोक्तं—
'संख्यादीनां द्रव्यग्रहणयोग्यताऽन्तभूतयोग्यतानां द्रव्यवद्भ्यामिदियाभ्यामुपलब्धः ' । तद्गतरूपस्योपलम्भोऽभिभवादिहेनुभिः प्रतिबद्ध इति
कल्पनीयम् । अनभिभवोद्भवरूपरूपविशेषे सत्येव कस्यापि पदार्थस्य कारणानतरसहकृतेनेदियेण प्रत्यक्षम् । तत्रोद्भवामकरूपविशेषो यत्कतार्थे चिद्धियये
रूपोपलब्धियद्भावाच महदनेकद्भव्याश्रयस्याप्यनुपलब्धः स उद्भवसमा-

ख्यातो रूपधर्मसहकारिविशेषः । दृष्टञ्च रूपविशेषाभावात् वारिस्थिते तेजासि महदनेकद्रव्यत्वस्याप्यप्रहणमनुद्भूतरूपस्य ।

बलवत्सजातीयग्रहणकृताग्रहणरूपस्वाभिभवस्याप्यभावः सजातीयद्रव्यांतरप्रहणिवरहेण नाशङ्कनीयः, अन्धकारे सुवर्णरूपग्रहापात्तिवारणाय बलवत्सजातीयसम्बन्धमात्रस्यैवाभिभवपदार्थत्वेनाभ्युपगमनीयत्वात्-तथाचोक्तं
' मूसंसर्गवशाच्चान्यरूपं न प्रकाशते । तस्मादुभयत्रानुद्भवाभ्यूसंसर्गवशाद्वा
रूपग्रहणहानिरितिकल्पने न काऽपि क्षतिः । भूभागस्योभयत्र समानत्वेऽपि
प्रतिपादितवेषम्यनानुपपद्यमानतया विरुध्यते । यतो भूभागो द्विविधः सर्वैरप्यनुभूयते—एकस्तेजोविरोधीतरश्च तेजःसहकारीति, यथा पार्थिवः कर्प्रः पावकप्रक्षिप्तस्तरप्रदीपकः पासुप्रचयश्च प्रक्षिप्तस्तदुपशमकस्तस्मात्पार्थिवभागसंसर्गाद्रूपं चक्षुषा न प्रकाशते किंतु तत्र विहिशिन्द्रियग्रहणयोग्यत्वविशिष्टविभूषगुणत्वरूपभूतत्वसद्भवाभ्दृतत्वमव्याहतभेव तथोः ।

इदं ताबदत्र विचारियतुमबिशिष्यते यत्पञ्चसु भूतेषु कतमाविमी इति, तत्र रूपवत्तया युगुलमेवैतःपृथिबीप्रमृतित्रयेऽन्तर्भूतमेव [पृथिबी-जल-तेजासि] तथाचोक्तं—' त्रयाणां प्रत्यक्षत्वरूपवत्वद्रवत्वानि '। तत्रापि सांसिद्धिक-द्रवत्वशैत्याऽभावात् स्नेहाविनाभूतद्रव्यान्तरसंप्रहानुपपत्तेश्च न जलम् । अनयोः हि न्यूनाधिकतापसंयोगजन्यभेव द्रवत्वं न तु स्नेहसहितद्रवत्वरूपं सांसिद्धिक-द्रवत्वं । तथाचोक्तं—' सांसिद्धिकद्रवत्वस्याग्निसंयोगाज्ञायमानत्वेन बाधितत्वात् '। अथवा सांसिद्धिकत्वम् पाकाप्रयोज्यद्रवत्वगतो जातिविशेषः, शैल्यसमानाधिक-रणद्रवत्वत्वं वा ।

तत्रापि ' सर्पिजेतुमधू च्छिष्टानाम ग्निसंयोगाद् द्रवत्वम द्भिः सामान्यम् , ' तथा च ' त्रपुसी सलैह जतुसुवर्णानाम ग्निसंयोगाद् द्रवत्वम द्भिः सामान्यम् '--इत्यनयोवैं शेषिक सूत्रयोः क्रमशः पार्थिवते जसगतद्रवत्व निरूपणप्रयोग्धां स्यायां वार्तिक कृता विवेचितम स्ति यत्पूर्वत्र स्त्रे अपद्भी षण्यप्रकर्षव से जः प्रमप्रत्र स्त्रे तु विन्हप्रम् । तथाच पार्थिवद्रवत्वं प्रकृष्टतापव त्ते जः संपर्क साध्यम् , तैजसं तु द्रवत्वं सामान्यवन्हि संसर्गजन्यम् । अत्रैवायमपरोऽपि विवेको यत् पार्थिवरूपमसित विरोधिनि परावर्तते सित तु नेति नियमः, किन्तु तैजसं सुवर्णादि निरन्तरं ध्मायमानमि न पूर्व-रूपं जहाति न च रूपान्तरमापद्यते—एवञ्चात्यन्ताग्निसंयोगेऽपि द्रवत्वानुच्छेदः पूर्वरूपान्यरूपानुत्पादश्च विशेषः, तथा च न्यायप्रयोगः सुवर्णादि न पार्थि-वमत्यन्तानलसंयोगेऽप्यग्तिसानरूपत्वात् जलवत्; सुवर्णं तैजसं प्रहरपर्यन्तमानलसंयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानानित्यद्रवत्वाधिकारणत्वात्; अथवा पीतिमगुरु-त्वाश्रयः पीतरूपिमन्तरूपप्रतिबन्धकद्वद्वव्यसंयुक्तः प्रहरपर्यन्तमनलसंयोगेऽपि पीतरूपिमनरूपप्रतिबन्धकद्वद्वव्यसंयुक्तः प्रहरपर्यन्तमनलसंयोगेऽपि पीतरूपिमनरूपानाश्रयत्वात् इत्यादि । तस्मादेतितसद्भिद्धमेवावसेयं यत्प्रभूतपाव-कसम्पर्के परावर्तमानरूपवत् पार्थिवम् , अनुवृत्तरूपवत्पार्थिवसिवशेषधर्मविधुरञ्च द्वयं तेजसमेवेति ।

वर्णितविचारतुलामधिरूढों उपर्युक्तपदार्थी कुत्रान्तर्भवत इति विचारणीयम्—तत्राधिकतापक्रमापेक्षितया अक्सीजननामके पदार्थे पार्थिवं द्रवत्वमापतित, पार्थिवभागसिमश्रणादेव विन्हसंयोगेन प्रतिबन्धकापनये तत्रेषन्नीलरूपाविभीवदर्शनात् रूपपरावर्तनभि संगच्छते समुपपद्यते चात एवात्र हेंद्रोजनपदार्थापेक्षया गुरुत्वातिशयोऽपि ।

हेद्रोजनपदार्थस्तु रूपान्तराप्रहणात् , अधिककाछं यावदिम्मसंयोगेऽपि द्रवत्वोच्छंदवैधुर्याच्च तैजस एव प्रतिभाति । अत्र द्वयोर्ग्रहत्वं रसवत्त्वञ्चेति सूत्रानुसारेण तेजासि गुरुत्वाभावे सिद्धे गुरुत्वोपलम्भानुपपित्तर्नाशङ्कर्नाया, यतो गुरुत्वं पार्थिवभागगतमेव तत्र निर्णेतुं शक्यते, अत एव तत्र तेजोविरोधि-पार्थिवभागसम्भिश्रणासादिता रूपानुपल्ण्यिद्यरिप संगन्तुं शक्यते । तयोः पार्थिव-तेजसत्वव्यपदेशश्च भूयस्यहेतुकः । इत्यं च यदैतानि मूलतत्वानि भूतसम्मिश्रणजन्यानि नैकभूतगतधर्माश्रयत्वात् तदा कथं शुद्धभूतकोटिं तन्मात्राकोटिं वा समारोढुं प्रभवन्ति, प्रत्युत भौतिककोटिप्रविष्टान्येवेति व्यवस्थितिः समीचीना प्रतिभाति ।

इदानीन्तनाः वैज्ञानिकाः वदन्ति यत्प्रत्येकाणुषु रार्करायाः कार्बन तत्वस्य द्वादश, हेद्रोजनतत्वस्य द्वाविंशतिः, अक्सीजनतत्वस्यैकादश प्रमाणवो भवन्ति तत्रावयवभ्तपरमाणवः कथं खयमेव द्वयणुकादिक्रममुत्कम्य शर्करा-त्मकमहत्कार्यमुत्पादियतुम्पार्यन्ते । इत्थमत्र न्यायप्रयोगः—परमाणवो नाहत्य स्थूलारम्भकाः परमाणुत्वे सित बहुत्वात् घटोपगृहीतपरमाणुवत् , अनेनानुमा-नेन द्वयणुक्रमारम्भपरमाणोस्रसरेण्वनारम्भकत्वसिद्धेः का कथा महत्तरारम्भक-त्वस्य, द्वयणुकादिपरम्परया घटाद्यारम्भकत्वानङ्गीकारे भग्ने घटादौ कपालादि-नीपलम्येत तस्य घटाद्यानारम्भकत्वात् । वेज्ञानिकरम्युपगता अणवस्तु न द्वयणुक्रकक्षीयाः यतस्तेषु मानसिद्धाऽयतनभारस्तीकारेण मानयोग्यगुरुत्वस्यो-दक्षपरमाणुद्वयणुक्रयोः पाथिवपरमाणुद्वयणुक्रयोश्च तैजसपरमाणुप्रभृतौ च सर्वथा गुरुत्वस्यासिद्धत्वात् ।

' अतो विपरीतमणु, इति सूत्रेणाणां वैपरीत्यम्प्रतिपाद्यते तच वैप-रीत्यम् लैकिकप्रत्यक्षाविषयत्वं कारणबहुत्वाद्यजन्यत्वञ्च—एवं द्वयणुकपरिमा-णस्य परमाणुगतद्वित्वसंख्याजन्यत्वेनोभयं समुपपन्नम्भवति । अत्र तु न तथा द्वयधिकसंख्याकपरमाणुजन्यत्वाभ्युपगमात् । तस्मात् द्वयणुककोटितोऽप्यधस्तना आधुनिकवैज्ञानिकसम्भता अणव इति कथन्तद्वयवानाम्परमाणुत्विमिति सर्वेऽपि वैज्ञानिककृताः परमाण्वादिन्यपदेशा अविचारितरमणीयाः प्रतिभान्ति । अनयैव दिशा सर्वेषामपि सांप्रतिकवैज्ञानिकम्लतत्वतयाऽङ्गीकृतानां एलिमेटसंज्ञकानां भूतेष्वेवान्तर्भावो भवितुमर्हतीति प्रकृतिभूतमृतविश्लेषणं कर्तुमपारयंतो वैज्ञानिकाः भास्यव द्विनवितसंख्याकानि मूलतत्वानि साध्यन्ति ।

॥ श्री ॥ पंडित श्रीरुद्रदेवशास्त्री (बनारस) इत्येषां वक्तृता ।

प्रतीच्यवैज्ञानिकैरुर्शकृतानां " इल्लेक्ट्रान्-प्रोटान्-ईथराख्यानां तत्वानां पौरस्त्यदार्शनिकेरङ्गीकृतेषु पदार्थेषु कुत्रान्तर्भावः कथञ्च " ? " किन्नाम चैतन्यम् " ? ॐम् । पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णाःपूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावाशिष्यते ॥ मान्यवरपरिवत्पते ! मान्याः सदस्याश्च !

अखिलायां अम्भोजयोगिसृष्टौ यावती सुषमा प्रस्ता सम्प्रति दृश्यते, या पूर्वञ्च कदापि आसीत्, उत्तरकाले च या कदापि भविष्यति, सा किम्मूला १ किमाधारा १ कुत आजाता १ इतामे सन्ति प्रश्नाः येषां समुचितं समाधानं वाञ्छति गुणज्ञः सर्वो जनः।

भगवति वेदे सन्ति बहवा मन्त्राः येषु एताहशानां प्रश्नानामस्ति समुञ्जेखः । तथा हि—

> किंखिदासीत् अधिष्ठानमारम्भणं कतमिंखत् कथासीत्। यतो भूमि जनयन् विश्वकर्मा विद्यामाणीन्महिना विश्वचक्षाः॥

> > — यजुः १७ अ० १८ म०

किंखिद्रनं क उ स इत्त आस यतो द्यावापृथिवी निष्ठतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्य तिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥

— यजुः १७।२०

यस्मिन् भूमिरन्तिरक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता । यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यपिताः । स्कम्मं तं बृहि कतमः खिदेव सः ॥

- अथर्व १०।४।७।१२

यत्रादित्यश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः । भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे छोकाः प्रतिष्ठिताः । स्कम्मं तं ब्लृंहि कतमः खिदेव सः ।

— अथर्ववेदे ।

ऋग्वेदस्य नासदीयं सूक्तन्तु विषयेऽस्मिन्नतिविख्यातमेव । नासीदीये सूक्ते अस्य सर्गस्य याद्दशः समुत्पचिप्रकारः सन्दर्शितः प्रायस्तथामृत एवास्ति राद्धान्तः पाश्चात्यदेशीयानां वैज्ञानिकानां दार्शनिकानाञ्च । नासदीयसूक्तस्य (ऋ० १० म० १२९ सू०) अस्तीयं प्रथमा ऋक्—
" नासदासीन्नोसदासीक्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत् ।
किमावरीवः कुहकस्य दार्मन्नम्मः किमासीत् गहनं गभीरम् ''॥
अस्याः ऋचः सरलं व्याख्यानं श्रीसायनाचार्येण वेदार्थप्रकारो यत्
कृतं तत्तु विद्वज्जनमनोहरम् । तथाहि——

"तपसस्तन्महिना जायतैकमित्यादिना" अप्रे मृष्टिः प्रतिपादयिष्यते । अधुना ततः प्रागवस्था निरस्तसमस्तप्रपञ्चा या प्रलयावस्था सा निरूप्यते । तदानीं प्रलयदशायां अवस्थितं यदस्य जगतो मूलकारणं तन्नासत् शशिव-षाणविकरिपाख्यं नासीत्, न हि तादशात् कारणात् अस्य सतो जगत् उत्पत्तिः समवति । तथा नोसत् नैव सत् आत्मवत् , सत्त्वेन निर्वाच्यमासीत् । यद्यपि सदसदात्मकं प्रत्येकं विलक्षणं भवति, तथापि भावाभावयोः सहवस्था-नमपि न सम्भवति । कुतस्तयोस्तादारम्यम् ? इति उभयविलक्षणानिर्वाच्य-मेवासिदिस्पर्थः । ननु नोसिदिति पारमार्थिकसत्त्वस्य निषेधः । तिर्हे आत्मनोऽ-प्यानिर्वाच्यत्वप्रसङ्गः । अथोच्यते, न आनीद्वातमिति तस्य सत्त्वमग्रे वक्ष्यते । परिशेषान्मायाया एवात्र सत्वं निषिध्यते इति । एवमपि तदानीमिति विशेष-णानर्थक्यं व्यवहारदशायामपि तस्याः पारमार्थिकसत्वाभावात् । अथ व्यावहा-रिकसःवस्य तदापि व्यावहारिकसत्ता, पृथिव्यादीनां भावानां तदापि विद्यमा-नत्वात्, कथं नो सदिति निषेधः १ तत्राह नासीद्रज इत्यादि । ' लोका रजांस्युच्यन्ते ' इति यास्कः । अत्र च सामान्यापेक्षया एकवचनं व्योम्नो वक्ष्यमाणत्वात् तस्याधस्तनाः पातालादयः पृथिव्यन्ता नासन् इस्पर्थः । तथा व्योमांतिरक्षं तदपि नो नैवासीत् । पर इति सकारान्तं परस्तादित्यर्थे वर्त्तते । परशद्धाः छान्दसस्तासेरथें असिप्रत्ययः । परन्योमः परस्तादुपरिदेशे बुलोकप्रभृति सत्यछोकांतं यदस्ति तदि। नासीदित्यर्थः । अनेन चतुर्दशभुवनगर्भं ब्रह्माण्ड-रूपेण निषिद्धं भवति । अथ तदावरकत्वेन पुराणेषु प्रसिद्धानि यानि वियदादि-भूतानि तेषामवस्थानप्रदेशं तदावरणानिमित्तं चाक्षेपमुखेन ऋमेण निषेधयति । किमावरीवरिति किमावरणीयं तत्वं आवरकमूतजातं आवरीवः अत्यंतमावृणुयात् ;

आवार्याभावात्तदावरकमि नासीदित्यर्थः वृणोतेर्यङ्खगन्ताच्छान्दसे लङ्कि तिपि रूपमेतत् । यद्वा किमिति प्रथमेव । किंतत्वमावरकमाच्युयात् आवार्याभावात् आत्रियमाणवत्तदिप खरूपेण नासीदित्यर्थः । आवृण्वतत्तत्वं कुह कुत्र देशे अवस्थायाद्यणोति, आधारमूतस्तादशो देशोऽपि नासीदित्यर्थः । कि शद्धात् सप्तम्यर्थे ' ह ' प्रत्ययः । कुतिहोरिति प्रकृतेः कु आदेशः । कस्य शर्मन् कस्य वा भोक्तुः जीवस्य शर्माण सुखे सुखदुः खसाक्षात्का रलक्षणे वा निमित्तभूते सति तदावरकं तत्वमावृणुयात् । जीवानामुपभोगार्था हि सृष्टिः । तस्यां हि सत्यां ब्रह्माण्डस्य भूतैरावरणम् । प्रलयदशायां च भोक्तारो जीवाः उपाधिविलयात् प्रविलीना इति । कस्य कश्चिदपि भोक्ता न सम्भवति, इत्यावरणस्य निमित्त-त्वाभावादिप तन घटत इत्यर्थः । एतेन भाग्यप्रपञ्चवत् भोक्तृप्रपञ्चोऽपि तदानी नासीदित्युक्तं भवति । किं राद्वादुक्तरस्य ङसः सावेकाच इति प्राप्तस्योदाक्तस्य न गोस्वन्त्सावर्णेति निषेधः । सुपां सुद्धगिती शर्मणः सप्तम्या छक् । यद्यपि सावरणस्य ब्रह्माण्डस्य निषेधन तदन्तर्गतं अप्सत्वमपि निराकृतम्, तथापि ' आपो वा इदमग्रे सालिलमासीत्' इत्यादि श्रुत्या कश्चिदपां सद्भावमाराङ्केत तं प्रस्याचष्टे अम्भः किमासीदिति । गहनं दुःप्रवेशं गभीरं दुरवस्थानं अस्य-गाधं ईदरामम्भः किमासीत्तद्पि नैवासीदित्यर्थः । श्रुतिस्त्ववान्तरप्रलयविषया ।

सृष्टि-उत्पत्ति-विषयको यो राद्धान्तः भगवता ब्राह्मणा प्रदर्शितः तमेव राद्धान्तं पश्चात्याः वैज्ञानिकाः सम्प्रति अङ्गीकुर्वन्ति । पश्चात्यदेशियेषु विद्वत्सु फ्रान्सदेशोत्पन्नस्य गणितज्ञमौलिरत्नस्य 'लाष्ट्रास ' महोदयस्य ' नेबुल्रर-थियरी ''नाम्ना प्रसिद्धो 'नीहारिकावादः ' अतितरां प्रसिद्धो वर्तते । शार्मण्यदेशोत्पन्नेन एमेनुएल काण्ट (Immanuel Kant) दार्शनिकेनापि अस्यैव नीहारिकावादस्य समर्थनं कृतमस्ति ।

अनयोः काण्टलाप्लासविदुषोरयं सिद्धान्तः, यत्–

प्रपञ्चात्मकसृष्टिदशातः प्राक् सर्वत्र प्रसृत आसीनीहारिकामहौघः । नीहारिकापर्यायवाचकस्य 'नेबुला' शद्धस्यार्थः लैटिनभाषायामम्बुमृदिस्मस्ति । लैटिनभाषायाः नेबुलाशद्धः (Nebula) आंग्लभाषायां नेबुली (Nebulæ) रूपेण परिणतः । अस्य शद्वस्य व्याख्यानभूतं समस्तं पदं 'फायर-मिस्ट' (Fire-mist) इति वर्तते । 'फायर-मिस्ट' पदस्य संस्कृत-भाषायामयमर्थः भावितुमईति यत्—" जाञ्वल्यमानो बाष्पसमूहः ''।

अस्मिन् बाष्पसम्हे केनापि कारणेन महती गतिरुत्पना । अस्य बाष्प-समृहस्य विविधा अंशाः विभिन्नया गत्या विविधासु दिक्षु महता वेगेन चक्रवत् भ्राम्यन्तिस्म । कियता काळेन चक्रवत्परिवर्तिनि अस्मिन् वाष्पसमृहमध्ये एका महती गतिः पश्चिमतः पूर्वदिग्गामिनी समजनिष्ठ, एषा गतिः बाष्प-समृहमक्षे-प्सीत्, अकाक्षीत्, अभाक्षींच ।

रानैः रानैः बाष्पसम्हस्याकृतिस्तथा सङ्गाता यथा अस्य केचन भागाः प्रधानं पिण्डमुज्झाञ्चकुः । महौधस्याय मुख्यो भागः दिवस्पतिरूपेण अम्बरत-लमुम्भाञ्चकार । अपरे च भागाः प्रहरूपेण परिणताः सन्तः नभोमण्डल जुगुम्फुः । सम्प्रति यथा हि अम्बरमणिः सुरति, एवमेव पूर्व हि क्षितीर्ष्येषा सुषोर । अन्यपि प्रहाः सूर्यवदेव सुषुरः। यत्र हि सम्प्रति प्रशान्तमहासागरस्यास्यवस्थितिः तत्रासीद्धिमांशोः पदम् । ऋतुकोटिसमाः पूर्व तत्रत्याया रत्नगर्भायाः कश्चिदंशः तुत्रोट, शीर्णञ्च नभक्तलं प्रतिपस्पार, तदारम्य व्योम्नः कश्चिद्मागं सुधासूतिरिष उवोभ । अस्ति विष्णुपदस्थ एव सुधासूतिरिलाया-रुपप्रहः । प्रो. पिकरिङ्गमहोदयेन नानाविधैरुपायैरस्य साम्प्रतं तु पञ्चत्वं गतस्य निशाप्राणेश्वरस्थातीतमुदन्ततत्वमधिगतमिति, केषांचिन्मतम् ।

सर्गारम्भे निखिलमि सौरमण्डलं सूर्य्यस्तवाच, अस्त्येष राधान्तः फान्सिविषयवाक्तव्यस्य प्रसिद्धविदुषः श्रीरेने दकार्तमहोदयस्य (Rene Defeartes)। व्योमवर्तिनः सर्वेऽपि पिण्डकाः शनैः शनैः बहुकालानन्तरं नैजं-नैजं रूपं अस्पार्क्षुः। उष्णात्वन्तु प्रत्यहमेतान् विनक्ति, तेजप्रभा च रिणाक्ति परिस्थितिरेतान् पूर्वं चच्छर्द तदनु अक्षौत्सीच ।

प्रो. हक्सलेप्रभृतिभिः भूविद्या-जीवविद्यस्यभयविद्याकोविदैः विपश्चिद्धिः, लार्डकेल्विनप्रभृतिभिर्देवज्ञैः, अन्येश्च रेडियमतत्वसर्वस्वनिष्णातैः वैज्ञानिकैः सर्गारम्भस्य यो यः समयः स्वीकृतः अस्ति तत्र भूयान्भेदः। रेडियमशक्तिपरीक्षकैः सर्गारम्भस्य यः समयः खीक्रियते, स समयः सनातनवैदिक-पौराणिकधर्मानुयायिषु भारतीयेषु चिराय प्रसिद्ध एव ।

क्षितिजन्मतः समारभ्य अद्यावि अस्य मुबस्तलस्य चित्रं एकविधमेव न वर्तते । पूर्वं यादशी अवस्थास्य भूतलस्यासीन तादशी सम्प्रत्यस्ति; नात्रास्ति विचिकित्सालेशोऽपि । भूगर्भशास्त्रज्ञानामस्ति, मतं यत् क्षितिजन्मतः समारभ्य अद्याविधपर्यंतं यावन्ति सौरवर्षाणि न्यतीतानि, तेषामद्धें भागे तु अस्यां भुवि न केऽपि प्राणिनोत्प्राणिरे ।

यथाकथिश्वत्तु तदनु सूक्ष्मवीक्षणयन्त्रसहायदृश्याः (Microscope) सुसूक्ष्माः ओषधयः संजि हिरे । आसु ओषिषु प्रथमोत्पन्नाया निरवयवायाः ओषधेः नाम 'प्रोटोप्ताइटीज्' (Protophytes) इस्परित । केचित् प्रोटोकोकसः (Protococcus) इमां सर्गणं प्रारमन्ते । सुसूक्ष्माभिराभि-रोषिधिः सागरापान्तवर्तिनस्तुषारस्य मध्ये हरिदरुणपीताभाः नानाविधाः वर्णाः सञ्जायन्ते । प्रच्छनस्यास्य तत्वस्य ज्ञानन्तु महता प्रयत्नेन विद्वद्भिः यथाकथिश्वदुपल्ञथम् ।

ओषधियुगानन्तरं सुसृक्ष्मा निरवयवाः ' प्रोटोजोआसंज्ञकाः ' (Protozoa) अणिष्ठाः कीटाः संजिज्ञरे ।

कोविदाः केचिदेवमुट्टङ्कयन्ति, यद् 'प्रोटोजोआतः' अतिसूक्ष्मं चैतन्यं विद्यते । अस्य परमस्क्षमस्य ऋजुतमस्य चैतन्यकळळस्य ' प्रोटोबिआन ' (Protobion) इति नाम त उदीरयामासुः ।

भूगर्भशास्त्रविदां नयमनुसृत्य जे० डब्ल्यू० ग्रेगरी-महोपाध्यायेन, एफ० आर० एस०, डी० एस-सी० प्रभृत्युपाधिविभूषितेन स्त्रीये 'दि मेकिङ्ग आफ दि अर्थ ' नामके ' पृथिव्याः निर्माण-प्रकार-विवेचनपरे प्रवन्धे 'क्षितिस्तर-निर्माणपरम्परया सहौषधिजातप्राणिजातजन्मसरणिरेवं संसूचिता—

(अ) भौगर्भिककल्पनामानि (ब) भौगर्भिकयुगनामानि (Geological Eras.) (Geological Periods.)

Kainozoic ४-केनोजोइक (=प्री॰ Kainos, recent; zoe-life) नवजीवनकाल: १६-प्राइस्टोसीन
(Newer Pleistocene)
१५ आइओसीन
(Gr. Pleion, more;
kainos new)
१४ मायोसीन (Miocene)
(Less recent)
१३-ओलिगोसीन
Oligocene
१२-इओसीन (Eocene)

११-क्रोटेशियस (Cretaceous.)

१०-जुरेसिक

Mesozoic. ३-मेसोजोइक (=Middle-life)

(Jurassic.) ९-ट्राइजिक (Triassic) (८-पिमेंअन (Permian)

Palæozoic २-पोलिओजोइक ৩-কার্নীনিদ্দর্য (Carboniferons ६-डेओनिअन (Devonian) ৭-মাঃভূর্যিসন (Silurian) ৪-ओर्डोविसिअन[Ordovician] ३-কাঙ্গিসন[=Cambrian]

Archæozoic or Eozoic. १—आक्रओजोइक अथवा इओजोइक (२—टोरिडे।निअन [ब्रिटिश] | (Torridonian] | British] १—आर्किअन =Archæan.

प्राक्तनाः बहवः सरीमृपाः पाक्षिणोऽन्ये प्राणिनश्च सर्वथा विनष्टाः । १ डिनौसौरस्, २ डिप्लोडोकस्, ३ ब्रोण्टोसौरस्, प्रभृतयः सरीसृपाः ४ आर्किओप्टेरिक्स, ५ टेरोडक्टील प्रभृतयः खगाश्च सम्प्रति अस्यां वसुंधरायां न कापि जीवितास्तिष्ठन्ति । मैमथ मेस्टोडोन प्रभृतयः प्राणिनोऽपि निर्वेशाः सञ्जाताः ।

वैज्ञानिकैः पेलेआंटोलाजी (Palæontology = Gr. Palaios, ancient; outa, beings; logas, a discourse.) संज्ञकरास्त्रसाहाय्येन चत्वारिशत्सहस्रसंख्यातोऽप्यधिकानामेवंविधानां प्राणिनां ज्ञानमासादितमित्यस्ति प्रो० हक्सलेमहोदयस्योक्तिः । सर्वेषु जीवेषु यत् सुसूक्ष्मं जीवनीयं बीजं वर्तते, तस्य नाम ' प्रोटोप्लाज्म ' इति संगिरन्ते वैज्ञानिकाः । प्रोटोप्लाज्मवस्तुनः प्राचीनं नाम 'कलल' इति यास्कीये निरुक्ते पठितं वर्तते। कार्बन, अक्सिजन, हैद्रोजन प्रभृतिभिरष्टसंख्याकैर्मूलतत्वैर्भवत्यस्योत्पात्तिः प्रायशः ।

यथा हि खलु प्रोटोकोकस्, प्रोटोजोआ प्रमृतिषु इदं चैतन्यबीजं वर्तते तथैवेदं चेतन्यबीजं महत्स्विप जन्तुषु समबलेक्यते ।

महोपाध्याय राफेल मेल्डोला (Raphael Meldola: The chemical synthesis of vital products; Vol. I, 1904. P. VI) महोपाध्याय एफ० आर० जैप (F. R. Japp, in his presidential address to the chemical section of the British Association at Bristol in 1898.) प्रभृतयः वैज्ञानिकाः खनिजद्रव्येष्विप एकां विशिष्टां शक्तिं स्वीकुर्वन्ति । अस्याः शक्तेः प्रोटोप्लाउमतोऽप्यस्ति कश्चिद्भेदः । प्रोटोप्लाउमतुल्याया अस्याः खनिजशक्तेर्नाम 'पेट्रोप्लाउमते (Petroplasm) इति संरक्षितं वैज्ञानिकैः ।

एवमिदमायातं यत्-निखिलस्यापि जडचेतनभेदभिन्नस्य प्रपञ्चात्मकस्य सर्गस्य मूलं कारणभेकमेव।

किमात्मकामिदम्मूलम् ? अत्र दार्शनिकानां वैज्ञानिकानाञ्च सन्ति बहूनि मतानि ।

^{1—}Dinosaurus. 2—Displodocus. 3—Brontosaurus. 4—Archæopteryx. 5—Pterodactyl. [—Gr. Pteron, a wing; daktylos, a digit.]

ब्रह्माद्वैतवादप्रधानाद्वैतवादयोर्मध्ये सर्वेषां वादानां भवति संग्रहः । केचिच्छाङ्करं नयमनुमृत्योचुर्यद् एकं चेतनं ब्रह्म जगतः कारणम् । शाङ्करस्य वादस्यापरन्नाम ' विवर्तवाद ' सुप्रसिद्धमेव । एष ब्रह्माद्वैतवादः पाश्चात्यानां दार्शनिकानां पैन्धीज्मसंज्ञकेन (Pantheism) वादेन सुतरां मिलति । प्रधानाद्वेतवादस्य वैज्ञानिकं नाम हाइलोजोइज्म [Hylozoism] इत्यस्ति । एष वादः विकासवादप्रवणानखिलान् वादान् खगर्भे विलति, कापिलदर्शनं 'परिणामवादं ' पुरस्कृत्य खराद्धान्तिमत्थं मुणति—

" सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहंकारः, अहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयामीन्द्रयामित्यादि" परिणामवादस्याहे। स्विद्गुणपरि-णामवादस्येदं निदर्शनम्—

एकस्मिन् केदारे बहूनि मृदूनि तृणानि सन्ति । काचित् सीरभेथी तृणानि चचार । मक्षितानि तृणानि तस्याः जठरे गत्वा जाठरामिना वबछिरे। जाठरामिन्यापारेण धेनौ तृणेरेव रसोत्पात्तिः संजाता । तत्रैव रसाद्रक्तं, ततो मांसं, मांसान्मेदः, मेदसोऽस्थीनि क्रमशः प्रजायन्ते । सम्पिण्डितैरेभिरर्जुनी तायते स्थायते च । एषव प्रक्रिया धेनुं द्राघयति, मदयति, मादयति, ग्रेथयति च ।

मिक्षतानां तृणानामेकोंऽशः माहेय्याः कुक्षितो गोमयादिरूपेण बहिः स्खलित । इत्थं मूत्रपुरीषादिरूपेण त्लितोंऽशः मनुष्यादीनां चरणाद्याघातैः फलित दलित वा, मुवि कुडित सालिले वा मृडित । छुष्कं सन्तमेनं वायुः किरित, कदाचिच्च प्रमञ्जनवेगैरितस्ततः प्लवते रेवते च । कदाचिच्चामुमेवांशं केचन पुरीषादाः प्राणिनो गिलिन्त । कदाचिच्चेशोंऽशः कन्दिलिनीं धरित्रीमनुप्राप्य सालिलेसेकवशादात्मानं भूयश्लदयन् शाद्धलस्य जीवनांशं त्रायते । इयमेव प्रक्रिया भवित साम्रेडम् । इत्थं कियासमिमहारेण जगतः सर्वे पदार्थाः प्रणिमयन्ते । एति गुणपरिणामवादस्य रूपम् । कणभुग्दर्शनेऽक्षपाददर्शने च यद्यपि 'आरम्भवादः' उररीकृतो वर्तते तथापि तथोरारम्भवादः 'पीलुपाकन्वादिपठरपाकवादपाकजगुणोत्पत्तिमुखेन ' गुणपरिणामवादमेवास्प्राक्षीत् वैज्ञान

निकानां केमिकल-ॲक्शन (Chemical-Action) नामधेयः सुप्रथितः संयोग एष एव ।

इदं सर्वं तत्वं ज्ञानचक्षुषा निध्याय निध्याय तैत्तिरियोपनिषदि वर्तमाना भगवती श्रुतिरक्तिविष्ट—तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरिग्नः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नम्, आन्नादेतः, रेतसः पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ।

तैत्तिरीयोपनिषदि, ब्रह्मानन्दवल्ल्यन्तर्गते प्रथमेऽनुवाके । मुण्डकोपनिषदि "यथोर्णनाभिः सृजते गृह्धते च....तथाक्षरात्संभवतीह विश्वम् " इत्येषा श्रुतिरस्ति । श्रुतिरेषाऽभिन्नानिमित्तकारणञ्जगतः ब्रह्मेति समामनाति । अन्यास्विप तावदुपनिषत्सु प्रोच्यमानार्थोपोद्बटनपराः श्रुतयः छषन्ति ।

प्रश्नोपानिषदि तु समुपदिष्टं यत्-' प्रजाकामो वै प्रजापितः स तप-स्तप्त्वा भिथुनं उत्पादयते । रिथिश्च प्राणश्चेत्येताः मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति [प्र. १।४]।

पुनरभे प्रजापतेई अयने समुपदिष्टे । तत्र एकन्तु उत्तरमयनमपरन्तु दक्षिणमयनम् ।

सामवेदीयछान्दोग्योपनिषदि "अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच, सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशोदेव समुख्यदन्त आकाशं प्रत्यस्तं अन्त्याकाशो होभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम् " [१प्र.९ ख १क] इति तत्वं प्रदर्शितम्।

सामवेदीयछान्दोग्योपनिषदि 'वायुर्वाव संवर्गः ' [४ प्र. ३।१] इत्यादिना या संवर्गविद्योपदिष्टा ततः वायुमाहात्म्यं सुतरामवगम्यते । अभ्रं भूत्वा मेघो भवति ''तद्भूय एव भवति [छा. ५ प्र. ९ ख. ६] इत्यनया श्रुत्या जन्मनः ख्रूष्टं प्रदर्शितम् ।

' आकाशो वा नामरूपयोर्निर्वहिता ' [छा. ८ प्र. १४।१] इत्यनेन पुनरपि छान्दोग्योपनिषदि आकाशिवद्या समुपदिष्टा । ' द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चामूर्तञ्च ' इत्यादिवाक्यजातेन ब्रह्मणः द्वैविध्यं प्रदर्शितं भवति [बृ. ४।२ ब्रा. १] पुनश्च बृहदारण्यकोपनिषदि समुपदिष्टम्-'' विद्युद्ब्रह्मेति आहुः '' [७।७ ब्रा.]

एतैः सर्वैः श्रुतिसम्हैर्मयानुमीयते यत् [१] रियः, [२] प्राणः, [३] आकाराश्च इतीमे त्रयः राद्धाः त्रमराः [१] इलेक्ट्रान [२] प्रोटॉन [३] ईथर-राद्धवाचकाः सन्ति । ईथरस्वरूपविषये रूसदेशवास्तव्यस्य मण्डेली-एफाभिधस्य वैज्ञानिकस्य यः सिद्धान्त आसीत्, स एव विषयः 'वायुर्वाव संवर्ग ' इत्यनया श्रुत्या प्राक्तनेनैकनिर्षणा प्रदर्शितः । परं नायं सिद्धान्तपक्षः ।

मुण्डकोपनिषदि—" यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु यस्मिछोकाः निहिता छोकिनश्च ", " तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्भव्यं सोम्य विधि " इत्यनया श्रुत्या 'अर्चिमत् ' इत्यनेन विशेषणेन ' प्राणस्य ' विद्युदृपत्वं प्रतिपादितं भवति।

' इलेक्ट्रान ' इत्यस्यापि परिभाषा एकेन विदुषा इयमेव कृता; यत् ' इलेक्ट्रान इज ऐन ऐटम ऑफ इलेक्ट्रिसिटी ' [An electron is an atom of electricity] प्रायः श्रुत्याप्ययमेवार्थअपिद स्वते ।

' इलेक्ट्रानप्रे।टॉनीथरादीनां विषये प्रतीच्यानां वैज्ञानिकानां ये राद्धान्ताः सन्ति; यथा च ते प्रतिष्ठिताः सन्ति; तेषां निरूपणं विषयवैद्याद्यार्थमावस्यकमत्र प्रतिभाति ।

हालैण्डदेशामिजननेन दार्शनिकेन खु जेन्स (Huygens) महो-दयेन खीष्टीयसप्तदशशतकान्तिमे चरणे सर्वतः प्रागीथरस्य वैज्ञानिकी व्याख्या कृता । वस्तुतस्तु ईथरस्य वास्तिविकं विशुद्धं ज्ञानमनेनैव विदुषा वैज्ञानिकेभ्यः प्रदत्तम् । 'दि एडिनबरा रिव्यू ' [Vol. V. p. 97, 1804] पत्रस्य सन्दर्शनेन प्रतीयते यद्यदा टामस यङ्ग [Thomas Young] महोदयेन ईथरविषयप्रवणं खीयं छघुपुस्तकं प्रकाशितं तदा जनानामिस्मिन्तूतने सिद्धान्ते नासीत् प्रत्ययः । डा. टामस यङ्ग महोदयः सावज्ञमवहासास्पदीभूतः समभूत् । यदा तेन खावक्षेपस्योत्तरं प्रकाशितं तदा तस्योत्तरस्य केवळमेकमेव पुस्तकं क्रीतं जनैः । अधुना तु जनानामीथरविषयेऽस्ति दृदमूळः प्रत्ययः । केचिद् वदन्ति—ईथरः सर्वत्र व्याप्तोऽस्ति । असौ मित्रबृहस्पति-प्रमुखानां पिण्डानां प्रकाशमितस्ततो नयति । इयन्नः पृथिवी अन्ये च प्रहादिपदार्थाः अस्यैवेथरस्याभ्यन्तरे डीनावडीनं कुर्वन्तस्त्वेषन्ते । यथा तरन्ते काचित्तरन्ती तरित तथैव तरिणधरिणप्रमृतयः सर्वे पदार्थाः विष्णौ, श्रक्ष्णे कृत्सनस्थळव्याप्तेऽस्मिन्नीथररस्नाकूपारे निर्वाधं तरन्तः सन्ति ।

रूसदेशाभिजनस्य भेण्डेलीएफ (Mendelieff) नाम्नो महावैज्ञानि-कस्यासीन्मतं यत् ईथररस्नः सुसूक्ष्मवाततुल्योऽस्ति ।

एष वातः ' क्षिपणु ' संज्ञको भावितुमहिति, इत्यस्ति मे मतम्।
मेण्डलीएफमहोदयस्यासीदिदमपि मतं यत् परमसूक्ष्मेषु 'ऐटम ' संज्ञकेषु
परमाणुषु सुतरामस्त्यस्यावस्थानम् । ईथरकृते सर्वेऽपि परमाणवः सभूका एव ।
इदानीन्तनानां वैज्ञानिकानान्तु नेदम्मतम् । तेषां नथे तु भेण्डेलीएफमहोदयस्य
'ईथर'द्रव्यं सत्स्तम्; वस्तुतिरिवदमितोऽप्यतीवर्जुतमम् ।

केम्ब्रिजिविश्वविद्यालयस्थकेवेण्डिशप्रयोगशालाध्यक्षेण श्री जे० जे० टामसनमहोदयेन तिच्छिष्येण मेञ्चस्टरप्रयोगशालाध्यक्षेण प्रो. रुद्रफोर्डमहोदयेन रेडियमपोलोनियमतत्वयोः सर्वस्नं, कालवशाच्च पोलोनियमत एव त्रपुधातोरु-त्पित्तमध्यक्षीकृताभ्यां मेडमकुरीपैरीकुरीमहोदयाभ्याञ्च मूलतत्वपरकस्य वादस्याम् प्रत्याख्यानं कृतिमिति । एतेषां परीक्षणैः परीक्षकाणां मनिस सम्प्रति सुस्थिरोऽयं सिद्धान्तः संभ्याशते यन्मूलतत्वपरकं सिद्धान्तं ये केऽपि बेलुः न ते तत्साधनाय पुप्रथुः । येऽपि पूर्वं मूलतत्विषयकं वादं रेटन्ते स्म तेऽपि सम्प्रति तं सिद्धान्तं खनन्त्येव ।

सम्प्रति तु वैज्ञानिकानामस्येष विश्वासः यत्सर्वेऽपि पदार्थाः सर्वाणि चापि मूलतत्वानि अभिन्नकारणानि । जगति यावन्तः सन्ति पदार्थास्ते सर्वे विद्युद्रूपा एव । तथा चोपिनषिद "स एष वैश्वानरो विश्वरूपः" [प्रश्नोप० १-७८]।

विद्युति च द्विविधा शक्तिर्वर्तते । एका ऋणात्मिका=रियरूपा इलेक्ट्रान-पद-संकेतिता, अपरा धनात्मिका=प्राणरूपा प्रोटानपद-संकेतिता । प्रोटान् इलेक्ट्रानयारिप खरूपं स्थिरीकृतं विपश्चिद्भिः । प्रोटानस्य भारः इलेक्ट्रानस्य भाराचित्वारिशदुत्तराष्टादशशतगुणाधिकः । प्रोटानिलेक्ट्रानयोः संख्याभेदाज्जगित पदार्थानां भवति भेदः । यथा हि वैशेषिकनये संख्यायाः महत्वं दरीदृश्यते तथैवात्रापि । हैद्रोजनसंज्ञकस्य सुसूक्ष्मस्य क्षिपणोरेकः परमाणुः द्वाभ्यां परमाणुभ्यां संजायते । तत्रैकः प्रोटानपरमाणुर्भवित, एकश्चेलेक्ट्रानपरमाणुः । प्रोटानसंज्ञकाः परमाणवः केश्चिदिलेक्ट्रानसंज्ञकैः परमाणुभिः सह मध्ये तिष्ठन्ति, केचन इलेक्ट्रानसंज्ञकाः परमाणवस्तेषामितस्ततो भ्राम्यन्ति । अक्षपाददर्शने द्वयणुकाद्युत्पत्तिप्रकारश्च एष एव ।

अनयोरुभयोः सम्पिण्डिता संख्या भवति तुल्या । एषां संख्याभेद एव पदार्थभेदहेतुः । मध्यवर्तिनः प्रोटॉनस्य भ्रान्तिमतः इलेक्ट्रानस्य मध्ये यद्भ-वति व्यवधानं तद्व्यवधानं द्वचङगुलिमतादिश्च संज्ञकात्परिमाणात् अशीति-कोट्यंशात्मना न्यूनम् ।

अमेरिकादेशवास्तव्येन प्रो० मिलिकनमहोदयेन कास्मिकिकरणविषये ऽनुसन्धानं कृतमित्त । बुलोकस्य सूर्यस्य चाभिन्नमेकं नाम ' पृक्षिः ' इति समायाति वैदिके साहित्ये। भगवता यास्केन पृक्षिशद्वस्येदं निर्वचनं कृतमित्त –

' प्राह्मुत एनं वर्णः '' इस्यनेन प्रतीयते यत् ' पृक्षिः ' इस्यि ' ईथरस्य ' सार्थकं नाम, मिलिकनवादश्चात्र सङ्गच्छते । उणादिकोषे आष्ट्रवैष्ट्-सिनाप्रभृति नामसु किञ्जिद्दैलक्षण्यं प्रतिभाति । 'वातस्य सर्गोऽभवत्सरीमणि ' [सि० ५३४ पृष्ठे] इत्यनेन प्रतीयते यत् ' सरीमणि '—ईथरे वातस्य सर्गो ऽभवत् । ईथरस्य भारविषये [H. P. S. भागे १ पृ. ४५९] अस्ति जे० के० टामसनमहोदयस्य मतं यत् ' एकस्यां कणिकायां यावानीथरोऽस्ति सोऽपि त्रपुधातोः परमाणुतः नियुतद्वयगुणोऽस्ति भारे । नायं लघुः । '

केवेण्डिशप्रयोगशालायाः प्रथमेन केवेण्डिश-महोपाध्यायेन क्वार्कमैक्स-वेलनाम्ना विदुषा प्रतिपादितं यत्-ईथरक्लोलमालाभिः विविधात्मकाः प्रकाशाः सञ्जायन्ते । तस्यैवाकुञ्चनप्रसारणाभ्यां समुख्यते तिहत् । आवर्तेभ्यश्च

तत एव मित्रावरुणसंज्ञको उत्तरदक्षिणप्रदेशस्थितौ द्वाविप चुम्बकस्य भेदौ जायेते ।

एष ईथर एव आकाराः । एष एव हि प्रजापतिः । एष एव हि हिरण्यगर्भः । ऋणात्मिका विद्युद्धिया । धनात्मिका विद्युद्धिया । अनयोरेव च प्रोटॉनिलेक्ट्रानेतीमे नाम्नी ।

अल्फा, बाँटा, गामा संज्ञकानां किरणानां नामानि महासरखतीमहा-कालीमहालक्ष्मीति ज्ञेयानि ।

ईथरस्यैव शक्तिविषये योगवासिष्ठस्येयमुक्तिश्वरितार्था भवति— सर्वत्र सर्वथा सर्वं सर्वदा सर्वरूपिणी । अहो तु विषमा माया मनोमोहिविधायिनी ।

-योगवासिष्ठे, निर्वाणप्र०, उ० १५९-४१।

उक्तऋषिंणा सामवेदीयछान्दोग्योपानिषदि—

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच ।

सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुल्पवन्ते, आकाशं प्रस्यस्तं यन्ति, आकाशो होवैभ्यो ज्यायान्, आकाशः परायणम् ।

--छा०, ९५ पृ०।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । सहस्ररिभः रातधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्थेष सूर्यः ॥ -प्रश्लोपनिषदि ।

ॐम् पूर्णमदः पूर्णिमदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐम् शम्।

॥ श्री ॥

संकलितोवृत्तान्तः।

[ले. चक्षुवैसत्यम्]

सैस्तीय १९३५ शके नव्हेंबरमासस्य ता. २ प्रारम्य ९ पर्यन्तम् पंचमहाभूतित्रदोषादिपरिषदौ वाराणस्यां हिंदू विश्वविद्यालयस्य भव्ये भवने-समभूताम्। तत्र ता. २ तो ता. ५ पर्यन्तम् पंचमहाभूतादिपरिषत्कार्यम्, तदनु ता. ६ तो ता. ९ सायंकालपर्यन्तम् त्रिदोषादिपरिषत्कार्यम् संवृत्तम्। स्वागत-सभापतिपरिषत्सभापातिभाषणानन्तरम् तथा च परिषदर्थं समागतानां शुभ-संदेशवाचनानन्तरम् –परिषत्निमित्तं विचाराहिविषयाणां चर्चाकरणार्थं प्रथमं महामहोपाध्याय श्री गिरधरशर्माचतुर्वेदीभिः स्थापनापक्षप्रामुख्यं स्वीकृत्य विषयाणां स्थापनाकरं भाषणम् कृतम्।

स्थापना तु प्रथमं पचमहाभूतिवचारप्रयोजनम् इत्यस्मिन् विषयांशे एवाऽभवत्। प्रो. फुळदेवसहायवर्मिमस्तु विपक्षीयं भाषणं कृत्वा पंचमहाभूतानां विचारे निःष्प्रयोजनता प्रतिपादिताऽधुनिकपद्धतीमनुमृत्य सुचिरम्। स्थापनापक्षे तिहने पं. महामहोपाध्यायिगरधरशर्माचतुर्वेदी, पं. उपेंद्रनाथदास, पं. धर्मदत्त्वी, पं. कहदेवजी, पं. नारायणशास्त्री वाडीकर, पं. नारायणदत्त्वी, पं. हिरनाथशास्त्रीजी, पं. वारमणिशास्त्रीजी, पं. दामोदरशास्त्रीजीत्येते आसन्। विपक्षे तु प्रो. फुळदेवसहायवर्मा, प्रो. द. अ. कुळकणीं, डा. घाणेकर, पं. हिरशमशास्त्रीजी, पं. हिरशरणानंदजीत्येते अवर्तन्त । स्थापनापक्षीयैः स्वानि स्थापनाकराणि भाषणानि गीर्वाणवाण्येव कृतानि, परंतु सर्वेऽपि समागताः प्रतीच्यशास्त्रज्ञा, दक्षतराश्वनैवाऽबुध्यन् गीर्वाणवाणीपरिचयाऽभावात् । अतःसर्वाचुमत्या हिंदीभाषयेव परिषद्विवादव्यवहारः कार्य इति निश्चित्य प्रथमदिनकार्यं समाप्तमासीत् । स्वामी हिरशरणानंदैः किनामभूतत्विमस्यस्मिन् विषये भाषणं कर्त्वं समुद्यतेर्या स्वकीया संस्कृतभाषाप्रभुता, याच विचारपठुता, येचाऽ-विभीवाः प्रकटीकृताःतैस्सर्वेऽपिवद्वत्समाजो तेषां वेद्ष्येणाश्चर्यवहो वभूव, नैकाऽपि वाक्यपंक्तिः शुद्धा, सरला पूर्णा विचारपछुता उच्चारितुं ते समर्था

बमुबुः । सर्वमप्यंगं 'सखेदवेपथु' खरश्च कंपितो, नेत्रेच भयचिकते, अन्तः-करणं च व्याकुलिमव तेषां दहरो । एते महाभागाः प्राचीनदर्शनानि, शास्त्राणि, दर्शनकारा, ऋषयश्च तरप्रतिपादिततत्वानि, सर्वमप्यसदीयं मूर्खप्रलिपितिति दुंदुभिखनेनाऽद्याविध प्रजगर्जुः ते वसंतसमये प्राप्ते काकस्त्रसपि यथावत् कर्तुं नाशक्तुवंतीत्यहोधृष्टता महाभागानां इस्येव शद्धः समुत्थितोऽभवत् तदानीम् । एवमेवाऽपरिषत्समाप्तिपर्यन्तम् दश्यं दश्यमानमभवत् । हिंदीभाषयैव तैस्तदनंतरम् स्वीयं भाषणं कृतम् ।

द्वितीय दिवसे द्विनवतिम्लतत्वानां पाश्चात्यनये वर्णातानां पौर्वालप-द्धस्या शास्त्रीयभाषया परिज्ञानार्थं तथा च तदुत्पन्नानां पञ्चमहाभूतिवषयकाक्षे-पादीनां च स्पष्टीकरणार्थं स्वकीयं निरीक्षकपदं विद्वत्संमल्या कंचित्कालं परि-स्यज्य पंडितप्रवरेदेवनायकाचार्येविपक्षत्वमंगीकृत्य खंडनापक्षीयं सर्वमिप भाषणादिकं अन्यखंडनापक्षीयवैज्ञानिकवर्यसाहाय्येन तत्संमत्या च कृतम्। श्रीमद्भी रामदासगौडमहाश्यैः पञ्चमहाभूतानां वैज्ञानिकदृष्ट्याऽप्यन्यथा-रीत्याऽस्तित्वं प्रतिपादितम् । सर्वेषामपि पदार्थानां 'सालिड् लिक्विड् गेशस् ' इति तिस्रो अवस्था भवंत्येव, अन्ये अपि अवस्थे द्वे सर्वेषां भवत इति पञ्चभूतावस्था प्रत्ये-कपदार्थानां भवतीत्यनया रीत्या पञ्चमहाभूतानां अस्तित्वं वर्तते एव । न तु द्विनवतितत्ववत् पञ्चमहाभूतानि पंचैवतत्वानि । श्रीमाद्भः पंडितप्रकाण्डै-राजेश्वरशास्त्रीद्रविडमहाशयैः स्वीयया विद्वत्वप्रचुरया वाण्या न केवलं जड-स्थूलपदार्थबुध्येव पंचमहाभूतानां विचारोऽस्माभिः कर्तुं युक्तः। सर्वेषां दर्शनानां अद्वैतदर्शन पर्यवसानं भवति । अद्वैतदर्शने तु अन्नमय, प्राणमय, मनोमय विज्ञानमयाऽनंदमय पंचकोषाणां सविस्तरम् धास्तविकमनुभवगोचरं कृत-मस्ति वर्णनम् । पंचसु कोषेषु स्थ्लाःसूक्ष्मसूक्ष्मतरस्क्ष्मतमस्करूपेण पंचमहा-भूतानां भिन्नभिन्नावस्थासु अवस्थानं, मूलसचिदानंदविज्ञानघनापरपर्यायादेव तेषां निर्गमावस्थाऽत्र अनुसंधेया, न केवलं द्विनवतितत्वसमालोचनया पंचमहाभूतानां साम्यवैषम्यविचारो भवितुमर्हति, द्विनवतितःवानि तु सर्वाण्यपि पंचमहाभूतमयान्येव, न स्वातंत्रयेण म्लतत्वानि इति विस्तरशः प्रतिपादितम्। जयपूरराज्यपंडितैः परमदृहैर्बेदिवद्यापारावारपारीणैर्विद्यावाचस्पतिभिर्मधुसद्न सरस्वतीमहाभागेस्तु स्वकीयवैदिकवाङ्मयवैद्व्येण आधुनिकरसायनपदार्थ-विज्ञानादिशास्त्रसिद्धान्ता, प्रमेयाणि, तथैव तेभ्यो नवनवीनआकाशयानादि-साधनसम्हाः वैदिकमन्त्रतन्त्रस्य परिभाषाभाषाधर्यज्ञानेन अवलोकनेन च न नाविन्यपदवीं समारोहन्ति, किन्तु सर्वमपि पुनरावृत्तमिव प्रतिभाति, वैदिककाले तु सर्वेषामपि निष्पत्तिभूत्पूर्वेव प्रतिभाति, तत्र क वराकाणि दिनवतितत्वानि, का वा तेषां प्रौढीति वैदिकमन्त्रपरिभाषार्थस्य भौतिकरासायनिकतत्वार्थसाद्दय-दर्शनन नैकवारं प्रदर्शितम् । एतेषां महाभागानां परिषदः कालादन्यस्मिन् काले प्रत्यहं महामनामालवीयमहाभागविज्ञप्या व्याख्यानानि अस्मिन्नेव विषये प्रचुरविद्वत्वयुतानि समभवन् तत्र सर्वेऽपि पंडिता दार्शनिका अन्ये च श्रोतारः प्रचुरया संख्यया समुपस्थिता अभवन् ।

प्रो. एस्. एस्. जोशी महोद्यैः पंडितमाल्बीयमहाभागाञ्चया ''इले-क्ट्रान प्रोटान् पॅक्किट्रान् न्यूट्रान्'' इल्लिस्सन् विषये अतीव सुबोधं प्रत्नन्त्नदार्श-निकवैज्ञानिकपंडिताऽपंडितावबोधसुखं सहजसुंदरं तद्विषयसत्खरूपप्रदर्शकं व्याह्यानं पूर्वे प्रदत्तं, तदनन्तरम् तस्मिन्विषये परिषदि विचारः समजनि ।

पंडितप्रवरा महामहोपाष्याया गिरिधरशर्माचतुर्वेदिनस्तु अस्मिन् पंचभूतविचारपरिषदि स्थापनापक्षीयाः प्रमुखा एवाऽसन्, तेषां विशालवक्षःपरिणद्धकंधरं पीनोन्नतं सहजसुंदरं वपुः, प्रसन्नगंभीरा ओघवती निनादवती
च वाणि, अतीवाऽकषंकं साभिनयं स्थाभिप्रायानदर्शकं च वक्तृत्वं,
सर्वविषयस्पर्शिनी, खंडनपक्षीयोध्दृताक्षेपनिरासिनी, नैकशास्त्रवचनसबद्धा,
तर्कयुक्तिस्वविचारपरा, स्वसिद्धान्तस्थापिनी, च विद्वत्ता इस्येतिभिनितान्तरमणीयैर्गुणस्सर्वापि परिषद् सर्वे च पंडिताः प्रस्नान्त्नाश्च अमोघाऽनंदकङ्कोलोङ्कसितानतकरणाः प्रतिदिनं बभूदः। म. म. गणनायसेनमहाभागाः, पंडितवर हरिनाथशास्त्रिणो, वीरमाणिमहोपाध्याया, पं. रुद्रदेवशर्माणो, पं. उपेद्रनाथदासाः, पं.
नारायणशास्त्रीवाडीकराः इस्रादयोनैके दार्शनिकाः पंडिताश्च स्वस्वविचारांश-

विषये स्थापनापक्षे वैद्ष्येण वक्तृत्वेन, युक्तिसिद्धकोटिक्रमेण सहायवन्तो बभूवः । विज्ञानपक्षीयास्तु प्रो. कुळकर्णी, डॉ. घाणेकर, स्वामी हरिशरणानन्द प्रभृतयः स्वपक्षं खंडनापक्षापरनामधेयं यथावत् प्रस्थापयामासुः तेष्विप प्रो. एस्. जोशी पं. देवनायकाचार्याणां तु सुतरां सहाय्यमभवत् । तैस्तु स्वीयो विषयोऽतीव सुमनोहरत्वेन, सौल्डभ्येन, वैशोधन पांडित्येन यथावत् प्रतिष्ठापितो येन विषयसहरूपं याथार्थ्येनाकिलतुं शक्यमभवत् ।

पंचमहाभूतिवचारपरिषदि विंशति विचारांशेषु प्रतनन्तपंडितानां विदुषां, १ पंचमहाभूतविचारप्रयोजनम्, २ किं नाम भूतलं, ११ दश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वं न वा, १२ एलिमेन्टसंज्ञकानां द्विनवतितत्त्वानां भूतत्वं न वा ? १६ तेजसो द्रव्यत्वं न वा ? १७ आकाशस्वरूपविमर्शः , १९ ईथरा-ख्यस्य कुत्रान्तर्भावः,२० मनुष्यादिशरीरेषु चैतन्यमात्मजन्यं वा पंचभूतादिसंयो-गजन्यं वा ? एतेषु विषयेध्वेव विशेषण विचारविनिमयः पारिस्परिकः संवृत्तः । दृश्याणि पंचमहाभूतानि न मूलतत्वानि किंतु संयुक्तानि, तथैव द्विनवतितत्वान्यपि भौतिकानि संयुक्तानि पंचमहाभूतमयान्येव । अणुपरमाणुविषयेऽपि प्राचीनानां आणुर्वा परमाणुर्वा अविभाज्य एव । " जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दस्यते रजः । तस्य षष्ठतमो वा त्रिंशत्तमो वा षष्ठितमो वा भागो परमाणुः स उच्यते '' इति परमाणुन्याख्या तु स्थूला न तु वास्तविकीति स्पष्टतां यातम् । द्विनवतितत्वानि सांप्रतं विभाज्यानीति सिद्धं अतस्तानि संयुक्तान्येव । तथैव प्राचीनभृतत्वन्याख्यया तु द्विनवातितत्वानि कि अपि तु विषुत्-इलेक्ट्रान् प्रोटान् इलादयोऽपि पंचमहाभूतगुणयुक्ता अतस्संयुक्ता एव इति प्राचीनैः प्रतिपादितम् । नवीनानां तु तत्शास्त्रप्रतिपादितपद्धसा इमानि पंचमहा-भूतानि संयुक्तान्येव न मूलतत्वानि, द्विनवतितत्वानि यद्यपि सांप्रतं विभाज्यानि तथापि तेषां मूळतत्वत्वं नैव विच्छिनात्तः, प्राचीनानां विचारसरणिस्वस्मदीय-शास्त्रदृष्ट्या व्यवहारानुपयुक्ता, भौतिकरासायनिकशास्त्रानोभ्दूतनवनवीना-नेकगुणसंपद्युक्तपदार्थीत्पस्मननुकूला, चेति प्रतिपादनतात्पर्यमासीत्, तथापि प्राचीनविचारसराणिः केवलं कल्पनात्मिका, असत्यमयी सर्वया त्याज्या अज्ञा-

42

नमयीति न केऽपि वक्तुं रेाकुः । प्राचीनानां इयं पांचभौतिकी पद्धतिस्तु स्थूला, सर्वपदार्थानां स्थूलस्वेन पंचभूतेषु समावेशिनी न गुणवैशिष्टयेन प्रस्थेक-पदार्थस्य पार्थक्येन संपूर्णतया स्वरूपाविभीविनी, अतएव तत्तत्पदार्थस्थित-गणधर्माप्रकाशनेन तज्जन्यकर्मफललाभाडप्रापिणीति नवीनानां मतम् । प्राचीनास्तु, यदि साधनसौकर्यं, बुद्धिस्नातंत्रयं युष्मदिव अस्माभिः सर्वथा सर्वानुकूल्येन लभ्येत चेत् पांचभौतिकपरिभाषयाऽपि सामन्यया तद्गतानेक-पदार्थानां वैशिष्ट्येन गुणधर्मज्ञानं कृत्वा तदुःपनकर्मफलादयोऽपि यथा सर्व-जनलाभाय भवेयुस्तथा वयमपि दर्शयिष्यामः । पूर्वमपि अस्माभिरेव अन्यैव परिभाषया नैकभौतिकशास्त्राविष्कारः कृत आसीत, संपादितानि आविष्कृतानि नवनवीनानि तत्तत्पदार्थगुणकर्मजन्यविमानादिसाधनानाति, नकाऽपि हानि-रासीत्तदानी अनया परिभाषयाऽस्माकिमिति जगर्जुः । नैव वयमप्यर्वाचीन-नूरनशास्त्रोत्पनानेकाश्चर्यावहसुखसाधनानां, शोधानां शोधकानां वा विप्रतिगा-मिन: । सर्वथा तेष्यस्मन्मान्या एव । तथैवारमाकमपि सांस्कृतिकी, शास्त्रीया, आध्यात्मिकभूतपदार्थज्ञानदायिनी सरणिरपि श्रीमद्भिस्सर्वथाऽज्ञानयुक्तेति वक्तुं नैव समुचितमिति नो विचार इति । अन्तत अनयोः प्रत्ननूरनपद्धस्योविंचा-रसराणिस्तु सर्वथा परस्परं भिना, दृष्टिकोनस्तु तथैव । तथापि वारंवारं एवमेव प्रतनतूरनदार्शनिकाः पंडिताश्च वैज्ञानिका यदि संमील्य विचारविनिमयं कारिष्यंति तदा उभयोरिप संशयभ्रमासद्प्रहादयो निरासं प्राप्नुयुस्तथा सर्वेऽपि वयं शास्त्री-यविचारांशे ऐकमत्यप्रदर्शकं मार्गे लब्धा निकटवर्तित्वं गंतारो भवेयुरिति निष्कर्षः संतोषपरस्सरोऽन्तिमो निर्जगाम ।

विशे विचारांशे खामीहरिशरणानन्दैः प्रतिपादितं यथा सुराऽसवेषु आसुत्तेषु किण्वं वा सुराबिजं प्रादुर्भवित तथैव भौतिकेषु पदार्थेषु मिलितेषु जीवप्रादुर्भावः खयमेव भवित, नान्यस्य कस्याऽपि ईश्वरांशस्य गर्भाशये बाह्यतः प्रवेशस्याऽवश्यकता विद्यते, सुराबीजवत् संयुक्तानां भौतिकानां पदार्थानां अयं स्वभाव एव यत् जीवप्रादुर्भावः । आधानिकाः शास्त्र शासेशाझम् ' नामकः 'सेल्' नामकजीवाणुगतः पदार्थोऽपि निर्मातुं प्रभवंति यः पदार्थस्तस्य

जीवाणोः पोषकत्वेनातीवोपयुक्तः स च प्रोटोष्टाञ्चम् पदार्थः भौतिकपदार्थोत्पन्न एव, अतः नान्यः कोपि ईस्ररो वा जीवांशो वा खतंत्रं चैतन्यं, वा नास्ति तस्यावश्यकताऽपि इति । अस्य पूर्वपक्षस्य खंडनं चतुर्थे दिवसे खयं महामनापंडितमालवीयमहाभागैरतीव सुमने।हारि, सुविचारपरिष्ठुतं, श्रीमद्भागवताद्यनेकप्राचीनप्रथगतवचनैरनेकैः प्रमाणेश्व सुल्लितया, मधुरया प्रसादार्थगौरवयुतया, सुलभया प्रसन्नगभौरया गिरा सुचिरं कृतं, येन वक्तृत्वेन सर्वाऽपि परिषद् चित्रलिखिता इव स्तंभिता अभवत्, पंडितवरैर्मालवीयमहाभागैः खामीहरिशरणानन्दोत्थापितमेकमेकं विषयं गृहीत्वा चैतन्यं न मौतिकपदार्थानां संयोगजन्यं अपि तु स्वतः सिद्धं न केनाऽपि कदापि निर्मातुं शक्यं, प्रोटोष्टाञ्चमवस्तुनिर्माणवार्ताऽस्माभिनैव श्रुता, नैव तस्य निर्माणशाला कुत्रापि प्रस्थापिता, तथापि गृहीतमपि तहस्तु 'सेल ' नामकजीवत्शारीराणुपोषकं संयुक्तभौतिकवस्तुप्रभवमेव, यदि तदेव केवलं बहिराकृष्टं चेत् तच्छुष्यितं, अतो न तस्मिन् चैतन्यस्यांश इति सिद्धमेव। चैतन्यं वस्तु अनिर्वचनीयमेवेति श्रीमद्भागवते एकादशस्कंधे वर्णितम्—

स्थित्युद्भवप्रत्यहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्तजागरस्चुपृतिषु सद्घृहिश्च ।
देहेंद्रियासु हृदयानि चरंति येन संजीवितानि तदवेहि पर नरेंद्र ॥३५॥
नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेंद्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः खाः ।
शद्धोऽपि बोधकनिषेधतयात्ममूलमर्थोक्तमाह यहते न निषेधसिद्धिः ॥३६॥
सत्वं रजस्तम इति त्रिवृदंकमादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदंति जीवम् ।
बानिक्रयार्थफल्रूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच तयोः परं यत् ॥३७॥
नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ नक्षीयते सवनविद् व्यभिचारिणां हि ।
स्वत्र शश्चदनपाय्युपल्ध्धिमात्रं प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥३८॥
अंडेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि जीवमुपधावित तत्र तत्र ।
सन्ने यदिद्रियगणहमिच प्रसुप्ते कृटस्थ आशयमृते तदनु स्मृतिर्नः ॥३९॥
यद्धिन्जनाभचरणेषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेग्दुणकर्मजानि ।
तिस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्वं साक्षाद्यथाऽमल्हरशोः सिवतृप्रकाशः॥४०॥
श्रीभागवत एकादशस्कंध तृतीयोऽध्यायः ॥

तथा—भूतैर्यदा पंचिभिरात्ममृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् । खांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवापनारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥ यत्काय एष भुवनत्रयसन्तिवेशो यस्येन्द्रियेस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि । ज्ञानं खतः श्वसनतो बल्मोजईहा सत्वादिभिः स्थितिल्योद्भवआदिकर्ता ॥४॥ श्रीमद्भागवत एकादशरकंध चतुर्थोऽध्यायः ॥

इत्याद्यनेकप्रथस्थ श्लोकानां अतीव मधुरया गिरा तैश्चेतन्यं न मौतिकमुत-स्वतंत्रं स्वयंसिद्धं सनातनमिति प्रतिपाद्य विंशतितमिवचारांशस्य साकल्येन विचारः कृतः । अनंतरम् तिसम्नेव चतुर्थेदिने निरीक्षकैः पंचभूतचर्चापरिषदो निर्णय ऐकमत्येन एकान्तस्थळे संमील्य विचार्य च ळिखित्वा स्वाक्षरीः प्रदाय परिषदि समार्पितः । तदनंतरं पररपराभिनंदनं कृत्वा इयं परिषद् समाप्ता ।

निरीक्षकाणां अभिप्रायः।

निरीक्षकेषु वैज्ञानिकानां प्रो. एस्. एस्. जोशी महाभागानां खतंत्रो अभिप्रायः आंग्छभाषायां प्रदत्तस्सचाग्रे दीयते एव । तस्यानुवादः— 'द्रव्याणां वर्गीकरणविषये आधुनिकशास्त्राणां अंतिमो हेतुस्तथा वर्गीकरणपद्धतिरिति द्वयं पंचमहाभूततःवानां पुरस्कारकर्तृभिस्तज्ज्ञेस्खिकताद्धेतोः पद्धस्याश्च मूळत एव भिन्नम् वर्तते । परिषदः प्रारंभकाछे वा अवसरे परस्परेषां शास्त्रीयदृष्टिकोनस्य परस्परेभ्यो बहुतरः परिचयो यद्यपि संजातस्त्रथापि द्वयोरपि पद्धत्योमध्ये केऽपि स्पर्शबिंदवो विद्यन्ते न वेति अन्वेषणे अनयैवदिशा अधिकप्रयत्नानामावश्यकता विद्यते ।

परिषदोप्रिमाधिवेशने एतादृशः प्रयत्ने। यदि भवेत् चेत् स प्रयत्नो मुख्यानां विवादास्पदानां प्रश्नानां निर्णयकरणे हितावहो अवश्यं भवेत् ।

अनयोर्द्धयोः पद्धत्योर्मध्ये पदार्थविज्ञानशास्त्रेण तथा प्रत्यक्षप्रयोगाणां निदर्शनेन कतमा पद्धतिः प्रमाणभूतेति निश्चयोऽस्यां घटिकायां कर्तुमशक्य प्राय एव । "

ता. ७-११-३५.

एस्. एस्. जोशी.

सवैंनिरीक्षकैर्मिलिखा यश्च निर्णयः प्रदत्तस्स हिंदीभाषायां अधो दीयते तस्याप्यनुवादः प्रथमं लिख्यतेः— श्री काशी, ता. ७-११-३५.

दिनचतुष्कपर्यन्तम् पंचमहाभूतपरिषदि पंचमहाभूतसिद्धान्तविषये प्राच्यप्रतीच्यविज्ञानदृष्ट्या यावान् संजातो विचारविनिमयः तेन वयं निरीक्षका यिसिन्निणये समागतास्स एवं विधो विद्यते—

प्रतीच्यवैज्ञानिकानां पदार्थवर्गीकरणस्य दृष्टिकोनः अथवा मुख्यं लक्ष्यं प्राचीनऋषीणां दृष्टिकोनात् अथवा मुख्याळ्ठक्ष्याद्य्यन्तं भिन्नभेव विद्यते । इति सत्यमपि वयं परिषदि संजातन संधायसभाषापद्धस्या विवादेन एकाभेता दृशीं भूमिकां अनुभवामो यया भविष्यत्काळीं नेषु एता दृशेषु संमेळनेषु विचारिविनिमये अग्रे गळन्तो वयं कमप्येकमुपादेयं निर्णयं प्राप्नुयाम । तथा च प्रत्यक्षानुभावात्मकतर्के च स्थिरा भविष्यामः ।

अस्मिन्समये प्रतीच्यवैज्ञानिकद्वारा प्रतिपादितद्विनवितम् छतःवानां तथा तन्मूलानां विद्युक्तणानां वर्गीकरणदृष्ट्या पंचमहाभूतवर्गीकरणसिद्धान्तस्य विचारकरणे परिषदियं निश्चिते मते समागछति यदस्मिन् वर्गीकरणे न कोऽपि पारस्परिको विरोधः ।

श्री प्रमथनाथशर्मा [महामहोपाध्यायः] फणिभूषणतर्कवागीश

(महामहोपाध्यायः) सत्यनारायणशास्त्री वैद्यः श्री शंकर तर्करनः जी. श्रीनिवासमूर्तिः

बालकृष्ण अमरजी पाठक.

श्री मधुसूदन विद्यावाचस्पतिः श्री गणनाथसेन द्यामी [महामहोपाध्यायः] छक्ष्मीरामस्त्रामी.

श्रीधर सर्वोत्तम जोशी. श्री राजेश्वरशास्त्री द्राविड.

क. श्री देवनायकाचार्य.

The ultimate objects and methods of the analysis of matter by modern science are fundamentally different from those adopted by the ancient seers in evolving the पंचभूत theory. While a considerable understanding of mutual view points has come about as a result of the discussion during the early stage of the conference, further thought along these lines is necessary in order to enplore in more detail the points of contract, if any, between the two schools of thoughts. These, if arranged, at further sessions of the conference would be of distinct advantage in presenting the chief

issues in adequate relief. A dicision as to the validity of one of the two systeems in relation to the other, on the basis of demonstrable and physical data, is, at the present stage premature.

Date 7-11-35.

Sd/. S. S. Joshi.

॥ श्री ॥ काशी. ता. ७-११-३५.

तीन दिनपर्यंत पञ्चमहाभूत परिषद्के पञ्चमहाभूतासिद्धान्तके संबंधम प्राच्यप्रतीच्यविज्ञानकी दर्षांसे जहांतक विचारविनिमय हुवा है उससे हमलोग जिस निर्णयपर पहुंचे है वह यह है कि,-

कि । प्रतीच्य वैज्ञानिकोंके पदार्थवर्गीकरणका दृष्टीकोन एवं मुख्य लक्ष प्राचीन ऋषियोंके दर्शकोन एवं मुख्य ध्येयसे अत्यंत भिन्न है। ऐसा होते हुवेभी परिषद्मे होनेवाले वादविवादसे हमलोग एक ऐसी भूमिकाकी अनुभव कररहे हैं कि, आगे चलकर हमलोग ऐसे और सम्मेलनके द्वारा किसी एक उपादेय निर्णयकों प्राप्त करसकेंगे जोाकि, प्रत्यक्ष तथा अनुभवात्मकतर्कपर स्थित होसकेगा।

[स्व] इस समयके प्रतीच्य वैज्ञानिकोंके द्वारा किये हवे बान्वे म्लत्यों एवं तन्मूलभूत विद्युत्कणोंके वर्गाकरणकी दृष्टिसे पंचमहाभूत • वर्गीकरण सिद्धान्तका विचार करनेसे परिषद् इस निश्चित मतपर पहुंच चकी है कि, इन वर्गांकरणोंका परस्पर कोई विरोध नहीं है।

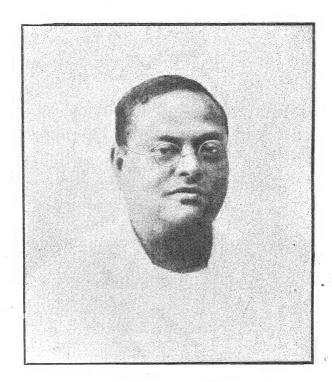
श्री प्रमथनाथ रामी [महामहोपाध्यायः] श्री मधुसूदन विद्यावाचरपतिः फणिराभूषण तर्कवागीरा

[महामहोपाध्यायः]

सत्यनारायणशास्त्री वैद्य श्री शंकर तर्करत्न जी. श्रीनिवासमुती बाळकृष्ण अमरजी पाठक श्री गणनाथसेन शर्मा [महामहोपाध्यायः]

लक्ष्मीरामखामी श्रीधर सर्वीत्तम जोशी राजेश्वरशास्त्री द्वीड श्री देवनायकाचार्यः

॥ इति पंचमहाभूतपरिषद् ॥



सभापति, त्रिदोष चर्चा परिषद म. म. कवि गणनाथ सेन.



त्रिदोषचर्चापरिषदि संजातो विचारः



ता. ७।१११६५ तमे दिवसे वाराणस्यां हिंद्विश्वविद्यालयसंस्थायाः विस्तीणें भवने पंचभूतचर्चापरिषद्कार्यसमाप्यनंतरं पूर्वंनिर्धारितायाः त्रिदोष-परिषदः कार्यारंभो म. म. गणनाथसेनसरस्वतीमहाभागानां अध्यक्षत्वे प्रारब्धः । प्रथमं पंचमहाभूतचर्चापरिषत्सभापतिभिरेव म. म. प्रमथनाथतर्क-भूषणैर्विज्ञापिता अन्येश्च पंडितप्रवरेरनुमोदिता म. म. श्री. गणनाथसेन-सरस्वतीमहाशयाः सभापतिपदं अलंकृतवन्तः । तैस्तु स्वस्याः प्रकृतेरखास्थात् सुदीर्घं भाषणं नैवकृतम् । केवलं परिषदो महत्वं, विषयाणां गांभीर्यं, चर्चापद्ध-त्याः संधायसंभाषात्वं प्रदर्श्व,त्रिदोषाणां विषये स्वीयं मतं पूर्वमेव स्वीयं सिद्धान्त-निदानग्रंथे प्रदर्शितं वर्तते इतिच निर्दिष्य परिषद्कार्यारंभः कृतः ।

[वृत्तलेखकेन लिखितम्.] त्रिदोषचर्चापरिषदो विचारः। कार्तिक ग्रुद्ध १० बुधवासरः

८ विषय: - वातादीनां खरूपं गुणाः कमीणि च।

वादी हरिशरणानन्दजीः—शास्त्रे वर्णनमनुस्त्य कपापित्तयोः कचि-दुपल्रन्धाविप वातस्य यथावर्णनमनुपल्रन्धेः, पित्तस्य चाहारेणसह संयोगानन्तर-मनुपल्रन्धेः, कपास्यापि स्वस्थावस्थायां पृथगनुपल्रन्धेः, नैतानि त्रीणि आयु-वेदे यथोपदिष्टं तथा स्वरूपवन्तीति वक्तुं युक्तम् ।

प्रतिवादी घाणेकरजीः—पश्चासप्रयोगेण दोषस्वरूपं यादशमुपगतं तादशमेव आयुर्वेदवार्णतं दोषस्वरूपं शरीरे उपलभ्यते ।

प्रतापसिंहजीः - शरीरे काचन विद्युत् तस्या वातत्वम् ।

देशपांदेः—पित्तस्य द्रवस्वरूपत्वं, अधिकद्रवं अल्पवाय्वादियुक्तं वस्तु श्रेष्मा । अचिन्त्यशाक्तिर्वायुर्नाम । वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः संयामकः चेष्टावहः । धातुदोषयोराधाराधयभावः सम्बन्धः । गुणसमुदाय एव द्रव्यम् । वातादीनां पंचरूपत्वम् ।

मस्तरामजीः—वातस्य अमूर्तरूपत्वं, पित्तकप्तयोः उभयखरूपत्वम् । २ विषयः— वातादीनां दोषत्वं धातुत्वं मलत्वं वा ? ।

सभापतिजीः— धारकत्वं दूषकत्वं मिलनीकारकत्वं च वातादीनां केन रूपेणेति प्रश्नाशयः ।

प्रतिवादी — वातादीनां स्वास्थ्यप्रयोजकपरिमाणाधिकन्यूनावस्थायां दोषत्वं, शरीरस्य मिलनीकरणान्मलत्वं, इति किंचिनिक्रिपितं दोषत्वं मलत्वं च । स्वास्थ्यकरणाद्धारकत्वम् । विकारकरणाद्दोषत्वम् । दोषकरणाभावदशायां वातादीनां दोषत्वन्यपदेशः कथं १ पाचकन्यपदेशवत् । प्रकृत्या-रम्भकत्वे सित दुष्टिकर्तृत्वं दोषत्वम् ।

४ विषयः - कथं त्रय एव दोषाः ?।

सभापतिजीः — दोषत्रयातिरिक्तदोषसत्वे संम्भाविते तस्य निषेधः कर्तव्यः, तर्हि अतिरिक्तो दोषः प्रथमं सहेतुकः प्रतिपादनीयः । सुश्रुते शोणि-तस्यापि दोषत्वमुक्तं तत्समीचीनं न वा ? ।

प्रतिवादी उपेंद्र नाथजी:--'' अग्निः पित्तान्तर्गतः शुभाशुभानि करोति; इति वचनात्तत्र पित्तस्य शुभाशुभकारणत्वं, वायोः कफस्यापि एवमेव विश्वेयम्, शोणितस्य तु दूष्यत्वं न तु दोषत्वम् तस्मात् त्रय एव दोषाः

दातारशास्त्रीजी:—न्वातादीनामेव स्वास्थ्यरोगकारणत्वम् । अतस्त्रय एव दोषाः । वातस्य शीतोष्मणोः आवश्यकत्वं रागकारणतायै । तत्र शीतत्वं कफात् औष्ण्यं पित्तात् ।

कार्तिक शुद्ध ११ गुरुवासरः

५ विषय:--वातादीनां द्रव्यरूपत्वं शक्तिरूपत्वं वा ?।

देशपांडेजीः —- " यत्रास्थिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत् , तद्दव्यं " इति वातादीनां द्रव्यरूपत्वं गुणवत्वात् घटवत् । दोषधात्नां परस्पर-माधाराधेयभावसम्बन्धः समवायसम्बन्धश्च ।

गङ्गाधरशास्त्री गुणेजीः—वातादीनां समावस्थायां धातुरूपत्वं, मीमांसकरमौ दाहानुक्ला शक्तिरङ्गीकृतापि तदाश्रयद्रव्यं बह्धिः स्वीकियते 3

तद्वत् वातादीनां धारकत्वानुक्छशक्तिमत्वेपि भिन्नभिन्नावस्थायां यत्स्वरूपं तद्रव्यरूपमेव गुणिकयाशाछित्वात् इति चरकसुश्रुतादिसम्मतं मतमिदमेव।

डेग्वेकरजी--वातादीनां द्रव्यरूपत्वमेव, गुणिकयाशालित्वात्। शक्तिमत्वादिविशेषणस्य कुत्राप्यावश्यकता नास्ति।

६ विषयः — वातादीनां स्थूलस्वं सूक्ष्मस्वमुभयस्वं वा १।

वृजमोहनजीः – वातादीनामुभयत्वं, आमवातादीरूपः स्थूलः, प्राणा-दिरूपः स्क्ष्मः, । एवं पित्तस्यापि पाचकस्य स्थूलत्वं, आलोचकस्य सूक्ष्मत्वं, कप्तस्य वमनादिरूपेण स्थूलत्वं, पोषकादिरूपेण सूक्ष्मत्वम् इति । अतो वाता-दीनामुभयरूपत्वम् ।

बद्रीनाथजीः — पित्तकप्तयोरुभयरूपत्वेपि वायोः सूक्ष्मत्वमेव, कार्या-नुमेयो वायुः । मल्रूपत्वेऽपि तस्य वायुकार्यत्वमेव न वायुरूपत्वं तस्य ततोऽनुमानात्, दक्समालोचकं पित्तं सूक्ष्मम् । अन्यत्स्थूलं, एवं श्लेष्मापि ।

वृजमोहनजी—ननु आध्मानिनःसृतो वायुः सूक्ष्मो वा स्थूळो वा १। बद्रीनाथजी-नासौ वायुः प्राकृतः येनैतादशी विप्रतिपत्तिःस्यादिति । वाजपेयीजी-—तत्र सूक्ष्मेत्यादिना वायुविषय एव सूक्ष्मो व्यवहार आयुर्वेदेषूपदिश्यते । अतः तस्यैव सूक्ष्मत्वम् । पित्तकफ्योस्त्भयरूपत्वम् ।

उपेंद्रनाथजी — वातादीनां गुणस्य प्रत्यक्षत्वेन तेषां सूक्ष्मत्वं न युक्तम् । पारिभाषिकसूक्ष्मत्वे तु मेरोरिप सूक्ष्मत्विमध्यत एव । वायुनीय-मानस्य कस्त्र्यीद्यवयवस्य दूरदर्शियन्त्रेणाप्यदृश्यस्य घाणप्राह्यगुणयत्वाद्यथा महत्वं तथा वातादीनाम् । प्रस्रक्षगुणत्वात् ।

गणेशद्त्तजी-कार्यानुभेयो वायुः। रूपाभावादप्रस्यक्षत्वेन सूक्ष्मत्वात्। चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षाविषयत्वं सूक्ष्मत्वम्। स्रोतोऽनुसारित्वं, रूपरिहतत्वं सूक्ष्मत्विमिति फलितोऽर्थः। एवं च सूक्ष्मत्वं वायोः देवत्वेनअरूपेण। रूपसत्वे तस्य प्रस्यक्षत्वापत्तेः। अप्रस्यक्षत्वं सूक्ष्मत्वमस्स्येव।

देशपांडेजी-कस्त्र्याः स्क्ष्मत्वेऽपि स्थूलशक्तिमत्वं, पाषाणादीनां तिद्विपरीतं, एवं धात्वपेक्षया सूक्ष्मा दोषा अधिकशक्तिमन्तः । वातगुणप्रत्य-क्षावस्थायां स्थूलक्रपत्वमपि, वातस्य स्थूलस्य शरीरे नोपयोगः ।

गङ्गाथरग्रास्त्रीजी—न्वातादीनां स्थूल्यं सूक्ष्मत्वमुभयरूपत्वं च । उभयरूपेण शरीरे कार्यकारित्वं, आन्त्रे आमाशये च वायोनीयमानत्वात् । नौलीद्वारा आन्त्रान्तर्जलादानविसर्गः योगिप्रयोगसिद्धः । एवं पित्तस्यापि विश्वेयम् । तदन्यत्सूक्ष्मम् । तस्माद्वातादीनामुभयरूपत्वं सिद्धम् ।

डेग्वेकरजी-शरीरस्य पाश्चभौतिकत्वेन तदन्तर्गतमन आद्यतिरिक्तं सर्वे स्थूलमेव ।

दुर्गाद्त्तजी---पित्तादीनां स्थूलत्वं सूक्ष्मत्वं च । वायोः सूक्ष्मत्वमेव । स्पर्शानुमेयो वायुः ।

उपेंद्र नाथजी---सर्वं खलु पांचभौतिकं प्रत्यक्षं प्रति कारणत्वं ' रूप-मत्रापि कारणिमत्यनेन प्रतिपादितम् । स्पर्शस्यकारणत्वमते । त्विगिन्द्रियेण बायोः प्रत्यक्षं भवति । परन्तु तत्र वायुः सदा सूक्ष्मः इति वचनाद्वायोः सूक्ष्मत्वमेवायुर्वेदसम्मतम् ।

७ विषयः--वातादीनां किं उपादानम्, तेषामुत्पत्तिक्रमश्च कीदृशः ?
किंवराजप्रतापसिंहजी-वातादीनां शरीरघटकत्वम् । शरीरस्य च
पाश्चमौतिकत्वात् वातादीनां पाञ्चभौतिकत्वम् ।

सुगृहीतनामधेयः—शद्वस्पर्शतन्मात्रासिहतादाकाशाद्वायुः । शद्ध-स्पर्शरूपतन्मात्रासिहताद्वायोः पित्तम् । शद्वस्पर्शरूपरसतन्मात्रासिहतात्पित्ता-त्कपः । तस्माद्वातादीनां पाश्चमौतिकत्वम् । इति (केचित्)।

९ विषयः—तेषां प्रत्येकराः पञ्चविधत्वं वास्तविकं काल्पनिकं वा ? । प्रतिवादी—वायुः पञ्चविधः कार्यभेदात् । अपानः स्थूलतमः ततः क्रमेण उदानः, व्यानः, समानः, प्राणश्च सूक्ष्मतरः उत्तरोत्तरम् । एवं पित्तमपि पञ्चविधम् पाचकत्वादिकार्यभेदात् । कफोपि क्रेदकत्वादिभेदात् पञ्चविधः इति वास्तविका एषु भेदाः । एषां खरूपतोऽपि भेदः । अवलम्बक—कफस्य तु खरूपं न प्राद्यं तर्पकस्य तु प्राद्यं इति खरूपतः कार्यतश्च भेदः ।

१० विषयः—-वातादीनां रागकारणत्वं कीटशं ? तेषामेव रागकारणत्वं, उतान्येषामपि कीटाण्वादीनां।

त्रिदोषचर्चापरिषदि संजातो विचारः

दोषप्रकोपः धातुप्रकोपः मलप्रकोपः मलायनप्रकोपः इति सन्वेऽपि 'रागस्तु दोषवैषम्यं 'इति दोषस्यैव रोगं प्रति समवायिकारणत्वम् ।

निरीक्षकाः -- 'दुः खसंयोगो व्याधिः, तस्या मनोनिष्ठत्वेन तत्र दोषस्य दूष्यस्य वा समवायिकारणत्वं कथं ? कार्याधिकरणस्य समवायिकारणत्वात् ।

सभापतिजीः—-दुःखसंयोग इत्यत्र दुःखाय संयोग इति लक्षणा कर्तव्या आयुर्वेषृतमितिवत् । दुःखजनकत्वं व्याधित्वं, दोषस्य खातन्त्रयेण यदा रोगजनकत्वं तदा समवायिकारणत्वं, रुधिरद्वारा यदा जनकत्वं तदा निमित्तकारणत्वम् ।

गंगाधरशास्त्रीजीः---व्याधिर्द्विविधः शारीरको मानसिकश्च तत्र दोषद्ष्ययोः समवायिकारणत्वं, दोषद्ष्यसंयोगस्य असमवायिकारणत्वं, तदन्य-न्निमित्तकारणम् । एवं च कीटाण्वादीनां तदन्यत्वानिमित्तकारणत्वम् ।

घाणकरजी—कीटाण्वादीनां रोगं प्रतिनिमित्तकारणत्वं घटं प्रति दण्डचकादिवत् ।

श्री पं. रुद्रदेव विद्यामहार्णवानां भाणितिः।

किन्तावद्दोषस्वरूपम् ?

' सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ' [यजुर्वेदः] मन्त्रेणानेन स्फुटं प्रतीयते यत्-विश्वस्य सर्वेषां जिटलानां कार्यप्रपंचानां केन्द्रभूतः सूर्य एव । सर्वेषां जीवानां जीवनास्तित्वमि सूर्याश्चितमेव । जीवनरक्षाव्यापारस्तु नितरां जिटलः । भक्ष्यचे। ध्यलेह्यपेयान् विविधान्यदार्थान् वयं खादामः । आहारेण अर्थात् सर्वतः आकृष्टेन पदार्थसमूहेन अस्माकं कायेषु रसोत्पित्ति-भवति । यदा वयमाहारं खस्थं कुर्मस्तदा तेन आहारेण खास्थ्यं वर्द्वते । खास्थ्यशद्धस्येदमेव निर्वचनं यत् खस्थस्य भावः स्वास्थ्यम् । शरीरस्य

जीर्णानां शीर्णानामङ्गानामाप्यायं संवर्धनं संरक्षणञ्च भवत्येतस्मात्स्वस्थी-भूतादाहारादेव । आहारादेव जीवनशक्तिकेंद्रभूतस्य प्रोटोप्टाज्माभिधस्य (Protoplasm) पदार्थस्य भवत्युत्पत्तिः ।

कलल्रूपस्य प्रोटोप्लाज्मसंज्ञकस्य महाद्भुतस्य वस्तुनः जन्म प्रधान-तश्चतुर्भ्यस्तत्वेभ्यो भवति । तानीमानि तत्वानि कार्बनाक्सीजन-नाईट्रोजन हाईड्रोजन-संज्ञकानि सन्ति । आनुषाङ्गिकरूपेण तु गन्धकस्फुरक [फास्फोरस] चूर्णक [लाइम] शैलेयक [सिल्कान] संज्ञकानां तत्वानामपि स्थितिरा-वश्यकी । आहारादेवेमानि तत्वानि नः शरीरं समायान्ति । कार्बनसंज्ञकं तत्वं अन्नफल्कुसुमादयः पदार्था वायुमण्डलतो गृह्णन्ति । वातावरणे कार्ब-निकाम्लगैसरूपेण कार्बनस्यास्ति प्रभूतं परिमाणम् । कार्बनिकाम्लगैसमध्या-त्कार्बनं तत्वं स्थावरा वृक्षादयः सूर्यप्रकाशवशादेवादातुं प्रभवो भवन्ति । वयमनं मुंज्महे । अत अन्नादिमार्गेण तेभ्य एव वयमिदं तत्वं प्रणुचिन्मः ।

अनन्तेऽस्मिन्ब्रह्माण्डे विविधाः पदार्था वाय्वात्मना स्थिताः सन्ति । सूर्यादिषु पदार्थेषु एका विशिष्ठाऽकर्षणानुकर्षणात्मिका शक्तिर्वतेते । विविधानां पिण्डानां विविधा भारः, विविधानां पिण्डानाञ्च विविधा देशिकं व्यवधानम् । अत एव आइजेक न्यूटननियमानुसारंणैयां विविधा आकर्षणानुकर्षणात्मिका शक्तिः । शक्त्यनुसारंणैव वातावरणदशापि भिन्नेव । प्रो. अल्फेड रसेल वैलेस महोदयस्यासीदिचारः यत्—यदि अस्याः पृथिव्या व्याससंज्ञकं परिमाणं अष्टसहस्रकोशार्ध (८ सहस्र मील) स्थाने रिपृशताधिकनवसहस्त्रकोशार्धमभविष्यत् चेत्तिहैं नात्र कश्चिदपि जीवोऽजीविष्यत्, । तदानीं प्रबल्याऽकर्षणशक्त्याऽकृष्टेन हाईड्रोजनपवनेन सहमिलितोऽऽक्सीजनवायुः प्रचुरं जलं समुत्यादयितुं शक्तः सन् निाखलामिपीमां भूमि क्रोशद्यमितेन गमीरेण तोयेन कुम्बितुमकल्प्स्यत् । अन्तिरक्षमण्डलञ्च नानाविधैःबाष्पसम्हैः प्रितं दुर्दिनादिष दुर्दिनतममवर्त्तिष्यत् । तदानीं शनिश्चक्ष्यल्टोनेप्च्यूनादिवत् अत्रापि जीवनसत्ता नावर्स्यत् ।

प्रो. अल्फ्रेड रसेल वैलेस, प्रो. पिकरिंग, प्रो. पर्सिबल लेबिल महोदयैः विविधानां प्रहोपप्रहादानां वातावरणादिविषये विचारं कुर्वद्भिः प्रति- पादितं यत् ब्रह्माण्डमध्ये जीवसमष्टिरक्षायै येषां वस्तूनामस्यावश्यकता तेषु वस्तुषु सन्तीमानि प्रधानानि —

- (१) वातावरणौचित्यम्,
- (२) तापुप्रकाशयोरीचित्यम्,
- (३) जलबाष्पयोरौचित्यम्।

एषां मध्ये यदा कस्मिन्नपि कापि त्रुटिभीवष्यति यद्वा कश्चिद्दोषो (deficiency) भविष्यति-भवतु नाम स दोषः केनापि प्रस्यक्षेण कारणेन परोक्षेण वा-तदानीमेव सदोषा जीवसमष्टिसत्ता भविष्यति सामयाः दोषाधिकयेन च जीवसमष्टिसत्तायां भविष्यति लोपः । एवं हि श्रूयते डिनैासीरस्मैमथमेस्टोडानशार्दूल- [Sober toothed tiger] शरभादीनामास्यन्तिको लोपः समभवत् । पूर्वं प्राण्यधि-ष्ठिताः केचित् प्रहोपप्रहा विविधेदीषैः प्राणिविरहिताश्च संजाताः । अत्र तु पृथिव्युपप्रहस्य सुधाकारस्य थ्रो. पिकरिंगमहोदयैरध्यक्षांकृतमुदन्ततस्वं प्रमं प्रमाणम् । किं बहुना प्रपिश्चतेन । अस्ति च दार्शनिकानां विचारः ' यद्दर्गे तदेकस्मिन् ' डिक्टम् डेओम्नी एट् नुलो [Dictum deomne et nullo] अपरंच सिद्धान्तः ' यथा अण्डे तथा पिण्डे ' [अंज अबव् सो बिलो] [as above so below] । पिण्डवाचकः राद्ध ऑग्लभाषायां माइक्रोकाज्म-वर्तते । [Microcosm] माइक्रोकाज्मराद्धस्यार्थ आँग्लभाषायां लिटिल्का-स्मास अर्थात् अल्पो ब्रह्माण्ड इत्यस्ति । ब्रह्माण्डवाचकः शद्धः आँग्लभाषायां मैक्रोकाञ्म वर्तते । [Macrocosm] मैक्रोकाञ्मराद्वस्यार्थः आँग्रन्थमाषायां ग्रेटकास्मास अर्थात् ' महाब्रह्माण्ड ' इत्यस्ति । आभ्यां शद्वाभ्यां पिण्डब्रह्मा-ण्डराद्वाभ्याञ्च प्रतीयते निखिलेऽपि विश्वे नियमानां व्यवस्थितिः समानैव ।

यथा हि तापप्रकाशयोजिलवाष्पयोवीतावरणस्यावश्यकता जीव-समष्टिरक्षाये नितरां मृग्या तथेव कायाविक्छन्नजीवरक्षाये वातबाष्पतापादीना-मावश्यकताऽपरिहर्तव्या । एत एव वातादयः पूर्वं शरीरनिर्माणोपयुक्तां सामा-ग्रीमदुः। सर्वदा दधित तस्मादिमे धातवः । कुपिताः सन्तः शरीरे दोषमुत्पाद-यन्ति तस्मादीषाः । मलिनीकरणान्मला वातपित्तकपाः । ' अनिलानलसोमा- स्रयस्तपन्ति पृथिवीमन्पाः द्वा बृब्कं वहतः पुरीषम् ' इति श्रुतिसिद्धमेषां धातुत्वम् । पाश्चात्यवैज्ञानिकानां डिनेमिकथर्मछहाइड्रास्टेटिक्सशक्तिस्थानीया अपीमे । अन्यारशक्तयास्तिसृष्यासु शक्तिष्वेव समाहिताः सन्ति । तत्र वातस्तु वातात्मकः, पित्तं तापात्मकं कफस्तोयात्मकश्च । इमे त्रयरशक्तिरूपाः शक्ति-मन्तश्च । द्रव्यगुणयोरभेदोपचारात् । इमे स्थूछसृक्ष्ममध्यमखरूपाः । अत्र विषये तु छान्दोग्योपनिषदि, भावप्रकाशे च बहुप्रपश्चितम् ।

सर्वेषां रोगाणां कुपिता मछा एव निदानम् । विविधाहितसेवनेन भवस्येषां कोपः । तथाहि—

> सर्वेषामेव रेगाणां निदानं कुपिता मलाः । तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ॥ — माधवनिदाने (सर्वरोगनिदानपञ्चककथनें) ।

उक्तश्च चरके-

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः । अनुक्तमपि दोषाणां छिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥ दोषविशेषणानधिष्ठितमन्यक्तं निदानं पूर्वरूपमित्यभिधीयते । तथाहि--उत्पित्सुरामयो दोषविशेषणाऽनधिष्ठितः । छिङ्गमन्यक्तमल्पत्वाद्वयाधीनां तद्यथायथम् ॥

अर्थात् येन उत्पित्स् आमयो छक्ष्यते ज्ञायते तत्प्राग्रुपम् । किंभूतो आमयो दोषविशेषेणानिषिष्ठितः । यस्य व्याधेर्यद्भुपं तदेवाव्यक्तं पूर्वरूपम् ।

शारीरेऽस्मिन् आहारमुखेन विविधानि तत्वानि गच्छिन्ति । शारीरस्य विविधेषु भागेषु अवस्थितानां संयोगानां रचनाऽपि सर्वथा नैकप्रकारा । कुत्र-चित् एकस्य तत्वस्य प्राधान्यमपरत्रान्यस्य, इतरत्र च कस्यापीतरस्य । एतेषामुपयुक्ते संघटने यदा भवति छेशतोपि भेदस्तदानीमेव व्याधेः पूर्वरूपं छक्ष्यते । तदेव व्यक्ततां यातं रूपिमस्यभिधीयते । तदानीम्—

हेतुन्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् । औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥

त्रिदोपचर्चापरिषदि संजातो विचारः

विद्यादुपरायं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः । विपरीतोऽनुपरायो व्याध्यसात्म्यमिति स्मृतः ॥

ę

रारीरस्य उपचयापचयौ प्रत्येकासिन्क्षणे भवत एव । चेष्टया, गत्या, भाषणेन अथवा अन्येनापि केनापि व्यापारेण भवत्येव रारीरस्यापचयः, आहारादिना भवति पुनरप्युपचयः । तावेतौ चयोपचयौ मितेन बलेन वर्त-मानौ मेटावालिङमसंज्ञकौ (Metabolism) पृथक् पृथक् यथासङ्ख्यमनु-बल्नप्रतिबल्जनहेतुकौ अनावालिङम (Anabolism) काटाबालिङम (Katabolism) संज्ञको भवतः । अनेन भवति रारीरस्याकारपरिवर्तन-मस्यैव नाम ' मेटामाफोंसिस् ' इल्यपि भवितुमहिति ।

यदा शरीरद्रव्याणां शक्तेश्च व्यय अधिको भवति आयश्चाल्पः, तदा क्षयरोगेण प्रस्तं भवति शरीरम् । अस्य निवारणोपायस्तु भोजनाच्छादनादिना आयप्रवर्द्धनं व्ययनिरोधनञ्च । एवमेव गन्धकस्पुरक्छवणादिपदार्थानामपि न्यूनतया भवन्ति केचन रोगाः । तेषां निवारणार्थं एषामेव द्रव्याणां शरीरे सञ्चयो भवत्यावश्यकः । येषु द्रव्येषु एतेषामुपस्थितिः सुनिश्चिता तेषामेव द्रव्याणामाहारमुखेनौषधमुखेन वा सेवनं रोगविनाशकम् । यदा दोषा रक्ता-दिधातुमनुप्रविष्टाः सन्तः तत्र विकारं जनयन्ति तदा भवति रोगस्य तीव्रा-वस्था । दुश्चिकित्स्यश्च भवति स रोगः । तथा चोक्तम्—

अभ्यङ्गस्नेहस्रेदाचैर्शतदोषो न शाम्यति । विकारस्तत्र विज्ञेयो दुष्टमत्रास्ति शोणितम् ॥ इत्यादि ।

शरीरे कललाभिधं प्रोटोप्लाज्मसंज्ञकमस्ति शक्तिबीजभूतं द्रव्यम् । 'सल ' अभिधाः [cell] सान्ति बह्व्यः कलाः । शोणितादीन्यपि सन्ति । एषु सर्वेष्वपि भवति आकर्षणानुकर्षणव्यापारः । यदा कदाचित् कस्यापि शक्तिः केनापि कारणेन श्वीणा भवति तदा शोथशोषश्चयथुप्रभृतयो रोगाः संजायन्ते ।

लोहिते च लैहिस्य लवणानि प्रभूतानि सन्ति । मस्तिष्के प्रस्फुरकस्य

अस्थिमध्ये तु चूर्णकरौलेयके (lime and silica) द्रव्ये प्रभूते स्तः । एवमेवान्यत्रापि यत्र-तत्र विविधद्रव्याणामस्ति प्राचुर्यं न्यूनता वा ।

बून [Bunge] प्रभृतिभिः विपश्चिद्भिः ' टेक्स्ट बुक ऑफ् फिजिआलाजिकल् ॲन्ड पैथालाजिकल् केमिस्ट्री' प्रभृतिषु प्रन्थेषु विषयस्यास्य विचारः कृतोऽस्ति । बूनमहोदयस्य सिद्धान्तेन रक्तस्य सहस्रग्राममिते परिमाणे विविधानां पदार्थानामस्ति एषा व्यवस्थितिः—

| लौहस्य Iro | D | 0 | ९९८ |
|-------------|-----------|----|-----|
| कालि सल्फ | | 0. | १३२ |
| कालि मर | | ₹. | ०७९ |
| कालि फास | 17 | ₹. | ३४३ |
| नैट्म फास | 55 | ٥. | ६३३ |
| नैट्म | | ٥. | ३४४ |
| कैल्क फास | | 0. | 068 |
| मैग्नीज फास | | 0' | •६० |

कलावन्तर्विति सहस्रमामिते कलले (Plasm) तु विविधानां पदार्थानामित्त एषा व्यवस्थितिः—

| कालि सल्फ द्रव्यस्य | • | २८१ |
|---------------------|------------|-----|
| कालि मर ,, | 0. | ३५९ |
| नैट्म मर ,, | | 484 |
| नैट्म फास ,, | o* | २७१ |
| नैट्म " | १ • | ५३२ |
| कैल्कर फास ,, | 0. | २९८ |
| मैग्नजि फास ,, | ۰, | २१८ |

नैट्रम सल्फ, फ्लोर तथा सिल्किसंज्ञक-शैल्लेयकपदार्थानां किंचित्प-रिमाणं च । सहस्रप्रामिते दुग्धे तु एषा व्यवस्थितिः—

कालि द्रव्यस्य

0. 050

| नैट्म | द्रव | व्यस्य | | 0* | २३० |
|------------------|-------|------------|--|----|-----|
| कैल्करिआ | | 53 | | 0 | २३० |
| मेग्नेसिआ | | 5 7 | | 0. | ०६० |
| लौह | | " | | 0' | 008 |
| फास्फोरिक | अंसिड | 77 | | 0. | 800 |
| क्रोर | | 79 | | 0* | 880 |

क्कोर तथा शैलेयकयोः किंचित्परिमाणं च ।

' दि ट्वेन्व टिस्यू रेमेडीज आफ शुस्लर ' (the Twelve Tiesue Remedies of Schutsler) प्रन्थे तु उक्तैव प्रिक्रियानुमृता । परं भवतु तस्मिन् चिकित्साप्रयोगे विवादो न वा भवतु । इदं तत्वन्तु तस्यां सरणौ अपि स्फुटमेव यद् '' रागस्तु दोषवैषम्यम् '' " दोषसाम्यमरागता "।

आयुर्वेदानुसारेण तण्डुलेषु, गोधूमेषु, तिलेषु, माषेषु, शक्तरायां, मधुनि, दिधिनि, तके, लवणे, श्रृंगवेरे, रामठे, रसोने, धात्रीफले, रसाले, जम्बीरे, नारिकेले, वंगे, नागे, शतमल्ले, महारसे पारदे च अन्येषु च सर्वेषु रसोपर-सादिषु पदार्थेषु सन्ति विशिष्टा गुणाः । शरीरे यदा कस्यापि रेगस्य प्रादुर्भावो भवति तदा निदानपुरःसरमुचितौषधोपचारेण तस्य प्रतीकारो भवितुमईति । परिमदमत्रानुसन्धेयम्—'' न वैद्यः प्रभुरायूषः "।

यदि शरं १ पाण्डुरोगळक्षणानि सन्ति तदा रक्तस्थेषु रक्तवर्णकेषु, 'ग्लोबुलीज ' संज्ञकेषु परमाणुषु ज्ञेयः किश्वहोषः । अत्र लौहद्रव्यस्य न्यूनतैव प्रधानं काग्णं भवति । अतो मण्डूरभस्मलौहभस्मादिना निम्बम्लके- क्षुरसादिभिलौहयुक्तैर्द्वव्येश्च भवत्येष रोगश्चिकित्स्यः । यदि किश्चिदुन्मादरोग- प्रस्तोऽस्ति तदानीं फास्फोरसायोडीनद्रव्ययोर्न्यूनता तस्य रोगस्य प्रधानं कारणं भविष्यति । अस्मिन् रोगं फास्फोरसायोडीनप्रधानानां पदार्थानां ब्राह्मीशंखपुष्पीर्सपगन्धादीनामुपयोगः सुखावहः । थाइराइडग्लैण्डविकारणापि भवत्युन्मादरोगस्तत्रापि फास्फोरसायोडीनद्रव्ये हितावहे । कारणभेदेनैव भवति कार्यभेदः । बलवर्णादिवेषम्यस्याप्याहारभेद एव प्रधानकारणम् ।

जगति लिंगभेदस्यापि कारणमाहारोपचारभेद एव। वृक्षेषु यथा भवति लिंगजननं न तथा जन्तुषु । जन्तुषु प्रथमो नीरूपः क्षुद्रतमो जन्तुः ' प्रोटाजोआ ' [Protozoa] विद्यते । केचित् ' प्रोटोिनेआन 'संज्ञकं कीटाणुं क्षुद्रतमं मन्यन्ते । अनयोः शरीरे न भवति लिंगभेदः । बाल्टजेरम-होदयेन बोनेलियासंज्ञकस्य जीवस्य जीवनं सम्यक् परीक्षितम् । बाल्टजेर (Baltzer) महोदयेन निरीक्षणानन्तरं ज्ञातं यद् बोनेलिया (Bonellia) संज्ञको जीवो जननानन्तरं छिंगनिधीरणं करोति । अण्डेभ्यो निर्गताः शावकाः यदि समुद्रतलमवलम्बय स्थिता भवन्ति तदा तेषां काये प्रमदालि-गानि संजायन्ते । यदीतरथा ते कामपि खवर्गायां तरुणीमासाद्य स्थिता भवन्ति तदा तेषु नरत्वमुदेति । परिस्थितिवशाद्भवति तेषु छिंगभेदः। डॉक्टर एफ्. उण्टेरबेर्गेरमहोदयेन (Dr. F. Unterberger) द्वात्रिंश-दुत्तरएकोनविंशतिशताब्दा अगस्तसंज्ञके मासि घोषणा कृतासीत् यत्स जनानां छिंगपरिवर्तनं कर्तुमीष्टे । सोडियमबाइकार्बोनेट चूर्णेन छिंगयोनि-प्रदेशयोः प्रक्षालनेन बीजाणुशुक्राण्योः तथाभूता भवति दशा यथा पुत्रप्रज-ननमेव भवति न कन्याप्रजननम् । किर्श (Kirsch) ब्लूम (Bluhm) प्रभृतिभिः प्रयोगस्यास्य परीक्षणं शशमूषकवराहप्रभृतिषु कृतं परं ते सफल-मनोरथा न बभुवः । अस्तु ।

आयुर्वेदग्रन्थेषु ' युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ' इस्त्रेष राद्धान्तः प्रतिपादितोऽस्ति । गृह्यकर्मसु परमावश्यकः पुंसवनसंस्कारोऽस्ति । तस्य संस्कारस्यायमेवाशयः । संस्कारविधिविनियुक्तेषु मन्त्रेषु चोपदिष्टं यत्— 'पुमान् पुत्रो जायते ', पुंसवनसंस्कारे विनियुक्ताः सन्ति काश्चनौषधयः । न्यग्रोधश्चंगरसस्य नासापुदेषु सेकश्च कर्तव्यत्वेनोपदिष्टः । यदि नाम मन्त्रोक्त-विधानेन यथाविधि गर्माधानपुंसवनसंस्कारौ भवेतां तर्हि ''पुमान् पुत्रो जायते '' इति वेदवचनमवितथं भविष्यति ।

माध्यन्दिनीये शतपथत्राम्हणे तदन्तर्गतायाश्च बृहदारण्यकोपनिषदि साधु भूयोभूयः समुपदिष्टम्— " अथ य इच्छेत्पुत्रों में कपिछः पिंगलो जायेत " " अथ य इच्छेत्पुत्रों में स्यामी लेहिताक्षो जायेत " " अथ य इच्छेद्दुहिता में पण्डिता जायेत " सः प्रकृतं कर्म कुर्यात्।

तत्र यासामौषधीनां नामानि समागतानि सन्ति तासां खरूपविषये भवितुमहिति भूयान् वादः पाठभेदेऽपि भविष्यन्ति भिन्नानि मतानि ।

वेदमन्त्रोक्तविधानपुरस्सरं संस्कारकरणेन तत्रोल्लिखितानामौषधीनां सेवनेन, यथोक्ताचारविहारेण च द्वौ पुरुषौ पुत्रवन्तौ संजातौ, इति मया स्वयमेवाध्यक्षीकृतम् । तयोर्मध्ये एकस्तु षण्डकल्प आसीत् । षण्डकल्पस्य चिकित्सा तु मदीयैः स्वर्गतैः पूज्यपादैः पितृचरणैः श्री पण्डितरामनारायण-वैद्याचार्यमहोदयैः कृतासीत् । आयुर्वेदोक्तस्यैकस्य तैल्लस्याभ्यङ्गमर्दनं तुल्सी-वृन्दाबीजानाञ्च पयसा सह भक्षणमपि चिकित्साङ्गभूतमेवासीत् । अपरस्तु पुरुष आसीद् वृद्धः । आसीत् तस्यैका कन्यका । काश्चन कन्यकाः कतिपये पुत्राश्च बाल्य एव पितरौ शौकसागरनिमग्नौ कृत्वा भुवं विरहय्य परेतभर्तुरा-तिथेयमङ्गीकर्तुं द्यां गता आसन् । भार्या तस्य तरुण्यासीत् । सोऽपि तस्यां अभिक्षं मनोजमनोञ्चं सुकुमारं कुमारं लेभे ।

अतोऽस्ति मे वैदिकोपदेशे परः प्रत्ययः । जंगिडदाक्षायणप्रयोगेषु अपि प्रत्ययो विधातन्यः । विचिकित्साऽस्पृष्टा स्वसंवेद्या श्रद्धा च साम्रेडं स्फरति समाम्नायनोदनेषु ।

केचित् पुरुषा रोगोत्पादकहेतून् विविधान् कीटाणून् संगिरन्ते । तथाहि स्पाइराकीटापैछेडाकीटतः फिरंगरोगोत्पत्तिर्भवति, हैंसियनबैसिछीकीटतः कुष्टरोगोत्पत्तिर्भवति, गौनोकोकस्कीटतः उष्णवातौपसर्गिकमेहरोगोत्पत्तिर्भवति, अनाफछीजसंज्ञकमशकदंशनैश्च—इटछीदेशी--भाषाप्राधितस्य—मछेरियासंज्ञकस्य दुष्टवायुजनितस्य ज्वरस्योत्पत्तिर्भवति; एवमेव प्रजागरिवधूचिकाप्रभृतीनां बहूनां रोगाणां निदानभूताः सन्ति विविधाः कीटाणव इस्यस्ति तेषां विचारः।

भवन्तु नाम कीटाः । नात्र काचिद्विचिकित्सा । कीटाः काये सद्यो दोषमुत्पाद्य दोषमुखेनैव रोगं जनयन्ति इत्यस्ति अस्माकं मतम् । अदृष्टकाये तु कीटाः स्वयमेव पञ्चत्वमायान्ति । कीटा वातिपत्तकफादीन् कुपितान् कुर्वन्तिः; तदनु कुपितेभ्यो वातिदिभ्यो भवति विविधरोगोत्पत्तिः । तथा द्यक्तम्—

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ।
तद्यथा ज्वरसंतापादक्तिपत्तमुदीर्यते ॥ १६ ॥
रक्तिपत्ताज्वरस्ताभ्यां शोषश्चाप्युपजायते ।
प्रीहाभिवृध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ १७ ॥
ते पूर्वं केवछा रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः ॥ १८ ॥
कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ।
न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ॥ २० ॥
एवं कुच्छतमा नॄणां दश्यन्ते व्याधिसङ्कराः ।

--माधवनिदाने ।

एकस्मिन्नेव सोपसर्गे फिरंगरोगे जगतः सर्वेषामि रोगाणां यथाकथ-श्चिचिह्नानि व्यक्ततामायान्ति । निखिलानां रोगाणां वातिपत्तकफकोप एव कारणमत एव सकलरोगनिदानानि दृश्यन्ते एकस्मिन्नेव फिरंगरोगे । अनेनापि इदमेवायाति——

" सर्वेषामेव रे।गाणां निदानं कुपिता मलाः " । अस्तु ।

ऋग्वेदीयै।षिधसूक्ते (१० म० ९७) यजुर्वेदस्य द्वादशाध्याये च 'अमीबा', 'निहाका', 'मध्यमशीः 'प्रभृतयः शद्धाः समायान्ति तेषां शद्धानां माष्यकारैयेंऽर्था कृतास्तेऽपि स्तुत्या एव। परं यदि कश्चिदेषामर्थान् कीटाणुपरान् कुर्यात् तदानीमपि न भविष्यति कश्चिद्दोषः। सूर्यचिकित्सया च कीटाणूनां नाशोपायस्तु अथर्ववेदेऽपि प्रतिपादितः।

कीटाणुवादे सत्यिप रे।गनिदानभूतास्तु दोषा एव । दोषखरूपन्तु समुचिततत्त्वविषयको व्यत्यास एव । ऑग्टभाषायां डिफिशियन्सीशद्वस्य योऽर्थः स एव दोषशद्वार्थः । स चासौ दोषिश्वविधः । प्रधानतिश्विभिरंव कारणैर्जगतः 4

शरीरस्य च स्थितिः, थैरेव कारणैः स्थितिः तेष्वेव व्यत्यासो वस्तुते। दोष-पदार्थः । ते च दोषा वातापित्तकफरूपाः । जगित मरुतो जुनन्ति तत्र प्रधानहेत्रादित्यः । शरीरे वातश्चलित तत्र प्रधानहेतुरात्मा । जगित वायुसञ्च-रणादिना तापबाष्पादीनां समुचिता व्यवस्था सञ्चायते । शरीरेऽपि वातश्चलिते वातेनैव पित्तकपौ इतस्ततो नियते । तथा चोक्तम्—

> " पित्तं पंगु कफः पंगुः पङ्गवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥ "

> > —भावप्रकाशे--

शरीरस्थरसोपरसधात्नां संरक्षणात्संभरणाचास्ति पारदादीनामपि रस-त्वादिकं रसप्रदानाद्रसायनत्वञ्च ।

महारसपारदसहितानि रसोपरसधातुरनानीमानि शरीररक्षां कुर्वन्ति-

अभवेकान्तमाक्षीकविमलादिजसस्यकम् । चपलो रसकश्चेति ज्ञात्वाऽष्टौ संप्रहेदसान् ॥ गन्धाश्मगैरिकासीसकांक्षीतालशिलाञ्जनम् । कंकुष्ठं चेत्युपरसा अष्टौ पारदकर्मणि ॥ कम्पिल्लश्चापरा गौरीपाषाणा नवसादरः । कपदो विह्वजारश्च गिरीसिन्दूरहिंगुलौ । मृद्दारश्चगीमलाष्टौ साधारणरसाः स्मृताः ॥ शुद्धं लौहं कनकरजतं भानुलोहाश्मसारम् । पूर्तालौहं द्वितयमुदितं नागवंगाभिधानम् ॥

माणिक्यमुक्ताफलविद्धुमाणि ताक्ष्यञ्च पुष्पं भिदुरञ्च नीलम् । गोमेदकं चाथ विदूरकं च क्रमेण रत्नानि नवग्रहाणां ॥ इतीमे रसापरसादिसंग्राहकाः श्लोकाः । इमे रसादयो दोषान्धयन्ति ।

विविधासु ओषधीषु अपि अस्ति दोषशमनशक्तिः । ओषधिशद्धस्येदमपि निर्वचनं यदिमा ओषं अर्थात् दोषं धयन्ति । दोषस्वरूपं तु न्यक्तीकृतमेव । अथोपि धिसूक्तोक्तेन ब्रह्मणा ब्रह्मणा विरमाम्यहम्-यत्रीपिधीः समम्मत राजानः समिताविव । विद्राः स उच्यते भिषप्रक्षो हामीव चादनः ॥

अ. १०-९७-६

इति विद्यामहाणिवस्य श्री रुद्रदेवशास्त्रिणः सर्वशास्त्रमहोपाध्यायस्य भाणितिः।

आयुर्वेदाचार्य पंडित जगन्नाथशर्मा वाजपेयी एम्. ए. इत्येषां त्रिदोषचर्चापरिषदि वक्तृता ।

त्रिदोषस्यायुर्वेदीयचिकित्सापद्धत्याः प्रधानाधारत्वेऽपि कौश्चिद्धेशानिकम्म-न्यैवैद्धैरपि तस्याखीकृत्युद्धोषणेन जायमानस्य सन्देहस्य निराकरणमेव प्रयोजनं । शरीरदूषणाद्दोषत्वं, देहधारणाद्धातुत्वं मिलनीकरणान्मलत्वं त्रिविधत्वमप्यविरुद्धं कर्मवैशेष्येण संज्ञावैशिष्टयस्य स्वीकारात् पाचकपाठकादिवत् । किंच देहधार-कत्वदशायामपि दोषसंज्ञा निराबाधैव यथा च चरकादिवचनादवधीयते ।

"य एव देहस्य समा विवृध्ये, त एव दोषा विषमा वधाय । यस्मादतस्ते हितचर्ययेव, क्षयाद्विवृद्धिरिव रक्षणीयाः ॥ इति " दृष्टिकर्तृत्वमेव दोषसंज्ञायां हेतुः । यस्मान्नान्ये--उपलभ्यन्तेऽतस्त्रय एव । यतो हि शारीस रोगानान्तरेण वातिपत्तकफात् जायन्ते । यत् उक्तम् — स्वधात्वैषम्यनिमित्तजा ये विकारसंघा बहवः शरीरे ।

न ते पृथक् पित्तकफानिछेभ्य आगन्तवस्त्वेव ततो विशिष्टाः ॥
किञ्चास्मदादीनां शरीरं पाञ्चमौतिकम् तत्राकाशस्य सर्वव्यापकत्वेन पृथिव्याश्च
व्यापारशून्यत्वेन न तयोर्दुष्टिकर्तृत्वसंभावना । इत्यं चावशिष्टास्त्रयो वायुजल-रूपा धातवो वर्तते । एतेषामेव दुष्टिकर्तृत्वं सम्भवति । त एव शरीरस्था वातपित्तकफशद्धेन व्यवहीयन्ते । किञ्च—

> वायुः पित्तं कमश्चोक्तः शारीरो दोषसंप्रहः । वायुः पित्तं कमश्चेति त्रयो देाषाः समासतः ॥

इत्यादि श्लोकेषु समाससंप्रहादिशद्वैराचार्येरयमपि संकेतः कृतः। यत्संक्षे-पतस्रय एव विस्तरशस्तु बहवो भवितुं शक्यन्ते। यथा दोषभेदाः प्रोक्ता द्विषष्ठिसंख्याकाः ते बहवोष्येतेष्वेव त्रिष्यन्तर्भवान्ते। यदुक्तं वाग्भटेन

तथा चरकेऽपि-दृष्टांतरूपेण''षट्वन्तु नातिवर्तते त्रित्वं वातादयो यथा'' तथा च मधुकोषव्याख्याकारेण ''प्रकृत्यारंभकत्वे सति दुष्टिकर्तृत्वन्दोषत्वमिति'' निर्दुष्टं लक्षणं कृतं दोषस्य, तच्च वातादिष्वेव संघटतेऽतस्त्रय एव ते।

शक्तिरूपत्वं द्रव्यरूत्वं वा ।

न निराधारा शक्नोति स्थातुं शाक्तिः । वातादीनाञ्च गुणाः प्रोक्ताः । गुणा-द्रव्याश्रया एव । अतएव द्रव्यरूपत्वमेव वातादीनां न शक्तिरूपत्वं । शाक्ति-विशिष्टद्रव्यत्वं तु तेषां वक्तुं शक्यते ।अपिरिच्छिन्नपिरमाणवत्वं सूक्ष्मत्वं,पिरिच्छिन्न-पिरमाणवत्वं स्थूलत्विमिस्येतस्रक्षणं यदि स्वीक्रियते सर्वेषामप्युभयत्वं। यदि च चक्षु-रिद्रियाग्राह्यत्वमेव सूक्ष्मत्वं स्वीक्रियते तदा पित्तक्षस्योरुभयत्वं वातस्य सूक्ष्मत्वमेव।

वातादीनां खरूपिमस्यत्र खरूपिमस्यस्य यदि केवलं तन्मात्रधीविषयत्व-मिति लक्षणं स्वीक्रियते तर्हि शरीरवर्तित्वे सित गतिकारकत्वमुण्णताजनकत्वं स्निग्धताजनकत्विमित्यादिलक्षणं । शरीरवर्तित्वेसतीति विशेषणं बाह्यवातादि-निरसनार्थम् ।

यदीदं तु पिरचायकलक्षणं न भवित केवलं तटस्थलक्षणिसयुच्यते । तर्हि तादक् लक्षणं चरकोक्तं—वायो रैक्ष्यं लाघवं वैशद्यं शैत्यं गतिरमूर्तत्व-श्चेति वायोरात्मरूपाणि तथैव पित्तस्योण्यन्तैक्ष्णयं कफस्य स्नेहशैल्यानीति ।

वातादानां पञ्चविधवं काल्पानिकं तच स्थानकार्यभेदोत्पन्नमेव न खरूपभेदोत्पन्नं । वातादानां रागान् प्रति कचित् समवायिकारणत्वं कचिनि-मित्तकारणत्वं । वातादानां स्थितिस्तु सर्वेष्वेव शारीरेषु रागेषु । कीटादीनां तु आगंतुकेषु भवति रागेषु कारणत्वं । इत्थं च तेषां कचिदेव केवलिनिमत्त-कारणत्वम् ।

कविराज उपेंद्रनाथदासानां भाषणम् ।

विषय २ :-वातादयो यावत्खस्थानस्थाः स्वमानस्थाश्च स्वस्रकार्यं संपाद्य शरीरधारकास्तावत् ' धातु ' संज्ञां लभन्ते । तएव यदा विकृताः सन्तो दुष्टिकारका भवन्ति तदा ' दोष ' संज्ञां लभन्ते । यदात्यर्थं दुष्टा इतरमल्बानिर्हरणीया भवन्ति तदा ' मल ' संज्ञां भजन्ते । विभिन्नां परिस्थिति-मासाद्य विभिन्नं कार्यं कुर्वन्तस्मवं एव विभिन्नां संज्ञां लभ्यन्ते नात्र कश्चिद्धि-रोध इति । वातादीनां चरकविर्णतं स्वरूपमिष सभापतेरनुज्ञयाऽत्रैव विर्णतं ।

विषय ३:— वातादयः प्रायशो वैषम्यमापना शरीरे नानाविधां दुष्टिं जनयन्ति । यद्यपि दोषदूष्ययोर्विशिष्टिमिलनादेवरोगप्राप्तिः, दोषवद्दूष्यस्यापि रोगकारणता वाच्यैव, तथापि दूष्याः कदाचिद्दोषान्न विकुर्वन्ति, किन्तु दोषा एव दूष्यान् विकुर्वन्ति, ततो दुष्टिकर्तृत्वादेषां दोषसंज्ञा संजाता । यथा अपचन् अपि सूपकारः पचनयोग्यतया पाचकसंज्ञां लभते, तथा दुष्टिमकुर्वन्नपि दोषा दुष्टिकारणयोग्यतयाऽपि दोषसंज्ञां लभन्ते इति ।

विषय ४:—एते खलु वातादयः शरीरस्य निखिलकार्येषु कर्तृभूतास्ते विकृताः स्वकार्यं यथाभूतमकुर्वन्तो दृष्टिजनकाः संपद्यन्ते, ये खलु रसरक्ता-दयो धातवस्तेऽपि वातादिसहायेनैव स्वकार्यसंपादका भवितुमर्हन्ति । रसरक्ता-दिनां विकृतौ स्वकार्यसंपादने वा वातादीनां त्रयाणामेव कर्तृत्वमिति वाताद-यस्त्रय एव दोषसंज्ञां लभते, रसादयो दृष्यसंज्ञां, पुरीषादयश्च मलसंज्ञामिति शास्त्रीया परिभाषा ।

विषय ६: — द्रव्येषु त्रिविधमेव परिमाणं संभवति; १ अणुपरिमाण मेतत् परमाणौद्यणुकेच स्वीक्रियते, २ परममहत् परिमाणमेतदात्मादौ जायते, ३ मध्यमपरिमाणमेतत् द्यणुकवर्गेषु सर्वेषु अन्येषु स्वीक्रियते न्यायविद्धिः । तत्र मध्यमपरिमाणानां सूक्ष्मसंज्ञा शास्त्रेषु प्रसिद्धा दृश्यते, तयैव परिमाषया सूक्ष्मत्वस्थू त्यावधारणं कार्यम् । ततो वातादीनां त्रयाणामेव पांचभौतिकत्वात् प्रत्यक्षयोग्यगुणवत्वाच स्थूळत्वमेव वाच्यं । आपेक्षिकस्थूळत्वसूक्ष्मत्वकप्ननायां मनुष्यवृक्षादीनामिष स्थूळत्वं सूक्ष्मत्वं वा कप्नियतुं शक्यते, तादशी कप्नना तु शास्त्रेषु न शोभते इति वातादीनां त्रयाणामेव स्थूळत्विमिति । शास्त्रे वायोः सौक्ष्म्यमुक्तं तत्र सूक्ष्मातिसूक्ष्मस्रोतस्सु गमनसामर्थ्यमेव मन्तव्यम् । अव्यक्तोऽ-व्यक्तकर्मेति वायुविशेषणं यदुक्तं तत्रापि वायुर्न व्यज्यते चक्षुषा न दश्यते इति ज्ञातव्यमन्यथा परमाणुवत् सूक्ष्मश्चेद्वायुः कथं व्यक्तकर्मा भवितुमर्हिति, न हि परमाणुर्बणुको वा कदाचित् व्यक्तकर्मा भवितीति वायोरिप स्थूळत्वमेव केवळं रुपाभावान्नासौ चक्षुषा दश्यते इति ।

विषय १०: -- अन्ये विचाराईविषयेषु-

नवाविर्भूतानां रोगाणां दोषदूष्यादिनिर्णयपुरःसरमायुर्वेदानुकूळां संप्राप्तिं विनिश्चित्यायुर्वेदानुसारिणीं च चिकित्सामायुर्वेदे तेषां समावेशः कार्य एव । प्रागिप श्रीमता भाविभ्रेण तथैव कृतिमिति नात्र कश्चिदोषळेश इति ।

श्री. पंडित नागरलाल मोहनलाल पाठक [प्रधानाध्यापक पाटण आ. महाविद्यालय] इत्येतेषां वक्तृत्वम् ।

विषय ३: — दोष संज्ञायां हेतुः —

अस्मिन् विषये रावळपिंडीस्थ पं. मस्तराममहाभागानां वक्तुःवानंतरम् पं. पाठकमहाभागैः काथितम्—

वातादिधात्नां भिन्नभिन्नधर्मान्वयत्वेन धातुदोषमळ इति संज्ञा समा-प्रोति । शरीरधारकधर्मेण धातुसंज्ञा, शरीरदूषकत्वधर्मेण दोषसंज्ञा समागळित । स्वस्थे शरीरे समप्रमाणानां वातादीनामिप शास्त्रे दोषसंज्ञया व्यवहारो भवति, अस्य तात्पर्यं एतदेव यत् समप्रमाणेषु वातादिषु दूषकधर्मस्यान्वयो यद्यपि नैव तथापि स्वरूपयोग्यतया एतेपि दोषसंज्ञया संबोधिताश्चेनकाऽपि हानिः । पचनकर्माणे अप्रवृत्तोऽपि सूदकः पाचकसंज्ञया संज्ञितो यथा भवति तद्वत् अस्मिन् वातादौ, दोषसंज्ञा व्यवहारे युक्त एव । तात्पर्यम् - एकास्मिन्नपि पदार्थे धर्मान्तरान्वयात् संज्ञाभेदः यथा एकस्यैव पितृत्वं पुत्रत्वं पतित्वमित्यादि । अस्यान्तरे सभापतिभिः प्रश्नः कृतः श्रीमतामुदाहरणे पितृत्वपुत्रत्वा-त्मके व्यक्तेस्वरूपहानिर्नेव भवति परंतु अस्मिन् वातादीनां धातुत्वदोषत्वमळ-त्वादि संज्ञाविषये तु भिन्नसंज्ञा प्राप्तौ वातादीनां स्वरूपहानिर्भवति वा न ! पंडितनागरछाछैः कथितं अस्माकमुदाहरणं एकदेशीयं वर्तते उदाहरणकोटि-प्राविष्टव्यक्तेः पितृपुत्रसंज्ञया नैव भवति स्वरूपहानिः । परं साध्यकोटिप्रविष्ट-वातादीनां संज्ञान्तरप्राप्तिसमये भवति स्वरूपहानिः । यतो वातादीनां न्यूनाधिक-त्वेनैवाऽस्मदीयायुर्वेदे दुष्टिर्विकृतिः समाम्नाता । न हि समानस्था दोषो विकारं जनयति—' रोगस्तु दोषवेषम्यम् ' अस्य वाक्यस्य तात्पर्यमिदमेव, अतो धातुसंज्ञितेषु तथा दोषसंज्ञितेषु वातादिषु परिमाणे अवस्यमेव भवति परिवर्तनम् ।

विषय ४: -- कथं त्रय एव दोषाः ---

अस्मिन् सभापतिमहोदयैः कति प्रकारकाः प्रश्ना उत्थापिताः १ कथं त्रय एव दे।पाः, २ न्यून।धिकसंख्या कथं तेषां नैव भवति, ३ सुश्रुतस्तु रक्तमपि दोषसंज्ञया व्यवहरति १ इत्यादि—

पंडित नागरलालैः कथितम्—दोषाः कथं त्रय एव कस्मान न्यूना वा अधिका वा ? अस्योत्तरं दोषलक्षणिवमर्रीणैव प्राप्येत, 'यावत् दोषाणां किं वास्तिविकं लक्षणं इति नैव कृते विचारे तावत् कथं अवान्तरप्रश्नानां उत्तर मिलिष्यित 'अतो दोषलक्षणिवमर्रा एवावस्थकः । 'प्रकृत्यारंभकत्वे सित दुष्टि-कर्तृत्वं दोषत्वं ' वा 'खातंत्र्येण दुष्टिकर्तृत्वं दोषत्वं ' इदं दोषलक्षणम् विचते । अस्मिन्नेव दत्ता धर्मा १ प्रकृत्याऽरंभकत्वम् २ खातंत्र्येण दुष्टिकर्तृत्वं इति द्वौ धर्मां यस्मिन् तत्वे विद्यमानौ भवतः त एव दोषा इति इदं लक्षणं अव्याप्यितिव्याप्यादिदोषरिहतं वर्तते, अतएव ग्रुद्धम्, सुश्रुतोक्तं रक्तदोषे अस्य लक्षणस्य अव्याप्या न शाणितं देषः । वातिपत्तकप्रेष्वेव प्रकृत्यारंभकत्व, तथा खातंत्र्येण दुष्टिकर्तृत्वं, यस्मादिचते अतएव वातिपत्तकप्रास्त्रय एव दोषाः। नातो न्यूना संख्याऽतिरिक्ता संख्या वा दोषाणां वर्तते । यतो अस्य लक्षणस्य वातादीन् विद्यान्ये तत्वे नैव व्याप्तिः । अस्य भाषणस्य समर्थनम् पंडित दुर्गादत्तरास्त्रिभिः कृतम् ।

वैद्य गोपालशास्त्री गोडबोले आयुर्वेदाध्यापक-महाराष्ट्र आयुर्वेद विद्यालय, मुंबई: त्रिदोषचर्चापरिषदि विचाराहीं विषय: ।

अस्यां त्रिदोषचर्चापरिषदि विचाराईविषयत्वेन संकल्पितानां याणाम् अन्यतमो विषयो " वातादीनां दोषसंज्ञायां हेतुः " इति । मन्यामहे वयं प्रस्तुतोऽयं विषयो विचाराई एव खेळु, तस्मात् तद्विषये यथावत् निरु-च्यतेऽस्माभिः । वातादीनां 'धातु ' संज्ञया 'मल ' संज्ञया च निर्देशो यथा आयुर्वेदशास्त्रकारैः कृतः समर्थितश्च आयुर्वेदे, तथैव वातादीनाम् ' दोष ' संज्ञयापि निर्देशो आयुर्वेदशास्त्रकारैः आयुर्वेदे कृतः समर्थितश्च । यथा त्रैलोक्यसंभवहेतुर्ब्रह्मा मनीषिभिः पुराणादिषु अनेकाभिः सार्थसंज्ञाभि-र्व्यविह्नियते, तथैव देहसंभवहेतुत्रयं वातादिवैद्यागमे वैद्यशास्त्रकारैः अनेकैः साभिप्रायरभिधानैवर्यविहयते । कस्यापि वस्तुनः अनेकनाम्ना व्यवहारो हि तस्य गुणगौरवादेव संभवति । यस्मिन् वस्तुनि गुणगौरवं नोपछक्ष्यते तत्र नाम-प्राचुर्यप्रयोजनम् नैव आवश्यकं भवति । अयम् अनुभवसिद्धो व्यवहारः स एव आयुर्वेदाचार्यैः अस्मिन् वातादिविषये स्वीकृतोऽस्ति । स्वीकृतेन तेनात्र किम् निष्पन्नम् १ इदं निष्पन्नम् -- यथा ' धातु ' संज्ञया ' मल ' संज्ञया च बातादीनां कश्चित् गुणिवशेष एव चित्यते तथा 'दोष ' संज्ञयापि। इह तावत् अयमेव विचाराहीं विषयः अस्याः परिषदः पुरस्तात् प्राधान्येन उप-स्थितोऽस्ति यत् को गुणविशेषो वातादीनाम् 'दोष ' संज्ञया अभिव्य-उयते, अथवा कस्मै गुणप्रदर्शनहेतवे वातादीनां कृते 'दोष' संज्ञा आयुर्वेदा-चार्यैः आयुर्वेदे तत्र तत्र निर्वाचिता परिभाषात्वेन प्रयुक्ता च । यस्याः प्राणप्रतिष्ठा शास्त्रे असकृत् अनेकस्थलेषु अवले। नयते । सुविदितचरमेव आयु-र्वेदपठनपाठनसमुद्यतानाम् सद्दैद्यानां यत् अनेन वातादीनां दोषनामकरणेन दोषाभिधानेन वा ' प्रकृत्यारंभकत्वम ' रोगरूपदुष्टिकर्तृत्वं च इदं गुणद्वयमेव विशेषतः संसूच्यते आयुर्वेदतंत्रकारैः । अत्र प्रकृत्यारंभकत्वम् नाम सप्तविध-रारीरप्रकृत्यारंभकत्वम् । रागरूपदुष्टिकर्तृत्वम् नाम विविधरागरूपपीडाजनकत्वं इत्येव अर्थतः स्वांक्रियते । कस्मात् तथा शास्त्राभिप्रायात् तथा शास्त्रोपदेशाच शास्त्राभिमायो यथा (१) चक्रदत्तः—शुक्रशोणितमेळनकाळे यो दोषः उत्कटो भवति स प्रकृतिम् आरमते । [२] इन्दुः – शुक्रादिषु अधिको य एव दोषो भवति पृथक् संयुक्तो वा तेनैव पुरुषस्य प्रकृतिः संपद्यते । वाता-दिभिः प्रकृतयो भवन्ति । प्रकृतिः शरीरस्वरूपम् । [३] श्री विजयरक्षितो मधुको। शटीकाकारः - प्रकृत्यारंभकत्वे सति दुष्टिकर्तृत्वम् । शास्त्रोपदेशश्च यथा [१] चरकः-एतानि [शुक्रादीनि] तु येन येन दोषेण अधिकतमेन एकेन अनेकेन वा समनुबध्यते ततः सा सा दोषप्रकृतिः उच्यते मनुष्याणाम् गर्भादिप्रवृत्ता [२] सुश्रुतः – ग्रुक्रशोणितसंयोगे यो भवेदोष उत्कटः। प्रकृतिर्जायते तेन इत्यादि । [३] वृद्धवारभटः-दूषणस्वभावात् दोषाः । एवम् उपरिनिर्दिष्टस्य आयुर्वेदाभिष्रेतस्य आयुर्वेदोपदिष्टस्य वा संसूचनार्थमेव कैश्चित् आयुर्वेदाचार्यैः आयुर्वेददर्शने उक्तविशिष्टगुणद्वयाधा-राणाम् वातादीनाम् कृते ' दोष ' राद्वो निर्वाचितः परिभाषात्वेन प्रयुक्तश्च । किंच ' दोष ' संज्ञया यथा वातादीनाम् निम्नहानुम्नहकारित्वम् नाम निम्न-हानुग्रहसामर्थ्यसंपन्नवत्त्वम् अभिन्यज्येत न तथा 'धातु ' संज्ञया । 'धातु ' संज्ञया हि वातादीनाम् केवलम् अनुप्राहकत्वमेव अभिव्यज्यते, परंतु 'दोष ' संज्ञया वातादीनाम् निग्रहानुग्रहसामर्थ्यसंपन्नवत्वम् उपकारकापकारकराक्ति-मत्त्वं वा अभिव्यज्यते,न हि निग्रहेण विना अनुग्रहो हृदयस्पर्शी भवति । अत एव वाग्भटाचार्यः स्वतंत्रे " वायुः पित्तं कमश्चेति त्रयो दोषाः समासतः । विकृताऽविकृता देहम् घ्रंति ते वर्तयन्तिच " इत्युपदिशति । अनेनोपदेशद्वारा वाग्भटाचार्येणापि वातादीनाम् ' दोष ' संज्ञया निम्नहानुम्रहसामर्थ्यसंपन्न-बत्त्वमेव प्रदर्श्यते । वातादीनाम् कृते या ' दोष ' संज्ञा सा यथा स्वशास्त्र-संमता भवति तथैव सा परशास्त्रसंमतापि वर्तते । यतो धन्वन्तरिप्रभृतयः आयुर्वेदाचार्याः यथा शरीरप्रकृत्यारंभकपदार्थानाम् निर्देशम् दोषाभिधानेन

क्वंन्ति तथा गोतमप्रभृतयो न्यायाचार्याः पापपुण्यप्रवृत्यारंभकपदार्थानाम् निर्देशम् ' दे।ष ' संज्ञयैव कुर्वन्ति । इत्येतत् एतावत् वैद्यकवेद्यकेतरदर्शन-योर्दोषराद्वप्रयोगविषये साम्यं वर्तते । साम्यम् पुनश्च तत् उभयदर्शनयोरपि-आरंभकपदार्थानां निर्देशे कर्तव्ये तत्र 'दोष ' शद्भप्रयोगमात्रम् न सर्वथा विषयभेदात् दर्शनभेदाच । यतः आयुर्वेददर्शने 'दोष शहोदन 'वातापत्त-क्षेष्माण ' इति शरीरप्रकृत्यारंभकद्रव्याणि संगृहीतानि भवन्ति । न्यायदर्शने च पुनः ' दोष ' शद्धेन ' रागद्धेषमोहा ' इति पापपुण्यप्रवृत्यारंभकगुणा एव संगृहीता भवन्ति । तत्र ' दोष ' शद्कप्रयोगवैषयिकाणि आयुर्वेददर्शनगतानि प्रमाणवचनानि इतः प्रागेव तावत् अस्माभिरूपस्थापितानि । इदानीं ' दोष ' शद्भप्रयोगवैषायिकाणि न्यायदर्शनगतानि प्रमाणवचनानि अत्रोपस्थितानाम् सदस्यानाम् पुरस्तात् उपस्थाप्यन्ते, येन उभयदर्शनगतप्रमाणवचनपरिचयेन वातार्दानां 'दोष ' संज्ञाहेतुनिर्णये अल्पम् किचित् साहाय्यम् भवेत् इति नो विश्वासः । तस्मात् न्यायदर्शनगतप्रमाणवचनानि यथा (१) गोतमप्रणी-तन्यायसूत्रम् - " प्रवर्तनालक्षणा दोषाः " ॥ (२) वास्यायनभाष्यम् -" प्रवर्तना प्रवृत्तिहेतुत्वम् "। (३) वात्स्यायनभाष्यं "दोषाः रागद्वेषमोहाः । (४) गोतमप्रणीतन्यायसूत्रं-" प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारंभः " (५) वात्स्यायनभा-ष्यम्—" अयं आरंभः शरीरेण वाचा मनसा च पुण्यः पापश्च दशविधः "। (६) गोतमप्रणीतन्यायसूत्रं-" प्रवृत्तिदोषजनितः अर्थः फलम् ' । एतावन्ति एतानि उभयदर्शनगतानि उक्तप्रमाणानि विचित्य अस्यां समज्यायां ये उपस्थिता भवन्तो मनीषिणः सन्ति तेषां युष्माकं अन्तर्हृदये को विचारः समुद्भवेत् । मन्मत्या अयमेव विचारप्रवाह उद्भवेत् यतः " आरंभकपदार्थानां ' दोप ' शद्वप्रयोगेणैव निर्देशकरणे उभयोरिप न्यायवैद्यकदर्शनयोरैकमल्यम् वर्तते " इति । अस्तु नोऽभिष्रायस्य भवतामग्रे अन्ते निष्कर्षम् उपस्थाप्य विरम्यतेऽस्माभिः । निष्कर्षे। यथा-(१) आयुर्वेदाचार्याः केचित् वातादीनां निर्देशम् ' धातु ' संज्ञया कुर्वन्ति । केचित् ' मल ' संज्ञया कुर्वन्ति । तथा केचित् 'दोष ' संज्ञयापि कुर्वन्ति । (२) 'दोष ' संज्ञा वातादीनां

प्रकृत्यारंभकत्वं रागक्रपदुष्टिकर्तृत्वं च एवं विशिष्टगुणद्वयसंसूचिका अनेनैव हेतुना निग्रहानुग्रहसामर्थ्यप्रदर्शिनी वर्तते । (३) आयुर्वेददर्शनन्यायदर्शन्यो 'दोंष 'शद्ध आरंभकपदार्थमात्रनिर्देशकरणाय प्रयुक्तोऽस्ति । आयुर्वेददर्शने आरंभकपदार्थाः " वातिपत्तस्त्रेष्ट्रमाण '' इति न्यायदर्शने च ते 'रागद्वेषमोहाः '' इति सुप्रसिद्धाः सन्ति । एतावत्काल्पर्यतं वातादीनां 'दोष 'संज्ञाहेतुविषये शास्त्रप्रामाण्योपबृहितो योऽस्माकम् अभिप्रायो वर्तते सोऽभिप्रायोऽत्र संमीलितानां समस्तसदस्यानां पुरस्तात् अद्य उपस्थापितोऽस्ति । तत्र "यत् रोचते तत् प्राह्मम् यन्न रोचते तत् त्याज्यं '' इति भवतः समस्तदोषज्ञान् सविनयं संप्रार्थ्य विरम्यतेऽस्माभिः ।

आयुर्वेदाचार्य पांडुरंग हरी देशपांडे [पुणें] इत्येषां भाषणम् ।

पंचम प्रश्ने:--वाय्वादीनां शक्तिरूपत्वं द्रव्यक्रपत्वं वा ?। तथा च पष्ठे प्रश्ने:--वातादीनां स्थूलत्वं सूक्ष्मत्वं उभयत्वं वा इत्येतयोर्द्वयो-विषययोर्विचारः क्रियते---

आयुर्वेदेन सर्वस्य शरीरस्य महान्तः कार्यकारिणो घटका ' वातिपत्त-कक्का ' इति निश्चित्य ते अविकृता समस्थितिमन्तः शरीरं वर्तयंति ' वायुः पित्तं कक्षश्चेति त्रयो दोषाः ' । अविकृता देहं वर्तयन्ति । वा. सु. १-६ ' वातिपत्तिश्चेष्माण एव देहसंभवहेतवः । तैरेवाव्यापन्नैः शरीरमिदंधार्यते ' सु. सू. २१।३ इत्यादिषु श्लोकषु स्पष्टतया वर्णनं विद्यते । शरीरस्य उत्पत्ति-र्नाम शरीरान्तर्गतधातुघटकानामुत्पत्तिः, तथा शरीरवर्तनं अथवा धारणं नाम सर्जावस्य तस्य क्रियानिर्वतनम्, एतद्द्रयमिष वातिपत्तककाश्चयो दोषाः कुर्वन्ति । शरीरे घटकोत्पत्तिरिति कार्यं 'स्वस्मिन् तेषां प्रथमं समावेशः,''पश्चात् तस्मिन तस्मिन् धातौ तेषां घटकानां समर्पणकरणीमत्यतत्प्रकारकं यस्मा-द्विद्यते तस्मादोषा एव शारीरघटका इत्यस्मिन्वषये न कोऽपि संदेहो विद्यते । अतएव दोषा द्रव्याणि इति अकथितमिष सुज्ञातमेव । तथापि केवलं तेषां द्रव्यत्वेनैव तत्कार्यकारित्वस्य नैव भवति बोधः । यस्माद्दोषधातुमलमूले शरीरे दोषवद्धातुमला अपि द्रव्याण्येव । तथापि दोषाभावे न किमिष महत्वं धातुमलानाम् ।

कफस्य श्रेषणात्मकं नाम धातुघटकानां तत्तधातुषु समावेशनं कार्यं, तथा च धातुषु घटकानां समावेशनप्रसंगे यद्यदावश्यकं तस्य स्थितिर्यद्यदान्वश्यकं तस्य तथा च कृतकार्यकादिवाद्यिक्तस्यारं तस्य दूरीकरणात्मकं पित्तस्य कार्यं, तथा अस्य संपन्नस्य कार्यस्य व्यक्तत्वकरणेन सजातीयेषु सजातीयस्य वहनं अनावश्यकस्य दूरीकृतस्य बहिः क्षेपणमिति वातकार्यम् यदा भवति तदैव शरीरोत्पत्तिस्थिती चळतः । अतएव धातुमळापेक्षया दोषा अधिककार्यकारणात् शक्तिमन्तो इति माननं नैवायुक्तम् । एतासां क्रियाणां बोधकमेव वातादीना-मायुर्वेदे शक्तिस्वत्वन वर्णनं "तत्र हक्षो छष्टुः शितः खरः सूक्ष्मश्चळोऽनिलः" । वा. सू. ११११ " हक्षः शीतो छष्टुः सूक्ष्मश्चळोऽथिवशदः खरः । मारुतः" । च. सू. ११९८ वर्तते । चरके तु गुणस्वरूपमेव दोषस्वरूपमिति स्पष्टं कथितम्, "रौक्ष्यं छाघवं वैशवं शैत्यं गतिरम्र्तत्वं चेति वायोरात्मरूपाणि" । च. सू. २११३ आत्मरूपं खरूपमिति चक्रपाणिः खकीयटीकायां व्याख्यान्वर्यति । अतो वातिपत्तकपाः शक्तिखरूपद्वयाणि इति तु कथितुमेव सांप्रतं शास्रग्रुद्धम् ।

वस्तुतस्तु वयं यद्द्व्यं कार्यकारीति कथयामस्तद्द्व्यं तस्य कार्यकारिगुणिभ्यो भिन्नं नैव वर्तते, "यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत्"। (च.
सू. ११५०) इदमायुर्वेदीयं सूत्रं, तथा " क्रियावत् गुणवत् समवायिकारणं
द्रव्यं "। इदं नैय्यायिकाणां सूत्रम्। अनयोर्द्वयोरिप सूत्रयोर्गुणाः कर्माणि
(कार्यकर्तारो गुणाः) द्रव्येषु समवायसंबंधेन तिष्ठंतीति वर्णितम्। तंतवो यथा
पटे समवायसंबंधेन तिष्ठंति, तंतूनां विस्तारे पटविस्तारः तंतूनां संकोचेन
न्यूनत्वे पटसंकोचो वा पटहस्थत्वं। तथैव गुणानां वृद्धौ द्रव्यवृद्धिः गुणानां
संकोचे, न्यूनत्वे द्रव्यसंकोचः इस्रेव अस्यार्थो भवति। अतो गुणावमेव

द्रव्यत्वमिति वक्तुं का विप्रतिपत्तिः १ द्रव्यस्याकारसंपादका गुणा अर्थात् भिना एव विद्यन्ते, तथापि ते न कार्यकर्तारः ते साकारखरूपावबोधकाः । गुणास्त रूपसंख्यापरिमाणपरत्वापरत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषधर्माऽधर्मा इमे संति । एभिईव्यस्य कार्यकारत्वावबोधो नैव भवति । यथा छुंठी छुन्ना वका समीपस्था दूरस्था इस्यादिभिस्तस्याः पाचकत्वादिकार्यस्य नैव भवति बोधः। किंतु गंधरसादयो गुणा एव कार्यकर्तारो विद्यन्ते । तेषां गुणानामपि बोधो कार्येणैव भवति । तथा घ्राणग्राह्यो गुणो गंधः । रसनग्राह्यो गुणो रसः । आद्य-पतनसमवायिकारणत्वं गुरुत्वं । तर्कसंग्रहः । अतः कार्यकारिगुणाश्च तेषां कार्याणि तत्वतोऽभेदत्वेनैव समानितुं युक्तं । साराशस्तु कर्मस्ररूपिणो गुणा एव सत्यत्वेन द्रव्याणीति सिद्धं । द्रव्यत्वस्य कार्यकारिगुणवत्वहान्या केवछं साकरखरूपभेव शिष्यति । वातादिदोषाणां गुणा यस्मात् कार्यकारिणो वर्तन्ते, अतएव दोषाः द्रव्याणि इति ते कार्यकारीणि शक्तिस्वरूपात्मकानि द्रव्याणि इस्त्रेव मनिस निधाय संबोधितुं शास्त्रस्य सूक्ष्माभिप्राययोग्यं भवेत्। साकारस्वरूपात्मका गुणाः द्रव्यस्य दृश्यं स्थूलस्वरूपमेव। तत्तु कार्यकारि-द्रव्यस्याऽधिष्ठानमेव । धातवो दोषाणामेवाऽधिष्ठानं वर्तन्ते, दोषहीना धातुवस्तु दृश्यं निर्जीवं खरूपं विद्यते ।

कार्यकारिगुणाः स्वरूपात्मकेभ्यो गुणेभ्यः कालान्तरात् वा संस्कारेण भिन्ना जाताश्चेत्तदा तेषामिष्ठष्ठानं केवलं निर्जीवमसदृशं (बोजड) द्रव्य-मेवोविरितं भवति । तथापि भिन्ना भविष्यन्तो गुणा अपि भिन्नभवनकालेऽपि कार्यं कुर्वन्त्येव । यथा गल्लस्यपि पुष्पगंधो सुगंधं व्यापयस्थेव । तथापि गल्लन् साकं पुष्पस्थसूक्षमरजः कणान् नयस्थेव । इदमेव गुणेरभेदत्वेनैकरूपभूतं कार्यकारिद्रव्यं तथा गुणा इस्येतेषु तत्वतो भेदो नैव । तथापि तयो-ईव्यमदृश्यमनुमानगम्यं च । दोषाणामिष एवमेव विद्यते अवस्था । तेषामिष्ट-ष्ठानभूतं द्रव्यमित्सूक्षममनुमानगम्यं विद्यते । दोषा यथा पुष्पेषु गंधितिष्ठति तथेव धातुषु वर्तते । यथा " तन्नाऽस्थानि स्थितो वायुः पित्तं तु स्वेदरक्तयोः । स्रोषेषु " [वा. सू. ११।२६ अस्मिन्स्रोके बाग्भटेन रपष्टं कृतं । अग्रे

तु 'तेनैषामाश्रयाश्रयिणामिथः। यदेकस्य तदन्यस्य वर्धनक्षपणौषधं ' इत्युक्त्वा दोषधात्नां समवायसंबंधस्य आश्रयाश्रयिभावोऽपि वर्णितोऽस्ति । अस्य तात्पर्यं तु दोषाणां वृद्धिन्हासाभ्यां धात्नां वृद्धिहासौ भवतः। तथा चेमं वृद्धिन्हासं तु दोषा धातुस्थिता एव कुर्वन्ति । अयं द्रव्यगुणसंबंधवत् दोषधातुसंबंधो विद्यते । द्रव्यस्थितकार्यकारिगुणानां विषये यत्पूर्वमुक्तं तदेव धातुस्थदोषाणामपि छगति । 'अस्थिमारुतयोर्नेवं अयमपवादस्तु अस्थिनगतवातस्याऽधिष्ठानविषय एव । अस्थां वृद्धिः कफादेव भवति । धातूनां सर्वे पोषका घटकाः कफादेवोत्पद्यन्ते । दोषभ्यो धातुवृद्धः, दोषहानौ धातुहानिरिति नियमस्तु निराबाध एवोर्वरति । तथा च ' प्रायो वृद्धिर्हि तर्पणाच्छलेष्मणानुगता '। संक्षयस्तद्विपर्ययाद्वायुनाऽनुगतः। वा.सू. ११।२८ इत्यप्रिमे स्रोके स्पष्टं कृतमेव । धात्वंतर्गता दोषा धातुम्यः सूक्ष्मा इति सिध्दाति । अतो वायुपित्तकफा दोषारसूक्ष्माः शक्तिस्रक्रिपणो इति सिद्धान्तः प्रस्थापितो भवति ।

॥ श्री ॥ निरीक्षकाणां सभापतेश्च निर्णयः ।

[१] सर्वायुर्वेदकार्यमूलभूतत्वात् त्रिदोषज्ञानं सप्रयोजनं ।

[२] वातादीनां धातुत्वं दोषत्वं मळत्वं च अवस्थाविशेषणाभिन्य-ज्यते । तच्च परस्पराविरुद्धं ।

[३-४] सर्व प्राकृतकर्मसु सकर्तृत्विनयामकत्वे सति खातंत्रयेण दूषणशीळत्वं । तच्च वातादिषु त्रिष्वेव नान्यत्र । तस्मात् त्रय एव दोषाः ।

[५] शक्तेर्द्रव्याधिष्ठितत्वेन स्वतंत्रावस्थित्यभावात् वातादीनाम् न शक्तित्वं किन्तु द्रव्यत्वं एव ।

[६] पित्तकप्रयोखस्थाभेदेन स्थूलत्वं (चक्षुरिन्द्रियग्राह्यत्वम्) वायोस्तु पित्तकपापेक्षया सूक्ष्मत्वं (चक्षुरिन्द्रियाग्राह्यत्वं) अन्यक्तो न्यक्तकर्माच इत्यभिधानात् । उपाधिनिष्ठस्य तु वायोर्वहिरिन्द्रियग्राह्यत्वमपि नीलं नभ इतिवत् । [७] अदृष्टोपगृहातानि पंचमहाभूतान्येव वातादीनामुपादानानि । तदुत्पत्तिक्रमस्तु चरके शारीरस्थाने ४ अध्याये निर्दिष्टः । यथा—' तत्र पूर्व चेतनाधातुः सत्वकरणो गुणग्रहणाय प्रवर्तते । ... स गुणोपादानकाले आन्तरिक्षं पूर्वतरमन्येभ्यो गुणेभ्य उपादत्ते प्रल्यात्यये सिसृक्षुः भूतान्यक्षरभूतो आत्मा सत्वोपादानः पूर्वतरमाकाशं सृजातिः, ततः क्रमेण अञ्यक्तान् धातून् वाय्व्वादिकांश्चतुरः; तथा देहम्रहणेऽपि प्रवर्तमानः पूर्वतरमाकाशमेनवोपादत्तेः, ततः क्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातून् वाय्वादिकांश्चतुरः, सर्वमपि तु खल्वेतद् गुणोपादानमणुना कालेन भवति ।

[८] वातादीनाम् खरूपं (तन्मात्रविषयकधीविषयः) चरकोक्तं वायोः "रोक्ष्यम् लाघवं वैश्वयम् शैलं गतिः अमूर्तत्वं चेति '' वायोरात्मरू-पाणि । पित्तस्य "औण्यं तैक्ष्ण्यं लाघवं अनितिस्नहो वर्णश्च शुक्रारुणवज्यो गंधश्च विस्तो रसौ च कटुकाम्लो पित्तस्यात्मरूपाणि" । श्लेष्मणस्तु "स्नोहशैत्यशौक्रय-गौरवमाधूर्यमात्स्न्यानि श्लेष्मण आत्मरूपाणि " भवन्ति । गुणाः कर्माणि च प्रन्थोक्तान्येव ।

[९] वातादीनाम् प्रत्येकं पंचिवधत्वं वास्तविकम् ; तच्च स्थान-कार्यभेदोत्पन्नं; कार्यस्ररूपभेदस्तु तिन्निबंधन एव ।

[१०] रोगान् प्रति सदूष्यानाम् वातादीनाम् समावायिकारणत्वम् । सूक्ष्मरूपाणां तु निभित्तकारणत्वम् । रोगिवशेषान् प्रति कीटादीनान्तु निमि-त्तकारणत्वम् । दोषदूष्यसम्मूर्छनायाश्च असमवायिकारणत्वम् ।

श्री मधुसूदन विद्यावाचरपतिः जयपुरम् बालकृष्ण अमरजी पाठकः लक्ष्मीरामस्वामीः श्री राजेश्वरशास्त्री दाविडः श्री गणनाथसेन शर्मा जी. श्रीनिवासम्र्तिः सत्यनारायणशास्त्री वैद्य. श्री देवनायकाचार्य. १० प्रश्नस्योत्तरमः—विशिष्टजातीयजीवाणुजनितत्वेऽपि त्रिदोष-जत्वम् , कुष्ठवत् , यथा सर्वाणि कुष्ठाणि, सवातानि, सपित्तानि, सकसानि, सक्तमीणि, उत्सन्नतस्तु दोषग्रहणमभिभवति, इतिसुश्रुतोक्तेः ।

घनानन्दपन्त देहली।

त्रिदोषादिचर्चापरिषद् वृत्तम्।

[लेखक चक्षुर्वेसत्यम्]

श्रीमद्भिमहोपाध्यायैडीक्टरगणनाथसेनमहाभागैस्सभापतिपदाङ्गी करणादनन्तरं - खामी हरिशरणानन्दैश्विदोषाणां विषये भाषणं कृतम्, तैस्तु आयुर्वेदे वर्णितानां त्रिदोषाणां न वास्तवत्वम्, न तु सस्यत्वम्, तेषां प्रस्येकं पंचिवधलं तु सर्वथा काल्पनिकमेव, पाश्चात्यनये द्विनवितत्त्वोपिर सर्वस्या-ऽपि स्थावरजंगमात्मकस्यास्तित्वं वरीवर्ति,तेष्वेव तत्वेषु मध्ये केषांचन मूळतत्वानां मेलनादेव मानुषशारीराविभीवः, शरीररक्षणम् , शरीरयापनं, आरोग्यम् इत्यादि-सर्वं प्रादुर्भवतीति, तेषामेव केषांचन मूलतत्वानां मेलकन्यूनाधिक्याच्छरीरनाशः, अनारोग्यम् , रागप्रादुर्भावः , दुःखम् प्रादुर्भवतीति प्रत्यक्षतस्सिद्धम् तत्र का वार्ता अस्तित्वशून्यानां प्रत्यक्षादिप्रयोगाऽसिद्धानां काल्पनिकानां त्रिदोषाणामित्युक्तम्। तदनंतरम् सभापतिभिरेव कृतेषु प्रश्नेषु स्वामी हरिशरणानन्दैः श्लेष्मणो बोधक, क्रेरक, श्लेषक कफाणां, तथा पाचकरंजकापित्तयोरस्तित्वं अन्यप्रकारककफित्तानामदृश्याणां तथा पंचविधवायोश्चास्तित्वम-स्वीकृतं । सभापतिभिस्स्थूलस्क्षमस्वरूपेण अन्येषामपि कफपित्तप्रकाराणामस्तित्वं स्वीकृर्तव्यमेवेत्युक्तम् । वायोस्तु पंचिवधस्यापि सूक्ष्मरूपेणाऽस्तित्वं वर्तत एवेति प्रतिपाद्य भेडसंहिताकारैस्तथा योगशास्त्रप्रेथेषु पंचविधवायोर्यीगशास्त्रपरिभाषया कथमङ्गीकारः कृतस्तत्तु प्रत्यक्षशारीरग्रंथस्य त्रितीये भागेऽस्माभिस्स्पष्टतया प्रदर्शितमेव, सच भागः शीघ्रमेव प्रसिद्धिं यास्यतीति प्रतिपादितम् ।

पंडितमस्तरामशास्त्रीभिवीतादीनां स्थूलत्वसृक्ष्मत्वविषये, तथा द्रव्यत्व-विषये च पांडित्यपूर्णं विवेचनं कृत्वा कफापित्तदोषौ स्थूलसृक्ष्मस्ररूपौ, वायुस्तु सर्वदा सूक्ष्म एव, एते त्रयो दोषा द्रव्याण्येव न केत्रछं पदार्था वा न शक्त्य इति स्वर्कायं मतं प्रदत्तम् । अस्यां परिषदि प्रामुख्येन कितराज उपेन्द्रनाथदासा एव प्रतिवादिनो अभवन् । तेषां साह्य्यका विषये विषये भिन्ना भिन्ना वैद्यवरा आसन् । अस्यां परिषदि त्रिदोषाणां सिद्धिरिस्यासीदेको यथा मुख्यो विषयस्तथा त्रिदोषाणां द्रव्यत्वं वा पदार्थत्वं, तेषां केवछं शक्तिरूपत्वं वा द्रव्यस्त्पत्वं, तथा तेषां सूक्ष्मत्वं, स्थूछत्वं वा उभयविधत्वं, तेषां प्रत्येकशः पंचविधत्वं वास्तविकं वा काल्पनिकं, तेषां प्रत्यक्षत्वमृतानुमेयत्वमित्यादयो विषया अपि महत्वपूर्णा विचारकक्षायामवर्ताणां अवन्ततः । एतेषु विषयेषु विचारपूर्णारभवत् चर्चा ।

शक्तिपक्षस्य स्थापना आयुर्वेदाचार्य देशपांडे इत्येतैः कृता परं सा दृढम् नैवाभवत्, सा पंडितप्रवरेरने के वैद्यवरेस्तथा सभापितिभिरिप युक्तिशास्त्र- नचनैस्सप्रमाणं खंडिता आसीत् । न शेकुः पंडितवरदेशपांडेमहाभागाः स्वपक्षसमर्थने । दोषाणां केवछं सूक्ष्मत्वानुमेयत्विवियेऽप्येषैव गतिरासीत् ।

अनेकैः कविराजैः स्वकीय विवेचने शास्त्र स्पणीमनुसृत्य दोषाणां विशेषतः कफापित्तयोः स्थूलत्वं सूक्ष्मत्वं तथा प्रत्यक्षत्वमेव प्रतिपादितम् । वातस्याऽपि सूक्ष्मत्वं मूर्तत्वं प्रत्यक्षत्वं प्रतिपादितम् । [इन्द्रियजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षिति प्रत्यक्षस्य व्याख्यया] द्रव्यत्वं सर्वैरिपि त्रयाणामंगीकृतमेव ।

त्रयाणां दोषाणां प्रत्येकशः पंचिविधतं स्थानकार्यभेदिभिन्नं न वास्त-विकिमित्येकः पक्ष आसीत्, अन्यस्तु तेषां पंचिविधतं खरूपतो, वास्तविकतो भिन्नमेवेत्यासीत् पक्षः । परं वास्तविकखरूपभेदपक्षे एव बह्वी संख्या आसीत् । निर्णयोऽपि वास्तविकभेदपर एव संवृत्तः । एतेषु विषयेषु संधाय-पद्धत्या, किवराज उपेन्द्रनाथदास, पंडित मस्तरामशास्त्री, पंडित डेग्वेकरशास्त्री, पं. गंगाधरशास्त्री गुणे, पंडित वजमोहन दीक्षित, पंडित नागरदास, पंडित महादेवशास्त्रीं, पंडित गणेशदत्तशास्त्रीं सारस्त्रत, पंडित नारायणदत्तशास्त्रीं, पंडित धर्मदत्त, पंडित देशपांडे, पंडित गोडबोळे, पंडित घनानन्दपंत, पंडित गोवर्धनशर्मा छांगाणीप्रमृतिभिः स्वीयानि भाषणानि स्वमतप्रीतपादनार्थं सचारुतया कृतानि । स्वामी हरिशरणानन्द, प्रोफेसर कळकणी, डॉ. घाणेकर, कविराज प्रतापसिंह, पंडित वामनशास्त्री, पंडित जादवजी आचार्य प्रमृतिभिरन्यैश्वापि अनेकैवैंद्यप्रवरेरिस्मिन्विवादावसरे गृहीतो भागः । समापतिमहाभागैस्तु प्रतिविषये वा प्रश्नांशे कदा प्रश्नस्य स्फुटताविषये, कदा च पूर्वपक्षोत्थापनेन, कदा च उत्तरपक्षविवरणे, कदा च शंकास-माधाननिभित्तम्, कदा च शास्त्रवचनस्मारणेन, कदाचान्यशास्त्राशयकथनेन, तथा साहाय्यं प्रदत्तम् येन विवाद्यविषयः परिस्फटतामगात्, अथवा वृथावि-वादो नाशमगच्छत्, अथवा प्रश्नरहस्यं चक्षुर्विषयतां प्राप, अथ च नव-नवीनज्ञानबोधोऽभवत् । सर्वथा चर्चापरिषद् सुशीघं मूलतत्वप्रहणसुलभा, कालातिपातिनरोधिनी संवृत्ता । निरीक्षकरायुर्वेदमार्तण्डलक्ष्मीरामस्वामी महाभागस्तथा पंडितप्रवर सत्यनारायणशास्त्री महाशयैरन्यैश्वापि महाभागस्य-महत्साहाय्यं प्रदत्तम् । परिषद्पि शोभनखरूपेण परिसमाप्तिमवाप्ता, सवैर्रिप निरीक्षकेरसभापतिभिः साकं परिषद्गत्विवादचर्चासारमुध्दस निर्णयोऽन्ते श्रावितः । अन्ततो श्री. जादवजी महाभागैः पंडित घनानन्द-पंतैस्तथा पं. गोवर्धनरामी छांगाणी महारायैः खागताध्यक्षाणां, सभापतीनां निरीक्षकाणां, सभासदां, खयंसेवकानां, परिषद्धे कार्यभारवहानां अन्येषां च सर्वेषां सानन्दं सप्रश्रयं सप्रेमाभिनन्दनं कृत्वा यथाप्राप्तपुष्पहारादिभिः सर्वेपि संमानिताः । सर्वोऽपि परिषानिमित्तं संजातो द्रव्यव्ययस्तु माहाराष्ट्रान्तर्गत नासिकक्षेत्रे संजातैकोनविंशाखिलभारतीयवैद्यसंमेलनखागतसमित्या कृतस्तदर्थं सा खागतसिमतिरपि परमादरेणाभिनन्दिताऽभवत् । उभयपरिषद्-गतवृन्तान्तलेखनाय वाराणसीस्थर्गार्वाणवाग्वर्धिनीसभया केचनाभिज्ञा लेखका मन्त्रिमहाभागानुयाचिता नियुक्ता आसन् तैस्तु परिषदि संजातो विवादो यथा-शक्या छेखनरूपेण परिणामितोऽपि छघुछेखनपद्मसारनवगमात् सकलो विवादः, सर्वाणि भाषणानि, प्रश्लोपप्रश्लाः, उत्तरप्रत्युत्तराणि यथावदवतार-सुलभानि नैव शक्तानि । अतएव लेखकानां वृत्तान्तः, विवादचर्चाकर्तृणां खाँढेखितानि स्मरणपूर्वाणि भाषणानि, चक्षुवैंसत्यम् वृत्तान्तः इति सर्वे संपाद्य संकिष्ठितो वृत्तान्तोऽत्र प्रदत्तः । येन परिषद्गतवृत्तान्तस्य बहुराः पूर्णतयाऽकालनं भवेत् ।

यदा च वाराणस्यां अनयोः परिषदोरिधवेशनं सुनिश्चितमभवत् तदा स्वभारतीयप्रसिद्धदार्शनिकवैद्यवर,दक्षतरवैज्ञानिका निमंत्रिता बभूवुस्तदर्थं वाराणस्यामेव एका नामाविह्रस्संकिह्ताऽभवत् । तथापि केचन वैद्यवरा वा दक्षतरा वा दार्शनिका वा वैज्ञानिका वा नामानुपल्र्व्या, विस्मरणे न वा अनिमंत्रिताऽपि भवेयुः । न काऽपि अत्र दौर्बुद्धिको हेतुरासीत् तथापि दक्षिणदेशस्थैः कैरपि विपश्चिद्धिरन्यथा बुद्धि घृत्वा अस्याः परिषदो निषधप्रदर्शकं पत्रम् तन्त्रीद्वारा संदेशश्च प्रेषितोऽभवत् । तथा मोहमयीवास्त्रवर्थेवैद्यतीर्थ पदधारिभिरप्पाशास्त्री साठे प्रभृतिभिः करांगुल्सिंख्येरेव भिष्रिक्रियेष अस्याः परिषदो निषधप्रदर्शनादिको व्यापारः सुदीर्घं कृत आसीत् । तस्तर्वं सभायां मन्त्रिभिर्यथावानिस्त्रिपितम् । अभिनन्दिताश्च सर्वेपि महाभागाः सभापतिभिः । विस्मरणादिनमंत्रिताश्चेद् क्षमार्थं याचिताऽपि । अन्ततो राष्ट्रीयगीतगानानन्तरं श्रीधन्वतः यायुर्वेदजयजयकारध्वनिभिरसभाग्रहं निनादितं, समाप्तिमगमदिधवेशनम् ।

वाराणसीमीर्वाणवाग्वर्धिनीसभाया मतपत्रिका

इतिवृत्त-पारिशिष्ट (अ)

यदिवद्याविलासेन भूतभौतिकसृष्टयः । तं नौमि परमात्मानं सिचदानंदिवप्रहम् ॥ १ ॥ साधारणा यत्र मुहुर्भ्रमंति । भूयो विवादादनवाप्य तत्वम् ॥ निरूप्यते पूर्वबुधोक्तनीत्या । सभूतवर्गोऽत्र सुविस्तरेण ॥ २ ॥

पंचमहाभूतविचारप्रयोजनम् ।

ननु व्यर्थमेव पंचमहाभूतिनरूपणं तःसाध्यस्य कस्यापि प्रयोजनस्य अनुपटब्धेः । न तावत्कश्चित् कामः तत्प्रयोजनं संभवति । "श्रोत्रत्वक्चश्च- र्जिव्हात्राणानां आत्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्त्रेषु स्त्रेषु विषयेषु आनुक्त्येन प्रवृत्तिर्हि काम " इति कामिवदो वंदति ।

तत्र पुष्पादिरूपपृथिव्याः, मनोज्ञपानादेः जलस्य, रुचिरदीपादिप्रकाशस्य तेजसः, दक्षिणानिलादेः, सुरुचिरात्रकाशरूपस्य आकाशस्योपयोगित्वेपि न भूतविभाजकतावच्छेदकपृथिर्वात्वादिधर्मपुरस्कारेण ज्ञानमुपयुज्यते ।
पुष्पादेः पुष्पत्वादिनैव ज्ञायमानस्योपयोगदर्शनात् । पुष्पाद्युपादानकप्रवृत्तिं
प्रति पुष्पादिसुखरूपेष्टसाधनतावच्छेदकपुष्पत्वादिप्रकारकप्रस्थक्षस्योपयोगसंभवात् । यद्यपि परमाणुक्रमेण पुष्पादिसृष्टिं प्रति पृथिवीत्वादिना पुष्पादिसजातीयपरमाणूपादानस्यावश्यकतया तादशपरमाणूपादानकप्रवृत्तौ पृथिवीत्वादिप्रकारकपरमाणुप्रस्यक्षस्योपादानप्रस्यक्षविधयाकारणत्वं, तथापि तादश्यप्रस्यक्षस्य भगवत एव संभवात्, तं प्रति एतिकरूपणस्य नोपयोगः । योगिनामपि
तादशप्रस्यक्षजननयोग्यत्वेपि वैद्यके नैतिकरूपणस्योपयोगः वैद्यक्रस्रस्रस्र

तेनाजननात् । तथा च भूतविभाजकतावच्छेदकपृथिवीत्वादिप्रकारकज्ञान-जननार्थं एतन्निरूपणं व्यर्थमेव अतएव—

मौतिकाश्वरातं पूर्णं सहस्रं त्वाभिमानिका ।

इत्यादि युक्तरीं स्त्रापासनादौ दिव्यशतवत्सरपरिमितभूतलयरूप-फलोपयोगिनि उपयुक्तत्वमेतिन्नरूपणस्य अनुपयुक्तत्वं तदुपासनाफलस्य वैद्यक-फलाद्भिन्नत्वात् । योगिनामेव तादशोपासनाधिकारितया कलौ च तेषामसंभवेन तषामनुपदेश्यत्वात् । अतप्व मोक्षस्यापि न प्रकृतफलत्वसंभवः ।

नापि अर्थपुरुषार्थस्य कस्यचिनिर्वृत्तिः तत्प्रयोजनं, कामन्यायेनैव निराकृतत्वात् । तथा च एतिन्ररूपणं भवतः भवन्म्लभूतानां वैद्यकप्रंथानां च सर्वथा निष्प्रयोजनत्वात्, काकदंतपरीक्षावद्धेयमेव श्रमकरत्वादिति चेदत्र ब्रूमः —

प्रथमप्रश्लोत्तरम्।

यत्ताबदुच्यते निष्प्रयोजनं भूतनिरूपणिमिति तन, सर्वेषामेव पुरुषार्थानां तत्प्रयोजनत्वसंभवात् । तथा हि—

मोक्षस्तावत्प्रधानं प्रयोजनं तस्य संभवति, 'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपचं निरूप्यते ' इत्युक्तादिशा निष्प्रपंचन्नसाक्षात्कारस्य तद्गतश्रुस्यन्दित-प्रपंचाध्यारोपसापेक्षत्वेन पंचमहाभूतज्ञानस्यावश्यकत्वात् । न चायोगिनां तदनुपयोगः शंक्यः, ब्रह्माविषयकपरोक्षज्ञाने दृढे सति प्रतिबंधापगमे अयोगिना-मपि मोक्षस्य क्रमिकापरोक्षज्ञानजन्यस्य शास्त्रकृद्धिरंगीकृतत्वात् । एवं सति

संवत्सरं पयोवृतिर्गवांमध्ये वसेत्सदा । सावित्रीं मनसा ध्यायन् ब्रह्मचारी यतेंद्रियः ॥ संवत्सरांते पौषीं वा माघीं वा फाल्गुनीं तिथि । त्र्यहोपवासी शुद्धश्च प्रविश्यामळकीवनम् ॥ बृहत्फळाळ्यमारुह्य दुमं शाखागतं फळं । गृहीत्वा पाणिना तिष्ठेजपन्त्रह्मामृतागमात् ।।
तदा द्यवश्यममृतं वसत्यामलके क्षणं ।
शर्करामधुकल्पानि स्नेहवंति मृदूनि च ॥
भवंत्यमृतसंयोगात्तानि यावंति मक्षयेत्।
जीवेद्वर्षसहस्राणि तावध्यागतयोवनः ॥
सौहित्यमेषां गत्वा तु भवत्यमरसन्निभः ।
स्वयं चास्योपतिष्ठते श्रीवेदवाक्यरूपिणी ॥

इत्यादिना चरकाचार्यैः ब्रह्मजपस्य नित्ययौवनादिसाधनत्वप्रतिपादनेन देहिकफळत्वस्यापि संभवात् । किंच—

सस्ववादिनमकोधं निवृत्तं मद्यमेथुनात् । अहिंसकमनायासं प्रशांतं प्रियवादिनं ॥ याज्यशोचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनं । देवगोब्राम्हणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतं ॥ आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करुण वेदिनम् । समजागरणस्वप्तं नित्यं क्षीरघृताशिनं ॥ देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहंकृतं । शस्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेंद्रियं ॥ उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनां । धर्मशास्त्रपरं विद्यान्तरं नित्यरसायनम् ॥

इत्यादिना चरकाचार्ये आचाररसायने अध्यात्मप्रवणेदियतायाः -

योगाह्यायुःप्रकर्षार्था जरारोगनिवर्हणाः । मनःशरीरशुद्धानां सिध्यंति प्रयतात्मनाम् ॥ तदेतन्नभवेद्वाच्यं सर्वमेवाहतात्मसु ।

इस्यादिना चरकाचार्यादिभिः प्रयतात्मतायाश्च रसायनमात्र एवात्यंत-

मावश्यकत्वोक्तेः । मनःशरीरग्रुद्धानामित्यंनेनैव प्रयतात्मतालामे सित प्रयता-त्मनामिति पुनस्तदुपादानेन मानसगुणेषु प्रयतात्मताया अभ्यर्हिततमत्वबो-धनात् । वाग्मटाचार्याअपि—

> सत्यवादिनमकोधमध्यात्मप्रवणेदियम् । शांतं सद्वृत्तिनरतं विद्यानित्यरसायनम् ॥ गुणैरेभिः समुदितः सेवते ये। रसायनं । स निवृतात्मा दीर्घायुः परत्रेह च मोदते ॥

इत्यादिना अध्यात्मप्रवणतायाः सर्वरसायनेषु उपयोगित्वं प्रतिपादयंति । यदीमानि पूर्वीक्तानि रसायनानि कल्यिगेऽसंभविसिद्धिकानि अभिवश्यन् तदा परमप्रामाणिको वाग्भटाचार्यः ।

> उक्तानि शक्यानि फलान्वितानि । युगानुरूपाणि रसायनानि ।। महानुशंसान्यपि चापराणि । प्राप्सादिकष्टानि न कीर्तितानि ॥

इत्यादिना उक्तरसायनानां शक्यत्वं सफलत्वं च नाकथिय्यत्। तस्मात् उक्तरसायनानां यथावदनुष्ठानेन कलाविप सिद्धिस्यादेव।

अपि च अणिमाद्यष्टैश्चर्यसिद्धिः कायसंपत्, पृथिव्यादिभूतधर्मैः काठिन्यादिभिरनभिघातश्चेति पंचमहाभूतिवचार--प्रयोजनत्वेनावस्यमंगीकरणी-यानि तथा हि—

आयुर्वेदप्रवर्तकः परमप्रामाणिकत्वेन सर्वसंमतो भगवान् पतंजिलः योगदर्शने उक्ताणिमादिप्रयोजनकत्वं प्रतिपादयितस्म । तथाहि तृतीयपादां-तर्गतानि ४४-४७ सूत्राणि—

" स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमात् भूतजयः ॥ ४५॥ ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ४६॥ रूपलावण्यवज्रसंहननत्वानि कायसंपत् ॥ ४७॥

व्याख्यातानि चेमानि सूत्राणि, तथा हि-

"स्थूलं च खरूपं च स्क्षं च अन्वयश्चार्थवन्तं च स्थूलखरूप-सूक्ष्मान्वयार्थवत्वानि तेषु संयमात् साक्षात्कारपर्यंतात् तत्तद्रूपवतां पंचमहा-भूतानां जयः वशवर्तिता भवतीत्वर्थः।तत्र स्थूलं परिदृश्यमानं अवयवसंस्थान-स्वरूपं काठिन्यसांसिद्धिकद्ववत्वोष्णत्वतिर्यग्गमनावकाशादानानि, सूक्ष्मं शांत-घोरम्दृवृत्तिशून्यत्वात् शद्धस्पर्शरूपरसगंधमात्रारूपं कारणं । अन्वयः सत्वा-दिगुणत्रयं। अर्थवत्वं भोगापवर्गार्थता। एतेषु क्रमेण प्रतिरूपं संयमात् भूतानि भूतप्रकृतयश्च योगिसंकल्पानुसारिणो भवंति वत्सानुसारिण्यो गाव इवेति यावत् " इत्यादि।

तदेवं रीत्या भूतजयस्य उत्कृष्टप्रयोजनत्वेन तिसम्बर्थं पंचमहाभूत-विचारः कर्तव्य एव । एवमेव—

" तत्र गुदाद् झंगुलोपरिमेंद्झंगुलादधः कंदस्थानं, तदुपरि तप्तचा-मीकरप्रमं त्रिकोणं कामरूपं, तत् त्रिकोणस्य वामकोणे इडा, दक्षिणे पिंगला, मध्ये सुषुम्ना, मध्ये चित्रिणी वर्णमयी, तद्दर्णिविन्यासात् कमलाकारचक-निष्पत्तिः। तथा हि—

कामरूपोपिर म्लाधारनामकं चक्रं तच्च सुवर्णामं लंबीजान्वितेन सावित्रीसहितब्रह्मासरस्वतीसहितगणेशाद्यधिष्ठितेन षट्पंचाशिच्छिवशक्तिमिथुनवता चतुष्कोणेन पृथिवीस्ररूपेण कर्णिकाकारेण मध्ये भूषितं, व—श—पसामेकं चतुर्दलं तन्मध्ये भारवराकारं अधोमुखं चित्तवरूपिण्या सार्धित्रवल्या कोणिस्थितया विद्युत्प्रभया कुंडिलन्या स्वमुखेन तन्मुखेन मुद्रियत्वा वेष्टितं स्वयंभूनामकं शिवल्गं, एतच्च भावितं सकल्योगिसिद्धं, पृथिवीजयादिकं, ब्रह्मगणेशादिप्रतीतिं च वितरित । यच्च हृदयनाभिप्रदेशादिकं कुंडिलन्याः अधि-ष्ठानमुक्तं, तन्मूलाधारादुत्थितायास्तस्याः हृदयादौ प्रकटीभावाभिप्रायेण, अतो न कोपि विरोधः इत्यास्तां विस्तरः । तदुपरि लिंगमूले स्वाधिष्टाननामकं चक्रं,

तच्च सन्माणिक्यसमप्रमं वंबीजान्वितेन टक्ष्मीसहितविष्णविधिष्ठेतेन द्विपंचाश-न्मिथुनवता अर्धचंद्राकारेण शुभ्रेण जलस्वरूपेण कर्णिकोत्तमेन मध्ये भूषितं ब-भ-म-य-र-लामकं षट्दलं भावुकानां विष्णुप्रीतिजलजयादिकारकम् । अथ नाभौ मणिपूरनामकं चकं तच्च विद्युत्प्रमं वंबीजान्वितेन पार्वतीसहितशंकरा-धिष्ठितेन द्विसमधिकषष्ठिसंख्याकमिथुनवता त्रिकोणेन उद्यदादित्यप्रभेण तेजः-स्वरूपेण कर्णिकोत्तमेन मध्ये भूषितं डादिफांतवर्णात्मकदशदछं स्वभावुकानां शंकरप्रीतितेजोजयादिकारकं । अथ हृदये अनाहतनामकं चक्रं एतदेव षोडशारषोडशास्त्रादिनापि आगमादौ प्रसिद्धं, तच धूमवर्णं पंबीजान्वितेन प्रकृतिसहितेश्वराधिष्ठितेन चतुःपंचाशन्मिथुनवता षट्कोणेन बाणनामकशिव-लिंगलक्षितेन वायुरवरूपेण कार्णिकोत्तमेन मध्ये भूषितं कादिठांतवणीत्मक-द्वादशद्छं, एतच भावितं प्रकृतीश्वरप्रतीतिवायुजयादिकारकं । कंठे विश्रद्धनामकं चक्रं तच श्रेतं अंबीजान्वितेन अर्धनारीश्वरखरूपसदाशिवाद्यधि-ष्ठितेन द्विसप्ततिमिथुनवता वृत्ताकारेण सुधांशुप्रभेण कर्णिकोत्तमेन मध्ये भूषितं स्वरीयवर्णात्मकषोडशदलं भावितं भावुकानां सदाशिवप्रीतिनभोजयादिकारकं। भूमध्ये आज्ञानामकं चक्रं तच मुक्ताकारं हंबीजान्वितेन अविद्यासहितजीवाधि-ष्ठितेन शुंगाटकाकारेण चतुःषष्टिकीपुरुषवता मनोरूपेण कर्णिकोत्तमेन मध्ये भूषितं हकारळकारात्मकवर्णद्वयदलं भैरवानंदनाम्ना इतरेण शिवलिंगेनोपलक्षितं भावकानामात्मग्रीतिकरं मनोजयादिकारक। पादादिजानुपर्यंतं पूर्वोक्तलंबीजात्मक-विरोषणविशिष्टपृथिवीस्थानं । ९वमाजान्वोः पायुपर्यंतं अपां स्थानं । आपायोः हृदयपर्यंतं तेजःस्थानं । आहृनमध्याद्भूपर्यंतं वायुस्थानं । तदूर्ध्वमाकारास्थान-मिति । याज्ञवल्क्यगीतादावुक्तं । सर्वत्र सर्वसत्ताङ्गीकारात् भावनातोविशेषोपपत्तेः अविरुद्धं ज्ञातन्यम्, इत्यादिना । एवम्---

> नाभेरघोगुदस्योर्ध्वं धारयेत्पंचनाडिकाः । वायुं ततो भवेत्पृथ्वीधारणाचेद्भयापहा ॥ पृथिवीसंभवो मृत्युर्न भवेत्तस्य योगिनः । नाभिस्थाने ततो वायुं धारयेत्पंचनाडिकाः ॥

ततो जलाद्भयं नास्ति जले मृत्युर्न योगिनः ।
नाम्यूर्ध्वमंडले वायुं घटिकापंचधारयेत् ॥
आग्नयी धारणा चेयं मृत्युस्तस्य न विन्हिना ।
न दह्यते शरीरं च प्रविष्टे चाग्निसंस्तरे ॥
नाभिश्रूष्ट्राणमध्ये तु प्रादेशत्रयसंमिते ।
धारयत्पंचघटिका वायुं सैषा च वायवी ॥
धारणा नैव वायोस्तु भयं भवति योगिनः ।
श्रूमध्यादुपरिष्ठातु धारयेत्पंचनाडिकाः ॥
वायुं योगी प्रयत्नेन सेयमाकाशधारणा ।
आकाशधारणां कुर्वन् मृत्युं जयति शाश्रतं ॥

इत्यादियोगशास्त्ररित्या पूर्वोक्तधारणादीनां भूतजयफळकत्वप्रतिपादनेन तदर्थं पंचमहाभूतिनरूपणमावश्यकमेव । नह्येषामप्रामाण्यं शांकितुमपि शक्यं । परमप्रामाणिकत्वेन सर्ववादिसंप्रतिपन्नचरकादिकर्तृकयोगशास्त्राप्रामाण्यशंकनस्य सर्वेषामपि आधुनिकप्राचीनप्रथप्रामाण्यापादकत्वात् । तदेवं योगशास्त्रानुसा-रेणापि पंचमहाभूतविचारः सप्रयोजन एव ।

रूपलावण्येत्यादिना सूत्रेण च शरीरचिकित्सोपयोगित्वं भूतज्ञानस्य कर्मित्र । स्पष्टमाह च शारीरस्थानारंभे चरकचतुराननः चऋदत्ताचार्यः ।

" निदानस्थाने ज्ञातहेत्वादिना, तथा विमाने प्रतीतरसदोषमानेन, कर्तव्यचिकित्साधिकरणं शरीरं ज्ञातव्यं भवति । यतोऽप्रतिपन्नेऽशेषविशेषतः शरीरे न शरीरविज्ञानाधीना चिकित्सा साध्वी भवति । अतः शारीरं कारणो-त्पत्तिस्थितिवृध्वादिविशेषः प्रतिपादियतुं शारीरस्थानमुच्यते अत्रापि चात्यंत-दुःखोपरममोक्षकारणचिकित्सोपयुक्तपुरुषभेदादिप्रतिपादकतया प्रधानत्वेन कितिधा पुरुषीयोऽध्यायो निरूप्यते " इति ।

सुश्रुतर्रोकायां डल्हणाचार्योऽप्याह शारीरस्थानारंमे —

" हेतुलक्षणप्रतिपादकाानिदानस्थानात् अधिगतन्याधिलक्ष**णस्य**

वैद्यस्य चिकित्साया अवसरः । चिकित्सा चाधिष्ठानविशेषज्ञानमंतरेण न संभवति, इत्यधिष्ठानज्ञापनाय शारीरस्थानमारभ्यते । शारीरस्थानेऽपि प्रति-पाचे आदौ सर्वशरीरकारणानां भूतानामेव चिंताकर्तुं युज्यत इत्यत आह अथात " इत्यदि ।

इत्यनेन हि ग्रंथद्वयेन पंचमहाभूतविचारस्य प्रयोजनं चिकित्सासाधु-त्वमिति स्पष्टमुच्यते ।

अदृष्टवादिनस्तु वातिपत्तकपत्वादिना व्याधिहेतुज्ञानेऽपि तत्प्रत्यनीक-चिकित्सायाः कर्तुं शक्यत्वेऽपि च भूतिवभाजकधर्मपुरस्कारेण व्याधिशरीरादि हेतुज्ञानस्य चिकित्सायां अदृष्टद्वारा उपयोगोऽपि, पाश्चात्याभिमत एल्टिमेटसंज्ञक द्विनवितत्वविभाजकतावच्छेदकधर्मपुरस्कारेण व्याधिशरीरादिहेतुज्ञाने तत्प्रत्य-नीकचिकित्सायां कथंचित् कर्तुं शक्यत्वेऽपि च व्याधिशरीरीषधादीनां पंचमहाभूतान्यतमजन्यत्वज्ञानपुरस्कारेण औषधप्रयोगस्य आयूरुपादृष्टं प्रति-अदृष्टद्वारा कारणत्वस्वीकारात् । एतच्च आयुर्वेदग्रंथे पंचमहाभूतिनरुपणादेवा-वगम्यते आरोगस्य दृष्टत्वेऽपि आयुषो अदृष्टक्षपतायाः आधुनिकैः पाश्चात्यैरपि अवश्यं स्वीकरणीयत्वात् । इति प्राहुः

वस्तुतस्तु दृष्टविधयाऽप्युपयोगो दृश्यते । यथानिघंटौ पीतं स्फुरदृ लयशकीरलाश्मरम्यं । पीतं यदुत्तममृगं चतुरस्नभूतं ॥ प्रायश्च पीतकुसुमान्वितवीरुदादि । तत्पार्थिवं कठिनमुखदशेषतस्तु ॥ अर्धचंद्राकृति श्वेतं कमलान्तदृषं चितं । नदीनद् जलाकीणं आप्यं तत्क्षेत्रमुच्यते ॥ खदीरादिदुमाकीणं भूरिचित्रकवेणुकं । त्रिकोणं रक्तपाषाणं क्षेत्रं तैजसमुत्तमम् ॥ धूमस्थलं धूम्रदृषत्परीतं । षट्कोणकं तूर्णमृगावकीणं ॥ शाकैस्तृणैरांचितरूक्षवृक्षकं । प्रकारयेत्तत् खलु वायवीयम् ॥ नानावणं वर्तुलं तत्प्रशस्तं । प्रायः शुभ्रं पर्वताकीणमुचैः ॥ यचस्थानं पावनं देवतानां । प्राह क्षेत्रं क्षणस्वांतिरक्षम् ॥ यचस्थानं पावनं देवतानां । प्राह क्षेत्रं क्षणस्वांतिरक्षम् ॥

द्रव्यं व्याधिहरं बळातिशयकृत् खादुस्थिरं पार्थिवं। स्यादाप्यं कटुकं कषायमखिळं शीतं च पित्तापहम् ॥ यात्तिकं ळवणं च दीप्यमरूचि चोष्णं च तत्तै जसं। वायव्यं तु हिमोष्णमम्ळमबळं स्यान्नाभसं नीरसम्॥ इति।

किंच पंचमहाभूतिवचारप्रयोजनं किम् ? इति यत् इदानीं बहुकाल-निद्रात उत्थाय महत्युपेक्षागर्भे निपतितो विषयः प्रष्टुमुपक्रम्यते, तत्र तावत्प्रश्न-घटकीभूतप्रयोजनपदार्थिनिवचन एव शास्त्रकृतां बहुविधो विवादः पुरत उपस्थाप्य विचारियतृचेतांसि आदितः स्वनिधीरणायैव प्रवर्तयति । अक्षपादमेते हि " यमर्थमधिकृत्य प्रवर्तते तत्प्रयोजनमिति स्त्रोक्तरीत्त्या प्रवृत्त्युदेष्यत्वं तस्त्रक्षणं पर्यवस्यति । यत्साधयति तत्फलमिति चरकाचार्यः । " यागनिष्पाद्यो धर्मः कार्यतया कर्म तज्जन्यस्तु स्वर्गीदिः फलमिति " अमुमेवार्थं पुष्णाति तद्दीकायां च चक्रदत्तः । एवं विधं च प्रयोजनं भोजनस्य तृप्तिः । यागादेश्व स्वर्गीदिकं प्रसिद्धमेव ।

मीमांसकमते तु तदुदेश्यककृतिन्याप्यजन्याकत्वं तत्, यथा यागे ब्रीह्यवघातस्य तुषविमोकः प्रयोजनं अत्तर्व सुवर्णनिर्मितकलायद्रन्यकयागे ब्रीह्स्थानापन्नस्य कलायस्य तुषविमोकोदेश्यककृतेरसंभवात् न्यापकाभावात् न्याप्यस्यावघातकर्तन्यस्याप्यभाव इति तेषां सिद्धांतः अत्तर्व—

> विशयोविषयश्चैव पूर्वपक्षस्तयोत्तरम् । प्रयोजनं च पंचांगं शास्नेऽधिकरणं स्मृतम् ॥

इति विचारसामान्य एव प्रयोजनस्यांगःवांगीकरणात् पंचमहाभूतिव-चारप्रयोजनविचारावसरे मीमांसोक्तप्रयोजनस्वरूपमेव कटाक्षयितुं योग्यमिल्यपि संभाव्यते, इदं पूर्वीक्तं प्रयोजनस्वरूपद्वयमेव छोके प्रसिद्धं ।

साहित्यशास्त्रेऽपरमपि तृतीयं प्रयोजनखरूपमेवमुपवर्णितं दश्यते —

प्रयुज्यमानोऽभीष्टार्थः कारकादिसमन्वितः । नीयते यत्प्रबोधाय तत्प्रयोजनमुच्यते ॥ इति ।

प्रयुज्यमान इति शानचा प्रयोगस्य वर्तमानकाळीनत्वावगमात् कारका-दीत्यादिपदेन क्रियाया आप्युपसंप्रहात् वर्तमानप्रयोगविषयीभूतः क्रियाकारका-परंजितः प्रकृतीर्थः यत्प्रबोधानुकूळ्व्यंजनाख्यव्यापारवान् तदेव प्रयोजनमिति वाक्यार्थः पर्यवस्यति । यथा गंगायां घोष इत्यत्र गंगापदस्य तीरळक्षणारूपा व्यापृतिः समस्तकारकोपरंजिता सती शैत्यपावनत्वादिव्यंजनाय कल्पते तत् शैत्यपावनत्वादि ताहशळक्षणायाः प्रयोजनम् । इतश्चतुर्थं तु प्रयोजन-खरूपं महता प्रयासेनापि नोपगच्छामः । कश्चिन्महात्मा प्रदर्शयिष्यति चेत् अधमणी भविष्यामः ।

इदानीमिदमप्याछोच्यते, यस्यैव पंचमहाभूतिवषयकस्य विचारस्य प्रयोजनमन्वेण्टुं वयं प्रवृत्ताः स्मः स विचारपदार्थः को वा १ भिवतु महिति । तत्र
तत्विनिर्णयो विचार इति व्यवहारतत्वादिषु निरूपितं, संदिग्धे वस्तुनि प्रमाणेन
तत्वपरीक्षेति केचित् , तर्कापरपर्यायो विमर्श एव विचार इत्यमरः । प्रकृते च
आयुर्वेदशास्त्रे पंचमहाभूतवर्णनं केवलमस्ति, पंचमहाभूतास्तित्वप्रतिपादको
विचारापरपर्यायस्तर्करतु कचिन्न साक्षादुक्तः तर्हि कस्य प्रयोजनं निरूपणीयमिति व्यामोह एव भवति । अतः "खाध्यायोऽध्येतव्य" इत्यत्राध्ययनविधौ
अध्ययनस्यार्थावबोधपर्यंततत्वेऽवगते अर्थात् पत्वदर्थावबोधसंपत्त्यर्थं प्रमेयगतप्रमाणगतासंभावनानिर्वर्तकः तर्करूपो विचारोऽपि इति कर्तव्यतात्वेनाक्षिप्यत
एवति यथा वेदवादिभिः स्वीक्रियते, तथेव आयुर्वेदागमे आयुर्वेदाध्ययनविधावपि
अध्ययनस्यार्थावबोधपर्यंतताया वक्तव्यतया पञ्चमहाभूतप्रतिपादकायुर्वेदग्रंथभागस्य तदर्थावबोधपर्यंतताकरणाय प्रमेयमात्रासंभावनानिर्वर्तकः तर्कापरपर्यायो
विचार इतिकर्तव्यतात्वेन आयुर्वेदप्रणेतुणां महर्षिणामप्यभिमत इति वक्तव्यम्।
पंचमहाभूतरूपतत्वे च तात्पर्यमायुर्वेदस्य तदवबोधफलवत्तायामेव संभवति,
तत्वमसीस्यादिवाक्यार्थाखंडार्थबोधे मोक्षरूपफलवत्तायामिव । अत्वव ब्रह्मविचार-

स्येव पंचमहाभूतिवचारस्यापि अंगीभूतबोधफलवत्तयैव सफलत्वसंभवः इति प्राप्ताप्राप्तिविवेकेन विचारोपकार्यपंचमहाभूतावबोधस्य कि प्रयोजनं निर्दिष्टान्यतमप्रयोजनरूपमध्ये संभवतिति प्रश्नार्थनिष्कर्षः संभवति।

तत्र ताबद्धिमृश्यमाने प्रयोजनस्वरूपे वक्ष्यमाणान्यपि प्रयोजनानि विम-र्शापथमवतरंति । तथाहि—

भारतीयसंप्रदायेषु वेदांतसंप्रदायस्तावत्सर्वप्रधानतमो वेदप्रमाणकश्चेति साक्षात्परंपरया सर्वेषामेव भारतीयास्तिकदर्शनानां तत्प्रदर्शितपथानुयायित्वं निष्प्रपंचिमिति, आयुर्वेदशास्त्रकाराणामि तन्मतं सिद्धांतत्वेन संमतिमिति निश्चयेन वक्तुं शक्यते। व्यवहारदशायां च सांख्ययोगदर्शनादिसिद्धांतः आयुर्वेदिवदामनुमत इत्यत्रापि अविवाद एव वरीवर्ति । एवं सित कटकमुकुट-कुंडलादयः एकस्य सुवर्णस्यैव विकारा इत्युच्यमाने सांख्ययोगदृष्ट्या प्रकृति-भूतस्य सुवर्णस्य विकृतिभूतानि कटकमुकुटाद्यांनि इति । वेदांतदृष्ट्या तु प्रकृत्यपरपर्यायसुवर्णस्त्रपापनम्लाज्ञानपरिणामभूतानि ताहशसुवर्णाविच्छन्नस-चिदानंदाद्वयचैतन्यविवर्तभूतानि च तानीति वा आयुर्वेदसिद्धांतनिष्कर्षः संभवति ।

एतादृशनिष्कर्षस्य प्रयोजनं छोके एवमनुभूयते कटकमुकुटादीनां सुवर्णादिविकारत्वमजानतां बाछानां केनिचिनिमित्तवशेन कटकमुकुटादिविना-शदृशायां अभीष्टिवियोगप्रभवा दुरंतः शोकावेगः । " अये किमर्थं शोचिति ? सुवर्णस्यैव विकृतिभूता एते कटकमुकुटादयः प्रस्तराद्याघातादिना विनष्टाः कामं भवंतु तत्प्रकृतिभूतं सुवर्णं तु हस्त एव वर्तते कृते समुचिते व्यापारे पुनः कटकमुटादिघटना इतोप्यतिरुचिरतरा कर्तुं शक्यत, इति समाश्वासनद्वारा कटकादेः सुवर्णादिविकारता दृष्टिः सांख्यसंमता समुपकरोति । वेदांतसंमतया तु प्रिकृतयया विनष्टस्य मुकुटादेः ब्रह्मविवर्तत्वमात्रमुद्धावयता मिथ्यैव तद्वस्तु नष्टं यस्वमनुशोचित अध्यासबछेन च पुनरुत्पादियतुं शक्यत, इति समाश्वासन-



प्रदानेन शोकाकुळजनः आश्वास्यते । स्वकीयप्रिक्तियानुसारेण पुनर्छन्धकटकमुकुटादिरिप कर्तुं शक्यत इति कटकमुकुटादिषु परस्परं विभज्यमानेषु अनुवर्तमानस्य सुवर्णसामान्यस्य उपादानत्वदृष्टिः सांख्यसंमता वेदांतसंमता च
यथा सफ्ला, तथैव परस्परं विभज्यमानानां वातिपत्तकफादीनां रसादिसप्तधात्नां शरीरावयवस्तायुपेशीकंडरादीनां ज्वरादिस्वरीगाणां तच्चिकित्साप्रिकियाणां तदुपयुक्तीषधद्रव्याणां च सर्वेषां भौतिकानां अनुवर्तमाने हि पंचीकृतपंचमहाभूतैः सह प्रकृतिविकारभावदृष्टिरिप हि सांख्यसंमता वेदांतसंमता वा
नूनं समुपकरोत्थेव । तथा हि—

देवदुर्विपाकात् खुँड्रांकेचतुष्पादाध्यायोक्तरीत्या चिकित्सोपयोगिपाद-चतुष्टयमध्ये भिषक्, उपस्थाता, रोगी, चेति पादत्रयमेव यत्र तिष्ठति चिकित्सोपयोगिद्रव्यात्मकश्चतुर्थः पादस्तु यत्र न लभ्यते, तत्र हि भग्नैकपदा-गौरिव त्रिभिः पादैः चिकित्सा कथं नाम प्रवर्तताम् इत्याशंकायां चिकित्सोपयोगि-द्रव्यालाभेन शोकाकुलीभूते परिजने परमकारुणिकरायुर्वेदकारैः इदं शोकापनो-दनमुत्पादितं । मा नाम भौतिकद्रव्यालाभेन शोकाकुली भवत समस्तानि मौतिकानि द्रव्याणि पंचमहाभूतमयान्येव पंचमहाभूतेष्वध्यस्तानि इति च । अतो भौतिकानामलाभदशायां अस्मदुक्तरीत्सा पंचमहाभूतैः सह भौतिकानां प्रकृतिविकारभावकुशलो भिषक् सांख्यवेदांतोक्तप्रक्रियया समवष्टन्धः सन् ध्यानादिबलात् तान्यपि द्रव्याणि समुत्पाद्य रोगापनोदनं कर्तुमर्हति ।

न चदं कार्यं द्यधिकनवित्संख्याकपाश्चात्योत्तीत्पृष्ठिमेंटसंज्ञतकत्वज्ञान-मात्रसाध्यं भवितुमर्हित । सुवर्णस्य तन्मते पृष्ठिमेंटसंज्ञकतया कस्मिश्चित्काछे पाश्चात्यप्रक्रियया भारतवर्षस्य सर्वथा सुवर्णसंशोषणे जाते सित खर्णापनोद्य-व्याधिचिकित्सायाः पाश्चात्यरसायनज्ञानमात्रसाध्यत्वानुपपत्तेः । पंचभूतविचा-रानुसारेण तु प्रोक्तरीत्या तत्रापि कार्यनिर्वाहणं संभवति । न चैकजातीयात् पंचमहाभूतसमुदायादेव कथं स्वर्णरजतताम्रधातुमूळपत्रादिविभिन्नप्रकाराणां कार्याणां समुत्यादः संभवतीति वाच्यं। एळक्ट्रान्, प्रोटॅन्, पाजिट्रन्, न्यूट्रन् संज्ञकैकजातीयसमुदायादेव द्विनवितत्वोपादनवत् प्रित्रयाविशेषेण तदुपपत्तेः सा च प्रिक्रिया भगवता पतंजिल्ना योगदर्शने एवमुपपादिता । तथा हि तत्सूत्रम्—

जन्मोषधिमंत्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः ।

देवादीनां जन्मत एव निरित्शयाणिमाधैश्वर्यसिद्धिः मंत्रेण वाल्मीिक-प्रभृतेः, आयुर्वेदोक्तरसायनसेवनेन च्यवनादेः, तपसा विश्वामित्रादेः, समाधि-विशेषाभ्यासेन च नरस्य, सतो योगिनो व्याघ्रादिशरीरप्राप्तिः, एवमादयः सिद्धयः समुत्यद्यते । कथं विजातीयानां एवंविधो जात्यंतररूपेण परिणामः । इति प्रश्नसमाधानाय तत्रैव द्वितीयं सूत्रम्—

जात्यंतरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ।

पुंजीभूते शुष्कतृणसम्हे पतितमात्रायामिव वन्हिकणिकायां योयं महावन्हेः प्रादुर्भावः स तृणादिजातीयस्य सतो द्रव्यस्य वन्ह्यादिजात्यंतराकारेण परिणामः प्रकृत्यापूरात् भवति, अर्थात् तृणादिजातीयानां पुंजगतानामवयवानां प्रकृतौ विलापनपूर्वकं वन्हिजातीयानां अवयवानां प्रकृतेः सकाशादाकर्षणेन भवतीत्याशयः।

ननु तृणवन्हिघटपटादीनां पृथग्जातीयानां भौतिकानां परस्परं विभ-ज्यमानानां सर्वानुगतमेकजातीयकं पंचभूतात्मकं तत्वं सामान्यरूपं कारणं इति खल्ल भवत्सिद्धांतः तत्र च वन्हितृणादिजातिगंधस्याप्यभावात् कथं प्रोक्त-पुंजे तृणादिजातीयावयवविलापनानंतरं प्रकृतिभूतात् पंचमहाभूतसमुदायात् वन्ह्यादिजातीयावयवाकिषणं संभवदुक्तिकम् १ इत्याशंकासमाधानाय च तृतीयं सूत्रम्—

> निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् । यथा हि एकविधं जलं कुल्यात्मना नानाविधेषु क्षेत्रेषु नानाविधं

स्ररूपं छभते एवमेव एकैव प्रकृतिः तत्पुरुषीयादृष्टसहकारेण नानारूपेण परिणमतीति संगच्छत ९व। यथा हि केदारे प्रविष्टस्योदकस्य वप्राकारता प्रथमवप्रभेदने तु वप्रांतरे गमनं तदाकारतापत्तिः पूर्वाकारतापित्यागश्चेति छोके दृष्टं तथैव तृणादिजातीयादृष्टोद्भवप्रयुक्तं तदंतः प्रविष्टायाः प्रकृतेः तृणाद्याकारधारणं तादृशादृष्टाभिभवे तु पूर्वाकारताविष्ठयः वन्ह्याद्याकारोद्भव-कादृष्ट्यविशेषोद्भववशात् तदंतः प्रवेशितप्रकृतेः वन्ह्याद्याकारधारणं बोध्यमिति न एकजातीयकारणात् विजातीयकार्याणामुत्पत्त्यनुपपत्तिरिति ।

न चेवं रीत्या ध्यानिवरोषेण वस्तुनो रूपांतरोत्पत्तिः अराक्याऽप्रामाणिकी चेति रांक्यम् १ रांकाविषस्थले विषवेगस्य चिकित्सायाश्चायुर्वेदोपदिष्टत्वात् पाश्चात्थरप्यनुभूयमानत्वात् एवं सत्यविषाभिभवस्थले नैविष्यभावनया
विषापनोदनप्रकारोऽपि दृष्टांतीकर्तव्यः । किंच ध्यानस्य विशिष्टरूपांतरोत्पादकत्वं आधुनिकैः पाश्चात्यादिभिरपि प्रयोगादिद्वारा प्रसाध्यांगीक्रियत एव ।
अतएव हि असति रजोवीर्यादीनां समानगुणत्वेऽपि कस्याश्चित् आंग्लिश्चयः
निग्नोजातीयपुरुषेण सह असति सहवासे तस्यास्तध्यानमात्रेण निग्नोजातीयप्रजाया एव प्रादुर्भावः समजनीति प्रयोगद्वारा प्रसाधितं, एवं गुणवतामश्चानामुत्पादनार्थं अश्वराास्रकुरालाः वडवासु गुणवदश्वविषयकसंस्कारानाधातुं हीनजातीयाश्वसहवासेऽपि पुरतः गुणवदश्चान् सिन्नधाप्य श्रेयसीमश्वजातिं निष्पादयंतीति प्रसिद्धमेतत् रजोवीर्यादिसहकारेण अद्यत्वेऽपि ध्यानस्य भौतिकनिर्माणक्षमत्वमस्तीति । पुरातनास्तु महर्षयः जीवतत्विवरेषज्ञाने इतोऽप्यधिकां कुरालतामवाप्य आश्चर्यभूतानि मृतसंजीवनादीनि कर्माणि व्यदधुरिति हि पश्यामः
आयुर्वेदीयेतिहासेषु तथा हि—

रुद्रेण यज्ञस्य शिरिश्छन्नं अश्विभ्यां पुनः प्रतिसंहितं, मृतसंजीविन्या विद्यया शुक्रेणासुराः प्रत्युर्ज्जीविताः, द्रोणाचलाहरणेन वानराः लक्ष्मणश्च रामायणे प्रत्युज्जीविताः । तदेतत्सर्वमौतिहासिकं वृत्तं महर्षीणामस्मत्पूर्वजानां न सर्वथा उपेक्षणीयम् । जन्मोषधिमंत्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः।

इति पातंजलसूत्रमिमं इतिहासमुपोद्धलयत्येव । जीवतत्त्वनिपुणैर्हि महर्षिभिः चैतन्यधातुः साक्षात्कृतः ध्यानविशेषाद्याहिताध्यासविशेषसाहाय्येन तस्यैव च चैतन्यधातोः जीवः, आनंदः, सत्यता, चेति रूपत्रयनिर्माणकलापि तै: स्वायत्तीकृताऽभवत् इति इतिहासत एवावगच्छामः। एवं सति ध्यानिविशेषा-भ्यासोपदर्शितप्रतिभासस्वरूपे सत्यतासंयोजनं यदा स्वकीयसामर्थ्यविशेषात् तै: क्रियतेस्म तदैव ब्रम्हणो मानसा मन्वादयः पुत्राः इत्याचैतिहासिकव्या-वहारिकसृष्टिरपि समभवत् इति जानीमः । आधुनिका अपि रसायनविदः पाश्चात्या जीवतत्त्वानुसंधानाय प्रवृत्ताः यदा जीवधातुं प्राष्स्यंति तदा तं खायत्तीकृत्य महर्षीणामिदं कौशलम् स्वयमपि साक्षात्कृत्य विश्वसिष्यंतीत्य-स्माकं सुदृदस्तर्कः । जीवधातीरपेक्षया अतिजडे ग्रुक्रशोणितस्ररूपे संस्कृति-संयोजनं यदि व्यावहारिककार्यक्षमं भवति, तर्हि विशुद्धं जीवधातुमुपादाय तत्र क्रियमाणं ध्यानाहितसंस्कृतियोजनं कथं फलोपधायकं न भवेत् इति सुधिय एवं विदां कुर्वंतु । चैतन्यधातोः स्वरूपमेव हि तथाविधमनुभवामः यत्तादात्म्यापन्नस्य सत्यत्वविषये शंकैव नोन्मिषति । आधुनिकानां रसायनविदां अत्र विषये यदि काचिदसंभावना भवेत् तर्हि कथं नाम तेषु जीवतत्त्वानुसं-धानार्थं ऋियमाणः बहुवित्तव्ययायाससाध्यः प्रयत्नः तेषां प्रेक्षावत्तामनुमापयेत् । तस्मात्सिद्धमेतत् पंचमहाभूतविचारप्रयोजनं यध्वानविशेषेण भौतिकवस्तुनिर्माणं नाम आयर्वेदाभिमतमिति।

किंच प्राक्सूचितं आयूरक्षणं तद्वर्धनं चायुर्वेदस्य परमं प्रयोजनमिति निश्चप्रचम् । तदत्र स्पष्टमुपपाद्यते तथा हि—

आयुश्च शरीरेद्रियसत्त्वात्मसंयोग इति अस्मदीयमहर्षिभिरुपलब्धम्, तत्र सत्त्वशद्भवाच्यमंतःकरणं तावत् अपंचीकृतपंचमहाभूतसत्त्वांशसमिष्टिरिति वेदांतिभिरम्युपेयते । एवं च यत्र मानसन्याधिवशात् मनुष्यस्य रागप्रसिक्तः तत्र अध्यात्मवित्संगत्यादिकमेव चिकित्सात्वेन प्रत्यपादि आयुर्वेदे । युक्तं च तत् अपंचीकृतपंचमहाभूतसमष्टिभूतस्यांतःकरणस्योपघाते सति ।

> वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः ॥ सामान्यमेकत्वकरं विशेषस्तु पृथक्त्वकृत् ॥

इत्याद्यायुर्वेदोपदिष्टसजातीयाकर्षणावलंबनेन तादृशस्थलंऽतःकरणपोषणस्य अपंचीकृतपंचमहाभूतीयसात्विकांशाभ्यवहरणेनेव संपादनीयत्वात् ।
एलिमेंटसंज्ञकपंचीकृतानां सर्वथा तत्रानुपयुक्तत्वात् । तत्र तादृशाध्यात्मसानिध्ये
सति वैद्येन दीयमानस्य शुचेः पंचीकृताभ्यवहारद्रव्यस्य जांगलिककृतनैर्विष्यभावनया व्यावहारिकविषापनोद्दनवत् अध्यात्मवित्कृतापंचीकृतपंचमहाभूतभावनया तद्ध्यस्तपंचीकृतांशविलये सति तत्रांतःकरणपोषणस्य संभवात् ।
एतद्र्यमपि पंचमहाभूतिनरूपणं चिकित्साशास्त्रे संगच्छते । किंच न केवलं
मानसचिकित्सामात्र एव पूर्वोक्तरीत्या मनःपोषणमुपयोगि, किंतु रोगसामान्यचिकित्सायामपि पूर्वोक्तरीत्या मनःपोषणमावश्यकमेव, अन्यथा मनसः अधृतिमत्त्वे
प्रियाप्रियविकारत्वस्य निर्वकारताया धृत्यनुभावस्य शरीरेदियादिष्वपि सुदूरनिरस्तत्वापत्तेः । अतएव शल्यचिकित्साप्रसंगे स्त्र्यादिमोहकद्रव्याणां दर्शनमपि
अनर्थावहं भवतीति अपसारणीयं, सुहृदश्च मनोविनोदनक्षमा उपसारणीया।
इत्यादिर्विणितपर्युपासनाविधिः सुश्रुतादिभिरुक्तः। इति व्याधिचिकित्सामात्र
एव अध्यात्मवित्सिक्धानं आयुर्वेदविदामभिमतं पंचमहाभूतविचारस्य सप्रयोजनतां व्यवस्थापयतीति मन्यामहे ।

इदं चोदाहरणांतरं सैंकॉलाजिपदवाच्यमानसशास्त्राभिज्ञानां उक्त-मेवार्थं दढींकरोति । फ्रान्साभिजनः कश्चित् चिकित्सकः कंचनापराधिनं न्यायालये प्राप्तप्राणदंडं प्रयोगार्थमुपादाय बद्धाक्षस्य तस्य सूच्यप्रेण पादं विध्वा तथा तं प्रतिबोधितवान् यथा स स्वकीययैव भावनया विनैव भावना-तिरिक्तं कारणं ममार । सिंह सूच्यप्रेण विध्वा तत्र चोष्णजलं निक्षिप्य एवं प्रतिबोधितो यत् तव शरीरात् एतावान् रक्तप्रवाहो निर्गतः पुनरेवं जातं ततश्च एवं जातिमिति प्रतिक्षणं तस्य रक्तप्रवाहादेवस्तुतोऽभावेऽपि भावनामात्रेण गतासुरभवदिति । व्यक्तमेवात्र मनोऽपघातस्य जीवितनाशकत्वं तैरुद्धोषितम् । अतएव पाश्चात्येष्वेव मानसचिकित्साशास्त्राणां बहूनां प्रादुर्भावो वरीविति इति । तथैव मस्मारिझम् हिप्नाटिझम् प्रभृतीनां मनःसंस्करणकलानां विस्तरेण प्रपंचोऽनुसंधेयः ।

एवं सित पूर्वोक्तानां पंचमहाभूतप्रयोजनानां अक्षपादजैमिनिभावप्रका-शनाद्यपयुक्तप्रयोजनेषु मध्ये कीदशं प्रयोजनत्वं संभवतीति विचार्यते ।

तत्र पूर्वोक्तरीत्या पंचमहाभूतिवचिरत्यत्र विचारपदस्य पंचमहाभूत-तत्त्वावबोधपरत्वनिर्णयात् तदस्तित्वावबोधस्य प्रयोजनं चित्यते, तेनैव तदंग-भूतस्य तकीपरपर्यायस्य विचारस्यापि सप्रयोजनत्वनिर्वहात् । तत्र तावत् ।

" यमर्थमधिकृत्य प्रवर्तते तत्प्रयोजनम् "।

इस्रक्षपादोक्तप्रयोजनत्वं सुवर्णादिनिष्पत्तौ वर्तते, यतो हि सुवर्णादिनिष्पत्तिं प्रति पूर्वोक्तरीत्या भावनायाः कारणत्वात् भावनायाश्च पंचमहाभूतिवरोष्यकसुवर्णत्वादिप्रकारकाहार्यज्ञानरूपत्वेनाहार्यज्ञानस्य च प्रत्यक्षमात्ररूपत्वेन उक्ताहार्यज्ञानिवरोषस्य पंचमहाभूतस्यासंभावनाकांतत्वेन
प्राह्यसंशयस्य प्रत्यक्षविरोधितया ताद्यक्संभावनानिवृत्यर्थं तर्कार्धानतत्वावबोधस्यावश्यकत्वमिति रीत्या परंपरया पंचमहाभूततत्त्वाववोधापरपर्यायविचारे
सुवर्णादिनिष्पत्यात्मकमर्थमुद्दिश्य प्रवृत्या तस्याः तत्प्रयोजनत्वं अनपवाधितमेव।
एवं पंचमहाभूतोपचयकरणकांतःकरणपुष्टिभाव्यकप्रवृत्तिं प्रति पंचमहाभूतास्तित्वज्ञानस्यावश्यकत्वात् उक्तांतःकरणपुष्टेः ताद्दशतत्वावबोधप्रयोजनत्वं अक्षपादोक्तरीत्या संगच्छते। तन्मते यदुद्दश्यककृतिविषयत्वं प्रकृतस्य कर्मणः तस्यैव
प्रयोजनपदार्थत्वपर्यवसानात् । उद्देश्यत्वं चात्र प्रवृत्तिजनकीभूतेच्छाविषयत्वप्रयोजनपदार्थत्वपर्यवसानात् । उद्देश्यत्वं चात्र प्रवृत्तिजनकीभूतेच्छाविषयत्वप्रयोजनपदार्थत्वपर्यवसानात् । उद्देश्यत्वं चात्र प्रवृत्तिजनकीभूतेच्छाविषयत्वप्रयोजनपदार्थत्वपर्विषयनिष्ठं प्रवृत्तिविषयत्वं इति एतत्सर्वमिविकलम् पूर्वोक्तप्रयोजने
वर्तते ।

मीमांसकरींत्या तु यदुद्देश्य कृतिन्याप्यजन्यताकत्वं प्रकृतकर्मणस्तस्यैव

प्रयोजनत्वम् । अत्रोद्देश्यत्वं च अनुपादेयपंचकादिसाधारणिमिति व्यक्तमाकरे, इत्यस्ति अक्षपादीयप्रयोजनलक्षणात् कश्चिद्विशेषः एतदीयप्रयोजनलक्षणे । परंतु तदुद्देश्यककृतेः प्रयोज्योपक्षया व्यापकत्वस्य मीमांसकाभिष्ठतत्वात्, तदुद्देश्यककृत्यभावे प्रयोज्यस्यानुत्पाद्यत्वमेवेति अपरः सिद्धांतः तदीयः । एतदीयलक्षणानुसारेण पंचमहाभूतोत्पत्तेः प्रयोजकं किमिति विचार्यमाणे न हि बीजप्रयोजनाभ्यां विना कस्यचिदुत्पत्तिरस्तीति न्यायेन पंचमहाभूततत्का-र्याद्यपभोगस्वरूपयोग्याद्यानां उपभोगार्थमेव पंचमहाभूतोत्पत्तिः ईश्वरेण कृता । सचोपभोगो "भौतिकास्तु शतं पूर्ण''मित्यादिवक्ष्यमाणरीत्या स्वरूपतो भूतोपभोगः पूर्वीक्तदिशा ध्यानादिद्वारेण सुवर्णाद्यपभोगादिश्व सर्वोध्यत्र गृद्धत इति तादशोपभोगजनकाद्यक्षये पंचमहाभूतादीनामिप प्रयोजकाभावात् प्रयोज्यस्याभाव इति न्यायेन अनुत्पाद्यत्वम् । विनाशश्च प्रल्यापरपर्यायो निष्पाद्य इति वैद्यक एव सविस्तरं प्रपंचितम् । इति मीमांसकिदिशापि पंचमहाभूतिविचारप्रयोजनलक्षणं सम्यगेव समर्थितं भवति ।

भावप्रकाशनादिमते तु वर्तमानकार्छानप्रयोगविषयीभूतः कारकादि समिन्वतः अभीष्टार्थः यद्मबोधोद्देश्यकव्यंजनाख्यव्यापारवान् भवति तद्मयो-जनमिति प्रयोजनस्वरूपम् । एतन्मते च सामान्यतः तदुद्देश्यककृतिव्याप्यजन्यताकत्वरूपात् मीमांसाकाभिमतप्रयोजनस्वरूपात् बोधात्मकविशेषोद्देश्यकत्वस्य व्यंजनाख्यव्यापारवत्वस्य च तष्ठक्षणघटकप्रयोगस्य वर्तमानकार्छीनत्वं च विशेषः । तथा चोक्तभावप्रकाशनोक्तं प्रयोजनत्वमि पूर्वीक्तेषु प्रयोजनेष्वक्षतमेव, पंचमहाभूततत्वावबोधात्मकस्य विचारस्य वर्तमानकार्छीनप्रयोगविषयत्वेन व्यंजनाव्यापारेण उक्तप्रयोजनावबोधजनकत्वेन तत्र प्रयोजनवक्षणस्य व्यवस्थितत्वात्। यद्यपि व्यंजनाव्यापारेण उक्तप्रयोजनावगितः केषांचित् न भवति, तथापि व्यंजनाव्यापारे पटुतरसंस्कारस्यावश्यकत्वेनोक्तसंस्कारविरहिणां व्यंजनाव्यापारा-भावेन तादृशबोधाभावेपि क्षत्यभावात्।

स्यादेतत् उक्तप्रयोजनस्य प्रयोजनत्वं तदैव भवेत् यदि पंचमहाभूत-तत्वावबे।धस्य तादृशबे।धविषयीभूतस्य पंचमहाभूतस्य वा पूर्वोक्तयित्वित्प्रयो- जनत्वाभिमतवस्वभिन्यंजनक्षमर्वतमानकाछीनप्रयोगविषयत्वं भवेत्। पाश्चात्याः हि वैज्ञानिकाः खकीयं सिद्धांतं प्रयोगशाळासु अन्वयन्यतिरेकाभ्यां अनुभान्य खयं चानुभूय प्रकाशयंति, किंबहुना प्रयोगसिद्धानामेव पदार्थानामस्तित्वमधुना-तनवैज्ञानिकसदिस माननीयतामहिति । प्रयोगद्धारा अप्रत्यक्षीकृतानां केवळ-वाग्जाळावळंबनमात्रेण प्रतिपाद्यमानानां पदार्थानां प्रामाणिकत्वं न वैज्ञानिकर-भ्युपगम्यते, प्रयोगसिद्धस्यैव प्रामाणिकत्वमिति तिसद्धांतात् । पंचमहाभूतानां च प्रयोगसिद्धत्वाभावात् न प्रामाणिकत्वमुररीकाराईमिति ।

अत्रोच्यते किं तावत् प्रयोगसिद्धत्वं यस्य प्रामाणिकत्वनियामकत्वं भव-द्भिरम्युपगम्यते ? सांगप्रधानानुष्ठानं हि प्रयोगः । यत्र यत्र सांगप्रधानानुष्ठानं तत्र तत्रावस्यं कार्योत्पत्तिरिति अन्वयसहचारः, यत्र तु सांगप्रधानाननुष्ठानं तत्र न कार्योत्पत्तिरिति व्यतिरेकसहचारश्चेति द्वयमेव हि बुध्बुपारुढं सत् अभि-मतस्य वस्तुनः प्रकृतकार्येण सह कार्यकारणभावं व्यवस्थापयति । एतादश-प्रयोगेण सिद्धिः कार्यस्य किं प्रसक्षैकरूपा विवक्षिता उत परोक्षादिरूपापि ? किंच प्रयोगांशे खयमनुष्ठीयमानत्वमपि विवक्षितं ? आहोस्वित् खयमनुष्ठानाश-क्तिदशायां परैः मनुप्येरेवानुष्ठीयमानत्वमनुमतं ? उत खपरमनुष्याद्यविवक्षया प्राकृतिकव्यापारानुष्ठीयमानत्वमपि संमतम् १ इति चिंतनीयतामहिति । तत्र सिद्धिस्तावत् सर्वत्र प्रत्यक्षैकरूपैवेति न वक्तुं शक्यते, जलादिविभागप्रयोग-द्वारा रसायनशालाखनुष्ठीयमानस्य हैड्रोजनाद्यवयविद्रव्यस्य वाष्पावस्थापनस्य अरूपिद्रव्यत्वेन अप्रत्यक्षस्य प्रामाणिकताया प्रतीच्यवैज्ञानिकरभ्युपगम्यमान-त्वात् । न चेंधनवत्तदुपकार्येण ज्वालादिना तात्सिद्धिरस्स्येवेति वाच्यम् । एवं हि प्रयोगद्वारा साध्यमानस्य वस्तुनः सिद्धिः न प्रत्यक्षेकरूपा, अपि तु तत्कार्यज्वालादिसाध्यानुमितिरूपापीत्यायातम् । तस्माद्धयोगद्वारा प्रत्यक्षीकृत-त्वमेव प्रामाणिकत्वनियामकमिति रिक्तं वचः । किं तर्हि प्रसक्षानुमित्यादि-साधारणकार्यान्वयव्यतिरेकिसिद्धिमूलक एव प्रयोगः पदार्थानां प्रामाणिकत्व-नियामक इत्यकामेनाप्यभ्युपगंतव्यमेव।

अस्मिन्नपि पक्षे प्रयोगस्य खकुतत्वं विवक्षितमिति न वक्तुं शक्यते । अंधकुण्यादीनां प्रयोगशालासु प्रयोगकरणासामध्येन न दृष्ट्या चक्षुष्मद्दैज्ञा-निकप्रयुक्तानामपि पदार्थानामप्रामाणिकत्वप्रसंगात् । अतः स्वकृतत्वं अना-वस्यकं, किंतु प्रामाणिकपुरुषांतरकृतोऽपि प्रयोगः प्रामाणिकत्वन्यवस्थापक इति द्वितीयपक्षोऽगत्या शरणीकरणीयः । न च सोऽपि संभवति, भूगोलं गतिमत्, मार्तंडमंडलं स्थिरं, इस्यादयोहि सिद्धांताः नव्यवैज्ञानिकोपज्ञा एव किल ? तत्रेयं जिज्ञासा उद्भवति, केन वा वैज्ञानिकेन भूमंडलमपूर्वं निर्माय तस्य गतिमत्वं प्रयोगशालायां प्रत्यक्षी कृतम् १ यदि भूमंडलादीनां उक्तरीत्या मनुष्यकर्तृकप्रयोगविषयत्वं नास्ति तर्हि नव्यदृष्ट्या व्यापकस्य मनुष्यप्रयोग-विषयत्वस्य छप्ततया भूमंडलादेः प्रामाणिकत्वकथयापि छप्तया भवितन्यम्। एवं च व्योमकमिलनीप्रसूनपृतिगंधवत् सर्वथा असत्कल्पभूमंडलादिगत्यादि-त्यमंडलिस्यरवादिसिद्धांतोऽपि स्वोपज्ञः किन्नाम शरणमवलब्य रक्षिष्यते तदकामेनापि वक्तव्यं । वस्तुतः प्रयोगविषयत्वमात्रमेव प्रामाणिकत्वे तंत्रं, न तु प्रयोगस्य मनुष्यकृतत्वमपि। न च तस्य प्रत्यक्षीकृतिरप्यावश्यकी किंतु ईश्वराद्यनुष्ठीयमानसृष्टिस्थितिव्यापारात्मकप्रयोगिविषयत्वमपि इति स्वीकारणीयमेव। तादृशप्रयोगविषयत्वसिद्धिरपि प्रस्यक्षानुमित्यादिसाधारण्येवेत्यभ्युपगम्यमेव, इति हि प्रतीच्यवैज्ञानिकानां सिद्धांतसंरक्षणव्यसनितयेव उक्तरीत्या प्रामाणिकत्व-नियामकं प्रयोगविषयत्वस्य खरूपं सैंवेरेव परिष्करणीयमेव । अन्यादशं पूर्वविकल्पितं प्रयोगविषयत्वमुपादाय तस्यैव प्रामाणिकत्वनियामकत्वप्रवादस्तु बालिशोक्तिवत् पूर्वोक्तरीत्या खपक्षव्याघातकतया उपेक्षणीयतामईतीति सुधीर-मावदेयामश्च । अयमेवार्थः वैज्ञानिकेषु परिणतबुद्धिभः दूरदर्शिभिरनुमन्यते । यथा तेष्वन्यतमेन केनचिद्दैज्ञानिकशिरोमणिना अब्दुल्ला नाम्ना 'विज्ञान ' पत्रिकायां लिखितं । तथाहि '' शास्त्री परीक्षाकी तयारी करनेवालीको विज्ञान पढानेमें छेखकको यह अनुभव हुवा आहै कि, जो छोग विज्ञानका अध्ययन केवल सिद्धांत जाननेकेलिये करते हैं; उनकेलिये क्रियात्मक विज्ञानमें परिश्रम करना राक्तीका अपन्यय है। साथही यह बातभी नहीं है कि, क्रियात्मक

शिक्षाविना उन्हें सिद्धांतका ज्ञानहीं नहों। कठिनाई केवल इतनीहीं हैं कि, जिस अध्यापकने पाश्वाल्य रीतींसे शिक्षा पाई है, उसे यह कम स्ज्ञती है कि, सिद्धांतोंको विना कियाकी शिक्षासे कैसे पढ़ाया जाय । किंतु प्राचीन दर्शनोंमें वैशेषिक और न्याय और थोडा सांख्य मौतिकविज्ञानहीं सरींखे हैं। परंतु उनकी शिक्षामें कियात्मककर्मका कोई अंग नहीं है। इसे कोई दोष मलेहीं समझे, परंतु जो विषय दार्शनिक अपनी प्राचीनपद्धतींसे पढ़ाते हैं उनमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं होती। रहीं परीक्षा और प्रयोगोंकी बात, सो विश्वकर्मा तक्षक आदि शिल्पशास्त्री, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधवेवेद, आदि ज्ञानविज्ञानविशारद इन सिद्धांतोंका प्रयोग बराबर किया करतेथे। और अनुभवकी कसीटीपर कस लेतेथे। इस प्राचीन प्रथाको पुनरुजीवित करनेसे सहजहीं वह त्रुटिया दूर होजातीहै "। इत्यादिना यथा च पंचमहाभूतानां रेश्वरप्रयोगविषयत्वं तर्कादिसाहाय्येन निश्चीयते तथा तत्स्वरूपविचारप्रसंगे विस्तरेण निरूपिण्यामः।

जरंतस्तु पंचमहाभूतिवचारप्रयोजनं तावत् पंचमहाभूतानि संति नेवलेतदन्यतरकोटिनिधीरणमेव सभायां विचारद्वारा क्रियते नात्र पूर्वोक्त-रीला बहूहापोहावश्यकता इति वदंति। तन्न । शास्त्र पंचमहाभूतावबोधप्रयोजनस्य विविचारियिषितत्वात्, तत्वावबोधमात्रस्य प्रयोजनत्वाभ्युपगमे वायसदशनानुसं-धानादीनामिष तद्वत्त्वेन सप्रयोजनत्वापितः । तथा च यदसंदिग्धं अप्रयोजनं च न तत्वेक्षावत्प्रतिषित्सागोचरम्, यथा स्भीतालोक्तमध्यवर्ती घटः करटदंता वा। अप्रतिषित्सतं तु प्रतिपादयन् नायं लौकिको नाषि परीक्षक इति प्रक्षावद्भि-रुन्मत्तवदुपेक्ष्येत । इत्यादिदार्शनिकवचनानां दत्तजलांजलित्वप्रसंगः ।

वस्तुतस्तु निष्प्रयोजने शास्त्रतात्पर्यमेव न संभवति ।

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम् । अर्थवादोपपत्ती च लिंगतात्पर्यनिर्णये ॥ इत्युक्तिदिशा प्रयोजनवस्य तात्पर्यगमकत्वात् । निष्प्रयोजनेऽपि असुखात्मके तज्ज्ञानमात्रमादाय सप्रयोजनतया शास्त्रतात्पर्यविषयत्वाभ्युपगमे 'आदित्येयूपः ' 'यजमानः प्रस्तरः ' इत्यादाविप आदित्ययूपतादात्म्य-यजमानप्रस्तरतादात्म्यादौ शास्त्रतात्पर्यप्रसंगात् , तत्र रुक्षणाश्रयणमपि असंगतं स्यात् । न च तादशतादात्म्यस्य बाधितत्वादुपपात्तिरूपिरंगामावेन तत्र शास्त्र-तात्पर्याभाव इति वाच्यं । प्रत्यक्षादीनां योग्यतादात्म्यबाधकत्वेऽपि अतीदिय-तादात्म्यादौ शास्त्रतात्पर्याभ्युपगमसंभवात् , ज्ञानमात्रस्य प्रयोजनस्यापि सद्भा-वाच्च । तस्माज्ज्ञानातिरिक्तप्रयोजनामाव एव तत्र शास्त्रतात्पर्याभावगमकोऽगी-कार्यः । स चेत् पंचमहाभूतेष्वंगीिक्रयते तदा गतं तत्र शास्त्रतात्पर्यकथयापि ।

अस्य क्षोणिपतेः परार्घपरया छक्षीकृताः संख्यया। प्रज्ञाचक्षुरवेक्ष्यमाणबधिरश्राव्याः किलाकीर्तयः ॥ गीयंते स्वरमष्टमं कलयता जातेन वंध्योदरात् । मूकीनां प्रकरेण कूर्मरमणीदुग्धोदधे रोधसि ॥

इस्यादाविव, राहोः शिर इस्यादाविव च सर्वथा असन्कल्पपंचमहाभूत-प्रयोजनस्य कल्प्यत्वप्रसंगात् इति पूर्वोक्तरीस्या अस्माभिरुच्यमानं सप्रयोजनत्वं जरिद्धरिप उररीकर्तव्यमेव । तथा च अस्मदुक्तरीत्यैव प्रयोजनस्य सद्भावात् आयुर्वेदसिद्धांते पंचमहाभूतास्तित्वं वर्तत इति सिध्यतीत्यलमितिविस्तरेण ।

द्वितीयप्रश्नस्योत्तरम्।

बिहिरिदियप्राद्यविशेषगुणवत्वं भूतत्वम् । बिहिरिदियजन्यलैकिकप्रत्य-क्षविषयगुणत्वन्याप्यजातिमिद्विशेष्यगुणवत्विमिति यावत् । केचित्तु आत्मावृ-त्तिविशेषगुणवत्वं भूतत्वमाद्वः तत्तु वेदांतिनां मते सर्वस्यापि विशेषगुणस्या-त्मवृत्तित्वादसंभवापत्या उपेक्षितम् । न्योमशिखाचार्यादयः प्राचीनवैशेषिकास्तु भूतत्वं जातिरिति वदंति, तैः सांकर्यस्य न जातिबाधकत्वमंगीक्रियते विशेषस्तु तद्प्रंथ एव द्रष्टन्यः । स्वरूपयोग्यत्वलक्ष्कणकरणात् न योगिप्रत्यक्षगम्येषु अपंचीकृतेषु पंचमहाभूतेषु, परमाण्वादिषु चान्याप्तिः ।

तृतीयप्रश्नस्योत्तरम् ।

आकाशरूपस्य भूतस्य एकैकेंद्रियार्थाश्रयत्वं, इतरेषां तु चतुर्णां अनेकेंद्रियार्थाश्रयत्वं इति व्यवस्थितिः । तथाहि—

आकाशस्य शद्ध एव विशेषगुणः । स च श्रोत्रेंद्रियमात्रप्राह्यः इति तस्यैकैकेंद्रियाथीश्रयत्वं । वायुस्तु शद्धस्पर्शगुणवान् इति तत्र अनेकेंद्रियाथी-श्रयत्वं । राद्वस्य श्रोत्रप्राद्यत्वात् स्पर्शस्य च त्वगिद्रियप्राद्यत्वात् । एवं तेजसः शद्धस्पर्शरूपगुणत्रयाश्रयत्वादनेकेदियाथीश्रयत्वम्। रूपस्य चाक्षुपत्वात्। जलस्य च शद्धस्परीरूपरसात्मकगुणचतुष्टयाधिकरणत्वादनेकेंद्रियाथीश्रयत्वं, रसस्य रासनत्वात् । एवमेव पृथिव्याः शद्भर्भारूपरसगंधगुणपंचकाश्रयत्वात्, गंधस्य च व्राणेदियप्राद्यत्वात् अनेकेदियार्थाश्रयत्वं । नैय्यायिकास्तु वाय्वाकारायो-रेकेंद्रियार्थाश्रयत्वं, इतरेषामनेकेद्रियार्थाश्रयत्वमभ्युपगच्छति । तन्मते राद्धस्या-कारामात्रगुणत्वेन, वायौ स्पर्शमात्रस्यार्थस्य सत्वेन, तस्यापि एकेंद्रियार्थाश्रयत्वात् इति । तन्न, वायौ शद्भस्य प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धत्वेन तस्य तत्रापलापासंभवात् न च वाय्वादिसानिहिताकाशादिगतशद्ध एव तत्र गृह्यत इति वाच्यम्, वायुः शद्भवानिति प्रतीतेः बलवत्तरबाधकप्रमाणासत्वेन भ्रमत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् । न च राद्वो न वायुविरोषगुणः अयावत्द्व्यभावित्वात् इति राद्वस्य वायुवि-शेषगुणत्वाभावसाधकानुमानरूपबाधकप्रमाणेन उक्तप्रतीतेर्भमत्वमेव युक्तमिति वाच्यं, उक्तानुमानस्याप्रयोजकत्वात् । स्पर्शात्मकस्य विरोषगुणस्य यावत्-द्रव्यभवित्वेपि शद्धात्मकस्य अयावत्द्रव्यभाविनोप्यंगीकारसंभवात् । तस्मात् वायोः शद्धस्पर्शात्मकविशेषगुणद्धयाधारतया अनेकेद्रियाधीश्रयत्वमुपपन्नमेव ।

अत्रेदं बोध्यं । यदेतम्दूतानां एकद्वित्रिचतुःपंचेद्रियप्राह्यत्वं पूर्वमुक्तं तत् अपंचीकृतेष्वेव बोध्यम् । पंचीकृतेषु तु पुनः पंचानां समुचय एव । तत्रापि यस्मिन्पंचीकृते यस्येद्रियार्थस्योम्दूतत्वं अनिभमूतत्वं च तस्यैव तत्तदिद्रियवेद्यत्वं, अपंचीकृतानां तु सत्यपि अनेकेद्रियार्थाश्रयत्वे सर्वथा अस्मदादीनां प्रत्यक्षा-विषयत्वमेव दिव्यदिष्ठसंपन्नानां तु पुनः तान्यपि प्रत्यक्षाणीतिविवेवकः ।



चतुर्थप्रश्नस्यात्तरम्।

अथ भूतस्वरूपं किमिति विचार्यते । तत्र-

" अथ योगानुशासनम् । योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् । वृत्तिसारूप्यमितरत्र " ।

इति योगसूत्रे चित्तवृत्तिनिरोधकाले पुरुषस्य स्वरूपावस्थानमित्युक्तत्वात् अनौपाधिको धर्मविशेषः खरूपपदार्थ इति ज्ञायते । एवं च जपाकुसुमोपाधि-प्रयुक्तस्य स्फिटिकलोहितस्य न स्फिटिकलक्ष्मपत्वं औपाधिकत्वात् । यागस्य द्रव्यदेवते रूपमिति व्यवहारात् देवतोद्देश्यकद्रव्यत्यागरूपयागे त्यागत्वादीना-मित्रधर्माणां सत्वेऽपि इतरव्यावर्तकत्वाभावेन रूपत्वाव्यवहारात् इतरव्यावर्तकत्वाभावेन रूपत्वाव्यवहारात् इतरव्यावर्तकत्वाभावेन रूपत्वाव्यवहारात् इतरव्यावर्तकत्वाभावेन रूपत्वाव्यवहारात् इतरव्यावर्तकात्वे सित अनौपाधिको धर्मविशेषः खरूपमिति लक्षणं वक्तव्यं, तद्रज्जुव्यक्तावा-रोपिताया अनिवचनीयतत्सर्पव्यक्तेः अनौपाधिक्यां अपि रज्जुखरूपत्वाव्यवहारात् यात् यावद्विशेष्यकालावस्थायित्वमपि लक्षणे विशेषणं वाच्यमतस्तत्र नातिव्याप्तिः ।

" स्ररूपं च खभावश्च संसिद्धिप्रकृतीसमे "

इत्यमरात् समवायिकारणापरपर्यायप्रकृतिरूपस्य खभावस्य यावद्धर्मि-कालवृत्तित्वं लभ्यते । ननु समवायिकारणनाशात्कार्यनाशस्थले क्षणमात्रं कार्यस्य निराधारत्वात् तदा समवायिकारणस्याभावेन तदपरपर्यायखरूपस्य यावत्कार्यकालमवस्थानमसंभवीति वाच्यं । वैदिकमते मृत्वादिसामान्यमेव घटादि-रूपविशेषं प्रति समवायिकारणं नतु कपालमृत्पिडादिकं तेषां कार्यपूर्वकाल एव वृत्तित्वसंभवेन कार्यकाले नाशावश्यंभावेन कार्यकालवृत्तितया कारणत्वरूपस्य समवायिकारणत्वस्थासंभवात् । अतएव—

"वाचारंभणं विकारो नामघेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमिति" श्रुतौ विकारस्य कार्यभूतस्य घटादेः मिध्यात्वं, तदुपादनस्य सत्यविभिति प्रतिपादनपरायां मृत्तिकैव सत्यमित्यनुक्ता मृत्तिकेत्येव सत्यमित्युक्तम् इति शद्धस्य समभि- व्याहृतशद्भस्यप्रायेन मृत्तिकाशद्भवाच्यं यत्तदेव सत्यमिति प्रतिपादने तात्पर्यात्।

जातिशक्तिवादस्यैवाभ्यर्हितत्वेन तादृशं मृत्तिकात्वमेवेति तस्यैवोपादानत्वं श्रौतोर्थः । एवं चास्मन्मते मृत्तिकात्वस्य नाशेन घटनाशस्यामावात् समवायि-कारणस्य यात्रत्कार्यकालसन्त्वमुपपन्नम् । न चैवं समग्रायिकारणनाशस्य कार्या-नाशकत्वे मुद्गरादिना घटनाशस्थले किं तन्नाशकमिति वाच्यम् । मुद्गराभिधा-तादेरेव तन्नाराकत्वात् । न चैवं पाषाणपतनादिनापि घटनारास्य दर्शनात् मुद्गराभिघातपाषाणपतनयोः परस्परजन्यघटनारो व्यभिचारः, कपालनारास्य घटनाशकत्वे तु न स इति वाच्यम् । अंततो गत्वा कपालनाशं प्रति मुद्गरा-भिघातादीनां कारणताया वक्तव्यतया तत्र ईटशव्यभिचारस्य दुरुद्धरत्वात् । अन्यबहितोत्तरत्वादेः कारणतावच्छेदककोटी निवेशस्यावश्यकत्या तद्धेतोरेवे-तिन्यायेन तुल्ययुत्तया घटादिनाशं प्रत्येव मुद्रराभिघातादेः कारणत्वौचित्यात्। वस्तुतस्तु नाशो नाम न कश्चिदभावः, घटादिस्क्ष्मावस्थाया एव नाशत्वाम्यु-पगमात्, सत्कार्यवादाश्रयणात् । घटादीनां सूक्मत्वं च प्राह्यशक्तिप्रतिबंध एव । एवं च घटादिगोचरप्रसंक्षं प्रति मुद्रराभिघातादीनां प्रतिबंधकत्वमिति पर्यवसितोऽर्थः । तत्र नोक्तव्यभिचारोऽपीति अव्यवहितोत्तरत्वादीनामनिवेश एव । तिसद्रमुपादानस्य यावत्कार्यकालमावित्वम् । अनौपाधिकत्वेन तस्य स्ररूपपदव्यवहार्यत्वं च । न चोपादानस्य उपदेयाधारत्वमेव युक्तम्, मृत्ति-कात्वस्य घटापाद् नत्वे मृद्घटः इति मृद्धिशेष्यिकेव प्रतीतिर्युक्ता, घटामृत् इतिघटाविशेष्यकमृत्वप्रकारकप्रतीतिरनुपपन्नेति वाच्यम् । घटादेः मृत्तिका-त्वभावापनेऽज्ञाते बम्हणि अध्यस्तत्वेन अध्यस्तवस्तुनि अधिष्ठानस्यापि प्रति-बिबितत्वसंबंधेनारोपस्य शुक्तिरूप्यादिस्थले रजतिमदिमिति प्रतीत्युपपादनाय स्वीकृतत्वेन घटादिरूपाध्यस्ते मृत्वंदिरूपाधिष्ठानस्यापि प्रतिबिबरूपारोपा-भ्युपगमेन घटोमृदिति प्रतीतेरूपपत्तेः । अतएव अन्योन्यस्मिन्नन्योन्यात्मक-तामन्योन्यधर्मीश्वाध्यस्येत्यध्यासभाष्यं संगच्छते । एवं चाधारभूताया मृदः आधेयत्वं आधेयभृतस्य घटस्याधारात्वं चेत्यपि अध्यासवशादेवायातं तार्किका- दिप्रतीतिसिद्धनुपपद्यते । अतएबाहमज्ञ इस्याधारभ्रेतऽप्यहमिति आधारभ्रत-स्याप्यज्ञानस्य आधेयतया भानमुपपद्यते । तस्मात् उपादानभ्रतस्य व्यावर्तक-धर्मस्यापि स्वरूपत्वमुपपन्नम् ।

न च घटशराबोदंचनमणिकादिसाधारणस्य मृत्वस्य घटोपादानत्वे तस्य घटेतरव्यावर्तकत्वाभावेन तत्स्वरूपत्वासंभवात् कथं '' खरूपं च खभावश्च संसिद्धिप्रकृती समे '' इत्यमरसंगतिरिति वाच्यम् । उत्पत्स्यमान-उद्बुद्धघटादिसंस्काराविच्छनाया एव तादशजातेः उपादानत्वाभ्युपगमेन व्यावर्तकस्यापि संभवात् ।

एवं च तन्मात्रविषयकधीविषयः तत्सरूपिमित छघुछक्षणं पर्यवस्यति । सस्यं ज्ञानिमस्यादिशुत्युक्तानां सस्यज्ञानादीनां सरूपछक्षणानां ब्रह्ममात्रविषयकन्धिविषयत्वेन स्वरूपत्वमुपपन्नं, उक्तरीस्या ब्रम्हछक्षणे तन्मात्रविषयकत्वं सामान्यतः तिदतराविषयकत्वं सित तिद्वषयकत्वमेत्र भवति । प्रकृष्टप्रकाशः चद्र इत्यादिवाक्येपि चद्रव्यक्तिमात्रविषयिण्याः शाद्धियः अभ्युपगतत्वाक्तत्रापि छक्षणसंगतिः । परंतु देवतोद्दरयकद्रव्यत्यागात्मकयागस्वरूपोद्दरयकप्रवृत्तौ न तत्स्वरूपभूतद्रव्यदेवतामात्रविषयकत्वं स्थागादीनां तदितिरक्तानां तत्र विषयत्वात्। अतः तन्मात्रपदस्य चक्षुर्मात्रप्राद्यो गुणो रूपिमस्यादिवयार्थसंकोचेन छक्षणं वर्णनीयं, तच्च तदितरद्रव्याविषयकतिद्वषयकधीविषयत्वादिरूपं वक्तव्यम् । इदं च गौणं स्वरूपछक्षणं संकुचितार्थत्वात् । प्रस्क्षेण घटस्वरूपं गृद्यते इत्यादौ तादृशस्यैव स्वरूपस्य भानं घटमात्र—विषयकस्य प्रत्यक्षर्यं रूपाद्य-विषयकस्य।संभवेन तत्रमुख्यस्वरूपविषयकत्वासंभवात् ।

एवं व्यवस्थिते द्विविधे स्वरूपपदार्थे, पंचमहाम्तानां मुख्यं स्वरूपं तु तत्वमसीत्यादाविव जहदजहस्रक्षणाश्रयणेन पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमिति भूतानि इति शद्वप्रतिपाद्यव्यक्तिपंचकमेव अखंडं बोध्यम् । " तस्माद्वाएत-स्मादासन आकाशः संभृतः " इत्यादौ एकत्रचनश्रवणेन एकैकव्यक्तयुत्पादस्य श्रीतत्वात् । तच्च पृथिवीत्वादिसामान्यरूपमेव । न च " अग्नेरापः अभ्यः

पृथिवीति " बहुवचनश्रवणादपां बहुत्वमाशंक्यं । अप्शद्भवाच्यायाः अप्त्वजातः ऐक्यरयैव सिद्धत्वात् । " आपःस्री मृम्नि " इत्यनुशासनबलेन बहुवचनस्य साधुत्वमात्रार्थकत्वात् । एकवचनसंदंशपाठेनाप्येकवचनस्यौचित्याच । न च तादशजातिपंचकसद्भावे कि प्रमाणमिति वाच्यम् । तार्किकमते गंधादिसम-वायिकारणतावच्छेदकतया अस्मन्मतेतु स्थूलगंधादिसमवायिकारणत्वेन तस्सि-द्भेरावश्यकत्वात् । एवंविधजातिपंचकस्य निर्विकलपशाद्वप्रतीतावेव भानसंभ-वात् प्रस्यक्षत्वं अनुमानगम्यत्वं च न संभवत्येव । अतः गौणं ततस्वरूपं अभिधीयते अनुमानगम्यत्वोपपत्तये, तच गंधादिसंस्कारपंचकमेव ब्राणादींदि-यपंचकांतर्गतभोगवासनोद्भवाव्यथानुपपत्या बहिरिदियद्वारा पूर्वोपभुक्तपंचीकृत-पदार्थेभ्यः प्रथािववेचनकारि तत्तदिंदियशक्तिस्वाभाव्यबलात् प्रथकपृथगभ्य तत्तदिदियद्वारकबुद्धयारूढतत्तभदूत।तिसूक्ष्मांशरूपं वालुकाभस्ममृतिकासमूहग-भेपतितलोहकाणा इव अयस्कांतसानिध्ये तदारूढा अतिसृक्ष्मा पंचीकृतवालु-काभस्मादिपुंजात् इन्द्रियचुबुकेषु पुंजात् पृथग्भूय समारूढाः गंधादिपंचरूपाः कणाः एव संस्कारपदवाच्याः शास्त्रतो युक्तितः अहं गंधादिसंस्कारवान् इति साक्षिप्रस्यक्षाच्च अवगम्यमानाः घाणेदियवर्तिभोगवासनायां गंध एव रसनस्थायां रस एव चाक्षच्यां रूपमेव त्वग्विवतिंन्यां स्पर्श एव श्रीत्यां तु शहू एव इति रीत्या शारीरिकत्वे मिन्नप्रदेशवर्तिषु तत्तदिदियेषु अनुगतासु मिन्नामिनासु वास-नास गंघादिस्द्रमावस्थारूपसंस्कारवत्तया अन्वितत्वात् पंचसंख्यान्विताः संतः त एव संस्काराः गौणभृतस्वरूपाणि द्रव्यांतरामिश्रिततिद्वषयकपूर्वीपदिशतिशा-स्त्रीयतर्कजन्यसाक्ष्याद्यात्मकतदितरद्रव्याविषयकतदिषयकधीविषयत्वात् गौणानि भूतस्वरूपाणीति निश्चप्रचम्।

अत्रेंदं बोध्यम् यदेतत् गंधादिसंस्काराणां पंचमहाभूतखरूपत्वमुक्तं तत् पूर्वोक्तरीत्या पंचमहाभूतसमवायिकारणत्वाभिप्रायेणैव कटककुंडलादेहेंम-खरूपमितिवत् अतः वेदांतसिद्धांतरीत्या संस्काराणां कारणशारीरत्वेऽपि भूतानां च स्थूलसूक्ष्मद्वयशरीरवर्तित्वेऽपि च न क्षतिः । पंचमहाभूतानि तु



तादशसंस्कारोच्छूनायस्थाविशेषा एव इति न कोपि पूर्वापरिवरोधप्रसंग उद्भाव्यः ।

अथ सृष्टितत्विविचनार्थं प्रवृत्तानां भवतां अयं महानपनयः यत् जगदुपादानभूतत्वेनाभिमतानां भूतानां संरकारोपादानकत्वकथनं नाम । न हि भवदीत्या संरकारमयत्वं जगतः कस्यापि हृदये तार्किकादेः प्राचीनदार्श-निकस्य आधुनिकस्य वा वैज्ञानिकादेः समुन्मिषति, तत् सर्वछोकविरुद्धं वदातमतं चिकित्सोपयोगिग्रंथसन्दब्धमिति वदतः सर्वथा छोकिकपरीक्षककोटि-बर्हिभावात् उन्मत्तवदुपेक्षणीयत्वमेव युक्तं इति । अत्रोच्यते— चरकसंहितायां तावद् अर्थे दशमहामूळीयाध्याये हृदयस्वरूपमेवमुपवर्णि-तमुपळभ्यते—

> प्रतिष्ठार्थं हि भावानामेषां हृदयमिष्यते । गोपानसीनां आगारकणिंकेवार्थचिंतकैः ॥ तस्योपघातान्म्च्छीयं भेदान्मरणमृच्छत्ति । इत्यादि श्रुतावपि-पद्मकोशप्रतीकाशं हृदयं चाष्यधोमुखं ॥ अधोनिष्ट्यावितस्त्यांते नाभ्यामुपरि तिष्ठति । ज्वालमालाकुलं भाति विश्वस्यायतनं महत् ॥

इति रीत्या हृदयस्य विश्वायतनत्वमुक्तं तच्च ब्रह्मांडवर्तिसकलभावानां संस्काराख्यसूक्ष्मरूपेण हृदयस्थत्वं सूचयति यदुच्छूनतायामेव रवमे ब्रह्मांड-दर्शनं एवं च स्वमस्थब्रह्मांडं प्रति हृदयस्थसंस्कारस्यान्वयव्यतिरेकेण कारण-त्वसिद्धौ ब्रह्मांडत्वावच्छेदेनैव संस्कारस्य कारणत्वं युक्तं नवीनकार्यकारणाभावे मानाभावात् गौरवाच ।

यथा पश्चात्यप्रयोगशालास्त्रिय गंधकादिद्रन्यञ्वालावलीनां वर्णक्रम-पद्धति प्रति गंधकादिद्रन्यस्यान्वयन्यतिरेकतः कारणत्वेऽत्रगते इतोऽतिदूरवर्ति-सूर्यमंडलादिष्वपि प्रयोगशालाबर्हिभूतेषु पदार्थेषु तस्सामान्यवर्णक्रमदर्शनेनैव तजातीयद्रव्यञ्वलनमपि प्रयोगसिद्धमिति कथ्यते, जडवादिनां सोयं तर्कप्रसरः जडप्रयोगशालासु दृष्टप्रयोगानुसारेण यदि ब्रह्मांडेऽपि सर्वत्र प्रसरित तर्हि मनोविज्ञानिनां दार्शनिकानां हृद्यरूपप्रयोगशालायां संपूर्णस्यापि ब्रम्हांडप्रती-कस्य तत्तदाकारसंस्कारजन्यत्वप्रयोगसिद्धस्तकः ब्रन्हांडमि बाह्यं व्याप्नुवन् कथं नाम पराह्रन्यताम् । न च जडविषयकतर्कचेतनविषयकतर्कयोः विरोध-प्रसंगे जडतर्कस्य प्रावल्यमाशंकितुं शक्यते, भोग्यजडवर्गापक्षया भोक्तुश्चेतन-वर्गस्य प्राधान्यात् तदाश्चितस्य तर्कस्य आचमनरूपपदार्थाश्चितायाः स्मृतेः क्षुते आचामदिस्यादिरूपायाः गुणभूतकमाश्चित " वेदं कृत्वा वेदिं करोती "—त्यादिश्चितिबाधकत्ववत् गुणभूतार्थाश्चिततर्कत्वाधकत्ववत् गुणभूतार्थाश्चिततर्कत्वाधकत्वस्यव प्रधानाश्चिततर्कतं चेतनाश्चितस्य तर्कस्य प्रधानस्पर्शितंवेन परिपूर्णतया व्यवस्थितत्वम् । इत्यस्या-व्यवस्थाया बुद्धिमताऽपल्यितुमशक्यत्वेन दार्शनिकसर्गिरेवात्र विजयतेतमाम् । तथा च प्रधानं परित्यज्य गुणभूतपदार्थनिष्ठाः उन्मत्ता वा गुणभूतपदार्थनमुपेक्ष्य प्रधानानुयायिनो वा उन्मत्ता इति प्रेक्षावंतः स्वयमेवावगच्छंतु ।

इदं च संस्कारजन्यत्वं प्रपंचस्य स्वमतुल्यतावादिनां श्रोतिसद्वातिनां संमतं तदेव प्राच्यदर्शनत्वेनास्माभिरत्र समुध्दियते । प्राचीनेषु दर्शनेषु वेदिस-द्वांतस्यैव सर्वापेक्षया प्राचीनत्वेन न्यायादिप्राच्यदर्शनानां च तत्रैव पर्यवसानस्य सूतसंहिताव्याख्यानादिषु प्रपंचितत्वेन न्यायाद्यन्यमतेषु शाखाचंद्रन्यायेन केषांचिद्गोणसिद्धांतानां स्वीकृतत्वेऽिप श्रोतिसद्धांतस्यैव चरमसिद्धांतत्वेन प्राच्यपाश्चात्ययोर्विवादप्रसंगे न्यायाद्यम्युपगतप्राच्यगौणसिद्धांतेषु अनुपपत्यु-द्वावनमात्रेण पाश्चत्यानां कृतकृत्यता न संभवति किंतु न्यायादिचरमताप्तर्यविषयीभूतश्रोतिसद्धांतखंडनं एव प्राचीनमतपराजयः संभावियतुं शक्यते । स च यथा न संभवति तथाऽस्मिन् प्रबंधे स्थले स्थले समुपपादियण्यामः । तथा च जगतः संस्कारजनत्वं स्वमतुल्यतयाऽिष संभवत्येव, अत्र च अद्वैतनां लेखेन्यः समुध्दृत्य प्रदर्शते । तथा हि स्व. पूज्यपाद धर्मप्राण लक्ष्मणशास्त्री द्वाविडप्रणीतखंडनखंडखाद्यभूमिकायाम्—

' श्रुतिशतसमिभाग्यं अद्वैतं परिभावियतुं ये प्रवर्तेते तान् प्रतीदमुच्यते आगम्यतां क्रियतां च शास्त्रार्थिवचारः अद्वैतमेव तत्त्वमुतद्वैतिमिति । याभिरुप-पत्तिभिभवता वस्तुसिद्धिरभिलुष्यते ताभिरेव ता एव युक्तयो बाधिता भवंतीति नास्माभिः किंचिदभिनवमुद्धाव्य युक्तिजालं किंचित्स्थाप्यते दृष्यते वा तथा हि--

घटपटादीनां सत्यत्वं केन प्रमाणेनावगतम् १ प्रत्यक्षेणेति चेत् , तर्हि स्वाप्तपदार्थस्य शुक्तिरजातादेश्व सत्यत्वापितः, प्रत्यक्षेण प्रतीयमानत्वाविशेषात्। अबााधितप्रत्येक्षेणेति चेत् घटपटादिप्रत्यक्षस्य बाधो नास्तीति कथं त्वया ज्ञातम् ? अनुपल्रब्या तत्सिद्धिरिति कथनं अप्रयोजकं, यतः स्वामपदार्थानां जागृतिबाधवत् जाग्रत्कालिकानामपि स्वप्ने बाधस्योपलब्धेः, एवं स्थिते परस्परस्य परस्परावस्थायां बाधितत्वात् कतरत्सत्यं कतरद्वाधितमिति नैव व्यवस्थापयितुं शक्यं, यादशो हि इंद्रियान्वयन्यतिरेको न्यावहारिकघटादिप्रत्यक्षे समुपलभ्यते तादश एव स्वामप्रत्यक्षेऽपि । तत्रेंद्रियाद्यभावात् इंद्रियान्वयन्यतिरेकज्ञानस्य चक्षुषा गजं पश्यामीस्याद्यनुभवस्य च भ्रांतत्विमिति चेत् जाग्रइशायामपि तादशप्रस्यस्य भांतत्वं नास्तीत्यद्याप्यासिद्धेः । तथापि स्वप्ने सर्वमेव तदानीं कल्प्यते नतु पूर्वसिद्धं किंचिदस्ति परंतु किंचित्पूर्वसिद्धत्वेन दश्यते किंचित्तु तदानीमेवोत्पद्यमानत्वेन, तथा क्षणमात्रस्वप्नेऽपि युगाद्यात्मकः कालोप्यातिवाहित इति भवति बुद्धिः, नतु युगाद्यात्मककालस्य वस्तुत्वं तद्भदेव जाग्रत्यपि। प्रत्याभिज्ञानुभवादिकं स्वप्नेऽपि समानं, दिनांतरीयस्वप्नानुभूतस्य दिनांतरीयस्व-प्रेऽप्यवभासदर्शनात् , जाप्रत्कालीनानुभवजन्यसंस्कारसहकृतमनोजन्यत्वास्त्रप्र-प्रदर्शनस्य भ्रांतत्वमिति चेत् । स्वमानुभवजन्यसंस्कारसहकृतमनोजन्यानुभव-विषयत्वं जाम्रत्पदार्थस्येति वैपरीत्यमेव किं न स्यात्। तस्मात् प्रतीत्य-विशेषात् स्वाप्तपदार्थभ्यो न जाग्रत्पदार्थस्य कश्चिद्विशेष इति सिद्धं सकल्स्य अनिर्वाच्यत्वम् । न चैवं रीत्या शून्यवाद एव प्रसज्येतेति वाच्यम् । अनृत-स्यापि सत्याधिष्ठानतया सत्याभावे अनृतस्याप्यनुपपत्या तदंगीकारात् । तचा-धिष्ठानं स्वयं प्रकाशज्ञानमेव निरपेक्षांसिद्धिकम्, । तस्मिन्नेव सर्वपदार्थाः कल्पिताः एकस्मिश्चंद्रेऽनुभूयमाने तस्मिन् कल्पितोऽपरश्चंदमा इव प्रतिभासंते

न हि केनापि वादिना ज्ञानाद्भिनं विषयं तात्विकं खीकुत्य तस्य प्रकाश उपपा-दियतुं शक्यते तथा सित अन्यत्वाविशेषात् घटज्ञाने पटस्य प्रकाशप्रसंगात् । सहभावात् प्रकाशमानताभ्युपगमेऽपि तुल्यो दोषः । न च सहभावोऽपि ज्ञानार्थयोः सर्वत्र संभवति अतीतानागतविषयकज्ञानेषु सहभावासंभवात् । न च ज्ञानार्थयोवीस्तवतादात्म्यं, अर्थानां विच्छिन्नस्थूलदीर्धत्वेनानुभूयमानत्वात् , प्रकाशस्य चांतरत्वास्थूलत्वादिरूपेण प्रकाशनात् तत्पारिशेष्यात् , ज्ञाने विष-याणां कल्पित्वात् , कल्पितस्य च अधिष्ठानात्पृथक् सत्वाभावेन कल्पिततादा-त्म्यवत्वात् , प्रतीतिरित्येव स्वीकर्तव्यम् ।

एतेन यदि सर्वमेवासत्यं तथा सति-

आशामोदकतृप्ता ये ये चोपार्जितमोदकाः । रसर्वीर्यविपाकादितुल्यं तेषां प्रसज्यते ॥

इत्येतदिप बाधकं निरस्तं । उभयत्रापि ज्ञानवैलक्षण्यात्, यत्र हि मोदकलाभज्ञानमनाहार्यं भवित तत्र रसवीर्यादिकं फलं, यत्राहार्यं तज्ज्ञानं तत्र न ताहरां फलं। किं च फलमि न वास्तवं, किंतु ज्ञानरूपमेवेति। कुत्रचित् तदानीतनबाधविषयज्ञानरूपं फलं, कुत्रचिद्यावहारिकबाधिवषयज्ञानरूपं फलमिति नाव्यवस्था, वर्णेषु न्हस्तवदीर्घत्वादीनां समारोपितत्वाविशेषेपि नग इति उच्चारितात्राग इति गृहीतात्पदात् गज्ज्ञानं जायमानं भ्रांतिरूपं भवित, नतु नाग इत्युच्चारितात्, तथव श्रोत्रेण गृहीतात् पदात् जायमानं भ्रमात्मकं भवित तत्कस्य हेतोः ? नायं नियमः यत्सर्वस्मादसत्यात् सर्वस्य सत्यस्य वा जन्मेति, किंतु यतः कुतश्चिदसत्यात् यस्य कस्य चिदसत्यस्य सत्यस्य वा जन्मेति। वस्तुतो न च किंचित्कुतश्चित् उत्यद्यते नीरुध्यते वा, केवलं ज्ञान-मात्रमेव तथा भवित व्यवहारश्च, तथा च श्रुतिः —

न निरोधो न चोत्पत्तिः न बद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुनेवे मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ इति । युक्तं च एतत् सर्वस्यापि वस्तुनः साध्यसाधनात्मकत्वेन प्रतीयमान-तया तिसद्धौ मूळं कार्यकारणभाव एव । तिस्मन् सिद्धे कार्यविशेषेण कारण-विशेषोऽनुमातव्यः यथा घटादिकार्यं दंडादिजन्यं तथेव प्रपंचोपि कार्यत्वात् केनचित् कारणेन जनित इति, किं तत्कारणमिति जिज्ञासायां परमाणवो वा प्रधानं वा खखसमयानुसारेण कारणं किमपि व्यवस्थापयंति वादिनः, तद्बळेन च सर्वस्य जगतः सत्यत्वमपि साधियतुं समीहते । यद्यसदेतत् स्यानकारणा-न्वयव्यतिरेकावृपपद्येयाताम् । तथा सत्याशामोदकतृप्तानां उपार्जितमोदकानां च रसर्वार्यिविपाकादिसाम्यप्रसंगात् असत्यत्वविशेषात् अतो यदभावादाशामोद-कस्यार्थिक्रियाकारित्वं तिकिचिदेष्टव्यम् । तिकिमिति चेत्सत्यत्वमेवेति अभिमानो वादिनाम् । परमसौ विचारं न सहते—

प्रथमतो दृष्टांतमेवालोचयंतु भवंतः दंडघटयोरेव कार्यकारणभावः तात्विक उत न्यावहारिक इति, न तावत्प्रथमः कल्पो युज्यते, कारणत्वस्य निवंक्तुमशक्यत्वात् तथाहि निं तावत्कारणत्वं, यदि पूर्ववृत्तित्वं, तदा चिर-ध्वस्तस्यापि कारणत्वापत्तिः, अञ्यवहितपूर्वभावित्वं चेत्, दंडत्वस्यापि श्वाश्रया-श्रयत्वसंबंधेन नियताव्यवहितपूर्ववृत्तित्वसत्वात् कारणत्वप्रसंगः । यद्यनन्यथा सिद्धत्विविशेषणान्नेषदोषः इत्युच्यते, तदिप न युक्तम् । यतः किंतदनन्यथा-सिद्धत्वं येन दंडत्वादीनां कारणत्वं निवार्येत, अवश्यकुप्तनियतपूर्ववृत्तिभिन्नत्वं इति चेत्, तर्हि दंडवत् दंडत्वस्यापि संबंधविशेषणावस्यकुप्तत्वस्य सत्वात् अनन्यथासिद्धत्वापात्तिः । यत्तु अवस्यकुप्तत्वं नाम छघुत्वं तथा च छघुनियत-पूर्ववृत्तिभिन्नत्वमनन्यथासिद्धत्वं पर्यवसितम् । छघुत्वं च शरीरसंबंधोपस्थिति-कृतं त्रिविधम्, तथा च दंडत्वस्य कारणत्वे दंडघटितपरंपरायाः संबंधत्वकल्पने गौरवात् । दंडस्य कारणत्वे संबंधांशे लाघवाच तदेवकारणं, दंडत्वं चान्यथा सिद्धमिति तन्न, परस्पराश्रयेण कारणत्वपदार्थापरिज्ञानप्रसंगात् । तथा हि लघुत्वगुरुत्वयोः परस्परप्रतिद्वंद्वेन परस्परप्रहसापेक्षतया गुरुत्वप्रहे सति लघुत्व-प्रहः तद्ग्रहे गुरुत्वप्रहः । तथा च तयोरेव निर्वचनासंभवात् कथं तद्घटि-तकारणताप्रहसिद्धिः । किं च गुरुभूतस्य संबंधस्य धर्मस्य वा कारणतावच्छे-

दकत्वे किं निहेछन्नं । न हि गौरवज्ञानस्य कारणतावच्छेदकत्वग्रहप्रतिवंधकत्वं सुराकं वक्तुं । तदभावाद्यनवगाहित्वात् । तदभावाद्यनवगाहित्वेऽपि मणि-मंत्रादिन्यायेन प्रतिबंधकत्वांगीकारे, तर्हि प्रतियोगितावच्छेदकत्वसाध्यतावच्छे-दक्तत्वादिकं गुरुभूतस्य न स्यात् । अंगीक्रियते च । अतएव दीधितिकोरण अपि " गुरुरिप धर्मी भवति अवच्छेदकः प्रतियोगिताया " इत्युक्तम् । अतः पारिशेष्यादेतदेव वक्तव्यमापतित,यत् यत्र यत्र प्रामाणिकानां कारणत्वेन व्यवहारः तदनन्यथासिद्धम् । यत्र च न कारणत्वव्यवहारः तदन्यथासिद्धम् । यत्र च न कारणत्वव्यवहारः तदन्यथासिद्धमिति । लोके चैतादशो अनुभवः यस्रघोः कारणत्वसंभवे न गुरोस्तदंगीक्रियते इति चेत् । तत्रैव नियामकं किमिति पृच्छयते । तत्र व्यवहार एव प्रामाणिकानां नियामक इत्युक्तौ, घट्टकुद्दीप्रभातवृत्तांतापातः । तथा च कारणत्वस्य व्यवहारमात्रसिद्धत्वे व्यवहारस्य वास्तवत्वनिरपेक्षत्वेन देहात्मव्यवहारे कृप्तत्या तद्वदेव दंडादाविप

वस्तुतः कारणत्वाभावेऽपि भ्रमेणैव व्यवहारसंभवान्न वास्तवत्वं, इति व्यवहारमात्रीसद्धकार्यकारणभाववछेन जगत्सख्यव्वादिभिः कथं स्पपादिमिति कृतिधिय
एव विदांकुर्वंतु । अबाधितव्यवहारबछात् सख्यविसिद्धिरिति चेत्। अग्रे बाधो
न भविष्यतीति निश्चेतुमशक्यत्वात, प्रतीतेश्च भ्रांताया अपि संभवात्, यथाह
खंडनकारः "को ब्रृते सती नाम सावित्रिः अस्त्येव कुतो न स्यात् " इति ।
तस्मात् त्वयापि यौक्तिकविमर्शं विवर्जयित्वा अनादिपरंपराप्रसृतव्यवहारसिद्धान्येव वस्तुजातानि, न वास्तवानीत्यकामेनापि स्वीकर्तव्यम् । एतदेव किछ
ब्रह्मवादिभिव्यावहारिकत्वं नाम सर्वेषु वस्तुष्वंगीक्रियते, यद्विचारे क्रियमाणे
सिकताकूपविसरणवत् नक्तचिदिप पक्षे व्यवतिष्ठंते पदार्थाः व्यवहारविषयितां
तु नातिक्रामंति । यथाह खंडनकारः "कतिपयप्रतिपतृकतिपयकाछतथात्वावगमादेव प्रायेण छौकिको व्यवहारः प्रतीयते । तादशश्चायं सत्वावगमः कथांग
एतत्तदुच्यते व्यवहारिकीं प्रमाणादिसत्तामादाय विचारारंभ " इति । यथाहि
स्वप्रसमये नानाविधा द्रष्टृदश्यादयः पदार्थाः तदानीमबाधितत्वेन व्यवहारविषया
अपि वस्तुसंत इति न वक्तुं शक्यते । जाग्रत्काछे तेषामुपछव्य्यमावात्, तद्वदेव छौकिकपदार्था अपि व्यवहारविषया भविष्यति । न च वस्तुसंतोऽपि न

च व्यवहारिवषयतायां वस्तुसत्ताप्रयोजिका अवस्तुनापि देहात्मत्वादिना लोक-यात्राया अवाधितायाः प्रतीयमानत्वादिति ।

श्रीमद्विद्यारण्यकृतबृहदारण्यकवार्तिकसारेऽपि अव्याकृतस्य जगद्भेतुत्व-वर्णनावसरे जगतः संस्कारजन्यत्वं निरणायि तद्यथाः—

तस्य जगत्कारणतोच्यते--

कार्यकारणभावोऽयं शास्त्रयुक्तिपरीक्षणे । अविचारितरम्यः सन् भासते न तु वास्तवः ॥ नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः । इति वास्तवजनमादिशास्त्रेणैव निराकृतं ॥ यक्तिस्थान्योन्यसापेक्षा कर्मकारणतेत्यसौ । मृषा त्वमाह न तयारेकेस्याप्यनपेक्षता ॥ नाकुर्वत्कारणं दृष्टं कार्यापेक्षा ततो भवेत् । कार्यं नाक्रियमाणं स्यात्कारणापेक्षता ततः ॥ अविचारितरम्यश्चेदज्ञानात्मैकहेतुकः । स्यात्वप्रस्य तथा दष्टा ह्यज्ञाना (ता) त्मैकहेतुता ॥ अज्ञातात्मातिरेकेण ब्रुवता जगतो जिनं । सम्यग्ज्ञानानमुक्तिः स्यान ज्ञानं वस्तुनुकाचित्॥ कर्मभ्योपि न मुक्तिः स्यात्कर्मापि न हि वस्तुनुत्। अतो ज्ञानेन मुक्तयर्थमज्ञाताऽत्मैकहेतुता ॥ प्रथते वैश्वरूपेण यस्याविद्येव सर्वदा । तन्मतेऽनुपपत्तिः का नोपलभ्यो भ्रमः कचित् ॥ वस्तुवृत्तमपेक्ष्यैतन खतः परतः स्तमः। तजं वाऽतस्तमो दृष्ट्या तमस्तत्कार्ययोर्वेचः ॥ तमश्चिदाभासयुतं नाज्ञासिषमितीक्षणात् । जगजन्मस्थितिलयास्तस्मादज्ञात आत्मनि ॥

तमः प्रधानक्षेत्राणां चित्प्रधानश्चिदात्मनां । परः कारणतामेति जडाजडभिदा ततः॥ तत्तत्याणिकतस्तिस्तिभीवनाज्ञानकर्मभिः। देवतिर्यङ्मनुष्यादिवैचित्र्यमुपपद्यते ॥ तत्तजात्यदिते शिल्पे भूयोऽभ्यासेन वासना । कौशल्यातिशयारव्या या भावनेत्युच्यते हि सा॥ शास्त्राभ्यासोपासनादिज्ञानमप्यभिधीयते। विहितं प्रतिषिद्धं च कर्म तैश्वित्रजन्मता ॥ यद्याकृतगतं किंचिद्धावना हि समीक्ष्यते । तदव्याकृतरूपेण स्थितं व्यज्येत सप्टये ॥ तद्यक्तौ तम एवात्र निमित्तं लोकदृष्टितः। लोके कार्यविशेषाणां तम एव नियामकं ॥ तैलशक्तिस्तिले कस्माद् दिधशक्तिः कुतो न हि । इति पृष्टो न जानामीत्येवं प्रत्युत्तरं वदेत् ॥ तमस्तनियामकमिति तेनोदितं भवेत् । प्रष्टश्चतावता तत्र गच्छत्येवपि पृच्छिषा ॥ वक्तुर्ना कौरालं राक्यं कुरालैश्वेवमीरणात्। अन्यथा कुशलंभन्यरत्वमेवात्रोत्तरं वद ॥ सर्वेषामविवादेन प्रश्लोत्तरतया वचः । यद्विभाति नतद्भातं किंतु वस्तु तथैवतत् ॥ प्रश्नविश्रांतिभूमित्वाचोचं तमसि नोदियात्। नं बुद्धिमंतः पृच्छंति न जानामीति वादिनं ॥ प्रच्छंत्यभिज्ञमिति चेद्वाढं न विवदामहे । चोद्यान हत्वमज्ञाने तावता वारितं कथं।। न चोदनीयं अज्ञानं दुर्घटानां नियामकं । इति छौकिकदृष्टांतासिद्धं वेदविदां मतं॥

इतिवृत्तम्-परिश्चिष्ट (अ)

एवं तर्हि न जानामी स्येवं सर्वत्र भण्यतां। कि सृष्ट्युक्तिश्रमेणिति वक्षि चेदुत्तरं शृणु ॥ साक्षान्नियामकं यत्र तमस्तत्रैव तद्बुवे । अन्यद्द्वारा नियमने वक्तव्यं द्वारमापतेत् ॥ परमाणुर्मूळहेतुरिस्येवं बणुकादिकं। ननूच्यते यथा तद्वद्विम सृष्टिं तमःकृतां ॥ तमो नियामकं चेत्तत्किमंतर्यामिणेति चेत्। अंतर्यामित्वशक्तियां सैवतत्तम उच्यते ॥ ईशस्तमः प्रधानः सन्नियम्यानां नियामकः । तेष्वेवचित्प्रधानः सन् साक्षितां प्रतिपद्यते ॥ तमोनियमिताः कर्मभावनाद्यास्तमस्त्रिनं । जीवं बध्नंति नो मुक्तं कारणानतिवृत्तितः ।। यथा कार्यो घटः कोऽपि मृत्तिकां नाति वर्तते । तमःकार्यं भावनादि नातिक्रामेत्तमस्तथा ।। जल्रका व्रणगा रक्तं दुष्टमेव विवेचयेत् । तथात्मगतकर्मादिलब्धात्मानं विचितयेत्।। स्वकर्त्रहपमोगार्थं कर्माव्याकृतरूपकं। व्यक्तीभवत्प्रयुक्तेतद्भूतभौतिकदृग्जगत् ॥ अव्यक्तजगतो व्यक्तीरंतर्यामिप्रभावतः । भवंति देशकालादिव्यवस्थां प्रतिपद्यते ॥ यथा नियमयस्येष तथा भवति तज्जगत । नियंता सर्वजगतो नान्यः संभाव्यते प्रभोः ॥ न चोपलब्धुमस्माभिः शक्यते परमेश्वरः । अतो विमुच्य चोद्यानि श्रूयतां महिमैश्वरः ॥ अंतर्यामि यदा कर्म नोद्बोधयति संहतिः । तदाभवेद्यदोद्घोधं कुर्यात्सृष्टिस्तदा भवेत् ॥



अस्य हैतेन्द्रजालस्य यदुपादानकारणं।
अज्ञानं तदुपाश्रित्य ब्रह्म कारणमुच्यते ॥
तादृशो ब्रह्मणोऽकस्मात्कर्मोद्वोधे प्रवर्तकं ।
तथा कर्मोपसंहारे नेश्वरोन्यदपेक्षते ॥
वाति वायुर्यथाऽकस्मादकस्माचोपशाम्यति ॥
वाति वायुर्यथाऽकस्मादकस्माचोपशाम्यति ॥
वत्थास्यामि मुहूर्तेऽहं ब्राह्म इत्यभिसंदधत् ॥
उत्थास्यामि मुहूर्तेऽहं ब्राह्म इत्यभिसंदधत् ।
शयानो नियमेनैव तदोत्तिष्ठेत्तथेक्ष्यतां ॥
संहरन्नभिसंधत्त इयत्तां संहतेस्ततः ।
तावत्याः संहतेरते सिस्धोदेति सत्वरं ॥
अज्ञानमात्रोपहितं ब्रह्माकाशस्य कारणं ।
आकाशोपहितं वायोर्वायूपहितमचिर्षः ।
अग्निनोपहितं चापां जलेनोपहितं मुत्रः ॥
एवमुत्तरकार्येषु ततः सर्वकृदुच्यत ॥

न चेदं भ्रमितव्यं वैद्यकमतं सांख्यमतानुयाय्येव, अपि तु तदपि वेदांतमतमेवानुसरित । तथा हि चरकसंहितायां कित्धापुरुषीयाध्याये प्रतिपादितम् —

> तिसम्बरमसंन्यासे सम्र्लाः सर्ववेदनाः । असंज्ञाज्ञानिवज्ञानिनृत्तिं यांत्यशेषतः ॥ अतःपरं ब्रह्मभूतो भूतात्मा नोपलभ्यते । निसृतः सर्वभावेभ्यः चिह्नं यस्य न विद्यते ॥ गतिर्ब्रह्मविदां चात्र नाज्ञस्तज्ज्ञातुमर्हति ।

भावप्रकाशे सृष्टिप्रकरणे---

आत्माज्योतिश्चिदानंदरूपो निसश्च निस्पृहः।

निर्गुणः प्रकृतेयोगात्सगुणः कुरुते जगत् ॥ आत्माऽनादिरनंतश्चाव्यक्तो वक्तुं न शक्यते । चिदानंदैकरूपोयं मनसापि न गम्यते ॥ एवं भूतोऽपि जगतो भाविनीबळवत्तया । अविद्यासीकृते कर्मवशो गर्भे विशस्यसौ ॥

इति कथनाच वैद्यकमतं न सांख्याद्यनुयायि किंतु वेदांतमंत्रशास्त्रादि-मतानुयाय्येव, तन्मत एवात्मनः चिदानंदरूपत्वात् ब्रह्मभावसंभवाच । सांख्यमते चिद्रुपत्वस्य संभवेऽपि आनंदरूपत्वस्य कथमप्यसंभवात्, अतएव सुश्रुतटीका-कारादिभिः सर्वपारिषदत्वं आयुर्वेदस्योक्तम्, काणादसांख्यादितर्काणां परस्पर-प्रतिहृतत्वेन सर्वपारिषदत्वासंभवात् । वेदांतमतस्य तु विश्वमायिकत्वाभ्युपगंतुः प्रपंचविषये सर्वविधतर्कावकाशदातृत्वेन तैरयं न विरुध्द्यते इति न्यायेन सर्वपारिषदत्वोक्तेः । तथा च पंचमहाभूतानां मूळं खरूपं संस्कारा एवति वेदांतसिद्धांतकथनं वैद्यकर्तृणामिप संमतमेव अतएव ऋग्वेदस्यायुर्वेदोपवेदोपांग-मथ्ववेदस्येत्यादिना चरणव्यूह्सुश्रुतादिषु वैदिकसिद्धांतिनष्टतया आयुर्वेदस्य तदंगत्वकथनमिप साधु संगच्छते, तात्मद्धं वेदांतप्रक्रियानुसारेण पंचमहाभूतानां स्वरूपं गंधादिविषयकसंस्कारा एवेत्यळमितिविस्तरेण।

अथ गुणाः कथ्यंते-तत्र गुणास्तावत् चरकेण एवं निरूपिताः---

सार्था गुर्वादयो बुद्धिः प्रयन्नांताः परादयः । गुणाः प्रोक्ता इति । तत्र अर्थस्तावत् शद्धस्पर्शरूपरसगंधाः पंच ।

' अर्थाः राद्वादयो ज्ञेया गोचरा विषया गुणा ' इति चरकात् । ९ते च वैरोषिकाः, यतः आकारास्यैव राद्वः प्राधान्येन, वायोरेव स्पर्शः प्राधान्येन, एवमग्नगादिषु रूपादयः, अन्यगुणानामन्यत्र उपलब्धिर्भूतांतरानुप्रवेशात् । गुर्वादयस्तु गुरुलघुशीतउष्णस्निग्धरुक्षमंदतीक्षणस्थिरसर्मृदुकिनिविशदािष्कि- लक्षक्षणखरस्थूलस्क्षमसांद्रदवा विशतिः। दीपनादीनां तु चरकसुश्रुताचार्यादिभिः



गुणविभागावसरे अनिर्दिष्टत्वान्नात्र ते विभज्यंते, एते च सामान्यगुणाः पृथिव्या-दीनां साधारणत्वात् ।

एते च "यजाःपुरुषीयाध्याये" चरकाचार्येणोक्ताः । बुद्धिप्रयत्नांताः नाम इच्छाद्देषसुखदुःखप्रयत्नाः ।

> इच्छा द्वेषःसुखं दुःखं प्रयत्नश्चेतनाषृतिः । बुद्धिस्मृतिरहंकारो छिंगानि परमात्मनः ॥

इति चरकाचार्योक्तेः । स्मृतिचेतनाधृत्यहंकारादीनां बुद्धौ अंतर्भावः । परादयः—

परापरत्वे युक्तिश्च संख्या संयोग एव च । विभागश्च पृथक्त्वं च परिमाणमथापि च ॥ १ ॥ संस्कारोऽभ्यास इत्येते गुणाः प्रोक्ताः परादयः । इत्येवमाहत्येकचत्वारिंशद्गुणाः वैद्यकशास्त्रे निर्दिश्यंते ।

अथ वैशेषिकचतुर्विशितगुणिवभागेन अस्य विरोधः कथं वारणीयः ! इतिचेदत्रोच्यते, केषांचित् गुणानामन्यतम एव अंतर्भावात् चतुर्विशितित्वं केषांचिद्विपर्ययरूपाणां गुणत्वानभ्युपगमाच । तद्यथाः—गुरुत्वं गुणः लघुत्वं तदभाव एव, न तु गुणांतरिमिति वैशेषिकप्रक्रिया । लघुत्वं गुणः गुरुत्वं तदभावः कुतो न स्यादिति विनिगमनाविरहादुभयमि गुणः इति वैद्यकन्प्रिक्रया । शितमुष्णश्च स्पर्शगुणान्नातिरिच्येते इति वैशेषिकप्रक्रिया । अत्केन्पणापक्षेपणादीनां गमनेंऽतर्भावसंभवेऽपि पृथवत्वकथनं वैशेषिकशास्त्रे ब्राह्मण-परिव्राजकन्यायेन यथा शिष्यबुद्धिवैशदार्थं, तथा शितोष्णादीनां पृथवत्वकथनं शिष्यबुद्धिवैशदार्थं चिकित्सायामुपयोगभेदाभिप्रायेण चेति वैद्यकप्रक्रियायामिप न विरोधः ।

अर्थेतेषां लक्षणान्युच्यंते । द्रव्यकमीभिन्नसामान्यवत्वमेव गुणानां लक्षणं एतावदन्यतमत्वं वा । चक्षुमीत्रप्राद्यो गुणो रूपं, रसनप्राद्यो गुणो रसः, घ्राण-प्राद्यो गुणो गंधः, त्वागिदियमात्रप्राद्यो गुणः स्पर्शः, श्रोत्रप्राद्यो गुणः शद्वः, आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वं,

आद्योर्ध्वगमनासमवायिकारणत्वं लघुत्वं, जलीयस्पर्शत्वं शीतत्वं, तेजः-स्पर्शत्वं उष्णत्वं,

> शीतस्तु ह्वादनस्तंभीमूर्च्छातृट्खेददाहनुत्। उष्णो भवति शीतस्य विपरीतश्च पाचनः॥ स्निग्धं वातहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहम्। रक्षं समीरणकरं परं कफहरं मतम्॥

मंदस्तीक्ष्णविपर्ययः । तिक्ष्णो मुखदुःखोत्पादनादिति सुश्रुतोक्तेः
मुखदुःखोत्पादनादिति अत्र चार्थोद्रष्टव्यः । तेन घाणदुःखोत्पादनाचेति
द्रष्टव्यमितिडल्हणोक्तेश्च, तीक्ष्णं राजिकामिरचादिवत् इति डल्हणाचार्योक्तेश्च
मुखनासिकाद्यविद्ध्यपकदुःखविशेषकारित्वं तीक्ष्णस्य छक्षणं
पर्यवस्यति । मुखनासिकादिपदेन च मुखनासिकादितुल्यमांसादिमृद्धवयवा
अपि अभिप्रेताः । तथा च राजिकामिरचादीनां सकछदेहांतर्वर्तिमांसादिदुःखजनकत्वेपि न क्षतिः । परुषवाय्वादेः सकछदेहव्यापकदुःखोत्पादकत्वेन
परुषत्वापरपर्यायं खरत्वमेव न तु तीक्ष्णत्वं, मुखनासिकाद्यविद्ध्यत्वद्धविश्वादकत्वेन
परुषत्वापरपर्यायं खरत्वमेव न तु तीक्ष्णत्वं, मुखनासिकाद्यविद्ध्यत्वद्धःखिवेशेषकारित्वरूपतीक्ष्णत्वमेव । न तु सकछदेहदुःखजनकत्वं इति । न परुषत्वापरपर्यायं
खरत्वं तेषां इति खरत्वतीक्ष्णत्वयोभेदिसिद्धिः । तिग्मंतीक्ष्णंखरमित्यमरकोशस्तुतीक्ष्णत्ववत्यातपेष्वेव, खरत्वमि नियतमित्यभिप्रायतया योज्यं आतपप्रकरणात् ,
किं च शमनोपायभेदादि तीक्ष्णत्वखरत्वयोभेदः सिच्चति । यथा हि राजिकामरिचादीनामितयोगे मुखादिदुःखं तिक्षणकार्यत्वात् तिद्वपरीतमंदरगुणाभिरद्धिः

शान्यति, घृतादिरूपया पृथिव्या वा। न तथा खरत्ववत्परुषवात्यादिकृतं शारीरं दुःखं। किंतु श्रक्षणेन, मृदुश्रक्षणकार्पासादियोजते सित शाम्यत्येव । तत्सिद्धं खर्विपरीतः श्रक्षणः, तीक्ष्णविपरीतश्चमंदः, वातकप्रनाशकं सत् पित्तवप्रधनद्वारा हेखनं तीक्षणं, पित्तशमनद्वारा हेखनविपरीतकार्यकारि मंदं। पित्तनैरपेक्ष्येण हेखनं खरं, पित्तशमननेरपेक्ष्येण च तादशहेखनजन्यदुःखशमनकारि श्रक्षण-

" स्थिरो वातमलस्तंभी सरस्तेषां प्रवर्तकः।

मृदुकितनो वैशेषिके प्रसिद्धो, सौम्यःस्पर्शो मृदुः, उद्देजकः स्पर्शः कितनः । वस्तुतस्तु मृदुः कितन इत्याकारकिवलक्षणप्रतीतिसिद्धजातिमत्वमेव तल्लक्षणम्। विशदः पिच्छिलविपर्ययः धूलीस्पर्शादिवत् ।

क्कदः च्छेदकरः ख्यातो विश्वदो व्रणरोपणः। पिच्छिल्रस्तंतुलो बल्यः संधानः श्लेष्मलो गुरुः॥ श्लक्ष्णः स्नेहं विनापि स्यात् कठिनोऽपि हि चिक्कणः।

तद्विपर्ययः खरः । सांद्रो द्रविषप्ययः । द्रवः क्रेटकरो व्यापी शुष्कस्तद्विपरीतकः । इति तल्लक्षणात् । सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानं, इच्छा कामः,
क्रोधो द्वेषः, कृतिः प्रयत्नः, सर्वेषामनुकूळवेदनीयं सुखं, प्रतिकूळवेदनीयं दुःखं,
परापरव्यवहारासाधारणकारणे परत्वापरत्वे, ते द्विविधे दैशिके काळिके च,
दूरस्थे दिक्कृतं परत्वं, समीपस्थे दिक्कृतमपरत्वं, ज्येष्ठे काळकृतं परत्वं, किनष्ठे
काळकृतमपरत्वं, देशकाळवयोमानपाकवीर्यरसादिषु परापरत्वे इति चरकाचार्यः ।
अस्यार्थः परत्वं प्रधानत्वं, अपरत्वं अप्रधानत्वं, तस्य विवरणं देशेत्सादि । तत्र
देशो मरुः परः, आनूपो अपरः, काळो विसर्गः परः, आदानमपरः, वयस्तारूण्यं परं, अपरिनतरत्, मानं च शरीरादेर्यथोक्तं परं, तदन्यत् अपरं,
पाकवीर्यरसा ये यस्य योगिनः ते तस्य पराः, अयोगिनस्वपराः, आदिग्रहणात्
प्रकृतिबळादीनां ग्रहणं । किंवा परत्वापरत्वे वैशेषिकोक्ते क्षेये । तत्र दूरस्थे

देशिकं परत्वं, समीपस्थे दैशिकं अपरत्वं। एवं जेष्ठे कालकृतं परत्वं, किन्छे कालकृतं अपरत्वं। वयः प्रभृतिषु परत्वापरत्वं कालदेशकृतमेवोपचिरतमिभिप्रेतं गुणे गुणानंगीकारात्। युक्तिश्च 'योजना यानुयुज्यतः' इति चरकः। योजना दोषाधपेक्षया मेषजस्य समीचीन कल्पना। या कल्पना यौगिकी स्यात् सा युक्तिरुचते। अयौगिकी कल्पनापि युक्तिनेचिते पुत्रे अपुत्रवत्। युक्तिश्चेयं संयोगपिरमाणसंस्काराद्यन्तर्गतापि अत्युपयुक्तत्वात्पृथगुच्यते।

संख्या स्यात् गणितं योगः सह संयोग उच्यते। इन्याणां इन्द्रसर्वैककर्मजोऽनिस्य एव च॥

बहुकर्मजसंयोगे। वैशेषिकैनीमीक्रियते इस्यन्यदेतत् ।

विभागस्तु विभक्तः स्यात् वियोगो भागशो ग्रहः । पृथक्त्वं स्यादसंयोगो वैलक्षण्यमनेकता । परिमाणं पुनर्मानं संस्कारः करणं मतम् ॥

करणं गुणान्तराधायकत्वमित्यर्थः संस्कारो गुणान्तराधानमुच्यते इति चरकात्।

भावाभ्यसनमभ्यासः शीलनं सततिऋया ॥

अयं च संयोगसंस्कारविशेषरूपोऽपि विशेषचिकित्सोपयुक्तत्वात् पृथगुच्यते ।

अथैतेषां गुणानामाधारभूतद्रव्यनियम उच्यते । रूपं पृथिव्यप्तेजोवृत्ति, रसः पृथिवीजलवृत्तिः, गंधः पृथिवीमात्रवृत्तिः, स्पर्शः पृथिव्यप्तेजोवायुवृत्तिः, शद्धः पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशवृत्तिः, न च जलस्य रसवत्वे किंप्रमाणं, वैद्यके पृथिव्याद्यसंस्पृष्टस्य तस्य अव्यक्तत्वकीर्तनादिति वाच्यम् । अव्यक्तत्वं हि न प्रसक्षाविषयत्वं अपि तु प्रसक्ष-विषयरसत्वसामान्यमात्रवत्वं तथा च जलादाविष स्वादापरपर्यायः सः अनुभूतसिद्ध एव पिपास्नां, न तु तदवातर-जातिर्मधुरस्वादिरूपा तथा हि—



पिपासुता शान्तिमुपैति वारिणा । न जातु दुग्धान्मधुनोऽधिकादपि ॥ अपां हि तृप्ताय न वारिधारा । खादुः सुगंधिः खद्वते तुपारा ॥

इत्यादयः कन्यनुभवाः स्वादास्वादिवषयका उपपद्यन्ते । अत एवोक्तं चरकटीकायां सूत्रस्थाने २६ तमे अध्यायेः—

" अन्यक्तत्वं च रससामान्यमात्रोपछन्धिः मधुरादिविशेषशून्या, सा च जले स्यात् । यत् उक्तं जलगुणकथने सुश्रुते '' न्यक्तरसता रसदोष इति । इहापि च अन्यक्तरसं च इति वक्ष्यति लोकेपि चान्यक्तरसं द्रन्यमास्ताद्य वक्तारो वदन्ति जलस्येवास्य रसो न कश्चिन्मधुरादियुक्तः '' इति विशेषमधुरा- चनुपलन्धिश्चानुद्भूतत्वेन यथा दूरादिवज्ञायमानविशेषवर्णे वस्तुनि रूपसामान्य- प्रतीतिर्भवति न शुक्कत्वादिविशेषबुद्धिरिति, तथाऽनुरसेऽन्यक्तीभावो भवति इत्यादि ''

न च तत्र रूपवत्वे कि प्रमाणं इति वाच्यम् चक्षुर्प्राह्मात्वस्यैव प्रमाण-त्वात्, तस्य रूपरहितत्वे सजातीयाकर्षणनियमानुसारेण चक्षुर्प्राह्मत्वानुपपत्तेः। न च गगने कथं चक्षुर्प्राह्मत्वमिति वाच्यम्। तस्य पांचमौतिकत्वेन रूपवत एव चक्षुर्प्राह्मत्वात्। जलादीनां कुतो न गंधवत्वमिति विचारस्तु न्यायवैशे षिकग्रंथे विस्तरतो द्रष्टव्यः नात्रोच्यते विस्तारमयात्। गुरुत्वं पृथिवीजलवृत्ति, सुश्रुतेन द्रव्यविशेष'विज्ञानीये' अध्याये—तथोक्तत्वात्, तत्कार्यस्य आद्यपतना-देस्तयोरुपलभ्यमानत्वाच्च। अतएव सुश्रुते उक्तम्—

'' विरेचनद्रव्याणि पृथिव्यम्मोगुणभूयिष्ठानि पृथिव्यापो गुर्व्यः ताःगुरुत्वादधोगच्छन्ति तस्माद्विरेचनद्रव्याणि पृथिव्यम्भोगुणभूयिष्ठान्यनुमानात्।

लघुत्वं तेजोवाय्वाकाशवृत्ति, आत्रेयभद्रकाप्यीयाध्याये चरकेणोक्तत्वात्, तत्र गुरुत्वविपरीतकार्यकरत्वदर्शनाच । अतर्वाकाशमुपक्रम्य सुश्रुते उक्तम्ः—

'' तन्मार्दवसौषिर्यलाघवकरमिति । वायुमुपऋम्य च तद्दैशद्यलाघवग्ल-पनविरूक्षणविचारणकरमिति । तैजसद्रव्यमुपऋम्य तु ऊर्ध्वगतिस्त्रभावमिति ''। शीतत्वं जलवायुवृत्ति, पृथिव्यादीनां शीतत्वं तु जलवाय्वन्यतर-संबंधादेव भवति । न च वायोरिप जलसंबंधादेव शीतत्वोपपत्तां कथं शीतत्वोक्तिरिति वाच्यम् । शीताभिर्वर्धनीयत्वेन वायोः शीतत्वोपपारात्, गोभिः श्रीणीतमत्सरित्यत्र गोदुग्धे गोत्वोपपारवत् । मत्सरं सोमं गोभिः गोजन्य-पयोभिः श्रीणीत श्रपयेदित्यर्थः । उष्णस्तेजिसः स्निग्धत्वं पृथिवीजलवृत्ति, सुश्रुतेन जलवृत्तित्वस्य द्रव्यविशेषविज्ञानीये कण्ठतः एवोक्तत्वात् । अतएव वैशेषिकाः जलमात्रवृत्तित्वं तस्योपुः । तेलादिपृथिव्यां तदन्तविज्ञलस्येव स्नेहः कार्यकारीति तन्मतम् । वस्तुतस्तु तस्य पृथिवीवृत्तित्वं वैद्यकानुमतम् । गुरुत्वस्य पृथिव्यामुक्तत्वात् " गुरुवातहरं पुष्टिश्लेष्मकृचिरपाकि च " इति परिभाषानुसारेण वातहरत्वश्लेष्मकारित्ववृष्यत्वानां लाभात्, बलावहत्वस्य च पार्थिव—द्रव्ये स्थैर्यबलगौरवसंघातोपचयकरिति सुश्रुतेन कण्ठत एवोक्तत्वात् । स्निग्धं वातहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहिमिति परिभाषया तस्य स्निग्धत्व-निश्चयात् । रुक्षगुणः तेजोवायुवृत्तिः, न चाकाशः कथं न रुक्षः अस्निग्धत्वा-दिति वाच्यम् । आकाशगुणभूयिष्ठं संशमनं इति सुश्रुतेनोक्तत्वात् ।

> न शोधयति यदोषान्समान्नोदीरयत्यपि । समीकरोति विषमान् शमनं तद्यथाऽमृता ॥

यद्द्रव्यं दोषत्रयं न शोधयित नोध्वीधोभागाभ्यामानयित समान्दोषा-न्नोदीरयित न वर्धयित शमनं तत् इति भावप्रकाशेनोक्तत्वात्, '' रुक्षं समीरणकरं परं कफहरं मतम् '' इति रूक्षलक्षणघटकसमीरणकरत्वस्याकाशेऽनुपपत्तेः ।

तीक्ष्णविपर्ययभूतो मन्दः शिथिछत्वादि पृथिवीजलमात्रवृत्तिः । वायौ आञ्चकारित्वस्य सुश्रुतेनोक्तत्वात् ।

" अचिन्त्यो हि तेजसो छात्रवातिशयेन वेगातिशय" इत्यादिना तेजसोऽपि अतिशयवेगवत्वेन आशुकारित्वात् आकाशे च क्रियाया अभावेन मंदकारित्वरूपशिथिलत्वस्य अप्राप्तत्वात् तस्मात्परिशेषात् मंदः पृथिवीजलमात्र-वृत्तिरिति सिध्यति । अतएव सुश्रुते वातप्रकृतिलक्षणेः —

" दुतगतिरटनोऽनवस्थितात्मा इति "

शीव्रक्रियाकारित्वं वायोः । तथा पित्तप्रकृतिलक्षणेऽपि " क्षिप्रकोप-प्रसाद " इति पित्तस्य तेजसः शीव्रकारित्वं, तथा कप्पप्रकृतिलक्षणे " चिर-प्राह्णीदव्वरश्चे"त्यादिना मंदकारित्वं कप्पस्य उक्त्वा—

प्रकृतिमिह नराणां भौतिकीं केचिदाहुः। पवनदहनतोयैः कीर्तिताः तास्तु तिस्रः॥ स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमायान्। शुचिरथचिरजीवी नाभसः खैर्महद्भिः॥

इस्रादिना पृथिव्याकाराप्रकृत्योरिष र्राघ्रकारित्वाभावमेव प्रस्यपादयत् । कठिनस्य अनम्रतापरपर्यायस्तब्धताकरत्वावगमात्, नम्रताया एव मृदुत्वरूप-त्वाचित्यात् । मृदुत्वं जलतेजोवाच्याकारागुणः । तत्र आकारा—जलयोः मृदत्वं कठोक्तं, मध्ययोस्तेजोवाच्योस्तु, पूर्वोक्तरीत्या युक्तिसिद्धम् । काठिन्यं च क्षिता-वेवेति कंठोक्तमेव क्षेयम् । किं च राद्वजनकिमागसहकारी स्पर्रा—विशेषः कठिनः स च वंराद्वयविभागात् चटचटाराद्वे विभागसहकारिभूतः दृष्टः, स च क्षितावेवेति । पिच्छिलगुणः जलमात्रवृत्तः, चरकसुश्रुताभ्यां तथोक्तेः । विश्वदस्तु इतरभूतचतुष्टयवृत्तः पृथिवीतेजोवायुषु चरकण, तेजोवाच्यादिषु च सुश्रुतेन तथाक्तेः । श्रुक्तणः जलाकारावृत्तिः । आकारो चरकसुश्रुताभ्यां कंठोक्तः, जलेपि आदर्शादिवत् समतलत्वदर्शनात् युक्त्युन्तेयः । खरस्तु पृथिवीतेजोवायु-वृत्तिः चरकसुश्रुताभ्यां तथोक्तेः । स्थूलः पृथिवीमात्रवृत्तिः चरकसुश्रुताभ्यां तथोक्तेः सूक्ष्मस्तु तदितरचतुष्टयवृत्तिः तेजोवाच्याकारोषु चरकसुश्रुताभ्यां तस्य कंठोक्तात्वात् । देहस्य सूक्ष्माच्छिदेषु विशेषः स सूक्ष्म उच्यते । इति लक्षणेन तस्य तत्रोक्त्रयत्वात् । द्रवविपरीतस्य सादस्य अद्रेण निविडावयवसंयोगेन सहवर्तते तत् साद्रं इत्यर्थकत्वे पृथिवीमात्रवृत्तित्वं । ग्रुष्क इत्यर्थकत्वे तु जलातिरिक्त-तत्त् साद्रं इत्यर्थकत्वे पृथिवीमात्रवृत्तित्वं । ग्रुष्क इत्यर्थकत्वे तु जलातिरिक्त-



भूतचतुष्टयवृत्तित्वोपलिब्धः । पृथिव्यादौ तु पंचीकृते तदन्तर्गतजलस्येविति वैद्यकाभिप्रायः ।

"खरद्रवचलोष्णत्वं भूजलानिलतेजसाम्" इति वाग्भटोक्तेः करकायां द्रवत्वानुपल्लिधस्तु तस्याः पांचभौतिक्याः पार्थिवभागोद्भवादेव । द्रवत्वदशायां तु वक्ष्यमाणचारणिक्रयान्यायेन पार्थिवभागस्य जलभिक्षितत्वात् काठिन्यानु-पलंभः । यतु—

"अपां संघातो विलयनं च तेजःसंयोगात् " इति वेशेषिकस्त्रमुप-न्यस्य विलयनं द्रवत्वं तेजःसंयोगाद्भवति इति व्याख्याय जलीयद्भवत्वमपि नैमित्तिकमेव, सांसिद्धिकत्वकथनं तु खल्पतेजःसंयोगसाध्यत्वाभिप्रायेणेति केषां-चित् कथनं, तन्न । विलयनशद्धस्य प्रलयार्थकत्वस्यापि संभवेन हिमरूपकिना-वयविद्रव्यध्वंसस्यैव तत्स्त्रार्थत्वेन आब्निष्ठद्रवत्वस्य तेजःसंयोगजन्यत्वकथनस्य वैशेषिकसिद्धान्तविरूद्धत्वात् । हिमद्रव्यं च न जलं किंतु उद्भूतपार्थिवभाग एवेति उक्तमेवेति न वैद्यककल्पनायां काश्चित् विरोधः शंक्यः । बुद्धिखदुःखे-च्छाद्वेषप्रयत्नानां लिंगशरीरगुणत्वं, कामः संकल्पो विचिकित्सा इत्यादि श्रुतेः। परत्वादीनां दशगुणानां साधारणत्वात् पंचमहाभूतगुणत्वं।

एते च गुणाः गुरुत्वादयः न हि संस्काररूपाणां पंचमहाभूतानां, तत्तत्संस्काराणां राद्वादिद्वारा पृथक् पृथक् प्रतीयमानत्वात्। यद्यपि ईश्वरीयोच्छू-नसंस्काररूपे बाह्यजगित गुणानामेकत्र सुगंधि चन्दनं गुरु इत्यादिरूपेण संकीणितया प्रतीतिभेवति । तथापि सर्वज्ञस्य ईश्वरस्य गंधः गुरुत्वात् पृथक् इति ज्ञानान्यथानुपपत्या संस्काररूपेण पृथगेव सत्वं प्रसिध्यति । तस्मात्कापि संस्काररूपाणां भूतानां न गुरुत्वादि गुणवत्वं, किन्त्च्छूनावस्थानामेव तेषां, तेषामेव च संस्काराणां तन्मात्रपदवाच्यत्वं।

पंचमहाभूतानां स्वरूपं गुणाश्च निरूपिताः । इदानीं धर्मा निरूप्यन्ते । तत्र तत्त्वक्षान्यतमत्वादिधर्माणामनन्ततया व्यरहेतुत्वव्वरनाशकत्वादि-

चिकित्सोपयोगिधर्माणां चात्र निरूपणे बहुविस्तरप्रसंगात् प्रकरणप्राप्त-पंचमहाभूतविवेकोपयोगपर्याप्तधर्ममात्रत्वं अत्र निरूप्यते । स च धर्मः द्विविधः साधर्म्यं वैधर्म्यं च तत्र पृथिवी-जलादिसाधर्म्यस्य पृथिव्याद्यैकैकपक्षकपृथिवी-जलातिरिक्तभूतत्रयमेदसाधने अन्वयीहतुतया उपयोगः । यदुक्तं यस्य साध-र्म्यवैधर्म्यमितरस्य तदितिन्यायेन सर्वं साधर्म्यं वैधर्म्यरूपमेवेति न तस्य पृथक्-प्रयोजनं अत्र चिन्तयामः । पृथिव्याद्येकैकगतं इतरवैधर्म्यं तु लक्षणिमिति उच्यते । तस्य तक्षक्षस्यपक्षकेतरभेदसाधने व्यतिरेकिहतुतेति ध्येयम् ।

तत्र पंचानामपि भूतानां शद्धः, परापरत्वे, युक्तिः, संख्या, संयोग-विभागो, पृथक्त्वं, परिमाणसंस्काराभ्यासाश्च एकादश समानधर्माः ।

अर्थ पंचधा चतुगुणीः।

तेषु पृथिव्यप्तेजोवायूनां चतुर्णां स्पर्शः समानो धर्मः । पृथिव्यप्ते-जआकाशानां चतुर्णां रूपामावसामानाधिकरण्यविशिष्टानां स्पर्शशीतत्वरूक्षत्व-खरत्वानामभावः, साधर्म्यम् । आप्तेजोवाय्वाकाशानां गंधाभावः, । सूक्ष्मत्वं, स्थिरत्वाभावः, कठिनत्वाभावः ।

निबिडसंयोगात्मकसांद्रत्वाभावश्च, सरत्वं, मृदुत्वं, समानधर्माः ।

पृथिवीतेजोवाय्वाकाशानां चतुर्णां पिच्छिल्खामावः, द्रवत्वामावः, विशदत्वं, शुष्कत्वरूपसांद्रत्वं, चत्वारः समानधर्माः ।

अथ त्रिगणादश ।

तत्र पृथिव्यक्षेत्रसां रूपं साधर्म्यं । पृथिव्यव्वायूनां अनुष्णस्पर्शत्वं । पृथिव्यवाकाशानां आशुकारित्वविपरीतमन्दत्वम् , रुक्षत्वाभावश्च । अप्तेजोवा-यूनां गंधाभावविशिष्टस्परीवत्वं, उष्णशीतान्यतरवत्वम् । शीतस्पर्शपदेन शातत्वतदभिवर्ध्यत्वएतदन्यतरत् विवक्षितं तेन वायौ नाव्याप्तिः ।

आप्तेजआकाशानां वाय्ववृत्तिसस्वस्क्ष्मत्वे । तेजीवाय्वाकाशानां लघुलं साधम्यं, स्निग्धत्वाभावः, गुरुत्वाभावश्च । पृथिवीतं जोवायूनां खरत्व श्रक्षणत्वामावश्च । अव्वाय्वाकाशानां अनुष्णत्वे सित सरत्वं । पृथिवीवाय्वाकाशानां जलत्वासमानाधिकरणमन्दत्वं । पृथिवीतेजआकाशानां शीतत्वामावः । अत्रापि शीतत्वं पूर्ववदेव बोध्यम् तेन नवायावतिव्याप्तिः ।

द्श द्विगुणाः।

पृथिव्यापां रसवत्वं, गुरुत्वं, स्निन्धत्वम्, लघुत्वाभावश्च । पृथिवतिज-सोः स्पर्शवत्वे सित शीतत्वाभावत्वं । अत्र शीतत्वं पूर्ववदेव बोध्यं । एवमग्रे-ऽपि । पृथिवीवाय्वोः उष्णत्वाभाववत्वे सित खरवम् । पृथिव्याकाशयोः शीतो-ष्णाभाववत्वे सित शुष्कत्वं । अप्तेजसोः गंधाभाववत्वे सित रूपवत्वं, वाय्ववृत्ति-शीतोष्णान्यतस्वम् । अव्वाय्वोः शीतत्वम् । अवाकाशयोः श्रक्षणत्वं, खरवा-भावश्च । तेजोवाय्वोः रूक्षत्वं, आश्चकारित्वापरपर्यायं तिक्षणत्वं च शीतोष्णान्य-तरवत्वं च । तेजआकाशयोः वायुभिन्नत्वे सित गुरुत्वाभाववत्वम् । वाय्वा-काशयोः तेजोवृत्तिलघुत्ववत्वम् ।

अथ प्रत्येकस्य धर्माः।

तत्र गंधः, रसः, रूपं, स्पर्शः, शद्धः, गुरुत्वं, स्निग्धत्वं, मन्दः, स्थिरः, कठिनः, विशदः, खरः, सांद्रः, परादयो दश, एते समुदिताः पृथिव्याः।

रसरूपस्पर्शशद्वगुरुत्वशीतत्वस्निग्धत्वमन्दत्वसर्गपिच्छिलश्रक्षणसूक्ष्मद्रव-मृदुत्वानि, परत्वादयश्च दश, जले ।

रूपस्पर्शशद्वलघुत्वउष्णरूक्षतीक्ष्णसरविषदखरसूक्ष्ममृदुत्वानि, परत्वा-दयश्च दश, तेजसि ।

स्पर्शराद्वलघुत्वशीतत्वरूक्षमंदसरविशदखरसूक्ष्ममृदुत्वानि, परत्वादयश्च दश, वायो ।

राद्बलघुत्वमंदसरविशदश्वरणसूक्ष्ममृदुत्वानि, परत्वादयश्च दश, आकाशे।

तत्र यथासंभवं केषांचित कर्मसाधर्म्य यथाः - सुश्रुते तत्र - विरेचन-द्रव्याणि पृथिव्यं बुगुणभू यिष्ठानि पृथिव्यापो गुर्व्यः ता गुरु त्वादधोगच्छन्ति । तस्माद्विरेचनं अधोगुणभू यिष्ठमनुमानात् । वमनद्रव्याणि अग्निवायुगुणभू यिष्ठानि, अग्निवायू हि लघू, लघुत्वाच तान्यू ध्वमृत्तिष्ठति - तस्माद्वमनम्प्यू ध्वगुणभू यिष्ठं । उभयतो गुणभू यिष्ठं उभयतो भागं - आकाशगुणभू यिष्ठं संशमनं, सांग्राहिकमनि-लगुणभू यिष्ठं, अनिलस्य शोषणात्मकत्वात्, दीपनमग्निगुणभू यिष्ठं, लेखनमनि-लगुणभू यिष्ठं, बृंहणं पृथिव्यं बुगुणभृ यिष्ठं, एवमौषधकर्माण्यनुमानात्साधयेत् ।

भूतेजोवारिजैईव्येः शमं याति समीरणः ।
भूम्यंबुवायुजैः पित्तं क्षिप्रमायाति निर्वृतिम् ॥
खतेजोऽनिल्जैश्लेष्मा शममेति शरीरणां ।
वियत्पवनजाताभ्यां वृद्धिमाप्तोति मारुतः ॥
आग्नेयमेव यद्दव्यं तेन पित्तमृदीयते ।
वसुधाजलजाताभ्यां बलासः परिवर्धते ॥

कि च साधर्म्यवैधर्म्यपरिज्ञानार्थं विश्वतिगुणानां कर्माण्यपि सुश्रुते कि स्थिति हिस्यंते। गुणन्यवस्थानुसारेण तेपामपि न्यवस्था ज्ञेया। तथा हि सुश्रुते:—

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गुणानां कर्मविस्तरम् । कर्मभिस्त्वनुमीयंते नानाद्रव्याश्रया गुणाः ॥ ह्वादनः स्तंभनः शीतो मूर्च्छातृट्खेददाहजित् । उष्णस्तद्विपरीतः स्यात्पाचनश्च विशेषतः ॥ स्नेहमार्दवक्रित्स्मिथो बट्टवर्णकरस्तथा । रूक्षस्तद्विपरीतः स्याद्विशेषात्स्तंभनः खरः ॥ पिच्छिट्छो जीवनो बल्यः संधानः श्टेष्मट्टो गुरुः । विशदो विपरीतोऽस्मात् क्रेदाचूषणरोपणः॥ दाहपाककरस्तीक्षणः स्नावणोमृतुरन्यथा ।

इतिवृत्तम्-परिशिष्ट (अ)

सादोपलेपवलकृद् गुरुस्तर्पणबृंहणः ॥
लघुस्तद्विपरीतः स्यालेखनो रोपणस्तथा ।
दशाद्याः कर्मतः प्रोक्तास्तेषां कर्मविशेषणैः ॥
दशैवान्यानप्रवक्ष्यामि द्रवादींस्तानिबोध मे ।
द्रवः प्रक्रेदनः सांद्रः स्थूलः स्याद्वंधकारकः ॥
श्रक्षणः पिच्लिलवज्ज्ञेयः कर्कशो विशदो यथा ।
सुखानुबंधी सृक्ष्मश्च सुगंधी रोचनी मृदुः ॥
दुगंधी विपरीतोऽस्मात् ह्लासाऽरुचिकारकः ।
सरोऽनुलोमनः प्रोक्तो मंदो यात्राकरः स्मृतः ॥
व्यययीचाखिलं देहं व्याप्य पाकाय कल्पते ।
बिकासी विकसन्नेव धातुबंधान्विमोक्षयेत् ॥
आशुकारी तथाऽशुलाद्धावलंभित तैल्वत् ।
सूक्ष्मस्तु सौक्ष्म्यात् सूक्ष्मेषु स्नोतःखनुसरः स्मृतः ॥
गुणा विंशतिरित्येवं यथावत् परिकीर्तिताः ॥ इति ॥

तथा च इदमुक्तं भवति पृथिन्यापां स्नेहमार्दवकृत्ववछवर्णकरत्वसादोपछपकृत्वतर्पणवृंहणत्वानि, स्निग्धत्वाद् गुरुत्वाच। जछवाथ्वोः ह्वादनत्वमूर्च्छोस्वेददाहजित्वानि, शितत्वात्। जछाकाशयोः जीवनत्ववलयत्वसंधानत्वश्रेष्मछत्वगुरुत्वानि, श्रक्षणत्वात्। तेजोवाय्वोः स्नेहकृत्वादिविपरीतं कर्म, रुक्षत्वात्।
पृथिन्यबाकाशानां बल्यत्वं, क्षिग्धत्वश्रक्षणत्विपिच्छिछत्वान्यतमत्वात्। तेजोवाय्वाकाशानां अपतर्पणत्वावृंहणत्वादि; छघुत्वात्। पृथिवतिजआकाशानां
स्हादनत्वाद्यमावः, शीतत्वाभावात्। पृथिवीजछतेजोवायूनां स्तंभनत्वं, खरत्वात्।
जछतेजोवाय्वाकाशानां बंधकारकत्वाभावः, असांद्रत्वात् अस्थूछत्वात्।
स्कृभेषु स्नोतःस्वनुसरत्वं, सृक्षमत्वात्। अनुछोमनत्वं, सरत्वात्। पृथिवीतेजोवाय्वाकाशानां रोपणत्वं, विशदत्वछघुत्वान्यतरवत्वात्। जीवनत्वाद्यभावः,
पिच्छिछत्वाभावात्। पृथिवीजछवाय्वाकाशानां यात्राकरत्वं, मंदत्वात्।
पाचनत्वाद्यभावः, उष्णत्वाभावात्। स्रावणत्वाभावः, तीक्षणत्वाभावात्। इत्यादि।

प्रस्रेकं च आकारो सादोपलेपबलकृत्तर्पणबृहणत्वाभावाः, यात्राकरत्वा-नुलोमनत्वे, जीवनत्वसंधानत्वश्लेष्मलत्वगुरुत्वाभावाः, क्रेदचूषणरोपणत्वे तत्पर्या-याश्च, सूक्ष्मेषु स्नोतःस्वनुसरत्वानि । दाहपाककफन्नावणत्ववैपरीत्यम् । नच जीव-नत्वादीनामभावो विपर्ययश्च विरुद्धत्वात् कथमेकत्रसंभवतः इति वाच्यं वृक्षः कपिसंयोगवाँस्तदभाववाँ श्रव्हत्यादाविव देशकालभेदावच्छेदेन प्रतियोगितदभा-वयोरेकत्रा समावेशात्। वायोः सादोपलेपकृत्तर्पणबृहणत्वानामभावाः, ल्हादनस्तं-भनत्वशीतमूर्छातृटस्वेददाहजित्वानि, स्नेहमार्दवकृद्बलवर्णकरत्वाभावाः; यात्रा-करत्वं, अनुलोमनत्वं, जीवनसंधानश्लेष्मलत्वगुरुत्वानामभावाः, क्रेदचूषणरोप-णत्वे, स्तंभनत्वं, सूक्ष्मेषु स्रोतःखनुसरत्वं च दाहपाककरस्नावणत्ववैपरीत्यं च। तेजिस सादोपलेपबलकृत्तर्पणबृहणत्वानामभावाः, ल्हादनमूर्छातृटस्वेददाहाज-त्ववैपरीत्यं, पाचनत्वं, स्नेहमार्दववर्णकरत्ववैपरीत्यं, स्तंभनत्वं, स्नावणत्वं, अनुलो-मनत्वं, जीवनसंघान क्षेण्मलगुरुत्ववैपरीत्यं, सूक्ष्मेषु स्रोतःखनुसरत्वं, राद्धा-जनकसंयोगवत्वरूपमृदुत्वं च । जले सादोपलेपबलकृत्तर्पणबृंहणत्वानि, ल्हादनस्तंभनमूर्च्छातृटखेददाहजिल्वानि, स्नेहमार्दववर्णकरत्वानि, यात्राकरत्वं, अनुलोमनत्वं, जीवनसंघान श्लेष्मञ्गुरुत्वानि, स्द्भेषु स्रोतःस्वनुसरत्वं, प्रक्ले-दनत्वं, पाककरस्नावणत्ववैपरीत्यं च । पृथिव्यां सादोपलेपबलकृत्तर्पणबृंहणत्वानि, स्नेहमार्दववर्णकरत्वानि, यात्राकरत्वं, वातमलस्तंभनत्वे, शद्धजनकविभागजन-कत्वं जीवनबल्यसंघानश्चेष्मलगुरुत्वानामभावाः, स्तंभनत्वबंधकारकत्वं चेति । किंच प्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थात्मनां अपंचीकृतराजसपृथिव्याद्यवाच्छिन-क्रिया, वचनादानगतिविसर्गानंदजनकत्वम् । प्राणानां वायूपादानाद्वायुत्वं, वागिद्रियस्य राद्वव्यंजकत्वान्नामसत्वं । तेजोमयीवागिति । श्रुतिस्तु " मनसः अपंचीकृतपांचभौतिकत्वेऽपि अन्नमयं हि सौम्य मन '' इति श्रुतिवत्तदुपकारि-तया व्याख्येया । मनसः पंचभृतगुणप्राहकत्वेन पांचभौतिकत्वमनुमानात् । पाणेः क्रियाशक्तयाधिक्येन वायवीयत्वं । पायोस्तु जलवन्मलशोधकत्वेन जळीयत्वं । पादयोस्तैजसत्वम् । पादे संस्कृते चक्षुषः स्वास्थ्यद्वारा रूपव्यंजकत्वात् उपस्थस्य पार्थिवत्वं शुक्राभिव्यंजकत्वात् । शुक्रस्य पार्थिवत्त्वात् । दुर्गन्धाति-शयवस्वात्, कठिनत्वाच ।

इदानीं प्रश्नस्य आदिपदलम्यं तद्विभागादिकमुच्यते । तत्र पंचापि भूतानि चतुर्विधानि । गंधादिसंस्काररूपाणि तन्मात्रशद्भवाच्यानि प्रथमानि, वेदांतनये संस्काराणां पूर्वानुभूतार्थसूक्ष्मशकलिकोषरूपताया एव योगवासिष्ठादौ प्रतिपादनत्वात् भूतत्वोपपात्तः । द्वितीयानि तु अपंचीकृतपंचमहाभूतरूपाणि, सूक्ष्मशरीरारंभकानि-खप्ते अहमिति भासमानस्यैव जागरेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्, पंचमहाभूतसत्वांशरजोशसमष्टिव्यष्टि-उभयावस्थानुस्यूतान्तः करणारं भकानि रूपाणि बोध्यानि । इमान्येव वैद्यके रारीरेद्रियसत्वात्मसंयोग इत्यत्र सत्वपदेनो-च्यन्ते । "अन्नमयं हि सोम्य मनः, आपोमयः प्राणः तेजोमयीवागित्यादि"श्रृति-सिद्धानि च । तृतीयानि पंचीकृतपंचमहाभूतात्मकानि जाप्रदवस्थापन्नविराट्-रारीरारंभकाणि बोध्यानि । तेषां पंचीकृतत्वं च सर्वत्रैवोपरुभ्यमानेषु भूतेषु पंचमहाभूतविशेषगुणानां शद्वादीनामुपलभ्यमानत्वात्, तत्र यद्भूतविशेषगुणा-धिक्यमारब्धद्रव्यस्य तद्भूतव्यपदेशविषयत्वं तस्येति । " वैशेष्यात्तु तद्वादस्त-द्वादः '' इति सूत्रे वेदान्तिभिर्निणीतम्। चतुर्थानि भौतिकरूपाणि घटपटादीनि। ननु भूतभौतिकयोः को भेदः इति चेदुच्यते । विराट्शरीररूपपंचीकृतभूतो-त्पत्ति हिं ईश्वरकर्तृका, तदनंतरव्यष्टिरूपगवाश्वादिसृष्टिस्तु विराट्कर्तृका इति भिन्नकर्तृकत्वेनैव तयोभैंदसिद्धेः । पुनभौंतिकानि त्रिविधानि, शरीरेद्रियविषय-मेदात् । मानुषं शरीरं पार्थिवं अस्मादादीनां, वरुणसूर्यवाय्वादिलोकेषु जलादि-प्रधानानि शरीराणि । घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणींद्रियाणि-भूतेम्यः समुत्पन्नानि तदीयसत्वांशरूपाणि । शरीरेंद्रियादिव्यतिरिक्तः सर्वो भृतभौतिकवर्गः विषयो बोध्यः । नित्यं अनित्यं चेति भृतद्वैविध्यं नांगीक्रीयते " तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाराः संभूतः '' इत्यादि श्रुत्याआकारास्यापि अनित्यत्वांगीकारात् । वैशेषि-कवत् परमाणुद्धारिकापिसृष्टिनाँगीक्रीयते । सामान्यस्यैव विशेषं प्रति कारणत्वस्य पूर्वं व्यवस्थापितत्वेन सामान्यभूतानां विभ्भूनां पंचभूतव्यक्तानामेव खभेदनद्वारा महाघटस्य खंडघटं प्रतीव परमाण्वादिकं प्रति कारणत्वाध्यवसायात्। अतः द्रव्यारंभपरंपरायाः परमाणावेव विश्रामः इति मतं नांगीऋीयते । संभवति च सामान्यस्यैव रसस्य पृथग्विशेपान् प्रति कारणत्वं ऊष्मणा विलीनस्य घृतादेरेव

द्रव्यस्यैव शिशिरीकरणेन द्रव्यत्वापगमे सित घृतादिषु खापेक्षयाल्पतमपरिमाणक घृतकणारंभकत्वदर्शनात् । आत्मन आरभ्य सृष्टिक्रमचिन्तकानां सामान्यस्यैव विशेषकारणत्वे अभ्युपगमातिशयस्य व्यक्तत्वाचेत्यस्य । आदिपदग्राह्यविभागा-दिविवेचनं समाप्तम् ।

पंचमप्रश्नस्योत्तरम् ।

अथ भूतसंख्याविमर्शः अत्रेदं बोध्यम् । घ्राणरसन चक्षुस्त्वक्श्रोत्राणां तावत् गंधरसरूपस्पर्शराद्वात्मकतदर्थग्राहकत्वं तत्तदर्थःसह, अयोगातियोग-मिध्यायोगेषु सत्सु रागोद्भवद्वारा विनाशशील्यं चायुर्वेदोक्तमितिनेदं तिरीहितं चरकसुश्रुताबध्यायिनां । राद्वरागाच्छ्रोत्रं, स्पर्शरागात् स्वक्, रूपरागाचक्षुः, रसरागाद्रसनं, गंधरागात् ब्राणं च उदभूदित्ययं वैदिकसिद्धांन्तः, तत्तदिद्रियेषु विद्यमानतत्तदर्थगोचरप्रीत्यतिशयदर्शिनां लैकिकानामपि तर्कगम्यएव, स्वप्न-दशायां बाह्येंद्रियाणामुपरतत्वात् केवलमानसतत्तदर्थानुभवदर्शनेन बहिरिं-द्रियेषु व्यावर्तमानेषु प्रवर्तमानस्य रागस्य कारणत्व बहिरिद्रियाणां तत्कार्यत्वं च इति उपादानोपादेयभावनियमिवदां न तिरोहितं, रागः इंद्रियाणिविनापि तिष्ठाति इंद्रियाणि तु रागं विना न तिष्ठन्ति इति इंद्रियाणां रागाधीनत्वदर्शनात्, राग-जन्यत्वं निश्चीयते । सोयमिंद्रियेषु सत्सु कदाप्यनुच्छिद्यमानः शद्वादिपंचगोचरो रागः विषयविधया राद्वादीनवगाहमानः तत्साधनेषु पुरुषान् आचांडालमाविद्र-जनं च प्रवर्तयन् शद्बादीनां पंचानामास्तित्वं साधयित । नहि पाश्वास्यवैज्ञानिकं-मन्या अपि पूर्वोक्तरागपंचकहाँनाः कचिदपि प्रवर्तमानाः समुपलभ्यंते इति तेषां प्रवृत्यन्यथानुपपत्यैवानुकूलतर्केण प्रवृत्युदेश्यभूतानां शह्वादीनां पंचानां परस्पर-विभक्तानामास्तित्वं दुरपन्हुवं तेषामि वेदनयं विश्वस्यैव वासनामात्रमयब्रह्म-ज्ञानशरीरत्वेन व्यवहारदशायामपि पारमार्थिकत्वानभ्युपगमेन यावद्ब्रह्मानुभवं अबाध्यत्वरूपस्य व्यावहारिकसत्यत्वस्यैवांगीकृतत्वेन जाप्रत्कालीनघटादितुल्यस्यैव सस्यत्वस्य उक्तयावद्भम्हानुभवमनुच्छिद्यमानशद्वादिपचरागीवषयीभूतानां तद-धीनप्रवृत्युदेर्थीभूतानां तेषां पंचानामभ्युपगमनीयत्वात् । नहि ' खर्गकामो-यजेते'ति विधिना प्रेरकस्वभावेन स्वर्गमुद्दिश्य प्रेयमाणः पुरुषः स्वप्रवृत्युदेशस्य

सत्यत्वं अपन्हुवानः कचित्दष्टः, इति मीमांसासरण्येव अकामैरिप वैज्ञानिकैः शद्धादिपंचकास्तित्वं पूर्वोक्तयुक्तया अभ्युपगम्यमेव । तेषां च पंचानामिप पृथ-ग्मृतानां संस्कारद्वारेव तत्तदिद्वियवर्तिरागारूढत्वसंभवात् । शद्धादिगोचर-संस्कारपंचकसिद्धिरिप दुरपन्हवैव ।

संस्काराणां च मानसप्रतिभाशक्तितीक्ष्णकुठारिविच्छिद्यमानतत्तदर्यौश-सजातीयांशरूपताया एव वासिष्ठादिषु प्रतिपादितत्वेन लौकिकानां युत्त्युपा-रूढत्वेन च तादशसंस्कारपंचकिसद्धेर्दुर्वारतया, संस्काररूपतापन्नतादशांश-पंचभूतिसिद्धरप्रत्यूहैव । यदि हि ब्रह्मांडमध्यें शद्धादिपंचकवत् तदिरिक्त-स्यापि कस्यचिद्गुणिवशिषस्य प्राहकं षष्ठिमिद्दियं केनचित्परीक्षकेण समन्विष्य उपस्थापितं स्यात्, स्यादेवतदा पंचमहाभूतिसिद्धान्तक्षतिः, षष्ठमप्यरं महा-भूतमाभिमन्येत च । न चैवमित्ति न वा बाह्यज्ञानेद्रियाणां पंचापेक्षया न्यून-संख्याकत्वं लौकिकेन परिक्षकेण वा काचिदुच्यते । तेन शद्धादिगोचरसंस्का-रिवशेषरूपाणां भूतानां पंचत्वमेव, नाल्पत्वं तेषां न वा आधिक्यं शंकितुमिप शक्यत इति सिद्धम् । सिद्धे एवं शद्धादिपंचिषयगणे श्रेष्ट्यानामिद्दियाणां तैराकृष्यमाणत्वदर्शनेन सजातीयाक्षणेनैवौपपत्तौ विजातीयाक्षणे प्रमाणा-भावात्। शद्धादिजातीयत्वमिप दंण्डापूपकयैवागतम् इति इंद्रियाणामिप आकाशा-दिजातीयत्वसिद्धिः। तेषां चेद्रियाणां पंचत्वादिपभूतानां पंचत्वसिद्धिरिति ।

षष्ठसप्तभप्रश्नस्योत्तरम्।

तदुत्पत्तिक्रमस्तु पंचीकारणप्रक्रियया निश्चेतुं शक्यते । तथाहिः—

अविद्यागतसंस्कारम् लक्षेवेयं सृष्टिरित्य भ्युपगमात् राद्वादिविषयराग-सतत्वस्यैव ईरासंकल्पस्य संस्कारोद्वोधकत्वे ईरासृष्टौ संस्कारोद्वोधकमेणैव सृष्टि-क्रमः पर्यवस्यति । तत्र च प्रथमं राद्वसंस्कारोद्भवः पश्चात्स्पर्शस्य तदंनु रूपस्य, ततः रसस्य, तत्पश्चात् गंधस्योद्भव इति अस्मन्मतस्थितिः, तत्र च पूर्वपूर्वभूत-भावापन्तस्य ब्रह्मण एव उत्तरोत्तरभूतभावेन विवर्तमानत्वात् पूर्वपूर्वभूतगुणानां उत्तरोत्तरत्रानुवात्तः आवश्यकी सा चानुवृत्तिः पंचमहाभूतविवेकप्रकरणे एव-मुपदिष्टाः—

शद्धस्पर्शी रूपरसी गंधो भूतगुणा इमे ।
एकद्वित्रिचतुःपंचगुणा न्योमादिषु क्रमात् ॥
प्रतिध्वनिर्वियच्छद्वःवायौ वीसीति शद्धनम् ।
अनुष्णाशीतसंस्पर्शी वन्हौ भुगुभुगुध्विनः ॥
उष्णस्पर्शः प्रभारूपं जले बुलुबुलुध्विनः ।
शीतस्पर्शः शुक्ररूपं रसो माधुर्यमीरितम् ॥
भूमौ कडकडाशद्वः काठिन्यं स्पर्श इष्यते ।
नीलादिकं चित्ररूपं मधुराम्लादिकारसाः ॥
सुरभीतरगंधौ द्वौ गुणाः सम्यक् विवेचिताः । इति

एवं रीत्या समुत्पन्नानामपंचीकृतानां पंचमह।भूतानां सत्वांशसमिष्टरंतः करणं, तद्वयिष्टः पंचन्नानेद्रियाणि, रजोंशसमिष्टः प्राणः, तद्वयिष्टश्च पंचकर्मेनिद्रयाणि, स्क्षमाणि, अविशेषपदवाच्यानि । तत्र समिष्टिभूतेतःकरणादौ सर्वेषां भूतांशानां विद्यमानत्वेऽपि न पंचीकृतत्वं, किंतु अपंचीकृतत्वं । क्षीरनीर-वरसंयोगः पंचीकृतत्वं तिळतंडुळवच्चसः अपंचीकृतत्वं । अदृष्टिविशेषोद्भावित-क्रियाविशेषस्य व्यवस्थापकत्वाच्च कदाचित् पंचीकृतत्वं कदाचित् अपंचीकृतत्वं चेति व्यवस्थापकत्वाच्च कदाचित् पंचीकृतत्वं कदाचित् अपंचीकृतत्वं चेति व्यवस्थापपतिः । तत्र समिष्टिरित्यस्य तावद्यष्टिव्यापकः अखंड-वैय्याकरणानां वाक्यस्थळे तावद्वर्णाभिव्यंग्यअखंडस्फोटस्थानीयःतज्ञातीयद्रव्यः विशेषः इति तु सिद्धान्ततत्वादिनिर्दिष्टं मतम् । तत्र तिळतण्डुळवत्संसृष्टिः समिष्टः इति तु सिद्धान्ततत्वादिनिर्दिष्टं मतम् । तत्र तिळतण्डुळवत्संसृष्टिः समिष्टः इति मत्ते—

कदाचित्पिहिते कर्णे श्रृयते शद्धआंतरः । प्राणवायौ जाठराग्नौ जलगानेन्नभक्षणे ॥ व्यज्यन्ते ह्यन्तराशद्धाः मीलनेचांतरं तमः । उद्गारे रसगंधौ चेल्यक्षाणामांतरग्रहः॥



इस्मदिना तिलतंडुलवत्संसृष्टशद्वादिविषयम्राहकत्वं पंचदश्यादावुक्तं खन्ने च निर्विवादं तदनुभूयते च । चित्ररूपवत्तद्वयापकस्य द्वयांतरस्य सम-ष्टिरूपत्वाभ्युपगमे तु तत्रापि चित्ररूपन्यायेनैव तदुपलब्धिरुपपादनीया।

तत्र तिलतंडुलन्यायं संयोगं न केनचित् कस्याप्यमिभवः, पंचापि मृतानि तत्रस्थानि अप्रतिहतराक्तिकान्येव अविकलानि तत्राविष्ठंत इति, अपंचीकृतानां मनआदीनां समष्टिन्यष्टिभूतानां रारीरादिकमिभत्वेव प्रवेशनिगमोपपत्तिः । क्षीरनीरन्यायेन संकरे तु परस्परं राक्त्यमिभवस्य आवश्यकत्वात् न सर्वथाऽविकलत्वं पंचानामपि वक्तुं राक्यते । विकलशक्तित्वादेव तेषां मूर्च्छितत्वामिव भवति । अतप्व तेषां मूर्तिमिति न्यपदेशः । तत्र पंचीकरणप्रकारस्तु, अपंचीकृतानि आकाशादीनि पंचापि भूतानि प्रत्येकं द्वेषा विभज्य तत्र पुनः पंचानामपि एकैकमर्धं प्रत्येकं चतुर्धा विभज्य, तादशविभक्तचतुर्थानशस्य तत्तज्ञातीयातिरिक्तावशिष्टभूतार्थेषु क्षीरनीरवत् संयोजने पंचानामपि भूतानां पंचीकृतत्वोपपत्तिः । अत्र प्रथमतो द्वेषाविभजनं विभक्तेकदेशस्य पुनश्चतुर्धाविभजनं, इत्युपलक्षणमेव न मुख्यतया विविक्षितं, बहुपरिमाणत्व-न्यूनपरिमाणत्वमेव च विवक्षितं ।

अतएव श्रुतौ कचित् त्रिवृत्करणोपदेशेऽपि न तेन-सह विरोधप्रसंगः। एवं सित यथा राजतमुद्रारूपस्य रूप्यकस्य अष्टौ आणकाः अधीऽशः, आण-कद्भयं तच्चतुर्थांशः अष्टाणकमुद्रायामेकैकस्यां द्वयाणकमुद्राचतुष्कसंयोजने पिर्पूणों रूप्यभाव इति यथा गणितं, तादशं न पंचमहाभूतेषु पंचीकरणं विवक्षितं, पुराणादिषु अंडकटाहे पृथिव्याद्यावरणानां प्रस्थेकं दशगुणाधिक्योक्त्या, लोकेऽपि पृथिव्यपेक्षया जलांशाधिक्यस्य तदपेक्षयापि तेजःपरिमाणाधिक्य-स्योपलभ्यमानत्वेन रूप्यपंचकस्येव भूतपंचकस्य समानमानताया वक्तुमशक्य-त्वात् । किंतु पुराणप्रामाण्यानुरोधन प्रत्येकं उत्तरोत्तरं दशगुणत्वं परिमाणस्य । यद्वा तत्र दश संख्याया अपि लोकानुभवाविरोधाय परिमाणाधिक्यमात्रोपलक्ष्यणपरत्या उत्तरोत्तरमधिकपरिमाणात्वमेवाभ्युपगम्यते । एवं स्थितं पंचीकरण-लक्षणपरत्या उत्तरोत्तरमधिकपरिमाणात्वमेवाभ्युपगम्यते । एवं स्थितं पंचीकरण-

पंचीकरणदशायां आकाशादिक्रमेणेव इयं सृष्टिः, न त प्रथिन्यादिक्रमेणेति निश्चयेन वक्तुं शक्यते । पृथिव्यादे, अपंचीकृतस्यापि आकाशाद्यपेक्षया न्युनपरिमाणत्वनिश्चयेन पंचीकरणदशायां पृथिव्याद्यर्धस्य न्यूनपरिमाणस्य महापरिमाणाकाशार्धादिपरिमाणव्यापकत्वासंभवात् । एतादृशगणितप्रामाण्या-देवाकाशादिक्रमिकासृष्टिरिति श्रीतसिद्धांतः संगच्छते । तदेवं रीत्या अपंची-कृतानां पंचमहाभूतानामपि पृथिन्यादीनां जलाचपेक्षया न्यूनपरिमाणस्वं। आकाशादि-भूतेषु पूर्वपूर्वाणि परं परं प्रति परिणामविधया कारणानि भवंतीति वेदान्तिसिद्धान्तः । उपादानस्य स्वस्वरूपरक्षापूर्वकं परिणाम-भावश्च स्वपेक्षया उपादेयस्य न्यूनपरिमाणत्व एव संभवति । न हि प्रस्थपरिमितस्य दुग्धस्य खान्यूनपरिमाणकदध्यपादानत्वे कोऽपि वैज्ञानिकः दुग्धस्य स्वरूपावस्थिति साधयेत्। तस्मात् आकाशवायुतेजोजलपृथिवीनां क्रमेण उत्तरोत्तरं न्यून-परिमाणवत्त्वात्, सर्वेषां स्वरूपतोऽवस्थित्युपलब्धेश्च पूर्वपूर्वगुणानां उत्तरोत्तर-स्मिन् अनुवृत्तेश्च ऋिकउपादानोपादेयभाव दुरपह्नव एव । संमत एवैषोऽर्थः न्यायसूत्रकृतामपि ' विष्टं ह्यपरंपरेण ' इत्युक्तेः भाष्यकृतादिभिस्तु शाखाचंद्र-मसन्यायेन तत्तद्विकारिविशेषबोधार्थमन्यथाकृतमपि । प्रपंचस्य अविद्योपान-कत्वमपि सूत्रकृता ''मायागंधवनगरे''त्यादि सूत्रेणापि सूचितमेवेति। यथा च न्यायसूत्रकृतां अद्वेत एव ताल्पर्यं तथाधिकं तु श्री. स्व. पं. पूज्यपाद, धर्मप्राण लक्ष्मणशास्त्रिदाविडकृतखंडनखंडखाद्यभूमिकायां द्रष्टन्यम् ।

गुणेभ्यः कारणांतरेभ्यो वा भृतानामुत्पतिरिति प्रश्ने तु आह चरकः-

"तत्पूर्वं चेतनाधातुः सत्वकरणो गुणग्रहणाय प्रवर्तते, स हि हेतुः कारणं निमित्तमक्षरं कर्ता मंता वेदिता बोद्धा प्रष्टा धाता ब्रम्हा विश्वकर्मा विश्वरूपः पुरूषः प्रभवोऽव्ययः नित्यगुणग्रहणं प्रधानमञ्यक्तं जीबोज्ञः पुद्गलः चेतनत्वात् विभुर्भूतात्मा चेद्रियात्मा चांतरात्मा चेति । सगुणोपादानकाले अंतरिक्षं पूर्व परमन्येभ्यो गुणेभ्य उपादत्ते प्रलयात्यये सिसृक्षुः भूतान्यक्षरभूतः सत्वोपादानः पूर्वतरमाकाशं सृजित, ततः क्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातृन् वाय्वा-

इतिवृत्तम्-परिशिष्ट (अ)

दिकाँश्रतुरः, तथा देहम्रहणेऽपि प्रवर्तमानः पूर्वतरमाकाशमेवोपादत्ते ततः क्रमण व्यक्ततरगुणान् धात्न् वाय्वादिकाँश्चतुरः, सर्वमपि तु खल्वेतत् गुणोपादानमणुना कालेन भवति । अनेन हि सन्दर्भेण '' तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अभ्यः पृथिवी '' इति श्रुति-प्रतिपादितसृष्टिक्रमप्रक्रियेव चरकानुमतेति सिध्यति । युक्तिसिद्धत्वाच, अन्नमय-प्राणमयमनोमयविज्ञानमयानंदमयकोशेषु पंचीकृतान्नमयकोशापेक्षया प्राणमय-मनोविज्ञानमयात्मक-अपंचीकृतपंचमहाभूतोत्थिलिंगशरीरस्य तदपेक्षयापि कारणशरीररूपस्यानंदमयकोशस्य अपंचीकृतपंचमहाभूतसमष्टिरूपिंगशरीरा-पादानताया न्याय्यत्वात् सर्वेापि हि जनः अन्नमयशरीरस्थमंगुल्यादिकं सर्पद्षं, प्राणमयरक्षणेच्छया प्राणानपि च मानात्मकमनोमयरक्षणेच्छया, मानं च विनयोनोपसृप्य गुरुजनाधीनविज्ञानेच्छया, प्रयोजनरतं काकदन्तपरिक्षादि स्वल्पविज्ञानमपि, प्रयोजनात्मकानंदपरिक्षया, प्रयोजनमपि चान्यदीयं स्वकीय-प्रयोजनापेक्षया परित्यजन् दृष्ट इति खशद्वार्थभूतं विशुद्धमात्मस्वरूपमेव सर्वापेक्षया आंतरतमं निर-तिशयानंदनिरवधिकप्रेमविषयत्वादुनी-यते । पूर्वीक्तकमानुसारेणैव च तादशिवशुद्धात्मशरीरीपरि कोशवदाच्छादकः प्रथमः आनंदमयकोशः, कारणशरीरं, द्वितीयतृतीयचतुर्थाः विज्ञानमनःप्राणमयाः कोशाः सूक्ष्मशरीरं, पंचमस्त्वन्नमयः स्थूलशरीरं च बाह्यबाह्यतस्वाह्यत्म-आवरण—रूपत्वेन सर्वांतर-विशुद्धानंदात्मस्वरूपा।भेव्यक्तयुत्कर्षतारतम्यानुभवात् क्रमेण प्रमापकर्षवन्त अनुभूयंते । तेन अपंचीकृतपंचमहाभूतसमष्ट्यात्मक-विज्ञानमयकोशमारभ्य पंचीकृतपंचमहाभूतात्मकः सर्वोऽपि सर्वोध्ययं भृतवर्गः आनंदमयकोशभावापनात्मन एव कार्यभूत इति सिद्धम्। विज्ञानमयकोशस्य तु शद्वादिरूपधर्मसाध्यफलाकृष्यमाणत्वेन पूर्वोक्तसजातीया-कर्षणन्यायेनैव राद्वादिसजातीयत्वसिद्धेः पंचभूतसमष्टिरूपता सिध्यति । – " विज्ञानं यज्ञं तनुते " इत्यादिना तस्य यज्ञादिकर्तृत्वश्रवणेन यज्ञादीन् प्रति सुतरां रोषत्वात् राद्वाद्याकृष्यत्वं अनपवादमेवेति सर्वेषां भूतानां अविद्यात्मक-कारणशरीराविच्छन्नात्मनः सकाशादुत्पत्तिः श्रुतिसिद्धा युक्तिमतीच चरकेणापि

खग्रंथ अनू बमाना नैवापलापमर्हतीति सिद्धं। इत्थं च सित एति इरोधिनी परमाण्वादिम् लक्जगदुत्पित्तवादिनी वैशेषिकादिप्रक्रिया श्रुतिविरूद्धत्वात् वेदांत-दर्शनिद्धतीयाध्यायोक्तदूषणगणप्रस्तत्वात् चरकादिभिरनुक्तत्वाच नास्माकं सिद्धान्तः। न वा मध्यस्थानां केषामि स्वीकारयोग्यतामर्हति किंतु शाखाचंद्र-न्यायेन पूर्वीक्तश्रौतिसद्धांतमार्गप्रदर्शिका एवेस्थवहितमनोभिरवधेयम्।

अष्टमप्रश्नस्योत्तरम्।

व्यवकीणेशद्वस्य पृथकरणार्थकत्वात् भूतानां पृथक्करणं कथं भवतीति प्रश्नस्याशयो भवति । तत्र अपंचीकृतपंचमहाभूतानां बहिरिन्द्रियाप्राह्यत्वस्य-सिद्धान्तत्वात् बहिरिद्रियप्राह्यस्य स्थूलस्य च पंचीकृतत्वेन एतेषां पृथक्करणं न स्थूलेद्रियसाध्यं कदापि भवितुमहिति । किंतु ईश्वरस्य संकल्पानुगृही-ततत्त्वदृदृष्टादिहेतुकं शद्धादिपंचिषयपृथक्करणं तत्तत्श्रीत्रादींद्रियरूपेण तद्भतशद्धादिवासनापंचकरूपेण च विद्यमाने भूतसंख्याविमर्शाप्रस्तावोक्ततर्कन्यस्य स्वानुभवगम्यं च समेषामस्तीत्येव कथयामः । यथा च अस्मद्भिरनुष्ठा-तुमशक्यस्यापि ईश्वरादिप्रयुज्यमानस्याप्यर्थस्य सत्यत्वाभ्युपगम आवश्यकः तथा प्रयोजनिक्ष्पणावसर एव मार्तण्डमंडलादिदृष्टान्तोपद्शनेन युक्तयुप्ष्टंभादे-वास्माभिः स्कृटीकृतमिति नात्र शंकालेशस्याप्यवकाशः॥

नवमप्रश्नस्योत्तरम्

भूतानां सृष्टिकारणत्वं कीटक् इति इदानीं श्रौतसिद्धांतानुसारेण निरूप्यते । तत्र एकतन्तुकपटोत्पत्तेर्दर्शनात् पटादिकं प्रति तंतुद्धयसंयोगादेः आरंभवादाभिमतं असमवायिकारणत्वं तन्तुद्धयस्य समवायिकारणत्वं च सर्वथा युक्तयपेतम् नैव खीकाराईम् । न च तत्र तंत्ववयवांशुसंयोगानामेव कारणत्वं अस्विति वाच्यम्, तन्तुरूपावयविद्रव्यावष्टध्वेष्वंशुषु पटकार्योत्पादासंभवात् । समवायेन द्रव्यं प्रति समवायेन द्रव्यस्य प्रतिबंधकताया आरंभवादिभिरभ्यु-पगमात् । तन्तोरेव खावयवांशसंयोगस्तत्र पटकारणमिस्यपि न सम्यक् । अव-

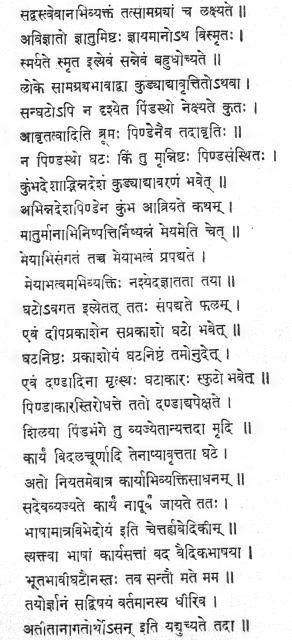
यवावयविनोरयुतिसद्धत्वेन तयोः संयोगासंभवात् । युतिसद्धयोरेव संयोग इति हि उक्तं प्रशस्तपादभाष्ये । ययोर्द्धयोरेकमपराश्रितमेवावितष्ठते तावयुतासिद्धौ । एवं च युतिसद्धत्वं तावत् पृथगाश्रयाश्रयित्वं पृथगितमत्वं वा इति तद्धाष्योक्तेः अवयवावयविनोश्च अयुतिसद्धत्वेन संयोगासंभवात् । किंच सहस्रतन्तुकपटस्थं शाततमतन्तुसंयोगे सित खण्डपटोत्पत्तिः सहस्रतन्तुसंयोगेन महापटोत्पत्तिः इति तत्र पटद्धयप्रस्थक्षं बहुपटप्रस्थक्षं च दुर्वारम् । तस्मात्पूर्वोक्तरीत्या कार्येष्वनुचत्तन्मानस्य सामान्यस्यैव कारणत्वं व्यावर्तमाना विशेषाः सर्वेऽपि कार्यस्त्रपार्व इति विवर्तपरिणामवादावेव सिद्धान्तः ।

ब्रह्मणो विवर्तकारणत्वं मायायास्तु परिणामिकारणत्वमिति विवेकः। तादात्म्यसंबन्धाविद्यन्नकार्यत्वाविद्यन्नकार्यताविद्यन्नकार्यताविद्यन्नकार्यताविद्यन्नकार्यताविद्यन्नकार्यताविद्यन्नकार्यत्वाविद्यन्नकार्यत्वं। तद्विष्यसत्ताकतादात्म्यसंबन्धाविद्यन्नकारणत्वं परिणामिकारणत्वं। तद्विष्यसत्ताकतादात्म्यसंबन्धाविद्यन्नकारणत्वं विवर्तकारणत्वम्। मायाजगतोः पारमार्थिकव्यावहारिकप्रातिभासिक-रूपत्रिविधसत्वमध्ये व्यावहारिकसत्तारूपसमसत्ताकत्वमेव। ब्रह्मणस्तु पारमार्थिक-सत्वेन विष्यसत्ताकत्वं, अतो विवर्तकारणत्वम्, तथा च एकस्येव द्रव्यस्य विवर्तोपोदानत्वं एकस्येव च परिणाम्युपादानत्वमिति स्वीकारात् न अवयवद्योपादानकत्ववादिआरंभवादे अनुपपद्यमानस्य एकतन्तुकपटादेरनुपपत्तिः, न वा संयोगस्यासमवायिकारणत्वमि । संयोगस्थानाभिषिक्तिव्याविशेषस्य निमित्तन्वेन एव उपपत्तौ संयोगस्य तत्कारणत्वे मानाभावात्। किंच संयोगस्य कारणत्वे उत्पनस्य द्रव्यस्य पुनरुत्पदापत्तिन् वार्यितुं शक्यते। क्रियाविशेषस्यैव च कारणत्वे न सा आपत्तिः, तस्याः स्वजन्मोत्तरसंयोगोत्पत्तिकास्य प्वकार्यत्वेव च कारणत्वे न सा आपत्तिः, तस्याः स्वजन्मोत्तरसंयोगोत्पत्तिकास्य प्वकार्योद्यत्वत्वाभ्युपगमेन उत्पनस्य पुनरुत्पादप्रसंजकत्वभावात् । इदमेव च स्पष्टीकृतं बृहदारण्यकवार्तिकसारे यथाः—

मृत्तिका घटहेतुः स्यातः मृदस्तत्रानुवर्तनात् । मृदस्त्ववान्तरावस्था पिंडस्यानुनुवर्तनात् ॥ एकस्मिन्नेव वियति चांद्रं तेजोभिभूयते । सीर्येण तेजसा तद्वत् पिण्डेनावियतां घटः ॥ एकस्यां मृदि पिण्डाद्याः कार्याः सन्ति सहस्रशः। यस्याभिव्यक्तिसामग्री स्यात्तेनान्येऽत्र संवृताः ॥ पिण्डेनाऽत्रियते कुंभः कुंभेनापि कपालकम्। कपालेनावृतः कुंमः एवमन्योन्यसंवृतिः ॥ कुंभेनैव कपालाख्या कुभांशा भांत्यतो घटः। न कपालेरावृतश्चेत् न विभक्तस्तदावृतेः॥ यदि पिण्डावृतिः कुंभः कुलालस्तर्हि साधनैः। भंगायेवावृतेर्यत्नं कुर्याच घटनिर्मितौ ॥ एवं चोदयतस्ते ऽत्र कोभिप्रायस्तर्मारय । किमुलित्तं वारयसे किंवा दण्डादिसाधनम् ॥ आद्य इष्टो द्वितीये तु मा दण्डादि निवार्यताम् । घटाभिन्यक्तिहेतुत्वाद्प्राह्यं दण्डादिसाधनम् ॥ अनेकसाधना यस्मात् अभिव्यक्तिर्जगत्यसौ । वस्तुभेदादतो लोकसिद्धं साधनमिष्यताम् ॥ दीपेन व्यव्यते रूपं नवनीतं तथा घटः । दण्डादिना ततः सर्वं स्यादेव व्यक्तितः पुरा ॥ तमो विनाशनायैव दीपश्चेदस्त तावता । सदेव व्यज्यते सर्वं इति नैवापनुचते ॥ भावाभावात्पन्ननष्टराद्वप्रत्ययभेदधीः । अभिव्यक्तितिरोभावद्वैविध्यादुपपद्यते ॥ व्यक्तो दीपेन भावःस्यात् जातो व्यक्तस्तु दण्डतः। पिण्डावृतस्त्वभावः स्यात् नष्टः च्छनः कपालकैः ॥ एवं व्यक्तया वरणयोर्बहुत्वादेक एव सन् । उच्यत बहुभिःशद्धैः तदुदाहि्यते पुनः॥ कुड्यावृतरत्वसंस्पृष्टः स्पृष्टो व्यक्तस्तु पाणिना ।

मोहावृतस्विवज्ञातो ज्ञातो व्यक्तः प्रमाणतः ॥ ननुदाहरणेष्वेषु तत्तदावृत्तिभंगतः । अन्या कास्यादाभिव्यक्तिः यया कार्यं नियम्यते॥ अभिव्यक्तरनन्यत्वे शिलया पिण्डभंगतः। अभिव्यज्येत कुंभोयं विना दण्डादिसाधनैः॥ उच्यते तावदज्ञातज्ञातोदाहरणेन्तिमे । भेदे विशद एवाभिन्यक्तया वरणभंगयोः ॥ अज्ञातत्वावमृष्टयर्थं आदित्सन्ते हि मानिनः । मानानि मानसंबंधात् अज्ञातत्वं च नश्यति ॥ पिण्डे घटे कपालादी याऽनुवृत्ता विभाति सा । मृदेव सर्वहेतुः स्यात् कार्याः पिण्डादयोऽखिलाः ॥ विरुद्धानेककार्याणां युगपज्जनम नेष्यते । एकस्मात्कारणात्तेन पिण्डादेः क्रमभाविता ॥ पिण्डाद्यखिलकार्येण विना मृत् कापि नेष्यते । अतोऽसती मृदिति चेत् न मानेनोपलंभनात् ॥ असाधारणरूपेषु न्यावृत्तेष्वितरेतरम् । बहुष्वेकं यदा भाति प्रत्यक्षं कारणं त तत् ॥ कारणस्यास्तिता तस्मात्सिद्धा कार्योदयात्परा। कार्यस्याप्युदयाल्पूर्वं यथास्तित्वं तथोच्यते ॥ सत्त पूर्वं जगत्कार्यं तमोऽन्तस्थघटादिवत् । अभिन्यक्तित्वधर्मित्वादन्यथा स्यान्नृशृंगवत् ॥ सत्यामपि हि सामप्रयां वंध्यापुत्रोह्यसत्वतः । अभिव्यक्तयाऽलंबनत्वं न कदाचित् प्रपद्यते ॥ सदेव चेत् सदाकार्यं घटः पिण्डकपालयोः । कालेऽपि चोपलभ्येतेस्येतचोद्यं न युज्यते ॥ विद्यमानत्वमात्रेण नाभिन्यक्तिभवेद्यतः ।

YE.





इतिवृत्तम्-पशिशिष्ट (अ)

अतीतानागतज्ञानं भ्रांतमवैश्वरं भवेत्। प्रागमावस्तथा ध्वंसहस्याद्या वाद्यतीरिताः ॥ अभावा ब्रह्मकार्यत्वात् सद्भूपाः स्युर्घटादिवत् । भावत्वस्याविशेषेऽपि यथाजलभुवोर्भिदा ॥ भावावान्तरभेदाः स्युः प्रागभावादयस्तथा । लोके प्रसिद्धिमुल्लंध्याकं भावत्वदुराग्रहात्॥ कार्यं तविति चेत्तेवा कि कार्यं वेदलंघने । अभावव्यवहारस्तु भावत्वेप्युपपद्यते ॥ भावान्तरमभावो हि कयाचित्तुव्यपेक्षया। सदेव कार्यमित्युक्तया व्यावर्त्यं कि भवेद्रद ॥ अभाव इति चेत् तर्हि सोभ्युपेयो बलात्त्वया । वाढमभ्युपगच्छामि शून्यत्वं भ्रान्तिकल्पितम् ॥ तन्तिवृत्याथभावत्वं युक्तियुक्तमिहोच्यते । कि प्रागमावः प्रध्वंसात् भिद्यतेऽथ नभिद्यते ॥ अभेदे तेऽपसिद्धान्तः भेदे भेदकमुच्यताम् । विलक्षणखरूपत्वं न तयोः शून्यमात्रयोः ॥ न चौपाधिकभेदः स्यात श्नयस्थोपाध्यसंभवात् । घटस्य प्रागमावो यः सिवण्डोपाधिको यदि ॥ तर्ह्यत्र मानं वक्तव्यं प्रस्यक्षं तु न युज्यते। नीरूपप्रागभावस्य चाक्षुषत्वमसंगतम् ॥ पिण्डे दृष्टे प्रागभावः दृष्ट इत्येष ते भ्रमः । प्रागभावव्यवहृतिर्यदि विण्डदशस्तदा ॥ स एव प्रागभावोऽस्तु किमुपाधितया तव । पिण्डत्वप्रागभावत्वे एकस्याप्यविरोधिनी ॥ स्तरः पिण्डोथपेक्ष्यान्यं प्रागभावत्वमञ्नुते । प्रागभावस्त्वदृष्टश्चेत्येवं तत्सत्वदर्शने ॥

भावस्येवोपपद्यते न शून्यस्य निरात्मनः । युक्तियुक्तं वैदिकं च मतं त्यक्तवा दुराग्रहात् । कुतर्कसमये लग्नः किम्मुधा परिमुह्यसि । अभावस्यापि भावत्वे कुतः कार्यमसद्भवेत् । कारणस्य तु भावत्वमिववादं मतेऽपि ते ॥

एवमेव संयोगस्थानाभिषिक्तिक्रियाया एव यथा कारणत्वं तथा अत्रैव-ग्रंथे नवनीतदृष्टांतेन प्रपंचीतं विवेकिभिर्द्रष्टष्यं । एवं च पूर्वीक्तरीत्या भूतानां भूतभावापन्नमायारूपेण सृष्टिपरिणामिकारणत्वमेव निश्चप्रचम् ।

॥ द्शमप्रश्नस्योत्तरम् ॥

न्यूनपरिमाणस्य द्रव्यस्य बहुसंख्याकस्य संयोगे सित तदुपादानकस्य तत्संयोगासमवायिकारणकस्य कार्यस्योत्पत्तिः आरंभवाद्यभिमता । कार्यन्यून-परिमाणस्य दुग्धादेः क्रियाविशेषवशात् खसमानसत्ताककार्यरूपापतिः परिणामवादाभिमता इति परिणामारंभकित्रययोविशेषः । तत्रारंभिकया यथा न संभवति तथोपपादितमधस्तात् ॥

॥ एकाद्शप्रश्नस्योत्तरम् ॥

तदेवमेकस्थैव भावरूपाज्ञानस्येश्वरसंकलपवशात् आकाशादिपृथिव्यन्त-भूतभावापनस्य पूर्वोक्तप्रिक्रयाया पंचीकृतत्वे स्थूळभूतस्वरूपत्वादश्यत्वमभ्यु-पगम्यते, इति बिहरिद्रियप्राद्यविशेषगुणवस्वरूपं भूतत्वं दश्यानामपि पृथिव्या-दिनामस्त्येव, इयान्परं विशेषः तेषां पंचीकृतत्वेन व्यवकीर्णभूतत्वं न संभवति।

॥ द्वादश-त्रयोदशप्रश्नखोत्तरम् ॥

'एलिमेंट' संज्ञकानां द्विनवितंसख्याकानां प्रतीच्यरासायनिकेर्मुलतत्व-तयांऽगीकृतानामपि अस्मन्मतरीत्या भूतत्वमेव । 'खरद्रवचलोणात्वं भूजलानिलतेजसाम्'। इति चरकाचार्योक्तरीत्यां कठिणत्वद्रवत्वोणात्वचलत्वानां भूजलतेजोवायुधर्माणां एलिमेंटसंज्ञकेषु सर्वेषु पदार्थेषु उपलभ्यमानत्वेन तेषां पांचभौतिकत्वेन स्थूलत्विश्चयात्। किंच इलेक्ट्रोनप्रोटॉनसंज्ञकयोर्विद्युत्कणयोरिप अबिन्धनं दिव्यं विद्युदादीत्यस्मन्मत-सिद्धरीत्या अबिंधनतेजोविशेषरूपत्वमेव। चलत्वेन वायुधर्मस्य, उष्णत्वेन तेजो धर्मस्य, पदार्थसंग्राहकत्वेन संग्रहजनकर्रनेहरूपगुणविशेषस्य, अनुमीयमानत्वेन जलस्य च सिद्धत्वात्। इति न पंचमहाभूतातिरिक्तत्वमेतेषां केषामिप युज्यते। विस्पष्टावबोधार्थं प्रतीच्यरासायनिकैरंगीकृतानां द्विनवितत्वानां परिष्कृतानि लक्षणानि अस्मदीयविज्ञानार्थसंग्रहे द्रष्टव्यानि।

अथेदानीमत्यावश्यक एको विषयो विचार्यते, अगस्त्यकृतविमानसंहि-तायां ताबदुच्यते:—

संस्थाप्य मृण्मये पात्रे ताम्रपत्रं सुसंस्कृतम् । छादयेत् शिखिप्रांवेण चार्द्राभिः काष्ट्रपांसुभिः ॥ दस्तालेष्टो निधातन्यः पारदाच्छादितस्ततः । संयोगाजायते तेजः मित्रावरूणसंज्ञितम् ॥ अनेन जलभंगोस्ति प्राणोदानेषु वायुषु । एवं शतानां कुंभानां संयोगः कार्यकृन्मतः ॥ वायुगंधकवस्रेण सुबद्धो यानमस्तके । उदानःसल्खुत्वेन विभर्त्याकाशयानकम् ॥

इत्यादिना हॅं ड्रोजनसंज्ञकोदानवायुनिर्माणप्रकारमुपदिश्य तद्वारा-विमान-निर्माणम् तत्रोक्तम् । मित्रावरुणसंज्ञकविद्युतेजः प्रवाहेणप्राणवायूदानवाय्वो-मध्ये जलस्य मंगोप्यपदिष्टः । इममेवजलमंगमाश्रित्य प्रतीच्यवैज्ञानिकाः जलस्य एलिमेंटसंज्ञकम् लत्त्वत्वं न संभवति इति वदन्ति-तत्तु न संभवति इलेक्ट्रोन प्रोटानसंज्ञकयोर्विद्युत्कणयोरपि पांचभौतिकत्वस्य साधितत्वात् । प्रतीच्य-रासायनिकमते परमम् लत्त्वत्यांगीकृतानां इलेक्ट्रोनप्रोटाँनादिसंज्ञकानां विद्युत्क- णानामिप जलाद्यारब्धत्वस्योक्तत्वेन जलतत्वस्य भौतिकजगन्मूलकारणतायां अवि-वादात्। न हि परमाणुक्रमेणोत्पत्तिः परमिसद्भान्तेऽभ्युपेयते, किन्तु मूलकारणा-देव क्रियाविशेषेण परमाण्वादिरूपस्यांगीकारात् न मूलकारणत्वसंपत्तये परमा-णुत्वमावश्यकम् । किंतु मूलकारणस्य खण्डशोभवनरूपावस्थाविशेषस्य चरमः परिणामः कार्यभूतः परमाणुः स कचित् विच्छेदकस्य सत्वे विच्छेदिक्रयाया हस्तगतत्वे च लभ्यते । अन्यथा तु न लभ्यते एव । नैतावता मूलकारणत्वस्य कापि क्षतिः । न हि मूलकारणं ब्रह्म आब्रह्मस्तम्बपर्यंतपरिमाणं देहेषु जीवभा-वेनोपलभ्यते जीवभावापन्तमिति कृत्वा ब्रह्मणो जगदुपादानत्वे कश्चिद्विप्रति-पद्यते इस्येव तत्वम् ।

ऑक्सिजनहॅं ड्रोजनसंज्ञकयोः प्राणोदानवाय्वोः जलमंगकथनं न तु जलस्य सर्वथा विनाशप्रतिपादनपरं पूर्वीदाहृतवार्तिकसारोक्तदिशाविनाशस्य सर्वथैवासंप्रतिपत्तेः । किंतु

नष्टदुग्धभवं मस्तु मोरटं जेज्जटोऽब्रवीत्।

इत्यादौ नीरतादात्म्यापन्नस्य दुग्धस्य नीरात् पृथग्विविक्तत्वमेव-यथा नष्टत्वपदार्थः, न तु सर्वथा नाशः धनीभूतस्य क्षीरद्रव्यस्य आमिक्षायाः तत्रो-पर्छमात् । तथैव जल्लमंग इत्यत्र जल्रस्यापि प्राणोदानवायुभ्यः विविक्तत्वमेव तद्र्यः । मूलकारणस्य जल्लस्य सर्वथा नाशासंभवात् । विविक्तस्यापि सतस्तस्य पृथगनुपल्लिधस्तु प्राणोदानवायुचारणादुपपन्ना । पत्र्यते ह्यायुर्वेदरसायनतंत्रेषु चारणा नामिका कापि रासायनिको क्रिया, यत्र बुभुक्षितपारदेन सुवर्णे चारिते सित सुवर्णस्य स्वरूपेणानभिव्यक्तिः पारदरूपेणाभिव्यक्तिश्च भवति, गुरुत्वं तु सौवर्णं पारदे अधिकमागच्छति इत्युपल्मामहे । तथैव प्राणोदान-वायुभ्यां स्वतो लघुभ्यामपि तत्पृथक्करणिक्रयया पृथक्कृतस्य जलस्य चरितत्वात् जलस्वरूपानुपल्नः जलगुरुत्वेनैव तयोर्गुरुत्वं चोपपन्नं । अस्मदीयप्राचीन-रसायनतंत्रप्रतिपाद्यानि रासायनिककर्माणि च तंत्रेषु उक्तानि इहावश्यमेवानु-सन्थयानि यथा—

स्वेदनमर्दनमूर्छनस्थापनपातनिरोधिनयमाश्च । दीपनगगनप्रासप्रमाणमथजारणिवधानं ॥ गर्भद्रुतिबाह्यद्रुतिसंरागसारणाश्चैव । क्रामणवेधी भक्षणमष्टादशधेति रसकर्म ॥ अथ तेषां लक्षणानुच्यंते । खेदः स्वेदनं — क्षाराम्लैरीषधेवीपि दोलायंत्रे स्थितस्य हि । पाचनं स्वेदनाख्यं स्थात् मलशैथिल्यकारकम् ॥

इत्युक्तेः मलशौथिल्यकारकम् पाचनमेव स्वेदनशद्वार्थः । मर्दनं खिल्वदं यत्पेषणम् ।

उदिष्टेरौषधैः सार्धं सर्वाम्लैः कांजिकैरि ।
पेषणं मर्दनास्यं स्यात् बहिर्मलिवनाशनम् ॥
इत्युक्तैः । बहिर्मलिवनाशनक्षमं पेषणमेव मर्दनशद्धार्थः —
स्वरूपस्यविनाशेन पिष्टत्वापादनं हि यत् ।
विद्वद्विर्जितसूतोसौ नष्टिष्टः स उच्यते ॥
मूर्ळीपादनं इत्युक्त्या नष्टिष्टिकारकं मर्दनिवशेषेण मूर्ळनम् —
मर्दनादिष्टभैषज्यैर्नष्टिपृष्टप्रकारकम् ।
तन्मूर्ळनं हि वार्यद्रिभूर्जकंचुकनाशनम् ॥

इत्युक्ते प्रोक्तकंचुकविशेषात्मकमळनाशनम् तत्फळम् । स्थापन-मुत्थापनं-चेत्थेकः पदार्थः तच्च ।

> स्वेदपातादियोगेन स्वरूपापादनं हियत् । तदुःयापनमित्युक्तं मूर्छान्यापत्तिनाशनम् ॥

उर्ध्वाधिस्तिर्यग्मेदेन पातिस्तिविधः — उक्तौषधैमर्दितपारदस्य यंत्रस्थितस्योध्वमधश्च तिर्यक् । निर्यापनं पातनसञ्जमुक्तं वंगाहिसंपर्कजगकंचुकन्नम् ॥ H

फलं स्पष्टमेव । रोधः कुंभमध्ये निरोधनं तदुक्तम् — जलसैन्धवयुक्तस्य रसस्य दिवसत्रयम् । स्थितिराप्यायनी कुंभे यासौ रोधनमुच्यते ॥ आप्यायनमेतत्कर्मणः फलम् । संयमनं नियमः —

रोधनाल्लब्धर्वार्यस्य चपलत्वानिवृत्तये । क्रियते पारदे स्रोदः प्रोक्तं नियमनं हि तत् ॥

दीपनं स्वेदनविशेषः -

धातुपाषाणम् लाबैः संयुक्तो घटमध्यगः । ग्रासार्थं त्रिदिनं खेद्यः दीपनं तन्मतं बुधैः ॥ इयन्मानस्य सूतस्य भोज्यद्रव्यात्मिका मितिः । इयतीत्युच्यते यासौ ग्रासमानमितीरितम् ॥

इति वचनसिद्धं ग्रासप्रमाणं नाम संस्कारः — ग्रासस्य चारणं गर्भद्रावणं जारणं तथा । इति त्रिरूपा निर्दिष्टा जारणा चरवार्तिकैः ॥

इति जारणा संस्कारः । तत्र चारणा द्विविधाः —
समुखा निर्मुखा चेति चारणा द्विविधा पुनः ।
निर्मुखा चारणा प्रोक्ता बीजदानेन भागतः ॥
शुद्धस्वर्णं च रूप्यं च बीजिमस्यभिधीयते ।
चतुःषष्ट्यंशवीजस्य प्रक्षेपो मुखमुच्यते ॥
एवं कृते रसो प्रासलोलुपो मुखवान् भवेत् ।
कठिनान्यपि लोहानि क्षमो भवित भक्षितुम् ॥
इयं हि समुखा प्रोक्ता जारणा मृगचारिणा ।
दिव्यौपधिसमायोगात् स्थितः प्रकटकोष्टिषु ॥
भूजीताखिललोहाद्यं योसौ राक्षसवक्रवान् ।
इयं हि निर्मुखा प्रोक्ता जारणा वरवार्तिकैः ॥
रसस्य जठरे प्रासक्षेपणं चारणा मता ।
प्रस्तस्य दावणं गर्भे गर्भद्वितरदाहृता ॥

बहिरेव दुतीकृत्य धनसत्त्वादिकं खलु । चारणा या रसेंद्रस्य सा बाह्यदुतिरुच्यते ॥

एवमष्टादशानां कर्मणां पृथक्षृथक्षक्षानां रासायिनकप्रक्रियायामुपलभ्यमानत्वातः । तेषामुदाहृतवचनेषु पारदिवषयत्वेनावभासनेपि कांजिकादिद्रव्यविशेषकरणकत्वावभासेनापि भावभावनाकरणद्रव्ययोर्विशेषाणां अविबिक्षितत्वेन सर्वत्रापि भौतिकद्रव्ये प्रसरः संमत एव । अतएव स्वर्णादीनामपि
जारणादिकं रसायनक्रियादिष्क्तं संगच्छते । अतएव च नष्टिपष्टकारकमूर्च्छनास्यकमिवशेषेण मूर्च्छितमूर्तपदवाच्यानां पंचीकृतपंचमहाभूतानामपि पिष्टसदक्षद्वावनेन एकैकाभ्यः अपंचीकृतपंचमहाभूतव्यक्तिभ्यः विभ्वीभ्यः पंचीकरणात्मकमूर्च्छितावस्थाप्रापिणाभ्यः पिष्टभावापनाभ्यः परमाणुद्धणुकादिरूपिष्टावयवानामुत्पत्तिरपि साधुसंगच्छते पूर्वोक्ता । एवंविधं मूर्तत्वमुपलक्ष्येव मूर्च्छनान्मृर्तमित्युक्तं,
पुराणेषु पंचीकृतवस्तुजातिमस्यनवद्यम् । अन्यविधस्य मूर्च्छनपदार्थस्य रासायनिकप्रिक्रयातुल्यायां सृष्टिप्रिक्रियायां योजनाया अननुरूपत्वात् इति ॥

॥ चतुर्दशपंचदशप्रश्नयोरुत्तरम् ॥

सस्येवं पंचीकृतानां परमाणूनां तदेव तन्मात्रमिति व्युत्पत्तिनिष्पन्न-तन्मात्रपदवाच्यत्वं सुतरामसंभवमेव । अतः प्रागुक्तदिशा श्रोत्रेद्रियान्तःपाति-वासनामयशरीराणां शद्कादीनामेव तन्मात्रत्वं प्रागेवे।पवीणतमस्माभिरित्यवधेयम् ।

स्यादेततः शद्धादीनां पंचानां गुणानां पूर्वोक्तयुक्तया वासनान्यथानुपपत्या पृथग्मावसिध्या पंचत्वसिद्धाविष कथं तदाश्रयभूतानां द्रव्याणां
भूतपदवाच्यानां पंचत्वसिद्धिरुपपद्यते १ गुणगुणिनोभेदादिति । अत्र ब्रूमः
गुणादिकं गुण्यादिभ्यो भिन्नाभिन्नं समानाधिकृतत्वादित्याद्यनुमानबलेन गुणिगुणिनोभेदभंगात् । प्रपंचितश्चायमर्थः आकरप्रथेषु । न च गुणिगुणिनोभेद
आत्यंतिकः प्रतीच्ये रासायनीकैरभ्यूपयते इत्यलमत्राकाण्डताण्डवेन ।

भूतानां राद्धतन्मात्रारूपत्वे कथं गुरुत्वादिगुणयोगित्वं इति राकायां तु

प्रतिविधानमुच्यते । यथा हि सिद्धे शद्वादीनां पंचानां पृथक् भावेनास्तित्वे तदाकृष्यमाणानां इंदियाणां आकर्षणान्यथानुपपत्या तत्तज्ञातीयत्वे; तथैव गंधादिगुणयोगिषु द्रवेषु गुरुत्वादीनां गुणानां बहुळं उपलब्धेः मूळकारणस्थितानां गुरुत्वादिसंस्काराणां गंधादिसंस्कारराकृष्टत्वस्य नियतत्तत्साहचार्यान्यथान् नुपपत्या कल्पनीयत्वेन, आकर्षणस्य असित बाधके साजात्येनैव निर्वाहात्, गुरुत्वादियोगिनां द्रव्याणां गंधाद्यिकरणपृथिवत्वादिजातीयत्वसिद्धिरप्रत्यून्हेव । पूर्वोक्तानां च सर्वेषामपि गुणादिसाधर्म्याणां गंधादिगुरुत्वादिसमानाधिनकरणज्ञातिविशेषवत्वपरिचायकत्वेन जातिघिटतळक्षणरूपत्या परिणमनी-यत्वाभ्युपगमात्, न केवळं गुरुत्वादिसंस्काररूपद्रव्येषु गंधादिगुणाभावेऽपि पूर्वोक्तसाधर्म्याणां अव्यक्षिशंकाकळकावकाश इति रमणीयम् ।

॥ पोडशप्रश्नस्योत्तरम् ॥

अत्र प्रतीच्यरासायनीकाः गुरुत्वं वस्तुना छक्षणम् गुरुत्वरहितानां तु पदार्थानामवस्तुत्वमेव इति प्राच्यदार्शिनिकेः स्वीकृतयोः पृथिविजिछयोः गुरूषि द्वे रसवित इस्यादिदर्शनात् गुरुत्वयोगित्वेन कथंचिद्वस्तुत्वसंभवेऽिप तेजोवाच्वाकाशानां तद्रहितानां अवस्तुत्वमेव न्याय्यमिति । तदेतत् अज्ञानिवन्त्रमणं । न हि वस्तुत्वं गुरुत्वच्याप्यं सकछप्राणीप्सितस्य सुखस्य सर्वजन-जिहासितस्य दुःखस्य कृमेरिप "मा न भूवंन भूयासमितिः;" प्रमास्पदस्यात्मनश्च गुरुत्वराहित्ये अवस्तुत्वापत्तेः । इष्टापत्तिरितिचेन्न । सर्वप्राणिसाधारणप्रेप्सा जिज्ञासाविषयस्यापि अवस्तुत्वे तदुद्देशिके प्रतीच्यवैज्ञानिकानामिप तत्साधनेषु प्रवृतिनिवृती कथं न व्यावहन्येयातां १ । तस्मात् वस्तुतत्वापर्याछोचिप्रतीच्य-वेज्ञानिकदेशिनामवेष्वमात्रविकृभितमात्र एवायं गुरुत्वाश्रयस्येव वस्तुत्विमिति प्रवादः बालिशप्रवादवत् प्रक्षावाद्वरूष्टिभागित्र एव । अत्रएव नव्यप्रतीच्य-वेज्ञानिकाः जगदुपादानं इति वदन्तः गुरुत्वाद्यनपेक्षकृतामेव परमार्थभूताम् वस्तुत्वव्यवस्थापिकां जगदुपादानभूतां मन्यन्ते । अस्मन्मते गुरुत्वं तावत् तमोन्गुणधर्मः, क्रिया तु रजोगुणस्य इति । पूर्णतमोनिष्ठा प्रतीच्यवैज्ञानिका इदानीं

कालमहात्म्यात् रजोगुणानिष्ठतामवाप्ता इति तु वस्तुस्थितिः । सत्येवं क्रियाशीलयोः तेजोवाय्वोः वस्तुत्वं नन्यतरवैज्ञानिकदृष्ट्यापि इदानीं शक्यमेवेति
तेजोवाय्वोर्द्रन्यत्वे न कापि क्षतिः । तिसिद्धिस्तु रूपवासनास्पर्शवासनयोः
इतरवासनाविविक्तयोः सिध्या उष्णस्पर्शाश्रयत्वेन च अप्रत्यूहैव । एकस्यैव
द्रन्यस्य कदाचिदुष्णत्वं जलादेः संतापितस्य निर्वापितस्य शीतल्वामित्यादिप्रिक्रिया तु सर्वस्यापि बाह्येद्रियोपलभ्यपदार्थस्य पंचमूतात्मकत्वादुपपन्ना ।
अतएव शीततरहस्तेन उपलभ्यमानस्य जलस्योष्णस्योष्णतया यस्यैव उपलंभः,
तस्यैव च उष्णतरहस्तेन उपलभ्यमानस्य शीतत्वोपलंभश्च तत्तद्वस्तंप्रांत
द्रन्यांतर्वितितेजोजलयोः उद्भवानुद्भवाभ्यां चारणोत्थापनास्यरासायानिककर्मकृताभ्यां उपपन्ना । इति न कोऽपि पूर्वापरिवरोधः अत्र शंकितुमपि शक्यः ।

॥ सप्तद्शप्रश्नस्योत्तरम् ॥

ननु अस्तुनाम उक्तरीत्या क्रियाशीलयोः तेजोवाय्वोः नव्यतरप्रतीच्य-दृष्ट्याप्यास्तित्वं। आकाशस्य तु सर्वथा गुरुत्वशून्यस्य निष्क्रियस्य च नव्यतरप्र-तीच्यदृष्ट्या कथं वस्तुत्विसिद्धसंभव इति चेदत्र ब्रूमः ' निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनं।'' इस्यादि श्रुत्युपदर्शितस्वरूपस्य निर्गुणस्य आत्मख-रूपस्यापि सिच्चिदानंदघनस्य निखिल्धेष्रितस्य वस्तुत्वाभ्युपगमावश्यकतायाः प्रतीच्यैरपि दुरपह्ववत्वेन तमोनिष्ठतामिव रजोनिष्ठतामिप विद्याय प्रतीच्यैरिप सत्विनष्ठतां आश्रित्य खप्रकाशानंदरूपाणां पदार्थानामिप अस्तित्वं एष्टव्यमेव। तत्र ध्वन्यात्मकस्य शद्धस्य वायुगुणत्वेन क्रियासाहचर्येऽपि तदिभव्यव्यमानस्य वर्णात्मकस्य शद्धस्य निस्रत्वेन विभूत्वेन अर्थाश्रयत्वेन च द्रव्यरूपस्य अंगी-कारावश्यकतया शद्धवासनारूपस्य ध्वन्यादिशद्धस्यापि श्रोत्रेकमात्रप्राद्यविषयस्य सत्वेन स्पर्शविनाकृतशद्धत्रत्यस्य पूर्वोक्तन्यायेनांगिकरणीयतया च तस्यैव नभोरूपत्वसिद्धरप्रत्युहत्वात्। वर्णात्मकस्य तु शद्धस्य ध्विने विनैव मौनि-श्लोकादिस्थले रेखाविन्यासाद्यभिव्यंग्यस्य अनिर्वचनीयस्य सिद्धेः न ध्विन-रूपत्वमादाय वायुधर्मत्वाद्याशंक्रनमुचितं। मनोमयकोषस्य विशेषतः वर्णात्म- कशद्धमयत्वप्रतिपादनादिष प्राणमयापेक्षया अभ्यंतरत्वसिद्धेः वाय्वतिरिक्तत्व-सिद्धेः । एतदेव आकाशद्रव्यं तामसं शुद्धमाकाशद्रव्यमित्युच्यते । राजसस्य प्राणांतर्गतत्वात् , सात्विकस्योद्धियान्तः पातित्वात् , निष्पत्रस्य तामसस्यैव विभुविषयाकाशरूपत्वौचित्यात् तस्य चात्मनः सकाशादुद्धवः, " तस्माद्धा एत-स्मादात्मन आकाशः संभूतः " इति श्रुत्या उच्यते । यथा हि सुषुप्तस्यात्मनः न अहमित्याकारेण स्वामाविकपरानादिविषयत्वं स्वमे जागरणे च तद्विषयत्वं । तथेव सुषुप्ततात्परात्मनः हिरण्यगर्भोत्पत्तौ तदनंतरं विराद्धत्पत्तौ च अहमित्या-कारकपरानादिविषयत्वं । अयं चाहं शद्धः प्रत्याहारन्यायेन अकारहकारात्मकनवर्णद्वयप्रत्याहाररूपत्वात् मध्यवर्तिसकत्वर्णम्बरूपप्रापकः, त्रकारस्य स्वकारा-दिभिन्नत्वात्, क्षकारस्य कपसंयोगरूपत्वानातिरिक्तम् तिता । तथा च प्रत्याहारन्यायेन अहं शद्धस्य वाचकत्वसिद्धे वाच्यभूतानां सर्वेषामिषवर्णानां तद-मेदासिद्धेः । स्पष्टश्चायमर्थः मंत्रशास्त्रदर्शिनां । सर्वस्याप्यक्षरसमाम्नायस्य परानादिववर्तत्वेन नादस्य च पराशद्धाभिषेयस्यः—

स्थानेषु विद्येत वायो कृतवर्णपरिप्रहा । वैखरी वाक् प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिबंधना ॥

इत्युक्तदिशा तत्तदुपाधिभेदेनैव ककारादिरूपतां छभत इति अहमा-ख्यस्य नादस्य सकलवर्णरूपत्वं सिद्धं । अयमर्थश्च वाक्यपदीयादिदर्शिनां सुस्पष्टावगमः।

किंच आकारादिलिपीनामिप देवनागर्याद्यक्षरारूढानां उक्तार्थोपष्ट-ममकत्वं तर्क्यते । सृष्ट्युद्भवस्थले हि चिद्विद्धः अचिद्विन्दुरिति बिंदुद्धयस्यैन समस्तसृष्ट्यारंभकत्वम् । लोकेऽपि खीबिन्दुपुरुषबिन्दुसंयोगादेव सर्वत्र सृष्टि-दर्शनात् । तत्र शिवशक्तिसमावेशदशायां बिंदुद्धययोगे सति उभयानुभूतस्य दण्डाकारस्य तन्मध्ये जीवस्य तृतीयस्य प्रवेशो भवतीति लोकसिद्धमिदं । एतद्-द्धान्तेन जगन्मूलभूतस्य बिन्दुद्धययोगस्यापि अनुमीयमानत्वेन तस्य स

आत्मानं देधा अपातयत, इति श्रुत्युक्तदिशा द्विधा करणे सति एकोंशः रफुटचिद्भपः अपरस्तु रफुटाचिद्भप इति व्यवस्थायां तयोः परस्परमौनमुख्ये सति श्रुन्यरूपता वैमुख्येतु आकारहकारलिपिरूपता इति दृष्टत्वेन सर्वस्यापि तद्-पादेयस्य प्रपंचस्याहमात्वसिद्धिः इत्यादिरतुलः प्रपंचः मंत्रशास्त्रेष्वेव द्रष्टव्यः । तिसद्भाकाशस्यापि खतंत्रमास्तित्वं, सुष्पतावस्थात्मनः प्रथमसृष्टिरूपत्वं नादरूपत्वात् । तच सर्वथानप्रपंचनीयमेव । तस्य च नादस्य निरवयव-मेव परमार्थः। तस्यावयवाः पुनः अष्टादशसंस्कारान्तर्गतमूर्छनसंस्कारानिष्पाद्याः घटाकाशमठाकाशादिरूपाः संभवन्सेवौपाधिकपरिछेदस्य तत्राभ्यपगमात् । तथा च वर्णात्मकराद्वरूपेण अर्थाश्रयतयाऽवकारारूप एव आकाराः । राद्व-हिंगेन अर्थाश्रयत्वेन च हिंगेन सर्वत्रानुमीयते । मधुराद्वाभिटप्यमानस्य अर्थस्य माधुर्यमुपलभ्यते । कठोरशद्वाभिल्प्यमानस्य तु कठोरत्वम् । पश्यति स्त्रीति वाक्ये हि न मधुरोऽर्थः प्रकाशते । विलोकयति कान्तेति उक्ते माध्य-मर्थस्य प्रकाशते इत्यनुभवात , शद्भविवर्तत्वमर्थस्य सिद्धं । अर्थविवर्ताधिष्ठान-शद्भगतस्य माधुर्यादेः श्रुक्तिकारजतस्थले श्रुक्तिकागतिर्वकोणत्वादेः अधिष्ठेय-रजतादाविव अर्थविवर्ते अनुवर्तनस्य न्याय्यत्वादिति सिद्धमर्थाश्रयत्वं राद्धस्य । तिसद्भगकाशनामकं अतिरिक्तद्रव्यम् ।

॥ अष्टादशैकोनविंशप्रश्रयोरुत्तरम् ॥

पंचम्लभूतेभ्यः एकैकमहाभूतानां उद्भवक्रमश्च पूर्वमेव निरूपित इति नेह वितन्यते।

यत्तु प्रतीच्यवैज्ञानिकाः ईथराख्यस्य कस्य चनास्तित्वं विनैव तर्का-बष्टंभस्त्रप्रयोगेन च किंचित् वदन्ति तत्तु यावत् पर्यन्तं सप्रमाणतया ईथराख्यस्य आस्तित्वं न व्यवस्थाप्यते तावत्पर्यन्तं असंभावितास्तित्वस्य तस्य बंध्यापुत्रः किं ब्राह्मणो वा क्षत्रियो वा इति विचारवत् स किं आकाशं वा तेजो वा वायुर्वेत्यादिविचारोऽपि न कक्षीकरणीयतामर्हति। प्रकाशवाहकत्वा-दिकं तु तत्कार्यमस्मन्मतसिद्धेन वायुनापि संभवति इति सर्वान्तरात्मतत्व-



दर्शनिवमुखानां जडवादिनां प्रतीच्यानां मतानि न कथमपि प्रधानभूतस्या-त्मदर्शनस्य तदुपष्टंभकस्य पंचमहाभूतसिद्धांतस्य च बाधकानि भवितुमईन्ति । तन्न्यायस्य पूर्वमेवावेदितत्वात् ।

॥ विंशप्रश्नस्योत्तरम् ॥

मनुष्यादिशरिषु चैतन्यमात्मजन्यं पंचभूतादिसंयोगविशेषजन्यं वा इति प्रश्नसमाधानं त्विदमेव, यत् यावत्पर्यन्तं रसायनमिश्रणद्वारा मृतस्यो-जीवनं नवीनपुरुषोत्पादनं वा प्रतीच्यरसायनिकैर्न क्रियते तावत्पर्यन्तं चैतन्यस्य पंचमहाभूतसंयोजन्यत्वं तन्मतेनाप्यसिद्धमेव। प्राणार्थे 'शरीरा-वयवपरित्यागदर्शनात्, मानार्थे प्राणत्यागदर्शनात्, ज्ञानार्थे मानत्यागदर्शनात्, प्रयोजनार्थे निष्प्रयोजनज्ञानत्यागदर्शनात्, स्वकीयप्रयोजनानुरोधेन परकीय-प्रयोजनत्यागदर्शनाच्च सर्वाभ्यन्तरिपदमात्मतत्वं कथं नाम सर्वथा बाह्यैः चिरतार्थयितुं शक्यं। इति सर्वप्रधानस्य सिच्दानंदस्वरूपस्य आत्मतत्वस्य-सर्वप्रपंचातीतत्वभेवेति पूर्वमेवावोचाम।

किंच सर्वस्यैव प्राणिजातस्य अधिकं जीव्यासमिति, अधिकं जानीया-मिति, अधिकं सुखीभवेयमिति, कदापि परतंत्रो न भवेयमिति, मदधीनएव सर्वः प्रपंचो भवतीति, च पंच इच्छाः अनुष्टिद्यमानाः जाप्रति तत्प्रेर्यमाण-एव सर्वोपि जन्तु नानाव्यापारेषु प्रवर्तमानो दृश्यते एतादृशप्रवृत्यन्यथानुप-पत्तिरूपतर्केण तन्मृत्यभूतेच्छाविषयाणां-निरितशयास्तित्व-निरितशयज्ञान-निर-तिशयानंद-निरितशयश्चरिरूपाणां पदार्थानां अस्तित्वं वास्तविकमिति सकलदृदय-संवादिनि एतस्मिन्नन्पदार्थे संशयण्व नोष्ठसित अस्ति न वेति, ।

किंतु—

वेदाः सर्वे-पुराणानि स्मृतयो भारतं तथा । अस्मिन्नर्थे खसंवेद्ये पर्यवसन्ति नान्यथा



इति स्तसंहितोक्तदिशा सर्वस्यापि प्रपंचव्यापारस्य विश्वान्तिभूमिरिद-मात्मतत्वम् न जडरूपतया कथंचिदपि उत्प्रेक्षयितुं योग्यं, इति एतद्बोधनाय

> धीधनाबाधतायास्याः तदा प्रज्ञां प्रयच्छथ क्षेप्तुं चिन्तामणि हस्ततल्रस्थं यदि बांछथ ॥ प्रथप्रांथिमयेमुष्मिन् सुकरो न हि संचरः विद्वच्छल्थोकृते तस्मिन् दुष्करो न च संचरः॥

> > इत्यलम्।

॥ श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे । हे नाथ नारायण वासुदेव ॥



परिशिष्ट (आ)

आयुर्वेदाश्रमी वैद्य गोपालशास्त्री गोडबोले चिंचवड [पुणें] एषां मतम् ।



पश्चभृतचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

प्रश्न १-पञ्चमहाभूतिवचारप्रयोजनम्।

उत्तर—पञ्चमहाभूतिवचारप्रयोजनम् --पिंडब्रह्मांडरूपप्रपंचावयवानाम् मूलतत्त्वपरिज्ञानम् । महाभूतानि हि पिंडब्रह्मांडरूपप्रपंचावयवानाम् मूल-तस्वानि, नाम उपादानकारणानि भवंति ।

प्रेश्न २ — मूतलक्षणं (किं नाम भूतत्वम् !)।

उत्तर--भृतत्वम् नाम सविशेषशद्वादिमत्त्वम् कार्यद्रव्यारंभकत्वं च।

प्रश्न ३-भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयित्वम्, अनेकेन्द्रियार्थाश्रयित्वं वा?।

उत्तर-अनेकेन्द्रियार्थाश्रयित्वम् अनेकेन्द्रियार्थोपादानत्वात् ।

प्रश्न ४ — भूतस्वरूपगुणधर्मादीनां विवेचनम् ।

उत्तर—खादीनाम् स्वरूपम् अप्रतीघातादिगुणाः शद्काद्यः, भर्माः बिविक्ततादयश्च।

प्रश्न ५--भूतसंख्याविमर्शः ।

उत्तर—भृतचतुष्टयवादीभूतपंचकवादीति द्वौ पक्षौ तत्र पक्षो ज्यायान् भूतपंचकवादी साधकतमत्वात् ।

प्रश्न ६ — भूतानां सादित्वम्, अनादित्वम्, उभयत्वं वा १, सादित्वं चेत्तदुत्पत्तिः सक्रमा अक्रमा वा १।

उत्तर—दर्शनभेदात् सादित्वम् अनादित्वं च तथापि उभयत्र तदुत्पात्तः सक्रमोक्ता ।

प्रश्न ७—गुणेभ्यः कारणान्तरेभ्यो वा भूतानामुद्भवप्रकारः कः १। उत्तर—तमोगुणात् तन्मात्राणि तन्मात्रभयश्च भूतानि उद्भवन्ति ।

प्रश्न ८--भूतानाम् इतरेतरव्यवकीर्णत्वम् कथम् संपद्यते ? । उत्तर--पंचीकरणेन सूक्ष्मभूतानाम् इतरेतरव्यवकीर्णत्वं, ततश्च-स्थूळभूतोद्भवः ।

प्रश्न ९—भूतानां सृष्टिकारणत्वं किंद्यः । उत्तर—भूतानाम् सृष्टिकारणत्वम् उपादानस्वरूपेण कारणद्रव्यत्वात् । प्रश्न १०—परिणामारंभिकिययोविँशेषः ।

उत्तर—परिणामिकयायाम् अवस्थान्तरतापात्तः, आरंभिक्रियायाम् अन्यस्मात् आन्यस्योत्पत्तिः, एवम् अयम् परिणामारंभिक्रिययोर्विशेषः ।

प्रश्न ११—-दृश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वं न वा ? ।
उत्तर-दृश्यानाम् पृथिव्यादीनाम् न भूतत्वम् भौतिकत्वात् ।
प्रश्न १२—-एलिमेन्टसंज्ञकानां द्विनवतिसंख्याकानां प्रतीच्यरासायनिकैर्मृलतत्त्वतयाऽङ्गीकृतानां भूतत्वं न वा ? ।

उत्तर—द्विनवितसंख्याकानाम् मूलतत्त्वतयांगीकृतानाम् एलिमेन्टसंज्ञ-कद्रव्याणाम् न भूतत्वम् भौतिकत्वात् ।

> प्रश्न **१३**—इलेक्ट्रोनप्रोटोनसंज्ञकयोर्भूतत्वं न वा ? । उत्तर—एतद्विषये किमपि नाचैव वयम् विवक्षवः । प्रश्न१४—परमाणुतन्मात्रयोर्विवेचनम् तयोर्भेदो वा अभेदो वा ।

उत्तर—आदौ परमाणुतन्मात्रयोर्भेदाभेदलक्षणे उच्येते। तत्र भेदलक्षणं यथा (१) निरवयवः क्रियावान् परमाणुः। (२) निर्विशेषशद्धादिगुण-वत् द्रव्यम् तन्मात्रम्। अथ च तयोरभेदलक्षणम् यथा—(१) जालान्तर-गते रस्मौयत् सूक्ष्मं दश्यते रजः। तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते। (२) भूतानाम् अव्यविहतसूक्ष्मावस्थाविशिष्टद्रव्यम् तन्मात्रम्। (३) परमाणुतन्मात्रयोर्महाभूतोपादानकारणत्वम् इति। उक्तलक्षणानां पर्यालोचना-त्परमाणुतन्मात्रयोर्नात्यन्तम् भेदः नवा अत्यन्तम् अभेद इति सिध्यति।

प्रश्न १५—द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वेन गुणाद्भेदो वा, गुणसमुदायत्वेन तदभेदो वा १।

उत्तर—द्रव्यम् विना नान्यत् गुणाधिष्ठानम् । गुणसमुदायराद्वो गुणा-धिक्यबोधकः किंतु न गुणिबोधकः । तस्मात् द्रव्यद्रव्यगुणयोः अभिन्नत्वम् स्वीक्रियते ।

प्रश्न १६ -- तेजसो द्रव्यत्वम् न वा ?।

उत्तर—तेजसो द्रव्यत्वम् विद्यते तदेव उपपद्यते च गुणकर्माश्रयत्वा-त्समवायिकारणत्वाच किंतु तेजसः अद्रव्यत्वम् अन्युत्पाद्यं भवति अद्रव्यवस्वात् ।

प्रश्न १७——आकाशस्वरूपविमर्शः । स भावरूपे।ऽभावात्मको वा १ भावत्वेऽपि तस्य सावयवत्वं निरवयवत्वं वा १ सावयवत्वं चेत् के नाम तदवयवाः १ किमाकाशिङ्कं १ शद्धः अवकाशो वा १।

उत्तर—आकाशस्त्ररूपिवमर्शः—आकाशद्रव्यम् भावरूपमेव विद्यते । भावत्वेऽपि तस्य निरवयवत्वम् सूक्ष्मत्वम् एकत्वं च इत्येते धर्माः सन्ति । कस्मात् तस्य विभुत्वात् नित्यत्वाच । आकाशलक्षणम् – अप्रतीघातत्वम् अव-गाहदातृत्वम् सौषिर्यं च । आकाशगुणः शद्वः ।

प्रश्न १८--पञ्चम्लभूतेभ्य एकैकमहाभूतानामुद्भवः कीद्दशः १।

उत्तर—-पंचम्लभूतेभ्यो नाम शद्वादितन्मात्रेभ्यो एकद्वित्रिचतुःपंच-संख्यकेभ्य आकाशादीनि महाभूतानि उद्भवन्ति ।

प्रश्न १९—ईथराख्यस्यास्तित्वं चेत् तस्य कुत्रान्तर्भावः ? आकारो तेजसि वायो वा ?

उत्तर—ईथराख्यद्रव्यस्यअन्तर्भाव आकाशद्रव्ये एवभवति न तु तस्य अन्तर्भावो वायौ तेजिस वा । यत ईथरद्रव्ये आकाशद्रव्ये च विभुत्वम् अप्रतीघातत्वम् अवगाहदातृत्वं च इत्यादि प्रायः साधर्म्यम् विद्यते ।

प्रश्व २०-- मनुष्यादिशरीरेषु चैतन्यमात्मजन्यं पञ्चभूतादिसंयोगिव-शेषजन्यं वा १ ।

उत्तर—मनुष्यादिशर्रारेषुचैतन्यम् खलु चेतनाधातोः आत्मन एव प्रभ-वति न तु तत् कदापि अचेतनेभ्योमहाभूतेभ्यः ।

> त्रिदोषादिचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः । प्रश्न १--त्रिदोषविचारप्रयोजनम् ।

उत्तर—" दोषधातुमलम्लम् शरीरम्" इत्यादीनि आयुर्वेदप्रोक्तमहा-वाक्यानि तेषु—मलेभ्यो धात्नाम् धातुभ्योऽपि दोषाणाम् यत् परत्वम् प्रोक्तम् आयुर्वेदाचार्यैः तद्वीजपरिज्ञानमेव त्रिदोषविचारप्रयोजनम्।

प्रश्न २—वातादीनाम् दोषत्वम् धातुत्वम् मलत्वम् वा । त्रिविधत्वमपि चेतः तत् विरुद्धम् अविरुद्धम् वा ।

उत्तर—वातादीनाम् दोषत्वम् धातुत्वम् मळत्वं च इति त्रिविधत्वमपि आयुर्वेदे उपदिष्ठम् भवति । वातादीनाम् उक्तित्रिविधत्वम् प्रत्यक्षतः शास्त्रतश्च अविरुद्धमेव स्वस्थास्वस्थशरीरसम्यक्समीक्षणसिद्धत्वात् स्वस्वेतरतंत्रप्रामाण्याच्च ।

प्रश्न ३--दोषसंज्ञायां हेतुः ।

उत्तर—वातादीनाम् दोषसंज्ञकत्वम् शरीरप्रवृत्तिहेतुनिदर्शकम् तथा शरीरदूषकत्वबोधकम् ।

प्रश्न-क्यं त्रय एव दोषाः ?।

उत्तर—[१] धातुसाम्याधारस्य आहारपरिणामस्य तथा आहार-परिणामकरस्य रसात्मकद्रव्यस्य आहारपरिणामोत्तरविपाकस्य च त्र्यात्मकत्वात् भूयस्त्वात् । [२] धातुसाम्याधारस्य रसपरिणामस्य रसपरिणामकरद्रव्याणां च भूयसा त्रिविधस्वरूपात् । [३] आहारपरिणामकररसत्रये रसपरिणाम-करद्रव्यत्रये च पंचभूतान्तर्भावात् । [४] निजरोगकारणद्रव्याणाम् शोधनश्यमनोपाययोश्चिविधस्वरूपात् । एवम् उक्तहेतुचतुष्ट्यात् स्वस्थानिस्थताः स्वलक्ष्मणसंपन्नाः देहधातुविशेषाः कप्पित्तवातदोषसंज्ञकाः शरीरे त्रय एव भवन्ति ।

प्रश्न ५--वातादीनां द्रव्यरूपत्वं शक्तिरूपत्वं वा ?।

उत्तर—वातादीनां द्रव्यरूपत्वमेव आयुर्वेदसंमतम् भवति साक्षात् तथोपदिष्ठत्वात्, न तथा शक्तिरूपत्वम् तथोपदेशाभावात् ।

प्रश्न ६ -- वातादीनां स्थूलस्वं सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा ?।

उत्तर—वातादीनां व्याप्यत्वे सति स्थूळत्वप्रतीतिः किंच व्यापित्वे सति सूक्ष्मत्वप्रतीतिः । वातादीनां स्थूळत्वप्रतीतिनीम प्रत्यक्षप्रमितिः सूक्ष्मत्वप्र-तीतिनीम् अनुमानप्रमितिः एवं उभयविधप्रतीतिः । प्रश्न ७—किं वातादीनामुपादानम् ? उपादानात्तेषामुत्पात्तिक्रमश्च कींदशः ?।

उत्तर—वातादीनां उपादानकारणानि आहार्यद्रच्याणि । अमूनि आ-हार्यद्रच्याणि परिणामार्थं यदा मुखद्वारा कोष्ठान्तः प्रविष्ठानि भवन्ति तदा तेषाम् किंच मुखकोष्ठावकारोषु खस्वस्थानस्थितानां रसात्मकानाम् आहारपरिणामकर-कफापित्तादिद्रच्याणां सन्तिपातो भवति, तेन आहारः परिणामं आपवते । परि-णामं आपवमाने एव आहारे च शारीरा दोषा उद्भवति । इदानीम् दोषोद्भवक्रम एवं विवते । यथा अविदग्धे आहारे कफोत्पत्तिः । विदग्धे आहारे पित्तोत्पात्तिः । सम्यक् विपक्के आहारे च वायुत्पत्तिः । इति ॥

प्रश्न ८---वातादीनां गुणाः कर्माणि च।

उत्तर--वातादीनां गुणा रूक्षतीक्ष्णमंदादयः । चलनपचनरनेहना-दीनि तरकर्माणि ।

प्रश्न ९—वातादीनां खरूपं, तेषां प्रत्येकशः पञ्चविधत्वं वास्तविकं काल्पानिकं वा ? तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पनं वा तत्त्वरूपभेदोत्पनं वा ?

उत्तर—वातादीनां खरूपं सामान्यतो विशेषेण च उपदिष्टम् आयु-वेदाचार्यैः । तत्र विशेषखरूपं नाम वातादीनां प्रत्येकशः पंचविधत्वं । पंच-विधत्वं एतत् आयुर्वेदाचार्यैः नामस्थानसंस्थानित्रयाऽमयप्रयोजनभेदेन पृथक् पृथक् प्रतिपादित्वात् वास्तविकमेव न तत्र कल्पनांशः ।

प्रश्न १० - वातादीनां रेागकारणत्वं कीदृशम् १ तेषामेव रेागकारणत्व-मृतान्येषामपि कीटादीनाम् १ ।

उत्तर—वातादीनां रोगकारणत्वं उपादानखरूपं निजरोगहेतु।निदर्शकं किंच कीटादीनां रोगकारणत्वं उपादानस्वरूपं आगंतुरोगहेतुनिदर्शकम् । निज-रोगाणां उपादानकारणम् परिणामिखरूपं । आगंतुरोगाणां उपादानकारणं विपरिणामिखरूपं । निह निजांगंतुभ्योऽन्येरोगाः सन्ति न च केऽपि रोगाः कारणैर्विना संभवन्ति । तस्मात् वातादीनां रोगकारणत्वं उपादानस्वरूपं निज-रोगहेतुनिदर्शकं इस्यमिप्रायः ।

श्री. नागरलाल मोहनलाल पाठक, उ. पी. आयुर्वेद महाविद्यालये प्रधानाध्यापकाः एषां मतम् ।

पंचभूतचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

प्रश्न १---पंचमहाभूतविचारप्रयोजनम्।

उत्तर—'सदेवसौम्यदेमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं' " इतिश्रुत्या प्रतिपा-दितं सदूपमद्वितीयं ब्रह्म अवाच्यनसगोचरत्वेन खतोऽवगन्तुमशक्यम् '' तत्का-यत्वेन तदुपाधिभूतस्य भूतपंचकस्य विवेकद्वारा तद्ववोधनं भवतीति पंच-महाभूतविचारप्रयोजनम् । तथा च पंचदश्यां विद्यारण्यस्वामिनः ।

> सदद्वैतं श्रुतं यत्तत्यंचभूतिविवेकतः । बोध्दुं शक्यं ततो भृतपंचकं प्रविविच्यते ॥

प्रश्न २--- किं नाम भूतत्वं, के गुणाः तेषामिन्द्रियाधीश्रियत्वं कीहक्, सादित्वादिकं च।

उत्तर—तत्र भूतत्वं नाम बिहिरिन्दियजन्यले किकप्रस्थितिषययोग्य-विशेषगुणवत्वं । तचाकाशादीनामुपलभ्यतेऽत एवाकाशादिषु भूतसंज्ञा व्यवहता पूर्वाचार्यैः । 'विष्टं भूतं परमपरेण' इति नयेन आकाशे शद्ध एक एव गुणः । वायौ शद्धस्पर्शो, तेजिस शद्धस्पर्शेरूपसंज्ञकास्त्रयो गुणाः, जले तेच रस इति वत्वारः, पृथिव्यां पंचापि गुणाः, इति भूतानामेकेन्द्रियार्थाश्रयित्वमनेकेन्द्रियार्थाश्रयित्वं चोपलभ्यते, एतत्तु सांख्यवेदान्तिनां मतं । नैथ्यायिकास्तु भूतानामेनकेन्द्रियार्थाश्रयित्वं स्वीकुर्वते । भूतानां कार्यरूपेण सादित्वं, कारणरूपेणानादिन्तम् , सांख्ये दृश्यते । न्यायनयेऽपि भूतानां कार्यरूपेणानिस्यत्वं परमाणुरूपेण निस्यतं प्रतिपादितम् । भूतकारणानि तन्मात्रसंज्ञकानि अनार्दानि इति सांख्यदर्शनम् । प्रश्न ३---भूतानां सृष्टिकारणत्वं कीटक् ।

उत्तर—सृष्ट्यारंभस्तु पंचीकृतपंचमहाभूतेभ्य इति सांख्यवेदान्तिनां मतम् । नैय्यायिकास्तु जीवानामदृष्टहेतुनां ईश्वरेच्छया वा परमाणुषु क्रिया-उत्पद्यते, तता द्यणुकादिसंयोगाज्जगदुत्पत्तिः इति कथयंति ।

प्रश्न ४---दश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वं न वा ?।

उत्तर—अमुनेव हेतुना दृश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वं न किंतु भूत-कार्यत्वं । यथा मृत्तिकाजातो घटो मृत्तिकातो न विभिद्यते, एवमेव महा-भृतेभ्यो जातं दृश्यपृथिव्यादिकं महाभूतेभ्यो न विभिद्यते ।

प्रश्न ५---दश्यपृथिन्यादीनां द्रन्यत्वमेव ।

उत्तर---दृश्यं पृथिव्यादिकं भृतकार्यत्वेन द्रव्यम् पदार्थवादेऽपि तेषां द्रव्येऽन्तर्भावः "क्रियागुणवद् द्रव्यं," अथवा " यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समयायि यत्, तद् द्रव्यम्" (चरक) इति द्रव्यव्श्वणम् सुव्यवस्थं भूतकार्यं पृथिव्यादौ उपपद्यते, एवमेव तदुपादानभृतपरमाणुष्वपि ।

प्रश्न ६---केषां मूर्तत्वम् ।

उत्तर—-मूर्तत्वं नाम अवकृष्टपरिणामवत्वं आकाशस्य महत्परिमाण-वत्वान मूर्तत्वम्, इतरेषां मूर्तत्वं ।

प्रश्न ७---तेजसोद्रव्यत्वम्।

उत्तर---तेजसोऽपि द्रव्यत्वमवस्यमभ्युपेयम्। न नव्यानां मतिमव प्रका-शात्मकं केवछं तेजः, किन्तु उष्णस्पर्शवद्पि। उष्णे जले उष्णे वाते च तेजः परमाणूनां समन्वयादुष्णत्वं प्रतीयते तस्मादुष्णस्पर्शवत्परमाणुमदिदं द्रव्यं स्वीकर्तव्यं अन्यथा जलवातस्थोष्णतानुपपत्तेः।

प्रश्न ८--आकाशस्य द्रव्यत्वं शद्धाश्रयत्वं च कथं ?।

उत्तर---अथेदमवकाशात्मकमाकाशं द्रव्यं । आकाशस्य द्रव्यत्वे, शद्वस्य विशेषगुणत्वे आकाशाश्रयत्वे च अनुमानप्रयोगाश्चेत्थम् । आकाशं द्रव्यं विशेषगुणविशिष्टत्वाज्ञळवत् । शद्वो विशेषगुणः चक्षुरिन्द्रियग्रहणायोग्य-बहिरिन्द्रियग्राह्यजातिमत्त्वात स्पर्शवत् । शद्वो द्रव्यसमनेतो गुणत्वात् संयोगवत् इति राद्वस्य द्रव्यसमवेतत्वे सिद्धे " राद्वो न स्पर्शवद्विरेषगुणः अग्निसंयोगा-समवायिकारणकत्वामावे सत्यकारणगुणपूर्वकप्रत्यक्षत्वात् सुखवत् ।

अथ ये नन्या वायोरेन शद्धाश्रयत्वं नाकाशस्य इति वदंति ते पृष्टन्याः, सर्वे विशेषगुणा यावद्दन्यभानिनः तेषां भूतैः सह समवायसंबंधात् सम-वायसंबंधस्य च नित्यत्वात् ।

समवायोऽपृथग्भावो भूम्यादीनां गुणैर्मतः।

स नित्यो यत्र हि द्रव्यं न तत्रानियतो गुणः। (चरकः) एवं वायोरेव राद्वाश्रयत्वे यत्र यत्र वायुस्तत्र तत्र राद्व इत्यभ्युपेयं स्यात्, एतत्तु स्पर्शस्यैव घटते न राद्वस्य स्वाश्रयध्वंसप्रयाज्यध्वंसप्रतियोगित्वम्। इति कथं वायोः राद्वाश्रयत्वम्।

प्रश्न ९--आकाशं भावरूपं वा न

उत्तर--तस्माद्दष्टद्रव्याश्रितत्वे सति द्रव्याश्रितत्वात् राद्वो द्रव्याश्रितस्तश्च द्रव्यमाकाशमिति सिध्यति । अथेदमाकाशं भावरूपमभावरूपं वेति विचारे— आकाशं भावरूपमवकाशात्मकमिति नो मितः, भवंतीति भावा इति व्युत्पत्त्या सत्तावद्द्रव्यस्य भावरूपत्वं सिद्धयति । सत्तावन्तस्रयस्त्वाद्याः [मुक्ताविष्टः] इति आकाशस्य सत्तावत्वं खीकृतम् ।

आकाशस्य अभावरूपतास्वीकारे तज्ज्ञानमेव न संभवति । अभाव-ज्ञानस्य प्रतियोगिज्ञानपूर्वकत्वात्, इह भूतले घटाभावः इत्याकारकं घटाभावज्ञानं घटज्ञानपूर्वकमेव संजायते । तस्मादाकाशस्याभावात्मकतां स्वीकुर्वाणाः पृष्ट-व्या, यत् कीदशोऽयमभावः । तज्ज्ञाने च किद्दक् प्रतियोगिज्ञानं कारणता-मवगाहते इति । वादेऽस्मिनैयायिकपंडितानामेवाधिकारः । अतस्तिनयोजनमेव यक्तम् ।

प्रश्न १०--आधुनिकैराविष्कृतानि नवीनतत्वानि ।

उत्तर-पुरातनपंचमहाभूतवादस्याधुनिकपदार्थविज्ञानेन सह समन्वयः कर्तुं शक्यो न वेति नात्र निश्चित्य कथ्यते। आधुनिका द्रव्यस्य Substance छक्षणमेवान्यथा प्रतिपादयन्ति । तेषां मते गुरुत्वगुणवद् द्रव्यम्, पंचमहा-भूतानां द्रव्यत्वं मन्यमानानां प्राचीनानां मते गुणकर्मवद् द्रव्यमित्यनयोर्मूळ एव

महान् भेदः। परमाणुः Atom गुरुगुणयुक्तः प्रत्यक्षोऽविभाज्यश्चेति काचित्, केाचिच परमाणुर्विभाज्य इति विवदन्ते नव्याः। प्राचीनास्तु परमाणोरविभाज्यता-मतीन्द्रियतां च स्वीकुर्वन्ति, रूपादिगुणयोगस्तु परमाणुष्विप न निवार्यते प्राचीनैः। सर्वेषां परमाण्नां रासायनिकसंयोगे Chemical Compound गुणपरिवर्तनं भवतीति नव्या भाषन्ते, प्राचीनास्तु पृथिवीपरमाणुष्वेवाग्निसंयोगाद्गुणपरिवर्तनं भवति नान्येषु, संस्काराद् द्रव्येषु परमाण्नामूनातिरिक्तविशेष उपपाद्यते तद्विशेषाच द्रव्येषु गुणान्तराधानं शक्यं न परमाणुषु इति बदन्ति। एवं च जलवायुतेजसां स्वरूपिवमर्शे लक्षणिवन्यने च प्राचीनार्वाचीन-पंडितानां महान् भेदः।।

इत्यस्मात्कारणकलापात् ये नन्या इलेक्ट्रोन प्रोटोन एलीमेन्टसंज्ञकानां नवीनतत्वानां सृष्ट्युत्पादने हेतुतां स्वीकुर्वन्ति ते कया रीत्या स्विसद्धान्तं स्थाप-यन्ति, कानि लक्षणानि तेषां नवीनतत्वानां, के वा गुणधर्माः, कयारीत्या वा तेभ्यः सृष्ट्युत्पादनप्रकार इति सर्वं तेभ्य एव याधातध्येनावगम्य सांस्यवेदा-न्तन्यायदर्शनपारावारपारद्यानः पंडितमहोदयाः स्वसिद्धान्तं स्थापयिष्यन्ति । वयं च तेषां पंडितवरेण्यानां साहाय्यमवलम्ब्य यथामित सिद्धांतप्रतिपादनाय प्रयत्नं करिष्याम इस्त्रत्र विरम्यते, । उपरिष्टात्तद्विषयकमस्मदीयमतं प्रतिपादयिष्यामः । विषयेऽस्मिन्समन्वयसाधनाय History of Indian philosophy by dasgupt तथा च History of hindu chemistry by Vrajendranate Seel इस्रेतत्पुस्तकद्वयं समालोचनीयम् । प्रन्थयारनयोः कयारिस्या पंचमहाभूतवादस्याद्यतनपदार्थविज्ञानेन सह समन्वयः कृत इति सम्यगवेक्षणीयम् । विषयेऽस्मिन्नन्यस्पर्वमवसरप्राप्तं तत्रैव कथियध्यामः ।

अथ त्रिदोषचर्चापरिषदि विचाराईविषयाणां क्रमशः संक्षेपेणो-त्तरं लिखामः ॥

उत्तराणि.

 १ प्रश्लाकाः—शरीरस्वास्थ्यसंरक्षणम् ।
 २-३ वातादीनां दोषधातुमलसंज्ञा भिन्नप्रयोजननिबन्धनाः परस्परं न विरुध्यन्ते ।

- ४ स्वातंत्र्येण दूपकत्वं दोपत्वमिति त्रय एव दोषाः।
- ६ वातस्य सूक्ष्मत्वं कफिपित्तयोरुभयत्वं सूक्ष्मत्वं स्थूलत्वं च । अत्र सूक्ष्मत्वं नाम दक्षप्रत्यक्षायोग्यत्वं तदन्यत् स्थूलत्वम् ।
- ७ अनादेव तेषामुद्भवः । तत्तद्नगतपंचभूतविशेषा एव तान् जनयंति । अष्टांगसंप्रहे वातादीनामुपादानं दृष्टव्यम् ।
- ८ बातादीनां गुणकर्माणि आयुर्वेदीयतंत्रेषु स्थले स्थले वर्णितानि, येभ्योऽनुमीयते दोषाः । नात्र विस्तरभयाञ्चिख्यंते ।
 - ९ वातादीनां पंचविधत्वं स्थानकार्यभेदोपाधिजन्यं न वास्तविकं।
- १० आयुर्वेदे तु ''रोगस्तुदोषवैषम्यम् । न हि समानस्थो दोषो विकारं जनयति । " इति च सिद्धांतवाक्यं वर्तते । कीटाणूनां रोगकारणत्वं वातादिदोषप्रकोपमातिरिच्य न संभवति ।

॥ अन्ये विचाराही विषयाः ॥ क्रमेणोत्तरदानम्

- १ आयुर्वेदशास्त्रं देशकालविशेषाद्रोगिवशेषा जायंते इति मतं श्रद्ध-धाति । अतश्च नवीनाविर्भूतानां रोगाणामायुर्वेदे संग्रहः कर्तब्यः।
- २ उपयोगिनां नवीनौषधानां संप्रहोपि अवस्यमेष्टव्यः ।
- ३ प्रतिसंस्करणमि कर्तन्यम् । वर्तमानासु संहितासु असामंजस्यं प्रत्यक्षिविरोधित्वं च बहुषु स्थलेषु विद्यते तत्परिमार्जनीयं, सूत्रात्म-कानां विषयाणां विस्तरः कर्तन्यः ।

एवं त्रिदोषसिद्धांतविषयकाः सामान्याश्च ये प्रश्ना भवद्भिः प्रेषितास्तेषां संक्षे-पमात्रेणोत्तरदानं कृतम् । विस्तरस्वत्रानावश्यकः । तं तु यथावसरं तत्रागत्म करिष्यामः ।



॥ श्रीमद्भन्वन्तर्ये नमः ॥

कविराज लक्ष्मीकांत दामोदर पुराणिक प्रधान्याध्यापकः—पुराणिक आयुर्वेद विद्यालय नागपूर ऐषां मतम् ।

त्रिदोषादि चर्चापरिपदिविचाराही विषयाः।

१ प्रश्न-त्रिदोषाविचार प्रयोजनम् । उत्तर-त्रिदोषाणां स्वरूपविनिश्चयार्थं ।

२ प्रश्न-वातादीनां दोषत्वं, धातुत्वं, मलत्वं वा १ त्रिविधत्वमिप चेत्तद् विरुद्धमविरुद्धं वा १ ।

उत्तर-त्रिविधत्वं, अबिरुद्धम्, (कार्यानुमेयी संज्ञा)

३ प्रश्न-दोपसंज्ञायां हेतुः ?।

उत्तर—दूषीकरणादोषाः इ.।

४ प्रश्न-कथं त्रय एव दोषाः ?

उत्तर-वातः, पित्तं, कपः।

५ प्रश्न-वातादीनां द्रव्यक्तपत्वं शक्तिक्तपत्वं, वा ?

उत्तर-द्रव्यरूपत्वं।

६ प्रश्न-वातादीनां स्थूलस्वं सृक्सत्वमुभयत्वं, वा १।

उत्तर-उभयत्वम् ।

७ प्रश्न-किं वातादीनामुपादानम् ?, उपादानात्तेषां उत्पत्तिक्रमश्च कीदृशः ?।

उत्तर--पञ्चमहाभूतं, आकाशवायू, (वातः) तेजसः (पित्तं) अम्भःपृथिवी (कफः)

८ प्रश्न-वातादीनां गुणाः कर्माणिच ।

उत्तर--अकुपितः समस्थितः;

गुण: — वात, रूक्ष, लघु, शीत, दारुण, खर, विशद, इ. पित्त-सम्नेह, उष्ण, तीक्ष्ण, दव, अम्ल, सर, कटु, इ. कफ--गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, मधुर, स्थिर, पिच्छिल, इ.

कर्म — बात, उत्साह, उछ्वास, निश्वास, चेष्टा, धातुगति, पित्त--दर्शन, पक्ति, उष्मा, कफ-स्नेह, बंध, स्थिरत्व,

९ प्रश्न-वातादीनां खंडपं, तेषां प्रस्येकशः पञ्चविधत्वं, वास्तविकं काल्पनिकं वा ? तथा तत्-स्थान कार्यभेदोत्पन्नं,

उत्तर--वास्तविकं,--स्थानकार्यभेदोत्पन्नं,

१० प्रश्न-वातादीनां रागकारणत्वं कीदशम् ? तेषामेव रागकारणत्वमुता-न्येषामपि कीटादीनाम् ।

उत्तर—रे।गस्तु दोष वैषम्यं, (कालार्थ कर्मणां योगो हीन मिथ्याति मात्रकः) कृमिदोषः—कीटादीनामपिरोगकारणत्वं भवति, तथापि उपरि-निदर्शीतं मुख्यतः त्रिदोषकारणं भवति । कृमिदोषः अप्रधानः ।

मदनगोपाल यदुनन्दनोपाध्याय एषां मतम्।

कथं त्रय एव दोषाः ?

शरीरस्य पाञ्चभौतिकत्वात्तत्र खवायुतेजोजलपृथ्व्यतिरिक्तन्न किमपि द्रव्य-मृत आत्मनः । अतः पंचैव दोषाः संभिवतं शक्नुवन्ति । तत्राकाशस्य विभृत्वाद-विकृतत्वाच न तस्य दोषत्वं दूष्यत्वम्या । उपादानादुपादेयः सर्वदा स्थूलो भवतीति सिद्धान्तात् पृथ्व्याः स्वतः स्थूलस्यान्यस्य कस्यचनोपादेयस्य जनक-त्वासम्भवात्तस्या अनुपादानत्वम् । अनुपादानत्वाच न दोषत्वम् । अतः शेषाणां

इतिवृत्तम्-परिशिष्ट [आ]

वाततेजोजलानामेव रारीरस्य क्षयवृद्धिसाम्योपादानत्वादिमे एव त्रयो देशाः संभवन्ति । रारीरे यिकाचित् वायवीयं तद्वायुः; यिकाचित्तेजसं तिपत्तम्; यिकाचिज्जलीयं तच्छलेष्मा । एतेषाग्डुणाः कर्माणि च राश्चेषु सुस्पष्टमेव प्रति-पादितानि । न खल्वसात्मेन्द्रियार्थसंयोगप्रज्ञापराधपरिणामा वातादीनदृष्यैव रोगारंभकाः ।

किवरत्न श्री गोस्वाभी भैरविगरी (मुजफरपूर) एषां मतम्। त्रिदोषादिचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

१ प्रश्नः - त्रिदोषविचारप्रयोजनम् ।

उत्तरं:-विभिन्नचिकित्सापद्धतीनामाक्षेपरायुर्वेदसमादरे शैथिल्यमात-न्वतां सतामायुर्वेदे पुनराकर्षणम् ।

२ प्रश्नः -वातादीनां दोषत्वं, धातुत्वं, मलत्वं वा १ त्रिविधत्वमपि चेत्तद् विरुद्धभविरुद्धं वा १ ।

उत्तरं:--वातादयो दे।षाः, धातवो, मलाश्च । तेषामिवरुद्धा इमाः संज्ञाः कार्यभेदाश्रयणात् त्रिविधाः परिचिताः ।

३ प्रश्न:--दोषसंज्ञायां हेतुः।

उत्तरं:-दूषणापरपर्यायाणां विविधविकाराणां जनकत्वादिमे दोषसंज्ञया व्यपदिस्यन्ते ।

४ प्रश्न:--कथं त्रय एव दोषाः !।

उत्तरं:—तिसृष्वेव विधासु शारिरिकीणां चेष्टानां विकृतीनान्चान्तः-पातात् विकारलक्षणानान्चापि त्रेविद्यात् अमी त्रित्वन्नातिवर्त्तन्ते दोषाः।

५ प्रश्न:-वातादीनां द्रव्यरूपत्वं शक्तिरूपत्वं वा ?।

उत्तरं:-वातादयो दोषाः शक्तिरूपाः ।

६ प्रश्न:-वातादीनां स्थूलत्वं सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा १।

उत्तरं:--वातादयः शक्तिरूपेणावस्थिताः सूक्ष्मा अपि लक्षणव्यापारादि-महिम्ना स्थूलाः ।

७ प्रश्नः-किं वातादीनामुपादानम् ? उपादानात्तेषामुत्पत्तिक्रमश्च कीटशः ?।

उत्तरं:-पंचभूतानामन्यतमस्य पवनस्य परिणामभूतो वातः, पावकस्य पित्तं, जल्लस्य च श्रेष्मा । सचायं परिणामो न तत्वान्तरत्वम् इति भूतपंच-कान्नातिरिक्तद्रव्यसंग्रहः । अतस्तत्रैव उत्पत्तिन्नमावरेषः ।

८ प्रश्न:-वातादीनां गुणाः कर्माणि च ।

उत्तरं:-वातादीनां रुक्षतादयो गुणाः उत्साहोच्छ्यासादीनि च कर्माणि चरकसुदान्तसेनादिभिः प्रतिपादितानि ।

९ प्रश्नः-वातादीनां स्वरूपं, तेषां प्रत्येकशः पंचविधत्वं वास्तविकं काल्पनिकं वा ? तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पन्नं वा तत्स्वरूपभेदोत्पन्नं वा ?

उचरं:-बातादीनां स्वरूपं पंचिवधिः च वास्तविकम् । तच्च स्थान-कार्यभेदोत्पन्नम् ।

१० प्रश्न:-वातादीनां रोगकारणत्वं की दशम् ? तेषामेव रोगकारणत्व-मुतान्येषामपि की टादीनाम् ? ।

उत्तरं:-बातादयो रागाणां समवायिकारणम् । दाषाणाः व रागकारण-ता । कचिदागन्तुके व्याधी कीटादीनामपि कारणत्वम् ।

अन्ये विचाराही विषयाः।

१ प्रश्नः—नवाविर्भूतानां रागाणामायुर्वेदे संप्रहप्रयोजनविचारः । उत्तरंः—देशकालादिदोषादुभ्दूता नवनवा रोगाः संप्राह्याः ।

२ प्रश्नः—नवाविष्कृतान।मुपयोगिनां भेषजद्रव्याणामायुर्वेदे संप्रह-प्रयोजनविचारः ।

> उत्तरंः उपयोगिनां नवानां द्रव्याणामिष संग्रहः कार्यः । ३ प्रश्नः-आधुर्वेदीयशारीरिनदानादिप्रतितंस्कारप्रयोजनिवचारः । उत्तरं:-शारीर-निदान-प्रतिसंस्कारोऽपेक्षितः ।

इतिवृत्तम्-परिशिष्ट [आ]



दामोदरशास्त्री कोनकर, (पनवेल) एषां मतम् । त्रिदोषादिपरिषदि विचारार्हा विषयाणां यथादुऋमं उत्तराणि ।



प्रश्लांकाः---

- १ आविष्कृताऽनाविष्कृतरे।गाणां चिकित्सार्थम् ।
- २ दोषधातुमल्खं प्रवृत्तिनिमित्तभेदात् । अविरुद्धम् ।
- 🧸 दूष्यान् वृद्धाः दूषयन्तीति दोषाः ।
- ४ स्वभावो निरनुयोज्यः ।
- ५ द्रव्यत्वम्।
- ६ स्थूलत्वं सूक्ष्मत्वं च ।
- ७ पैंच्चिमहाभूतानि, वाय्वाकाशधातुभ्यां वायुः, अग्नेः तेजसः पित्तं, अभःपृथिवीभ्यां श्लेष्मा । संग्रहः अनुसंधेयः । पांचभौतिकाः शरीरपदार्थाः ।
- ८ 'तत्र रूक्षो, पित्तं सस्त्रेह स्निग्धः ' इत्यादयः ऋभेण दोषगुणाः स्रंसव्यास इ. तथैव कर्माणि ।
- ९ वायुस्वरूपो वातः । द्रवस्वरूपं पित्तं । श्लेष्मा स्थिरः । काल्प-विका भेदाः । स्थानकार्यभेदकाल्पिताः ।
- १० असमवायिकारणत्वम् , कीटादीनामपि रुजाकर्तृत्वं वर्तते एव । तथा ते दोषप्रकोपहेतवोऽपि । कृमीणामि भूपांसि लक्षणानि दोषद्वारणव ।

श्री. गणेशदत्तशर्मा इत्येषां मतपत्रिका.

सारस्वतोपाध्याय गणेशदत्तशर्मणो हरिद्वारवासिनो मतम् ।

त्रिदोषादिचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

१ प्रश्नः-त्रिदोषविचारप्रयोजनम्।

उत्तरं:-त्रिदोषायत्तमेवायुर्वेदसर्वस्वम् । तद्विचारादृते न स्यादायुर्वे-दविचारारम्भः ।

२ प्रश्न:--वातादीनां दे।षत्वं, धातुत्वं, मलत्वं वा १ त्रिविधत्वमिप चेत्तद् विरुद्धमविरुद्धं वा १ ।

उत्तरं:-त्रिविधत्वम् । न तत्र कश्चिद् विरोधः ?।

३ प्रश्न:-दोषसंज्ञायां हेतुः ।

उत्तरं:- " शरीरदूषणादोषा " इति प्रथितचरम् ।

४ प्रश्नः-कथं त्रय एव दोषाः।

उत्तरं:-" प्रकृत्यारम्भकत्वे सति निरपेक्षत्वेन दूषणात्मकत्वं " दोष-त्रयस्येव न कस्यचन द्रव्यान्तरस्य।

५ प्रश्न:-वातादीनां द्रव्यरूपत्वं शक्तिरूपत्वं वा ?।

उत्तरं:-द्रव्यरूपत्वम्।

६ प्रश्न:-वातादीनां स्थूलत्वं सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा ?।

उत्तरं:-पित्तकफयोरुभयत्वम् वातस्यास्थूलत्वम् ।

७ प्रश्नः-किं वातादीनामुपादानम् ? उपादानात्तेषामुत्पत्तिक्रमश्च कीदशः ?।

उत्तरं:-पंचभूतोपादाना वातादयः । गर्भे बीजरुपेभ्यो भौतिकेभ्यः पित्रोः शुक्ररजोंशेभ्यो, मातुराहारस्सस्थेभ्योंशेभ्यस्तन्मयेभ्यश्च । प्रसवानन्तरं तु यथा-खाहाराचारजेभ्यो भौतिकांशेभ्यो दोषत्रयी शरीरे पुष्यति तत् प्रपिश्चतं प्रसाद-किहोत्पत्तिप्रसंगे चरकवाग्भटाभ्याम् ।

८ प्रश्नः--वातादीनां गुणाः कर्माणि च । उत्तरं:--रुक्षचलाद्यः, सम्बद्धतीक्ष्णादयः, स्निग्धशीतप्रभृतयो गुणा वातादीनां सुविदिता एव । कर्माण्यपि विविधानि यथाप्रसंगं लिखितानि सौश्रुतान्येव, यथा चरके वातकलाकलीयेऽध्याये—

" वायुस्तन्त्रयन्त्रधर " इति । " सोम एव श्लेष्मान्तर्गत.... चापराणि द्वन्द्वानीति " । च. अ. १२ (सूत्र) ।

" अग्निरेव रारीरे पित्तान्तर्गतःचापराणि इन्द्वानीति " च. अ. १२ [सूत्र] । अन्यचाप्येवमेवान्यत्र यथा प्रकरणं दृश्यते ।

९ प्रश्न:-वातादीनां खरूपं, तेषां प्रत्येकशः पंचविधत्वं बास्तविक काल्पनिकं वा ?। तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पनं वा तत्स्वरूपभेदोत्पनं वा ?।

उत्तरः- सर्वशरीरव्यापित्वे वातादिदोषत्रितयस्य वार्याप्नेजद्यात्मक-त्वम् । परंच पंचधाभिन्नत्वे वाय्वादिबहुलपंचभूतपरिणामत्वम् । पंचविधत्व वास्तविकम् । स्थानकार्यभेदेभ्य एव नामभेदः । स्वरूपभेदश्चाप्यस्येव।

१० प्रश्नः-वातादीनां रोगकारणत्वं कीदृशम् ? तेषामेव रोगकारणत्व-मुतान्येषामपि कीटादीनाम् ?।

उत्तरं:-विषमं दोषत्रयं रोगाणां समवायिकारणम् । कीटादयस्तु निदा-नार्थकरा दोषवेषम्यजनकाः कदाचिद्भवन्ति, कदावा रूपार्थकरा वैषम्यविशेष-परिचायका, यथा कृमि-कुष्ठ-जनपदोष्वंसनीयाख्येष्वध्यायेषु ।

काव्यतीर्थ श्री श्रीकांतरामी वैद्यरत्न विहारप्रांतीय वैद्यसंमेलन मंत्री (पाटणा) एषां मतम्। पश्चभृतचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

१ प्रश्नः—पञ्चमह्।भूतविचारप्रयोजनम् । उत्तरं:--जगतः प्रधानकारणत्वान्महाभूतानां विचारोऽत्यावश्यकः । २ प्रश्न:-भूतलक्षणं (कि नाम भूतत्वम्) १।

उत्तरं:-जगतः प्रधानकारणत्वम् भूतत्वम् ।

३ प्रश्नः-भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयित्वम् , अनेकिन्द्रियार्थाश्रयित्वं वा ?। उत्तरं:-पञ्चमहाभूतानामाकाशं केवलं कर्णेन्द्रियविषयस्य शह्रस्या-धारोवर्तते, अन्यभूतानि तु स्वकीयेन्द्रियविषयाणां प्रधानतयाऽधिकरणानि-

भूत्वाऽपि अन्येन्द्रियविषयाणामपि यथायोग्यमात्राराः संति ।

४ प्रश्नः—भूतखरूपगुणधर्मादीनां विवेचनम् । उत्तरं:—शद्भुणमाकाशं । तच्चेकं विभु निस्यञ्च । रूपरहितस्पर्शवान्वायुः। उष्णस्पर्शवत्तेजः । शीतस्पर्शवत्र आपः । गन्धवती पृथ्वी ।

्र प्रश्नः-भूतसंख्याविमर्शः।

ः उत्तरं; ⊢पञ्चमहाभूतानि ।

े १ प्रश्नः - भूतानां सादित्वम्, अनादित्वम्, उभयत्वं वा ?, सादित्वं चेत्तदुत्पत्तिः सक्रमा अक्रमा वा ? ।

उत्तरं:-संदिखं तदुत्पत्तिश्च सऋमा ।

७ प्रश्न:-गुणेभ्यः कारणान्तरेभ्यो वा भूतानामुद्भवप्रकारः कः ?।

उत्तरं:—-शद्धतन्मात्रस्पर्शतन्मात्ररूपतन्मात्ररसतन्मात्रगन्धतन्मात्रेभ्यो यथाकमं वियद्वाय्वभिवारिवसुंधराणां पञ्चमहाभूतानामुत्पत्तिभवति ।

८ प्रश्न:-भूतानामितरेतरव्यवकीर्णत्वं कथं सम्पद्यते ?।

उत्तरं:-भूतानामितरेतरव्यवकीर्णत्वं यथाप्रयोजनं यथावकाशं यथायोग्यं प्रकृतिमहिम्नः संप्राते ।

९ प्रश्न:-भूतानां सृष्टिकारणत्वं कीदक् ?।

उत्तरं:-भूतानां सृष्टेः समवायि कारणत्वम्।

१० प्रश्न-परिणामारंभिक्तययोर्विशेषः।

उत्तरं:-कर्मणः परिपाकफलं परिणामः, कर्मणः प्रारम्भ आरम्भिकया, इस्वनयोविशेषः ।

११ प्रश्नः-दश्यानां पृथिव्यादीनां भृतत्वं न बा।



उत्तरं:--दश्यानां पृथिव्यादीनामस्ति भूतत्वम् ।

१२ प्रश्नः--एछिमेंटसंज्ञकानां द्विनवितसंख्यकानां प्रतीच्यरासायानिकै-मूलतत्वतयाऽङ्गीकृतानां भूतत्वं न वा ?।

उत्तरं:- एलिमेंटसंज्ञकानां भूतत्वं न मन्यतेऽस्माभिः ।

१३ प्रश्नः - इलेक्ट्रोनप्रोटोनसंज्ञकयोर्भूतत्वं न वा ?

उत्तरं:-न मन्यतेऽस्माभिः।

१४ प्रश्न:-परमाणुतन्मात्रयोर्दिवेचनं, तयोभेंदो वा अभेदो वा १।

उत्तरं: -तन्मात्राणि योगिभिरवगम्यानि, परमाणवस्तु अणुवीक्षणयन्त्र-साहाय्येन दृष्टुं शक्या इत्यनयोर्भेदः ।

१५ प्रश्न:--द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वेन गुणाद्वेदो वा, गुणसमुदायत्वेन तद्भेदो वा ?।

उत्तरं:-द्रव्याणां गुणानाञ्च वस्तुतो भेद एव ।

१६ प्रश्नः-तेजसो द्रव्यत्वं न वा ?।

उत्तरं:-अस्ति तेजसो द्रव्यत्वम् ।

१७ प्रश्नः—आकाशस्त्रस्पिवमर्शः । स मावस्पोऽभावात्मको वा १ भाव-त्वेऽपि तस्य सावयवत्वं निरवयवत्वं वा १ सावयवत्वं चेत् के नाम तदवयवाः १ किमाकाशिक्षं १ शद्ध अवकाशो वा १ ।

उत्तरं:--आकाशो भावरूपो निरवयवः शद्वगुण अवकाशात्मकश्च । १८ प्रश्नः--पञ्चमूलभूतेभ्य ५कैकमहाभृतानामुद्भवः कीदशः ? ।

उत्तरं:--शद्धतन्मात्रादाकाशः शद्धत्तन्मात्रसहितास्पर्शतन्मात्राद्धायुः, शद्धतन्मात्रस्पर्शतन्मात्रसहिताद्र्पतन्मात्राद्धिः, शद्धतन्मात्रस्पर्शतन्मात्ररूपत-नमात्रसहितादसतन्मात्रादापः, शद्धतन्मात्रस्पर्शतन्मात्ररूपतन्मात्ररसतन्मात्रसहि-ताद्गन्धतन्मात्रापृथिवी समुत्पद्यते ।

१९ प्रश्नः--ईथराख्यस्यःस्तित्वं चेत् तस्य कुत्रान्तरभीवः ? आकाशे तेजिस वायौ वा ? कथं च सः !।

उत्तरं:-ईथराद्यस्य तत्त्वस्य आकाशेऽन्तर्भावः ।

२० प्रश्नः--मनुष्यादिशरीरेषु चैतन्यमात्मजन्यं पञ्चभूतादिसंयोगविशेष-जन्यं वा १।

उनारं--चैतन्यम् आत्मजन्यं।

त्रिदोषादि चर्चापरिषदिविचाराही विषयाः।

१ प्रश्नः--त्रिदोषविचारप्रयोजनम् ।

उत्तरं:--आयुर्वेदीयचिकित्सायाः प्रधानाधारास्त्रयो दोषा वातिपित्तकफा अतस्तेषां ज्ञानं चिकित्साविधानार्थमत्यावश्यकम् ।

२ प्रश्नः--वातादीनां दोषत्वं, धातुत्वं मलत्वं वा ? त्रिविधत्वमिप चेत्तद् विरुद्धमविरुद्धं वा ? ।

उत्तरं:--वातादीनां दोषस्यं धातुत्यं मलस्वञ्चाविरुद्धम् ।

३ प्रश्न:-दोषसंज्ञायां हेतुः।

उत्तरं:--रसादीनां धात्नां दूषणद्वातादीनां दोषसंज्ञा ।

४ प्रश्न:--क्यं त्रय एव दोषा: १।

उत्तरं:-यतो वातिपत्तकफेर्दुष्टा एव रसादयो रोगोत्पादने समर्था भवन्ति न तु स्वतंत्रा अतस्त्रय एव दोषा न चतुर्थ: ।

५ प्रश्न:-वातादीनां द्रव्यरूपत्वं शक्तिरूपत्वं वा ?

उत्तरं:-वातादीनां द्रव्यक्षपत्वमेवास्ति ।

६ प्रश्न:-वातादीनां स्यूल्यं सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा ?।

उत्तरं: - वातादीनां स्थू छत्वं सूक्ष्मत्वं चेत्युभयत्वमेवास्ति ।

७ प्रश्नः-किं वातादीनामुपादानम् ? उपादानात्तेषामुत्पात्तिक्रमश्च किंदराः ?।

उत्तरं:-समाना औषधात्रविहारा वातादीनामुपादानभूतास्तरभ्यस्यमा-नैर्यथे।कचि । निष्पद्यन्ते पुष्यन्ते च वातादयो दोषाः ।

८ प्रश्न:-वातादीनां गुणाः कर्माणि च।

उत्तरं:-वातस्य गुणाः रैाक्ष्यलाघवशैत्यादयः कर्माणिच उत्साहोच्छ्वास-निश्वासादयः । पित्तस्य गुणाः स्त्रिग्धत्वौष्ण्यतैक्ष्ण्यादयः, कर्माणिच दर्शनपक्त्यूष्मादयः । कपास्य गुणाः गौरवशैत्यमृदुत्वादयः, कर्माणि च स्नेहबन्धस्थिरत्वादीनि ।

९ प्रश्नः - वातादीनां खरूपं, तेषां प्रत्येकशः पंचविधत्वं वास्तविकं काल्पनिकं वा ? तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पन्नं वा तत्स्वरूपभेदोत्पन्नं वा ?।

उत्तरं:--वातो गमनशीलः, पित्तं सन्तापलक्षणं, श्रेष्मा संश्लेषणादिकृत्-सौम्यखभावः एतेषां पंचविधत्वं स्थानकार्यभेदोत्पन्नं काल्पनिकमेव।

१० प्रश्नः - वातादीनां रोगकारणत्वं कीदृशम् ? तेषामेव रोगकारणत्वमु-तान्येषामपि कीटादीनाम् ? ।

उत्तरं:--रोगोत्पादने वातादीनां प्रधानकारणत्वं कीटादीनां च गौणका-रणत्वमस्तीतिदिक् ।

अन्ये विचाराही विषया: ।

१ प्रश्न --नवाविर्भूतानां रागाणामायुर्वेदे संग्रहप्रयोजनविचारः । उत्तरं:--नवाविर्भूतानां रोगाणामायुर्वेदे चिकित्सासौकर्यार्थं यथोचितं संग्रहणम् समुचितं प्रतीयते ।

२ प्रश्नः--नवाविष्कृतानामुपयोगिनां भेषजद्रव्याणामायुर्वेदे संग्रह-प्रयोजनविचारः ।

उत्तरं:--नवाविष्कृतानामुपयोगिनां भेषजद्रव्याणामायुर्वेदे चिकित्सासौ-कर्यार्थं यथोचितं संग्रहणं समुचितं प्रतीयते ।

३ प्रश्नः--आयुर्वेदीयशार्रारिनदानादिप्रतिसंस्कारप्रयोजनिवचारः । उत्तरं:--आयुर्वेदीयशारीरिनदानादिप्रतिसंस्कारस्य चिकित्सासौक-र्यार्थं प्रतीयते आवश्यकं प्रयोजनम् ।

श्री. महादेव साहित्यशास्त्री, व्याकरणाचार्य आयुर्वेदाचार्य सप्तसागर [बनारस] एषां मतम् । त्रिदोषादिचचीपरिषदि विचाराही विषयाः दशमप्रश्नस्योत्तरम् ।

रोगनिष्ठकार्यतानिरूपितकारणता केपामिति जिज्ञासायामुच्यते समासतः।

कारणत्वं द्विधा ज्ञापकत्वरूपं कारणरूपश्चेति तत्र ज्ञापकत्वं पूर्व-रूपाणाम्।

कारणत्वं त्रिधा—सहकारीनिमित्तोपादानभेदात् तत्र सहकारीकार-णत्वं देशकालादीनाम् ।

निमित्तकारणत्वञ्च मिथ्याहारविहारादीनां कीटादीनाञ्च जातव्याधी-रूपकार्यात् पृथगुपलब्धेः ।

उपादानकारणत्वं हि विषमाणां वातिपत्ति स्त्रेष्मणाम् तेषां वैषम्ये व्याधे-रुपळच्धेः साम्ये तदनुपळच्धेरिति आवापोद्वापाभ्यां वातादीनामेवतत्त्वन्नतु-कीटादीनाम् । सत्यां विशिष्टव्याधिक्षमतायां विशिष्टकीटादीनां शरीरान्तर्वति-त्वेपि व्याधेरनुत्पादात् । किचिद्गुल्माश्मर्यान्त्रवृध्यादीनां कीटादिभिरन्तरेणो-पळच्धेः ।

(काक) वैज्ञानिकोऽन्वयमात्रमवलम्ब्यव्याधिकारणत्वपरीक्षणे प्रवित्तः। तत्परीक्षयापि कीटादीनाम् निमित्तकारणत्वमेव, तल्लक्षणस्य निमित्तकारण-त्वेऽव्यभिचारादुपादानकारणत्वे व्यभिचारात्। वातादीनां तथात्वे बहिर्जगतांतर्जगतः साम्यञ्चोपलम्यते तद्यथा—

अप्तेजोमरुतां न्यूनाधिकतमत्वे जगतः प्रलयः समत्वेच स्थितिर्निह विशिष्टकीटसन्निकर्षाद् बिहर्जगतः प्रलयस्थिती सम्भान्येते ।

आयुर्वेदाचार्य पांडुरंग हरी देशपांडे, पुणें एषां मतम् ।

पंचभूतचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः ।

१ प्रश्न:-पञ्चमहाभूतिवचारप्रयोजनम्।

उत्तरं:-पंचमहाभूतेभ्यस्त्रिदोषाणां संभवत्वात् ।

२ प्रश्नः-भूतलक्षणं (किं नाम भूतत्वम् ?)।

उत्तरं:—निखिलचराचरसृष्टद्रव्याणां मूलयोनिर्भूतत्वम् । खरद्रवचलो-ष्णत्वाप्रतीघाता भूजलानिलतेजःरवानां लिंगानि ।

३ प्रश्नः--मूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रायित्वम्, अनेकिन्द्रियार्थाश्रयित्वं वा?। उत्तरं:--शद्वादिष्विद्वियार्थेषु स्वादीनामाश्रयित्वं ' एक गुणः पूर्वी गुणवृद्धिः परे परे ' इस्रनेन नियमेन वर्तते ।

४ प्रश्नः--भूतस्वरूपगुणधर्मादीनां विवेचनम् ।

उत्तरं:--खतंत्रप्रबंधे कियते।

५ प्रश्नः- भूतसंख्याविमर्शः ।

उत्तरं:--पंचैव भूतानि ।

६ प्रश्नः--भूतानां सादित्वम् , अनादित्वम् , उभयत्वं वा ?, सादित्वं चेत्तदुत्पत्तिः सक्रमा अक्रमा वा ? ।

उत्तरं:--तन्मात्राप्रकृतित्वाद्भूताः सादयः, अनुद्भूतत्वाच तन्मात्राणां, भूतानामनादित्वमपि स्वीत्रियेत । सादित्वे यथाक्रमं शद्घादिविशेषेभ्या भूतानामुत्पत्तिः।

 प्रश्नः--गुणेभ्यः कारणान्तरेभ्यो वा भूतानामुद्भवप्रकारः कः ? ।
 उत्तरं:--तन्मात्राभ्यो गुणा भूताश्च सहजन्मानः । न गुणेभ्यो भूतोत्पत्ति-र्नच कारणांतरेभ्यः ।

श्री. पांडुरंग हरी देशपांडे इत्येषां मतपत्रिका.

८ प्रश्नः--भूतानामितरेतरव्यवकीर्णत्वं कथं संपद्यते । उत्तरं:--भौतिकोत्पश्चिसमये सर्वेषां संमीलितानामेवोत्पादनसमर्थत्वमत-स्तदा व्यवकीर्णत्वं भवति ।

> ९ प्रश्नः-मूतानां सृष्टिकारणत्वं कीदक् ? । उत्तरः--स्वतंत्रप्रबंधे विवेचितम् ।

१० प्रश्नः--परिणामारम्भित्रययोर्विशेषः १। उत्तरं:--खतंत्रप्रबंधे विवेचितम्।

११ प्रश्नः--दश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वं न वा ?। उत्तरं:--तेषां भौतिकत्वम् न भूतत्वम् ।

१२ प्रश्नः--एलिमेन्टसंज्ञकानां द्विनवतिसंख्यकानां प्रतीच्यरासायानिकै-र्मूलतत्त्वतयाऽङ्गीकृतानां भूतत्वं न वा ? ।

उत्तरं:-एलिमेंट्संज्ञकानां न भूतत्वमथ तु भूतजन्यत्वात्तेषां भौतिकत्वमेव ।

१३ प्रश्नः--इलेक्ट्रोनप्रोटोनसंज्ञकयोर्भूतत्वं न वा १। उत्तरं:- एतेषामपि भौतिकत्वम् ।

१४ प्रश्नः--परमाणुतन्मात्रयोर्विवेचनं, तयोर्भेदो वा अभेदो वा ? । उत्तरं:--स्वतंत्रप्रबंधे विवेचितम् । तयोर्भेदः आद्यानां भूतमयत्वात् । १५ प्रश्नः--द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वेन गुणाद्भेदो वा, गुणसमुदायत्वेन तदभेदो वा ? ।

उत्तरं:--गुणमयत्वमेव द्रव्यस्वरूपम् । अतो गुणत्वाद्गुणसमुदायत्वाद्धा-द्रव्यस्याभेदः ।

१६ प्रश्नः--तेजसो द्रव्यत्वं न वा ! । उत्तरं:--भूतत्वारोजसो न द्रव्यत्वम् । भौतिकानि हि द्रव्याणि ।

१७ प्रश्न:—आकाशस्वरूपविमर्शः । स भावरूपोऽभावात्मको वा १ भाव-त्वेऽपि तस्य सावयवत्वं निर्वयवत्वं वा १ सावयवत्वं चेत् के नाम तद्वयवाः १ किमाकाशार्लेङ्गं १ शब्दः अवकाशो वा १

उत्तरं:-भावरूप एवाकाशः शद्भगुणत्वात् गुण्याभावाच गुणोत्पत्तेः

असंभवात् अभावाच सर्वथा गुणसंभवाऽभावः। सर्वत्र च राद्वोपलब्धेराकाशस्य विभुत्वम् (सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम्)।

१८ प्रश्नः-पंचम्लम्तेभ्य एकेकमहाभूतानामुद्भवः कीदशः ?। उत्तरं:-तात्विकस्ररूपा एव मूलभूतास्तन्मात्रावस्थाः । तेषामुद्भृतत्वं (नाम प्रत्यक्षप्रयोजको धर्मः) भूतत्वम् । तच्च पंचीकरणेन भवति ।

१९ प्रश्नः-ईथराख्यस्यास्तित्वं चेत् तस्य कुत्रान्तर्भावः ! आकाशे, तेजसि, वायो वा ! कथं च सः ।

उत्तरं:—आकाशे ईथरं चेद्वायुखरूपं, आकाशस्य वाय्वाधिष्ठानत्वात् । तत्रापि किंचित्खरूपवत्वादाकाशवायुतेजोमयमीथरं भवितुमईति ।

२० प्रश्नः-मनुष्यादिशरीरेषु चेतन्यमात्मजन्यं पंचभूतादिसंयोगिवशेष-जन्यं वा १ ।

उत्तरं:--चैतन्यमात्मजन्यमेव । चैतन्याद्भिनं जीवत्वं पंचमुतादिसंयोग-विशेषजन्यम्।

त्रिदोषादिचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

१ प्रश्नः-त्रिदोषविचारप्रयोजनम् । उत्तरं:-आयुर्वेदस्य मूलभूतत्वात्रिदोषाणाम् ।

२ प्रश्न:—वातादीनां दोषत्वं, धातुत्वं, मलत्वं वा ? त्रिविधत्वमिप चेत्तद् विरुद्धमविरुद्धं वा ? ।

उत्तरं:-यद्यप्यवस्थाप्रसंगभेदाद्दोषाणां धातुसंज्ञया मल्लसंज्ञया वा कुत्र-चिदुल्लेखस्तथापि दोषसंज्ञयेव ते सर्वत्र व्यवहर्तव्याः । तेन दोषणामेवैषां त्रिविधत्वं न संभवति ।

३ प्रश्नः--दोषसंज्ञायां हेतुः । उत्तरः--दूपणात्मकस्वरूपावबोधाय दोषसंज्ञा । ४ प्रश्नः--कथं त्रय एव दोषाः ! । उत्तरः- त्रयधिकक्रियाभावात्क्रियात्रयकर्तारो दोषा अपि त्रय एव । ५ प्रश्नः--वातादीनां द्रव्यरूपत्वं शक्तिरूपत्वं वा ? । उत्तरं:--वातादयः शक्तिमन्ति द्रव्याणि, न केवलानि द्रव्याणि शक्ति-र्वा । अन्योन्याभावेऽकार्यकर्तृत्ववत्वात् ।

> ६ प्रश्नः--वातादीनां स्यूल्यं सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा ? । उत्तरं:--शक्तयावस्थायां सूक्ष्मत्वं द्रव्यावस्थायां स्थूल्य्वम् । ७ प्रश्नः-िकं वातादीनामुपादानं ? उपादानात्तेषामुत्पत्तिक्रमश्च कीदृशः ?

उत्तरं:-पंचमहाभूता वाय्वादीनामुपादानम् । वाय्वाकाशधातुभ्यां वायु-स्तेजसः पित्तमंभःपृथिवीभ्यां श्लेष्मेत्युत्पत्तिक्रमः ?

८ प्रश्नः--वातादीनां गुणाः कर्माणि च । उत्तरं:--रौक्ष्यादयस्तैक्षण्यादयः स्निग्धतादयो वातादीनां गुणा वियो-जनपचनश्चषणानि च कर्माणि ।

९ प्रश्नः--वातादीनां स्वरूपं, तेषां प्रत्येकशः पंचविधत्वं वास्तविकं काल्पनिकं वा १ तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पन्नं वा तत्स्वरूपभेदोत्पन्नं वा १ ।

उत्तरं:--वातादीनां स्वरूपं वास्तविकं रौक्ष्याद्यात्मरूपवर्णितत्वात् । पित्तस्यैकः कपस्य च पंचेत्येते एव प्रकारा स्थानकार्यभेदोत्पन्नाः । इतरे [वातस्य पंच पित्तस्यचोर्वरिताश्चत्वारः] सार्वदेहिककार्यभेदोत्पन्नाः ।

१० प्रश्नः--त्रातादीनां रोगकारणत्वं कीदृशम् १ तेषामेव रोगकारणत्व-मुतान्येषामपि कीटादीनाम् १ ।

उत्तरं:--वातादीनां वैषम्यमापद्यमानानां रागकारणत्वम् । तेषामेव राग-कारणत्वम् । तथापि निजरागेषु । कीटादय आगन्तुत्वेन रोगोत्पादकास्तदा पाश्चादोषानुबधः ।

श्री. नारायणदत्तशास्त्री (यशवंतगंज, इंदोर सिटी) एषां मतम् ।

त्रिदोषादिचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

१ प्रश्नः-त्रिदोषविचारप्रयोजनम् ।

उत्तरं:-चिकित्सासोकर्यं।

२ प्रश्नः-वात।दीनां दोषत्वं, धातुत्वं, मलत्वं वा १ त्रिविधत्वमिप चेत्तद विरुद्धमविरुद्धं वा १।

उत्तरं:--त्रिविधत्वं, अविरूद्धं च।

३ प्रश्न:-दोषसंज्ञायां हेतुः।

उत्तरं:-दुष्टिकरणाऽस्वरूपयोग्यःवं।

४ प्रश्न:-कथं त्रय एव दोषाः ?।

उत्तरं:-न्यूनाधिकसंख्याभावात् शीतोष्णानुष्णाशीतातिरिक्ताभावाच ।

५ प्रश्न:-वातादीनां द्रव्यरूपत्वं राक्तिरूपत्वं वा ?।

उत्तरं:-द्रव्यत्वं।

६ प्रश्न:-वातादीनां स्थूलस्वं सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा १।

उत्तरं:-उभयरूपत्वम्।

७ प्रश्नः-किं वातादीनामुपादानम् ? उपादानात्तेषामुत्पत्तिकमश्च कीदशः ?

उत्तरं:--ऋमेणानिलानलजलान्युपादानं उत्पत्तिऋमो गगनादिक्रमेण भवति ।

८ प्रश्न:-वातादीनां गुणाः कर्माणि च।

उत्तरं:-स्पर्शादयो, रूपादयो, रसादयो गुणाः। रूक्षणं, पचनं, स्नेहनं च कर्माणि क्रमेणः। ९ प्रश्नः – वातादीनां स्वरूपं तेषां प्रत्येकशः पञ्चविधत्वं बास्तविकं काल्पनिकं वा ? तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पनं वा तत्स्वरूपभेदोत्पनं वा ? ।

उत्तरं:-- शरीरघटकत्वे सित रूक्षादिजनकत्वं तच्च स्थानकार्यभेदो-त्पन्नं काल्पनिकं।

१० प्रक्षः - वातादीनां रागकारणत्वं की दृशम् ? तेषामेव रागकारणत्व-मुतान्येषामपि कीटादीनाम् ? ।

उत्तरं:-वातादीनां रेागकारणत्वं नैजत्वं शारीरत्वं वा अन्येषां कीटा-दीनामागंतुत्वम् ।

पं. दामोदर रामी गौड, आयुर्वेदिक कॉलेज, बी. एच्. यू. एषां मतम्।

त्रिदोषादिचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

४ प्रश्न:-कथं त्रय एव दोषा ?।

उत्तरं:—चत्वारस्तु दोषाः, वातादिवत् रक्तस्यापि प्राधान्येन धातुदोष-मल्रूरात्वात् अन्येषां रसमांसादीनान्तु न दोषत्वम्, प्राधान्येन तथात्वा-भावात् रक्ताधीनत्वाच । सुश्रुते यथा—" तेषां क्षयवृद्धी शोणितनिमित्ते " रक्तस्यच वातादिषु त्रिषु कीदशः प्रभाव इत्यपि विचाराहीं विषयः-यथाहि सुश्रुते—

धातुक्षयात् स्रुते रक्ते मन्दः संजायतेऽनलः । पवनश्च परं कोपं याति तस्मात् प्रयत्नतः ॥

अत्र अद्यपि श्लेष्मा नोक्तस्तथापि " एक संबन्धिज्ञानमप्रसंबंधिनं स्मारयति " इति न्यायेन सोऽपि आक्षिष्नो भवति, यदा वातिपित्ते अपि प्रभावान्बिते भवतस्तदा का कथा शीतलप्रकृतेर्बराकस्य श्लेष्मणः। (क) अतः परं क्रमश एतेषां धातुत्वं दोषत्वं मलत्वं च साध्यते किं नाम धातुत्वम् ।

देहधारणशील्यम् । धारणशद्धेन चात्र धारणं पोषणं चोभयमपि विवक्षितम् । **धारणत्वं** चैषां खं स्वं प्राकृतं कर्म कुर्वतां स्पष्टमेव, रक्तस्य प्रतिकारशक्तिरपि (Immunity) विदिता एव, उक्तमण्यत्र-

> नर्ते देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात् । शोणितादपि वा निस्यं देह एतेस्तु धार्यते ॥

> > सुश्रत ।

एषु च वायुः प्रधानतमः सर्वशीराधिपतित्वात् , आशुकारित्वाच । रक्तन्तु प्रधानतरम् सर्वशिरोपजीवकत्वात् वाताधिकृतत्वाच । कफपित्ते तु प्रधाने वातिरितत्वे रक्तोपजीवितत्वे च सति स्वस्वकर्मपरत्वात् अतएव तयोः पंगुत्वमपि वर्णितम् ।

पोपणमूळ्ळाहारः, तस्य सात्म्यीकरणे चतुर्णामेषां प्रयत्नशीळता दश्यते तथापि—

१ मुखान्तर्गतस्याहारस्योपरि कफः प्रागेव वातप्रेरितो रक्तोपर्जीवि-तश्च स्वकर्म समारभते । तथापि—

अन्नमादानकमी तु प्राणः कोष्ठं प्रकर्षति । तद्द्वैभिन्नसंघातं स्नेहेन मृदुतां गतम् ॥

प्राणश्चात्र वायुः सच अन्नप्रणालीजालकस्थिता हार्दिकजालकस्थिता च कर्मानुमेया शक्तिः (Oesophageal & Cardiac Plexuse) दवस्रेही च कप्तगुणो । कप्तित्रया चैपा Salivary aection इति नवैः प्रतिपाद्यते ।

२ [च] ततः प्राप्तामाशयस्योपिर पित्तरूप उदर्याग्निर्वातप्रेरितः रक्तोपजीवितश्च सन् स्वकर्म करोति । तथापि—

समानेनावधूतोऽग्निरुदर्यः पवनेन तु । काले भुक्तं समं सम्यक् पचत्यायुर्विवृद्धये ॥ समानपवनश्च आमाशयिकजालस्थिता कर्मानुमेया शक्तिः (Gastnic plexus) उदयोऽग्निश्च आमाशयिको रस एव (Gastnic Inice)

[छ] ततो प्रहणीमभिपन्नस्योपिर वातप्रेरितं रक्तोपजीवितं च सत् पित्तम् स्वकमीरभते । यथा—

> परन्तु पच्यमानस्य विदग्धास्याम्छभावतः । आशयाच्चयवमानस्य पीत्तमच्छमुदीयेते ॥

पित्तं चात्र यकृद्रसः क्रोमरसश्च ज्ञयः (Bile & Pancrealic Inice) वायुश्च समानाख्य एव ।

३ आन्त्रगतस्योपर्यापि वातप्रेरितस्य रक्तोपजीवितस्य विन्हिविशेष-स्यापि (Succus Eutericus) क्रिया भवति । प्रधानं च कर्म रसभाव-मापन्नस्याहाररसस्य शोषणम् । यद्यपि शोषणस्य द्विविधो मार्गः, रक्तं छसीकाच तथापि वसातिरिक्तरसावयवानां वातप्रेरितम् रक्तमेव केवछो मार्ग इति प्रस्थक्षम् । रसस्य च रक्तांगत्वात् (Piasma) अप्राधान्यम् । वसावयवयुता रसोऽपि नातिचिरादेव रक्ताङ्गत्वमुपयातीस्थपि विदितमेव । बृहदंत्रेच शोष्य-माणस्य तस्य पिंडीभावो भवति, शोषितं च तरछांशमपि रक्तावयवत्वमापयाति इत्यपि स्पष्टमेव । किंच तत्र क्षारीयप्रतिक्रियत्वादाहारस्य जीवाणुकर्मजन्यो जिक्क वायुरुत्पद्यते इत्यपि नागोचरम् । उक्तमपि च ।

पकाशयंतु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वन्हिना । परिपिण्डितपक्कस्य वायुःस्यात् कटुभावतः ॥

बृहदंत्रेऽपि पाचनं भवतीति परिपिण्डतपक्षस्येति शद्धेन ज्ञायते । नवसम्मतं च मतमिदम् ।

> (४) वातप्रेरणा च सर्वत्र पूर्वं वर्णिता एव । एवमेषां चतुर्णां धातुत्वं सिद्धं भवति ।

[ख] दोषत्वं तावत्, प्रकृत्यारम्भकत्वेसति दुष्टिकृतृत्वम् । प्रकृत्या-रम्भकत्वेसति, अर्थात् शरीरप्रकृतिभावो यथा विकृतिभावं नामुयात् तथा प्रयत्ने कृतेऽपि दृष्टिकर्तृत्वम् मिध्याहारविहारादिविप्रकृष्टहेतुना विवशीकृतास्य व्याधिकारकत्वम् । अपिपदेन च जीवाणवो ज्ञेयाः । एवं च-

वातदे।पता

Nervous disturbance

पित्तदोषता

Digestive

कफदोषता

Serous

रक्तदोषता

Abnormal & Toxaemic Condition

of Blood.

[ग] मलत्वं नाम निर्हार्यत्वम् । दृष्टा दोषा यदेदशीमवस्थामाप्न-बन्ति तदा तेषां यदि निर्हरणं न स्यात् तदा शारिरिकदशाऽतिशयेन वैषम्य-मापद्यते । सेषा मलावस्था व्याख्याता भवति ।

मलरूपो वायः

विदिग्धः

मल्ह्यं पित्तम् अम्लपित्तादौ विदग्धं पित्तम्

मल्ह्यः कफः

श्लीभिककलावृतप्रदेशरोगेषु स्नावरूपः

मलरूपं रक्तम्

Septicalmic & Pyaemic Blood

" तद्दुष्टं शोणितमनिर्हियमाणं कंडूशोफरागदाहपाकवेदना जनयते" इति सुश्रते।

सुश्रुताभिव्रेतंच मतिमदं नार्षमिति न वक्तुं शक्यते । सुश्रुते रक्तस्य दोषत्वस्वीकार स्थले स्थले शैथिल्यं दृश्यते तत् तत्कालीनवैद्यसमदाय विरोधजमित्यनुमीयते ।

पंडित विश्वेश्वरम् [मद्रास] इत्येषां मतम् । त्रिद्रापादिचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

१ प्रश्न:-त्रिदोपविचारप्रयोजनम्। उत्तरं:-आयुर्वेदे रोगारोग्यकारणं, चिकित्साविधानं च त्रिदोषसिद्धान्त- मनुमृत्यैव वर्तते । ततो यावत्पर्यंतमायुर्वेदानुसारेण चिकित्सा क्रियते, तावत्पर्यंतं त्रिदापिवज्ञानमावश्यकं भवति । 'धातुसाम्यिक्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम् '।

२ प्रश्नः— वातादीनां दोषत्वं धातुत्वं मलत्वं वा १ त्रिविधत्वमपि चेत् तिद्वरुद्धमविरुद्धं वा १।

> उत्तरं:-त्रिविधत्वमिपविद्यते, अविरुद्धमेव । यतोऽवस्था विशेषा दोषाणाम्। ३ प्रश्नः—दोषसंज्ञायां हेतुः १ ।

उत्तरं:—शरीरदूषणाद्दोषाः । ते वातपित्तकफाः यदादुष्टास्तदा शरीरं दूषन्तीति ज्ञापकार्थं दोषशद्धं लभन्ते ।

४ प्रश्न:--कथं त्रय एव दोषाः ?।

उत्तरं:--विसर्गादानविक्षेपैर्यथा सोमसूर्याऽनिला जगत् धारयंति, तथैव त्रयो दोषा अपि शरीरपरिपालकाः स्थिरीकरणपाचकविक्षेपणिकयाभिः। रक्तमपि न दोषो भवति, यतो दोषैर्विना रक्तं न दुष्यति।

५ प्रश्न:--वातादीनां द्रव्यत्वं शक्तिरूपत्वं वा ?।

उत्तरं:--द्रव्यत्वमेव गुणकर्मयुक्तत्वात् ।

६ प्रक्षः--वातादीनां स्थूलत्वं स्क्ष्मत्वं उभयत्वं वा ?

उत्तरं:--उभयत्वमपि, किन्तु तत्र वायुस्सदा सूक्ष्मः ।

७ प्रश्नः-कि वातादीनामुपादानम् ? उपादानात्तेषामुत्पित्तिऋमश्च कीदशः ।

उत्तरं:-- तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाऽहितसेवनम् ' मा. नि.।

८ प्रश्न:--वातादीनां गुणाः कर्माणि च ।

उत्तरं:--रौक्ष्यादयो वातादीनामात्मिलिंगानि, रुक्षादयो गुणाः, स्नंसन्या-सादयः कर्माणि ।

९ प्रश्नः--वातादीनां स्वरूपं, तेषां पंचिवधत्वं काल्पनिकं वास्तविकं वा ? तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पन्नं वा तत्खरूपभेदोत्पन्नं वा ? ।

उत्तरं:--पंचिवधत्वं तावत् स्थानकार्यभेदोत्पन्नमेव, खरुपभेदो न भवति । गुणसाम्यत्वात् । १० प्रश्नः-वातादीनां रागकारणत्वं कीदशम् ? तेषामेवरोगकारणत्व-मुतान्येषामपि कीटादीनाम् ।

उत्तरं:-विरुद्धाहारादिभिर्दुष्टा दोषा धात्न् प्रदुष्य रागान् कुर्वन्ति । कीटाः निमित्तकारणं भवंति । 'षट् ते कुष्टैककर्माणः '।

श्री. अनिश्चितनामा इत्येषां मतम् । पश्चभृतचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः ।

१ प्रश्नः-पंचमहाभूतिवचारप्रयोजनम् ।
उत्तरंः-पांचभौतिकोदेहः ।
२ प्रश्नः-भूतळक्षणम् (किंनाम भूतत्वम्)
उत्तरंः-बिहिरिन्द्रियप्राद्यविशेषगुणवत्वं नाम, भूतत्वम् ।
३ प्रश्नः-भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रायित्वं, अनेकेन्द्रियार्थाश्रियत्वं वा !
उत्तरंः--एकेन्द्रियविशेषार्थाश्रयत्वम् ।
४ प्रश्नः--भूतस्वरूपगुणधर्मादीनां विवेचनम् ।
उत्तरंः--योगदर्शन ३-४४ व्यासभाष्यम् । गर्भोपनिषद्, याज्ञवल्क्यस्मृतिः ६ । श्लोक ७६-७८ ।
५ प्रश्नः-भूतसंख्याविमर्शः ।
उत्तरंः-श्रुतिसिद्धत्वात्पंच ।
६ प्रश्नः-भूतानां सादित्वं, अनादित्वं, उभयत्वं वा ! सादित्वं चेत्तदुत्पत्तिः सक्रमा अक्रमा वा ! ।
उत्तरंः-सादित्वं, सक्रमा ।

७ प्रश्न:-गुणेभ्यः कारणान्तरेभ्यो भूतानामुद्भवप्रकारः कः ?।

```
उत्तरं:-तामसाऽहंकारात् ( सांख्यपुराणादिवु प्रोक्तः )।
          ८ प्रश्न:-भूतानामितरेतरव्यवकीर्णत्वं कथं संपद्यते ?।
          उत्तरं:-पंचीकृतप्रकारेण ।
          ९ प्रश्न:-भूतानां सृष्टिकारणत्वं कोंद्रक् ?।
         उत्तरं:-याज्ञवल्क्यस्मृतिः यतिधर्म प्र. श्लो. १४६-१४८।
        १० प्रश्नः - परिणामारं भिक्रययोर्विशेषः ?।
         उत्तरं:-कारणानुगतकार्यसिद्धान्तेन ।
        ११ प्रश्न:-दृश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वं न वा ?।
         उत्तरं:-भौतकत्वमेव ।
       १२ प्रश्नः—शिल्मेन्टसंज्ञकानां द्विनवितसंस्याकानां प्रतीच्यरासायनि-
 कैर्मूलतत्वतयांऽगीकृतानां भूतत्वं न वा ?।
         उत्तरं:-भूतत्वरक्षणेन ज्ञेयम् ।
       १३ प्रश्नः-इलेक्ट्रानप्रोटानसंज्ञकयोर्भूतत्वं न वा ?।
        उत्तरं:-भूतत्वलक्षणेनज्ञेयम्।
       १४ प्रश्न:-परमाणुतन्मात्रयोर्विवेचनं, तयोर्भेदो वा अभेदो वा १।
        उत्तरं:-भेदाभेदं:, योगंदर्शनम् ३-४४ वाचस्पतिमिश्राः।
       १५ प्रश्न:-द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वेन गुणाद्भेदो वा गुणसमुदायत्वेन तद-
भेदो वा ?।
        उत्तरं:--समवायसंबंधतया अभेद:।
      १६ प्रश्नः -- तेजसो द्रव्यत्वं न वा ?।
        उत्तरं:--तस्मात् उष्णस्पर्शगुणाश्रयतया तेजसोद्रव्यत्वं सिद्भम् ।
      १७ प्रश्न:--आकाशस्वरूपविमर्शः स भावरूपोऽभावात्मको वा ? भावत्वे
सित तस्य सावयत्वं निरवयत्वं वा ? सावयत्वं चेत् के नाम अवयवाः ? किमा-
काशालिंगं ? शद्धः अवकाशो वा ?।
       उत्तरं:--भावरूपः, निरवयत्वं, शद्वगुणकमाकाशम् ।
      १८ प्रश्नः—पंचमूलभूतेभ्य एकैकमहाभूतानामुद्भवः कीदशः १ ।
       उत्तरः-' सर्गादौं स यथाऽकाशं वायुं ज्योतिर्जलं महीम् '।
```

१९ प्रश्नः--ईथराख्यस्यास्तित्वं चेत् तस्य कुत्रान्तर्भावः । उत्तरं:--लक्षणेन लक्ष्यं बोद्धव्यम् ।

२० प्रश्नः-मनुष्यादिशरिरेषु चैतन्यमात्मजन्यं पंचभूतादिसंयोगिवशेष-जन्यं वा ? ।

उत्तरं:-आत्मजन्यम्।

त्रिदोषादिचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

१ प्रक्षः-त्रिदोषविचारप्रयोजनम् । उत्तरं:-सर्वरोगानिदानभूतत्वात् ।

२ प्रश्नः—वातादीनां दोषत्वं, धातुत्वं, मलत्वं वा ? त्रिविधत्वमिप-चेत्तद्विरुद्धमिवरुद्धं वा १।

उत्तरं:-त्रिविधमपि नैवविरुद्धं स्वरूपेण ।

३ प्रश्न:-दोषसंज्ञायां हेतुः।

उत्तरं:-वृन्दमाधव स्वस्थाधिकार स्रोक ६ श्रीकण्ठदत्त:।

४ प्रश्न:-कथं त्रय एव दोषा: ?

उत्तरं: - प्रकृतिविकृतिसिद्धान्तात् । श्रुतिसिद्धत्वात् ।

५ प्रश्न:-वातादीनां द्रव्यरूपत्वं शक्तिरूपत्वं वा ?।

उत्तरं:-द्रव्यस्ररूपा एव । अयुतिसद्धावयवभेदानुगतः समृहो द्रव्यम् ।

६ प्रश्न:-वातादीनां स्थूलस्वं स्क्मत्वमुभयस्वं वा ?।

उत्तरं:-उभयत्वम्।

७ प्रश्नः-किं वातादीनामुपादानं १ उपादानात्तेषामुत्पत्तिक्रमश्च कीदशः १।

उत्तरं:-आकाशवायुभ्यां वायुः । आग्नेयं पित्तम् ।अंभःपृथिवीभ्यां श्लेष्मा । पंचभूतानि ।

> ८ प्रश्नः-वातादीनां गुणाः कर्माणि च । इसरं:-चरक सूत्रस्थान अ. १२ ।

९ प्रश्नः -वातादीनां स्वरूपं, तेषां पंचिवधत्वं वास्ताविकं वा ? तत् स्थानकार्यभेदोत्पन्नं वा तत्स्वरूपभेदोत्पन्नं वा ? ।

उत्तरं:--वास्तविकं, स्थानकार्यस्वरूपभेदजन्यम्।

१० प्रश्नः—वातादीनां रागकारणत्वं कीदशम् ? तेषामेव रोगकारणत्व-मुतान्येषामपि कीटादीनाम् ? ।

उत्तरं:-दोषवैषम्यमेवन्याधिः । कीटादिजन्य आगन्तुकः ।

कविराज पंडित उपेन्द्रनाथदासानां (दिल्ली) मतम् । पश्चभृतचर्चोपरिषदि विचाराही विषयाः ।

१ प्रश्नः - पञ्चमहाभूतविचारप्रयोजनम्।

उत्तरं:--पंचभूतखरूपादौ वैमत्यं दृश्यते यतः । स्वरूपादिनिर्णयाय पंचभृतं विचार्यते ।

२ प्रश्न:--मृतलक्षणं (किं नाम भृतत्वम्) ?।

उत्तरं:--निस्तरवे सति गुणवत् समवायिकारणत्वम् भृतत्विमिति लक्षणम् ।

३ प्रश्न:--भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रायित्वम्, अनेकेन्द्रियार्थाश्रयित्वं वाः।

उत्तरं:-- ९कैकेन्द्रियाथीश्रयित्वं सर्वेषामेवभूतानाम् ।

४ प्रश्नः--भूतखरूपगुणधर्मादीनां विवेचनम् ।

उत्तरं:--परमाणुत्वं, निस्तत्वं च, महाभूतानामाकाशादिक्रमेणैकद्वित्रि-चतुःपंचगुणाश्रयित्वं, दश्यानां पांचभौतिकत्वात् पंचगुणत्वं दश्यानामिति ।

५ प्रश्नः-भूतसंख्याविमर्शः ।

उत्तरं:-इन्द्रियेन्द्रियार्थानां पंचत्वात्, पंचैव भूतानि ।

६ प्रश्नः-भूतानां सादित्वम्, अनादित्वम्, उभयत्वं वा १, सादित्वं चेत्तदुत्पत्तिः । सक्रमा अक्रमा वा १ ।

उत्तरं:-परमाणुखरूपाणां भूतानामनादित्वं, महाभूतानां जन्यानां भूतेभ्यः समुत्पत्तः, तत्रैतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुर्वायोरभि-रम्रेरापः अभ्यः पृथिवीत्युक्तः क्रमः।

३७ पंडित उपेन्द्रनाथदासानां इत्येषां मतम् ।

७ प्रश्न:-गुणेभ्यः कारणान्तरेभ्यो वा भूतानामुद्भवप्रकारः कः ? ।
उत्तरं:-ईश्वरेच्छ्या संयुक्तानां भूतानां विशेषको नाद्यापि दृश्यते ।
९ प्रश्न:-भूतानां सृष्टिकारणत्वं कीदृक् ? ।
उत्तरं:-उपादान-[समवायि]-कारणत्वमेव भूतानामिति ।
१० प्रश्न:-परिणामारम्भिक्तययोविशेषः ।
उत्तरं:-दार्शानिकानां मते कथंचित् भिन्नार्थयोरेतयोनीस्ति वस्तुभेदः ।
११ प्रश्न:-दृश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वं न वा ? ।
उत्तरं:-दश्यानां स्वेषामेव पांचभौतिकत्वम् ।
१२ प्रश्न:-एलिमेन्टसंज्ञकानां द्विनवित्तंसंख्यकानां प्रतीच्यरासायनिकैमूलतत्त्वतयाऽङ्गीकृतानां भूतत्वं न वा ? ।

उत्तरं:-एतेषामिप पांचभौतिकत्वं न भूतत्विमिति। १३ प्रश्नः-इलेक्ट्रोनप्रोटोनसंज्ञकयोर्भूतत्वं न वा १। उत्तरं:-एतेषामिप पांचभौतिकत्वं न भूतत्विमिति। १४ प्रश्नः-परमाणुतन्मात्रयोर्विवेचनं, तयोर्भेदो वा अभेदो वा १। उत्तरं:- शद्वभेदोऽपि न वस्तुभेदः। १५ प्रश्नः-द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वेन गुणाद्भेदो वा, गुणसमुदायत्वेन तद-

१५ अका--इ॰यस्य गुणाश्रयत्वन गुणाद्भदा वा, गुणसमुदायत्वेन तत्व भेदो वा १ ।

उत्तरं:--गुणेभ्यो गुणिनां भेदएव । १६ प्रश्नः--तेजसो द्रव्यत्वं न वा १ । उत्तरं:--द्रव्यत्वमेव तेजसः ।

१७ प्रश्नः-आकाशस्वरूपविमर्शः । स भावरूपोऽभावात्मको वा ? भावत्वेऽपि तस्य सावयवत्वं निरवयवत्वं वा ? सावयवत्वं चेत् के नाम तदवयवाः ? किमाकाशिक्कं ? शद्धः अवकाशो वा ? ।

उत्तरं:—आकाशस्याऽपि पृथिन्यादिवत् भृतत्वम् परमाणुरूपस्या-काशस्य नित्यत्वं स्थूलस्यानित्यत्वं शद्धसमवायिकारणत्वं च ।

१८ प्रश्नः-पञ्चमूलभृतेम्य एकैकमहाभूतानामुद्भवः कीदराः १।

उत्तरं:-आकाशाद्वायुरित्यादिक्रमेण समुत्पत्तिः।

१९ प्रश्नः-ईथराख्यास्यास्तित्वं चेत् तस्य कुत्रान्तर्भावः ! आकाशे तेजिसि वायौ वा ! कथं च सः !।

उत्तरं:-ईथराख्याकाशयोः शहूभेदेपि न, वस्तुभदः।

२० प्रश्नः-मनुष्यादिशरीरेषु चैतन्यमात्मजन्यं पञ्चभूतादिसंयोगविशेष-जन्यं वा १ ।

उत्तरं:-जीवाधिष्ठितयोः शुक्रशोणितयोर्थुतिमात्रदर्शनाजीवात्मस्योग-जन्यमेव चैतन्यम् ।

त्रिदोषादिचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

१ प्रश्नः-त्रिदोषविचारप्रयोजनम् । उत्तरं:-त्रिदोषाणां स्वरूपादौ वैमस्यं भिषजां यतः । अतस्तत्वविचारार्थं त्रिदोषोऽपि विविच्यते ॥

२ प्रश्नः-वातादीनां दोषत्वं, धातुत्वं, मलत्वं, वाशिविधत्वमपि चेत्तद् विरुद्धमविरुद्धं वा १।

उत्तरं:--वातादीनां धातुत्वं, सर्वशरीरगतत्वं च यावानंशो विकृती दु:खदायको भवति, तावानंशो दोषो, यावानंशो विकृतो तस्य मळत्वमेत्र ।

४ प्रश्न:--कथं त्रय एव दोषाः ?।

उत्तरं:--दुष्टिकर्तृत्वं त्रयाणामेव, प्रकृत्यारंभकत्वमप्येतेषामिति त्रयो-दोषा निरुच्यन्ते ।

५ प्रश्न:--वातादीनां द्रव्यरूपत्वं शक्तिरूपत्वं वा ? ।

उत्तरं:--गुणिकयाश्रयत्वात् द्रव्यत्वमेव वातादीनाम् ।

६ प्रश्नः--वातादीनां स्थूलत्वं सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा १।

उत्तरं:--प्रलक्षयोग्यगुणिकयाशालित्वात् स्थूलत्वमेव वातादीनाम् ।

७ प्रश्नः-- किं वातादीनामुपादानम् ? उपादानात्तेषामुत्पत्तिक्रमश्च कीदृशः ?।

उत्तरं:--पांचभौतिकानां वातादीनां पांचभौतिकान्यन्नपानश्वासवायु-प्रभृतीनी, पांचभौतिकान्युपादानानि उत्पत्तिक्रमवर्णने स्थानाभावः । ८ प्रश्नः--वातादीनां गुणाः कर्माणि च । उत्तरः--रूक्षतोष्णतास्निग्धतादयो गुणाः, संचालनपाचनश्लेषणादीनि कर्माणि ।

९ प्रश्नः--वातादीनां स्वरूपं, तेषां प्रत्येकशः पञ्चविधत्वं वास्तविकं काल्पनिकं वा ? तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पन्नं वा तत्स्वरूपभेदोत्पन्नं वा ? । उत्तरं:--रौक्ष्यतैक्षण्यगौरवादीनि चरककीर्तितान्यात्मरूपाणि दोषाणाम् । १० प्रश्नः--वातादीनां रोगकारणत्वं कीदृशम् ? तेषामेव रोगकारणत्व-मुतान्येषामपि कीटादीनाम् ? ।

उत्तरं--दोषदूष्यसमूर्छनाजन्यत्वाद्रोगाणां समवायिकारणत्वमेव दोषाणा-मिति । दोषवर्धनद्वारैव रेगिकर्तृत्वं कीटानां । समदोषे शरीरे प्रविष्ठाः कीटाः स्वयमेव विनश्यंति, दोषविकातियुक्ते शरीरे प्रविष्ठा एव कीटा दोषवर्धनद्वारा रोगं जनयंतीति दोषाणामेव रोगकारणत्वं कीटानां तु, दोषवर्धकत्वेन सहकारित्वमेव ।

वैद्यराज अमृतलाल प्राणशंकरशर्मणां मतम् । त्रिदोषादिचर्चापरिषदि विचारार्हा विषयाः ।

१ प्रश्नः--त्रिदोषविचारप्रयोजनम्।

उत्तरं:--विरुद्धपक्षस्थितानां पाश्चात्यायुर्वेदविदां समाधानार्थं, तथा पृथक्जनेषु श्रद्धोत्पादनार्थम् ।

२ प्रश्न:--वातादीनां दोषत्वं, धातुत्वं, मळत्वं वा ? त्रिविधत्वमपि चेत्तद् विरुद्धमाविरुद्धं वा ? ।

उत्तरं:--दोषधातुमलशद्धाः पदार्थरूपेण प्रथेषु दश्यंते, तथा च तच दूषणाद्धारणात् मिलनीकरणाच तेषामेव त्रिविधत्वमिप दश्यते, कान्तिच वातादयो दोषरूपेण, रसादयो धातुरूपेण, मूत्रादयो मलरूपेण वर्णिता उपलभ्यंते, तत् सर्वमिप प्रकृत्यन्तरेण भिद्यमानमिकद्भमेव ।

३ प्रश्न:-दोषसज्ञायां हेतुः ।

उत्तरं--संज्ञावाचकानां रूढशद्वानां हेतुविचारोऽनावश्यकः।

४ प्रश्न:--कथं त्रय एव दोषाः ?।

उत्तरं:--यथा कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणावस्थितं सत्वरजस्तमांसि न व्यतिरिच्यन्ते, एवमेव कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेण व्यवस्थितमप्यतिरिच्य वातिपत्तिश्चेष्माणः । तस्मात्त्रय एव दोषाः ।

५ प्रश्न:--वातादीना द्रव्यरूपत्वं शक्तिरूपत्वं वा ?।

उत्तरं:--आयुर्वेदतंत्रेषु यद्दोषाणां वर्णनं क्रियते तस्मिन् विचार्यमाणे दोषा द्रव्याण्येवाऽस्मिन् न कोपि संदेहल्लेशः

६ प्रश्नः--वातादीनां स्थूलत्वं सृक्ष्मत्वमुभयत्वं वा ? ।

उत्तरं:--वातस्य सूक्ष्मत्वं, पित्तकप्रयोश्च स्थूछत्वं सूक्ष्मत्वम् च।

७ प्रश्नः--िकं वातादीनामुपादानम् ? उपादानात्तेषामुत्पत्तिक्रमश्च कीटशः ?।

उत्तरं:--वातादीनां पंचमहाभूतजन्यत्वात् तान्यवोऽपादानानि तथा च आयुर्वेदानुसारेण वायोः पित्तं, वातपित्तयोश्च श्लेष्मा इत्युत्पत्तिकमः प्रतिभाति।

८ प्रश्नः--वातादीनां गुणाः कर्माणि च।

उत्तरं:-वातादीनां गुणाः कर्माणि च तंत्रेषु तेषु तेषु स्थल्लेषु वर्णितानि यथा वा. सू. अ. १-११-१२ इत्यादि ।

९ प्रश्न:--वातादीनां खरूपं, तेषां प्रत्येकशः पञ्चविधत्वं वास्तविकं काल्पानिकं वा ? तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पन्नं वा तत्खरूपभेदोत्पन्नं वा ? ।

उत्तरं:--वातादीनां खरूपं पंचिवधत्वं च वास्तिविकं काष्ट्रनिकं वेति मया नाबाविध निश्चितम्।

॥ श्री ॥

पं. जगन्नाथशर्मा वाजपेयी (बनारस) एत्येषां मतम् । पंचभूतचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

१ प्रशः--पञ्चमहाभृतविचारप्रयोजनम्। उत्तरः-पुरुपार्थज्ञानमिदं गुद्धं परमर्षिणा समाख्यातम् । स्थिस्युत्पात्त-प्रलयाश्चिन्त्यन्ते यत्र भूतानाम् ।

२ प्रश्न:-भूतलक्षणं [कि नाम भूतत्वम्]। उत्तरं:-जगदारंभकत्वे सति विशेषगुणाश्रयत्वम्।

३ प्रश्न:- मृतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयित्वम्, अनेकेद्रियार्थाश्रयित्वं वा ?। उत्तरं:--उभयमपि।

४ प्रश्नः--भूतस्वरूपगुणधर्मादीनां विवेचनम् । उत्तरं:--संख्याभेदेन गुणधर्मादीनां भेदः

५ प्रश्नः-भूतसंख्याविमर्शः। उत्तरं:-पंचमहाभृतानि ।

६ प्रश्न:-भूतानां सादित्वम्, अनादित्वम्, उभयत्वं, वा? सादित्वं-चत्तदुत्पत्तिः सक्रमा अक्रमा वा?।

> उत्तरं:-सादित्वमुत्पातिश्व संक्रमा, अनादित्वमन्येषां मते । ७ प्रश्न:-गुणेभ्यः कारणान्तरेभ्यो वा भूतानामुद्भवप्रकारः कः ?। उत्तरः-तेषामेकगुणः पूर्वे गुणवृद्धिः परे परे ।

८ प्रश्न:-भृतानामितरेतरव्यवकीर्णत्वं कथं संपद्यते ?। उत्तरं:--गुणसंख्याभेदेनैव भेदः। ९ प्रश्न:-भूतानां सृष्टिकारणत्वं कीदक् ?।

उत्तरं:--उपादानकारणत्वम् समवायिकारणत्वम् वा ।

१० प्रश्न:--परिणामारम्भाक्रिययोर्विशेषः ।

उशरं:-आरम्भिक्तया कर्तृजन्या, परिणामिक्रिया वेगजन्या, वीचीतरंग-न्यायेन ।

११ प्रश्नः--दृश्यानां पृथिव्यादीनां भूतत्वं न वा ?। उत्तरं:--भौतिकत्वमेव ।

१२ प्रश्न:--एल्टिमेन्टसंज्ञकानां द्विनवतिसंख्याकानां प्रतीच्यरासायनिकै-मूलतस्वतयाऽङ्गीकृतानां भूतत्वं न वा ?।

उत्तरं:--समेषामप्यत्रैवान्तर्भावः ।

१३ प्रश्नः--इलेक्ट्रोनप्रोटोनसंज्ञकयोर्भृतत्वं न वा ? । उत्तरं:--वायोः साधारणावस्थारूपेण तयारंगीकरणं युक्तम् ।

१८ प्रश्न:--परमाणुतन्मात्रयोधिवेचनं, तयोभेंदो वा अभेदो वा ?। उत्तरं:--विभिन्नशास्त्रीयसंज्ञात्वाच शक्यो निश्चयः।

१५ प्रश्नः-द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वेन गुणाद्भेदो वा, गुणसमुदायत्वेन तदभेदो वा ?।

उत्तरं:--उभयमपि प्रकरणवशात्।

१६ प्रश्नः--तेजसो द्रव्यत्वं न वा ?। उत्तरं:--सर्वसम्मतं द्रव्यत्वम्।

१७ प्रश्न:--आकाशस्वरूपविमर्शः । स भावरूपोऽभावात्मको वा १ भाव-त्वेऽपि तस्य सावयवत्वं निरवयवत्वं वा १ सावयवत्वं चेत् के नाम तदवयवाः १ किमाकाशिक्ष्णं १ शद्धः अवकाशो वा १ ।

उत्तरं:--शद्भगुणकमाकाशम्भावरूपमेव । तात्विकं निरवयवत्वं, काष्ट्रनिकं तु सावयवत्वं, घटाकाशमठाकाशादिभेदात् तच्चावकाशदानादनुगृण्हाति ।

१८ प्रश्नः--पञ्चमूलमूतेभ्य एकैकमहाभूतानामुद्भवः कीदशः ? । उत्तरं:--अन्योन्यानुप्रविष्ठानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत् । स्वे स्वे द्रव्ये व्यक्तलक्षणम् ।

२० प्रश्न:-मनुष्यादिशरीरेषु चैतन्यमात्मजन्यं पञ्चभूतादिसंयोग-विशेषजन्यं वा ?।

उत्तरं:-आस्तिकमतेनात्मजन्यमेव ।

त्रिदोषादिचचीपरिषदि विचाराही विषयाः ।

१ प्रश्न:-त्रिदोषविचारप्रयोजनम्।

उत्तरं:-चिकित्सासौकर्यम्, ततश्चाराग्यं, ततः पुरुषार्थचतुष्टयम ।

२ प्रश्न:—वातादीनां दोषत्वं, धातुत्वं, मलत्वं वा १ त्रिविधत्वमपि चत्तद् विरुद्धमविरुद्धं वा १।

उत्तरं:-सर्वमप्यविरुद्धम् कर्मवैशेष्यात् संज्ञावैशिष्टयं पाचकपाठ-कादिवत् ।

३ प्रश्न:-दोषसज्ञायां हेतुः ।

उत्तरं:-शरीरद्रषणाद्दोषाः ।

४ प्रश्न:-कथं त्रय एव दोषाः ?।

उत्तरं:-प्रकृत्यारंभकत्वेसति दुष्टिकर्तृत्वं, रूपलक्षणस्य तत्रैव सत्त्वात्।

५ प्रश्न:-वातादीनां द्रव्यरूपत्वं राक्तिरूपत्वं वा ?।

उत्तरं:-शक्तिविशिष्टद्रव्यत्वम् ।

६ प्रश्नं:-वातादीनां स्थूटस्वं सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा !।

उत्तरं:-उभयत्वमप्यविरुद्धम् ।

७ प्रश्नः-किं वातादीनामुपादानम्? उपादानात्तेषामुत्पात्तिक्रमश्च कीदशः ?।

उत्तरं:-वायुतेजोजलानि म्लभ्तान्येव वातापित्ताश्चेष्मणामुपादानानि । भूतैश्चतुर्भिस्सहितः सुस्क्षेमेनोजवो देहमिलादि ।

८ प्रश्न:-वातादीनां गुणाः कर्माणि च।

उत्तरं:— रूक्षत्वैशस्यस्निग्धत्वौष्ण्यगौरवमृदुत्वादयोगुणास्तादशानि कर्माणि ।

९ प्रश्न:-वातादीनां स्वरूपं, तेषां प्रत्येकशः पश्चविधत्वं वास्तविकं काल्पानिकं वा १ तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पनं वा तत्स्वरूपभेदोत्पनं वा १।

उत्तरं:- वार्ताति, तपर्ताति श्लिष्यतीति व्युत्पत्तिवत्त्वेन शक्तिरूपत्वमेत्र। पंचिविधित्वं काष्ट्रनिकं स्थानकार्यभेदोत्पन्नम् ।

न्या. वाडीकरशास्त्री वै. दातारशास्त्री इत्येषां मतम्

१० प्रश्नः—वातादीनां रागकारणत्वं कीदशम् ? तेषामेव रागकारण-त्वमुतान्येषामपि कीटादीनाम् ? ।

उत्तरं:--कचिदुपादानकारणत्वं, कचिन्निमित्तकारणत्वं कीटादीनां न सर्वत्रकारणत्वमपि च न तेषां स्वातंत्रयेण व्याधिकारणत्वम् ।

अन्ये विचाराही विषयाः।

१ प्रश्न:--नवाविर्भूतानां रोगणामायुर्वेदे संप्रहप्रयोजनविचारः । उत्तरं:--यद्यपि नास्स्यैकोऽपि कश्चनरोगो यस्यायुर्वेदपद्धस्या निदानम-संभवं तथापि विशेषप्रतिपत्यर्थं विचारः करणीयोऽवश्यम् ।

न्यायरत्न वाडीकरशास्त्री, वैद्यभूषण दातारशास्त्री इत्येतयोर्भतम् ।

पश्चभूतचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः।

२ प्रश्नः-भूतलक्षणं (किं नाम भूतत्वम् ?)। उत्तरं:-रूपं, गंधो रसः स्पर्शः स्नेहः सांसिद्धिको द्रवः। बुध्यादिभावनांताश्च शद्धो वैशेषिका गुणाः॥

- १ बुद्धिखदुःखइच्छाद्देषप्रयत्नधर्भाधर्मभावनासंस्कारआत्मावृत्तिविशेष-गुणवत्वं भूतत्वम् ।
 - २ बहिरिन्दियप्राह्मविशेषगुणवत्वं भूतत्वम्।
 - ३ बिहारिन्द्रियप्राह्यजातिमत् गुणवत्वम् भूतत्वं [परमाणाविप]
- ४ पंचीकृतभूतकार्यं प्रसक्षिविषयः, अपंचीकृतभूतोत्थं कार्यं प्रसक्षस्य अविषयः, तेन वैशेषिकाणां नैय्यायिकाणां च परमाणुः सांख्यानां च तन्मात्रा अप्रसक्षा एव इन्द्रियप्रसक्षाऽविषयत्वात् । प्राह्यत्वं नाम अत्र लौकिकप्रसक्षस्वरूपयोग्यत्वं बोध्यम् ।

लोकिकप्रत्यक्षं नामः—षड्विधसिककर्षजन्यं प्रत्यक्षं लोकिक-प्रत्यक्षं बोध्यम् ।

१ संयोगः-द्रव्ययोरेव भवति, द्रव्यप्रत्यक्षे सर्वत्र चक्कुत्वङमनसां-संयोगसान्निकर्ष एव कारणं भवति ।

२ संयुक्तसमवायः-रूपप्रत्यक्षे संयुक्तसमवायसनिकर्षः कारणं भवति।

३ संयुक्तसमवेतसमवायः - रूपत्वजातिप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसम-वायसानिकर्षः कारणं भवति ।

४ समवायः - शद्धप्रत्यक्षे समवायसिनकर्षः कारणं भवति ।

५ समवेतसमवायः - शद्धत्व [जाति] प्रत्यक्षे समवेतसमवाय-सिविकर्षः कारणं भवति ।

६ विशेषणिविशेष्यभावः — अभावप्रत्यक्षे विशेषणिवशेष्यसिवकर्षः कारणं भवति ।

३ प्रश्न:--भूतानामेकेकेनिद्रयायीश्रयित्वम्, अनेकेन्द्रयायीश्रयित्वं वा?। उत्तरं:--भूतानां मध्ये आकाशस्य एकेन्द्रियायीश्रयित्वं, इतरेषां चतुर्णी भृतानां तु अनेकेन्द्रियायीश्रयित्वम्।

आकाशः—सावकाशः स्वरूपवान्, भावरूपः, सावयवः, शद्वलिंगकः, सावयवःवेऽपि अनिर्देश्यावयववान्, अप्रस्यक्षत्वात् तथापि सावयवः कार्य-द्रव्यत्वात् घटवत् । संख्या, परिमाण, पृथवत्व, संयोग, विभाग, शद्वगुण-धर्मवान् [वेदान्तिमते सांख्ययोगमते च सावयवत्वं, नैय्यायिकवैशेषिकमते निरवयवत्वम् आकाशस्य]

वायुः — स्पर्शराद्धसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्ववेग (संस्कार) क्रियावान्, मूर्तत्वभूतत्वद्रव्यारंभकत्वजातिमत्वादिधर्मवान्, अनुष्णाशीतापाकजरपर्शिष्टंगः, स्पर्शशद्धधृतिकंपैर्छिगेरनुमीयते। चाक्षुपप्रस्यक्षं नास्ति वायोः। नवीनमते त्वाचप्रस्यक्षं विद्यते, प्राचां मते वायोरप्रस्यक्षत्वं।

तेजः--उष्णस्पर्शवत्वं, भाखरशुक्ररूपत्वं, गुणाः रूपशद्वस्पर्शसंख्या परिमाणपृथक्त्वसंयोगिवभागपरत्वापरत्वनैमित्तिकद्रव्यत्ववेगवत्वादयः । धर्माः प्रस्यक्षाविषयत्त्रद्रव्यारंभकत्वम् तत्वभ्तत्वते जस्त्वद्रव्यत्वसः ॥दिजातिमत्विक्रियावत्वा-दयः ।

जलम्:--शीतस्पर्शवत्वसांसिद्धिकद्भवत्वं जलस्य लक्षणम् । गुणाः--रसस्पर्शशद्धरूपसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगिवभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्भवत्व स्नेह-वेगादयः । धर्माः---रूपवत्वप्रस्यक्षविषयत्वभूतत्वमूर्तत्विक्रियावत्वजातिमत्व-द्रव्यारंभकत्वादयः ।

पृथ्वीः--नानारूपवती, गंधवती, पृथ्वी । गुणाः--गंधसंहिताः स्नेह-वर्जिता, उपर्युक्ता गुणाः क्षितौ विद्येते । धर्माः--कठिनत्वमूर्तत्वमृदुत्व-प्रत्यक्षविषयत्वद्रव्यारंभकत्वभूतत्वाधारत्वजातिमत्वादयः ।

५ प्रश्नः--भूतसंख्याविमर्शः । उत्तरं--पंचैव भूतानि ।

६ प्रश्नः-भूतानां सादित्वम्, अनादित्वम्, उभयत्वं वा ?, सादित्वं चेत्तदुः (पत्तिः । सक्रमा अक्रमा वा ? ।

उत्तरं:--तत्र भूतानां कारणितरोभावेन कारणदृष्ट्या अनादित्वम् । प्रादुर्भावो कार्यदृष्ट्या सादित्वम् । इत्यनेन प्रकारेण उभयत्वम् । तथा च कार्यदृष्ट्या तदुत्पत्तिस्सऋमा ।

७ प्रश्नः--गुणेभ्यो भूतानामुत्पत्तिप्रकारः—

उत्तरं:--परिणामवादमाश्रिस्य महदहंकारक्रमेण भूतानामुलात्तिर्भवति, कारणान्तरमाश्रिस्य भूतानामुलात्तिस्तु चतुर्णां भूतानां परमाणुभिर्द्यणुकान्यणुका-दिक्रमेण भवति ।

८ प्रश्नः--भूतानां परस्परव्यवकीर्णत्वं कथं संपद्यते ?।

उत्तरं:-त्रैलोक्यं, पंचसु महाभूतेषु, पंचमहाभूतानि तन्मात्रेषु, तन्मा-त्राणि, एकादरोन्द्रियाणि अहंकारे, अहंकारो बुद्धौ, बुद्धिः प्रधाने, । प्रथमं सर्वं मौतिकं खखभूतेषु विलीयते, अनंतरं भूतानि खे खे तन्मात्रे लीयते, तदनंतरं पृथ्वीतन्मात्रं आपतन्मात्रे, आपतन्मात्रं तेजस्तन्मात्रे, तेजस्तन्मात्रं वायुतन्मात्रे, वायुतन्मात्रं आकाशतन्मात्रे लीयते। ९ प्रश्नः--मुतानां सृष्टिकारणत्वं कीद्दक् ?। उरारं:--सांख्यक्रमवत् विज्ञेयम् आरंभिक्रयायां असतः कार्यस्य उत्प-चिस्तु, ईश्वरेच्छावशात्, प्राणिकमसिहितात् भवतीति विशेषः।

१० प्रश्नः--दश्यानां पृथिन्यादीनां भूतत्वं न वा ?। उत्तरं:--दश्यानां पृथिन्यादीनां न भूतत्वं अपि तु भौतिकत्वम्।

१४ प्रश्नः--परमाणुतन्मात्रयोभेदो न वा ? ।

उत्तरं: -परमाणुतन्मात्रयोरभेद इति प्रतिभाति । [नागोजीभद्ध कृत योगसूत्रवृत्तिः पाद २ सूत्र २९ पृष्ट २९१] अथापि शास्त्रीयवचनाभावा-दत्र संशयो वर्तते ।

१५ प्रश्नः—द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वेन गुणाद्भेदोरभेदो वा १। उत्तरं:—द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वेन गुणाद्भेदो वर्तते । गुणसमुदायो द्रव्य-मिति तु न संमतम् परं च द्रव्यगुणयोर्नित्यसंबंधो वर्तते तेन द्रव्याद्गुणादी-नामभेदः प्रतीयते ।

१६ प्रश्न:--तेजसो द्रव्यत्वं न वा ?। उत्तरं:--तेजसो द्रव्यत्वमेव, तस्य औष्ण्यं गुणः।

१८ प्रश्नः--पश्चम्लभूतेभ्य एकैकमहाभूतानामुद्भवः कीदृशः १। उत्तारंः--पंचम्लभूतेभ्यो नाम पंचतन्मात्रेभ्यः सांख्यदर्शनपद्भत्या 'विष्टं द्यपरं परेण ' इति न्यायेन एकैकमहाभूतानामुद्भवो भवति ।

२० प्रश्न:--मनुष्यादिशरीरेषु चैतन्यमात्मजन्यं न वा ?।

उत्तरं:- मनुष्यादिशरीरेषु चैतन्यं नाम-इच्छाद्वेषः सुखं दुःखं प्रयत्नादि आत्मजन्यं, न पंचभृतादिसंयोगजन्यम् । अत्र आत्मा समवायिकारणं निमि-त्तकारणं वा भवति ।

त्रिदोपादिचर्चापरिपदि विचाराही विषयाः

२ प्रश्नः—वातादीनां दोषत्वं, धातुत्वं, मलत्वं वा ? त्रिविधत्वमपि चेत्तद् विरुद्धमविरुद्धं वा ?।

उत्तरं:-बातादीनां दे।पत्वं धातुत्वं मलत्वं त्रिविधमपिं अविरुद्धम्।

न्याः वाडीकरशास्त्री वैः दातारशास्त्री इत्येषां मतम्

३ प्रश्न:--दोषसंज्ञायां हेतुः ।
उत्तरं:--वातादीनामेव दूषकत्वादेषसंज्ञा रुढा नान्येषाम् ।
४ प्रश्न:--कथं त्रय एव दोषाः ? ।
उत्तरं:--त्रय एव दोषाः नान्यश्चतुर्थः ।
५ प्रश्न:--वातादीनां द्रव्यरूपत्वं राक्तिरूपत्वं वा ? ।
उत्तरं:--वातादीनां द्रव्यत्वमेव ।
६ प्रश्न:--वातादीनां स्थूलत्वं सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा ? ।
उत्तरं:--वातादीनां स्थूलत्वं सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा ? ।
उत्तरं:--वातादीनां स्थूलत्वं सूक्ष्मत्वमि ।
५ प्रश्न:---किं वातादीनामुपादानम् ? उपादानात्तेषामुत्पत्तिक्रमश्च

उत्तरं:—वातादीनामुपादानं तु अन्नरूपेण परिणतानि भूतान्येव, तेषा-मुत्पित्तिन्नमस्तु आकाशवायुभ्यां वातः, तेजसः पित्तम्, अंभःपृथिवीभ्यां श्लेष्मा, तथा च रसदोषसन्निपातेन रसनिपाकवीर्यत्वेनाऽपि नित्यं स्थूळत्वेन उत्पत्तिभीवति।

९ प्रश्न:-वातादीनां स्वरूपं, तेषां प्रत्येकशः पञ्चविधत्वं, वास्तविकं काल्पनिकं वा ? तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पन्नं वा तत्स्वरूभेदोत्पन्नं वा ? ।

उत्तरं:-वातादीनां स्वरूपं तेषां पंचविधत्वं वास्तविकम् न काल्पनि-कम् । यत्पञ्चविधत्वं तत्स्वरूपभेदेनैव स्वीकर्तव्यम् ।

१० प्रश्न:-वातादीनां रागकारणत्वं कीदशम् १ तेषामेव रागकारण-त्वमुतान्येषामपि कीटादीनाम् १।

उत्तरं:-वातादीनामेव रोगकारणत्वं स्वनिदानत्वेन निजरोगेषु, आगन्तु-रोगेषु तु कीटादिभ्यो दोषप्रकोपात् रोगकारणत्वम् ।

वैद्य बद्रीद्त्त मिश्रः साहित्यायुर्वेदाचार्यः । अध्यक्षो युक्त (U. P.) प्रांतीय बदापूर मंडलस्थ गुरुद्धुल महाविद्यालयस्य एषां मतम् ।

पश्चभूतचर्चापरिषदि विचाराही विषयाः ।

४ प्रश्न:-कथं त्रय एव दोषाः १ इति । ननु शरीरदूषणादोषा इति ब्युत्पत्त्या विकृतैः शारीरधातुभी रसरक्ता-दिभिरिप शरीरदुष्टिदर्शनात् , ''वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः'' इत्यत्र समासोक्तया ब्यासाशङ्कनाच्च दोषाणां त्रित्वकथनमसाध्विति चेत्—

> " शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेद्दोष उत्कटः । प्रकृतिर्जायते तेन, " इति सुश्रुतोक्त्या । " शुक्रातिवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषकृमेः । तैश्व तिस्रः प्रकृतयो हीनमध्योत्तमाः पृथक् " ॥

इति वाग्मटोक्तया च पाञ्चभौतिकशरीरभूमिकायां सृक्ष्मरूपाणाम् दोषाणामेव सत्तया कारणरूपत्वनावस्थानात् - इतरेषां रसादीनाञ्च ''मातुश्चा-हाररसजैः क्रमात्कुक्षौविवर्धते '' इति सुश्रुतोक्तया मातुराहाररसादिसमुद्भवत्वेन यावच्छरीरावस्थानादेतेषामेव दोषत्वौचित्यात् । अतएव च '' प्रक्रत्यारम्भकत्वे सति दुष्टिकर्तृत्वमिति दोषळक्षणं सङ्गतं भवति । दोषा एव यावच्छरीर-स्थितय इत्यत्र ' नित्याः प्राणभृतां देहे वातिपत्तकपाश्चय '' इति चरकीयं वच एव मानमुपैति । एवं च रसादीनां प्रकृत्यारम्भकत्वाभावात् " मज्जमेदो-वसाम्त्रापत्तिश्चेष्मशकृत्त्यस्क् । रसो जळ्ञ देहेऽस्मिन्नकैकाञ्चळिवर्धितम् । '' इत्युक्तप्रमाणानां स्वमानन्यूनाधिक्यक्त्पा दुष्टिरिप दोषाधिनैव । अतएव च शास्त्रे ''

" रसासङ्मांसमेदोऽस्थि मज्जशुक्राणि धातवः । सप्तदृष्याः '' इति दृष्यत्वेनोक्ता रसादयो न तु दोषत्वेन । नन्वेवं " पित्तं पङ्गु कफः पङ्गुः पङ्ग्चो मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् । "

इति शास्त्रं वातप्रधान्यदर्शनात् तस्येकस्यैव दोषत्वेन कथनात् कथमेते त्रय इति चेत् " तत्रास्थिन स्थितो वायुः पित्तं तु स्वेदरक्तयोः । श्लेष्मा शेषेषु," इस्याश्रयाश्रयमूळाया गुणसाम्येन नियताया दोषदूष्यपरम्परायाः शास्त्रेणैव दिशितत्वादुक्तपद्यस्य, वातप्रशस्तिपरत्वेन रसरक्तादिदुष्टौ वायोरप्रयोजकत्वेन, कुपितयोः पित्तश्लेष्मणोः प्रसरादौ तात्पर्यप्राहकत्वात् । अतएव च " नर्ते देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात् । शोणितादपि वा नित्यं देह एतेस्तु धार्यते " ॥ इति सुश्रुतोक्तं शोणितस्य चतुर्थत्वमप्योपचारिकं धात्वाश्यपरंच, एवमेव व्रणप्रश्ने सूत्रस्थानीया " तदेभिरेव शोणितचतुर्थे " रिति सुश्रुतोक्तिरपि—उपचारपरा " रक्तं सर्वश्ररीरस्थं जीवस्याधार उत्तमः । " इति धारणमूळकत्वेन धातुपरा वानुसन्धेया भवतीति वातादीनां त्रयाणामेव प्राधान्यं मन्यमानः सुश्रुताचार्योऽप्युपसंहरति व्रणप्रश्न एव—

' विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा । धारयन्ति जगदेहं कफपित्तानिलास्तथा ''। इति संक्षेपतस्त्रयाणामेव दोषत्वं प्रतिपादयन्विरमति ॥

६ प्रश्न:—वातादीनां स्थूल्त्वं, सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा ? उत्तरं:—जगित विद्यमानं सर्वभिष वस्तुजातं लक्षणं प्रमाणं वान्तरा न प्रसिध्यतीति ''लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तु।सिद्धि'' रिति सतां सम्मतं मतमबलभ्य जागितिं खलु—आयुर्वेदमूलभूतानां वातिपत्तकफानां विषयेऽपि '' किं स्वरूपा वातादय'' इति जागरूकः प्रश्नः । तत्र ''तावत्स्वंरूप्यतेनेनेति खरूपं'' '' लक्ष्य-तेऽनेनेति लक्षणमिति '' खरूपलक्षणयोः समानार्थत्वम्, यद्यपि—

> " तत्र रूक्षो छष्ठः शीतः खरः सूक्ष्मश्रलोऽनिलः "। " पित्तं सम्नेहतीक्ष्णोष्णं छष्ठं विश्लं सरं दवम्। स्निग्धः शीतो गुरुर्भन्दः श्रक्षणो मृत्सनः स्थिरः कप्तः।"

इति तत्र तत्र गुणपरं स्वरूपं प्रतिपादितमस्याचार्येस्तथापि स्थूल-सूक्ष्मभेदेन सकलस्य जगतो लघुत्वेन द्वैविध्यमेब मन्यमानानां प्राचां प्रत्यक्ष- वादिनां प्रतीचाञ्चोदेति प्रश्नो दोषविषयेऽपि यत्—यानुद्दिश्य दोषानायुर्वेद-विदां विदुषां "वातिपत्तश्लेष्माण एव देहसम्भवहेतवः, "" नर्ते देहः कफा-दिस्त न पित्तान च मारुतात् । शोणितादिष वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते" इति तथा " दोषरोषो रुजां हेतुः, " " दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामे-ककारणम् " इति च यथाक्रमं स्वस्थातुरिवषयः सिंहनादो वरीवित, तेषां समेषां दोषाणां स्थूल्व्यं सूक्ष्मत्वं वाऽनिर्घार्थ स्वरूपावस्थानमेव न सम्भव्तिति सत्तां समद्भावितुं रथूल्व्यसूक्ष्मत्विन्णयस्यावश्यकत्वं प्रतीयते है-विध्यवादिनां, शबच्छेदादिना शारीरिकाणि समस्तानि तस्वानि प्रत्यक्षीकुर्वतां प्रत्यक्षवादिनां त्रिदोषखण्डनपराणां पाश्चात्यानां विशिष्टज्ञानायापि स्थूलसूक्ष्मत्वं प्रतिपादनम्त्यावश्यकमेव । अतएव च रवस्थातुरपरायणत्वेनायुर्वेदस्य सामा-न्यतो दोषाणां हैविध्यं व्याचक्षाणश्चरकाचार्यः—

'' नित्याः प्राणमृतां देहे वातिपत्तकपास्तयः । विकृताः प्रकृतिस्था वा तान् बुभुत्सेत पंडितः ॥ ''

इति मूलतो दोषस्वरूपबोधायैव भिषज आदिदेश । एवंचोक्तवचना-त्प्रकृतिस्था विकृताश्चेति वातादयो द्विविधा व्यवस्थितास्तेषु ये प्रकृतौ स्वभावे पाञ्चभौतिकशरीरारम्भे स्थितास्ते प्रकृतिस्थाः यदाह सुश्रुतः—

" शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेदोष उत्कटः।

प्रकृतिर्जायते तेनिति '' साम्येन चैते स्वास्थ्यप्रदा नैरोग्यकारका वा भवन्ति, स एष चोक्तोर्थः " समधातुः समस्तासु [प्रकृतिषु] श्रेष्ठा " दोषसाम्यमरोगिता " इत्युभाभ्यामातवचोभ्याम् ;--

विकृता वृद्धाः क्षीणावा इमे रागदा इति साधारण्येन शारीराणां दोषाणां द्वयी गतिः, तत्र खल्ल प्रकृतिस्थानां शरीरधारकाणां दोषाणां कर्ममेदेन प्रस्नेकं पञ्चविद्यत्वं, तत्र वायोर्यदुक्तं सुश्रुतेन निदाने—

" प्राणोदानौ समानश्च व्यानश्चापान एव च । स्थानस्था मारुताः पञ्च यापयन्ति शरीरिणम् ॥ " इति अविकृतस्य तस्य समष्ट्या कर्मोक्तं चरकेण—



" उत्साहोच्छासानिश्वासचेष्टाधातुगतिः समा । समोमोक्षो गतिमतां वायोः कर्माविकारजम् ॥ "

इति पंचानां प्राणादीनां विभिन्नकर्मता तु सुश्रुतेन निदान एव दर्शिता एवं पित्तस्य पंचरूपतापि सूत्रे सुश्रतेनोक्ता " पक्कामाशयमध्यस्थं पित्तं चतु-विधमन्नपानं पचिति, विवेचयित च दोषरसमूत्रपुरीषाणि, तत्रस्थमेव चात्म-शक्त्या शेषाणां पित्तस्थानानां शरीरस्य चाग्निकर्मणाऽनुप्रहं करोतीत्यादिना, कर्म च तदीयं समुदितमुक्तमिककृतं चरकेण—

" दर्शनं पक्तिरूष्मा च क्षुतृष्णादेहमार्दवम् । प्रभा प्रसादो मेधा च पित्तकर्माविकारजम् ॥"

इति पाचकरञ्जकसाधकालोचकभ्राजकाभिधानां तेषां कर्मभेदस्तु सुश्रुतेन तत्रेत्र नामप्राहमुक्तः, । क्रेडदकावलम्बकरसकतर्पकश्लेषकनामभिः श्लेष्मणः पांचविध्यमपि सुश्रुतेन सूत्रे ।

" माधुर्यात्पिच्छिल्लाच प्रक्लेदित्वात्तथैव च । आमाराये संभवति श्लेष्मा मधुरशीतलः ॥ "

इत्यादिना प्रबंधमुखेन निरूपितम् , अविकृतस्य तस्य कार्यन्तु ।

" स्नेहोबन्धः स्थिरत्वंच गौरवं वृषता बलम्। क्षामाधृतिरलोभञ्च कफकर्माविकारजम्॥"

इति हृचेन निरवद्येन पद्यन।भिनेशो निज्ञबन्ध । त एतेऽविकृता वातादयो नैरोग्यकरा एव प्रसादाख्यया समाख्याता आयुर्वेदतन्त्रे यदाह चरकः —

" शरीरधातवः पुनिर्द्विधाः संग्रहेण-मलभूताः प्रसादभूताश्च, तत्र मलभूतास्ते ये शरीरस्याबाधकराः स्युस्तद्यथा--शरीरिच्छद्रेषूपदहाः, पृथग् जन्मानो बहिर्मुखाः परिपकाश्च धातवः, प्रकुपिताश्च वातिपत्तश्चेष्माणः, ये चान्येऽपि केचित् शरीरे तिष्ठन्तो भावाः शरीरस्योपघातायोपपद्यन्ते सर्वा-स्तान् मलान् संचक्ष्महे, इतरांस्तु प्रसादानिति " एतेनाविकृतानां प्रसादत्वेन सहैव विकृतानां वातादीनां मलक्ष्पतापि पृथग्जन्मानो बर्हिमुखाः परिपकाश्च धातव इति प्रकुपिताश्व वातिपत्तश्चेष्माणः '' इत्युक्त्या चोक्ता, तदेवं प्राकृतानां दोषाणां प्रसादत्वे विकृतानां मलक्तपत्वे व्यवस्थिते प्रसादक्तपस्य मलक्तपस्य चेत्युभयात्मकस्य वायोः सर्वभावेषु—

" वायुस्तन्त्रयन्त्राधरः, प्राणोदानसमानव्यानापानात्मा, प्रवर्तकश्चे-ष्टानामुच्चावचानां, नियन्ता प्रणेता च मनसः, सर्वेन्द्रियाणामुद्योजकः, सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा, सर्वशरीरधातुव्यूह्करः सन्धानकरः शरीरस्य, प्रवर्तको वाचः, प्रकृतिः स्पर्शशद्धयोः, श्रोत्रास्पर्शनयोर्मूळं, हर्षोत्साहयोर्योनिः, समीरणोऽग्नः, दोषसंशोषणः, क्षेप्ता बहिभेळानां, स्थूळाणुस्नोतसां भेत्ता, कर्त्ता गर्माकृतीनाम्, आयुषोऽनुवृत्तिप्रस्ययभूतो भवस्यकुपित इति।

" खयम्भूरेष भगवान् वायुरित्सभिशद्वितः । स्वातन्त्रयानित्सभावाच्च सर्वगत्वात्तायेव च ॥" सर्वेषामेव सर्वात्मा सर्वछोकनमस्कृतः । स्थित्युत्पित्तिविनाशेषु भूतानामेष कारणम् ॥ प्रव्यक्तो व्यक्तकर्मा च रूक्षः शीतो छघुः खरः । तिर्यग्गो द्विगुणश्चेव रजाबद्भुष्ठ एव च । अचिन्त्यवीर्यो दोषाणां नेता रोगसम्हराट् ॥

इति चरकसुश्रुतयोः प्रामाण्यात् मूक्ष्मत्वम्, सर्गारम्भे सूक्ष्मतन्मात्राभ्यां आरब्धत्वात् आकीटमनुष्यं परमसूक्ष्मेष्विप शरीरावयवेषु धात्वंशेषु विद्यमानत्वाच्च सौक्ष्म्यमेव । अतएव नैयायिकैविहितं 'रूपरिहतस्पर्शवान्'' इति वायोर्कक्षणं साधु सङ्घटते । न चायमायुर्वेदिको वायुः शीतत्वेन न्यायनयानुमोदितादनुष्णाशीत-स्पर्शवतोर्वायोभिन्न इति चेदोषाणां परस्परानुप्रवेशात् पांचभौतिकत्वेनाप्यां-शानुप्रवेशाद्वा योगवाहित्वाच्च वायोः शीतत्वप्रतितेः एवं च शीतत्वं सर्वथा जलीयस्य श्लेष्मण एव गुणोऽतएव च—

''योगवाहः परं वायुः संयोगादुभयार्थकृत् । दाहकृत्तेजसा युक्तः शीतकृत् सोमसंश्रयात् ॥ '' इति वचनं सङ्गच्छते, ''कषायितक्तकदुको वायुर्देष्टोऽनुमानतः '' इति कािप्टबलोक्ते वचािस वायोः कार्यानुमेयत्वसिद्धान्तोऽपि सामञ्जस्य-मुपैति ।

केचित्त छोकिकेम्या वाय्वग्निसोमम्यो विभिन्ना एवायवैदिका वात-पित्तकपा इति कल्पयन्ति तन्मतमपि '' अतिस्रिविधविकलपा व्याधयः प्राद्भवन्त्याग्नेयसौम्यवायव्याः " इति चरकीयवचसा पित्तकप्रवातानामेवा-भ्रिसोमवायुरूपत्वाानिरस्तम् । " पृथिन्यापस्तेजोवायुराकाशं ब्रह्म चान्यक्तमि-त्येत ९व षड्धातवः समुदिताः पुरुष इति राद्वं लभन्ते " इत्याद्यागमर्शना-द्रप्रामाणिकत्वञ्च तस्य मतस्येति समानोऽयं लैकिकेन वातेन केवलमौपाधिक-मेदभागिति पांचभौतिकशरीरसम्बन्धाद्भिनः प्रतीयते, न चैवं पंचभूतासक-मिप द्रव्यजातं ' क्ष्मामिधिष्ठाय जायत '' इति '' अम्बुयोनि '' इतिचोक्तया पृथिन्याधिष्ठानं साछिङकारणञ्चेति पृथिवीसछिङयोश्च मूर्तत्वात्ततो जातानां सकलभावानां कारणानुविधायित्वानम् तत्वमंत्रति वायोरपि सृक्ष्मत्वं न युक्तमिति चेत्-" अग्निपवननभसां समवायत " इति सङ्केतिदिशा सर्वभावानां पाञ्च-भौतिकत्वस्यैव सिद्धान्तितत्वेन स्थृलसृष्टिसमारम्भे " शद्धतन्मात्रसहकृतात्सपर्श-तन्मात्रास्थृलोवायुरुत्पद्यते '' इति मूलावलम्बालारीरस्य वायोः पाञ्चभौति-कत्वदशायामपि " व्यपदेशस्तु भूयसेति " सिद्धान्तात् स्पर्शशद्वगुणस्य वायोस्तादशकार्यानुभेयत्वभेवेति । अतएव च " प्रकृतिः स्पर्शशद्वयोः " इत्युक्तम् । एवं खळु संक्षेपात् प्रसादरूपस्य वातस्य सूक्ष्मत्वे पृथग्जनमान इत्युक्त्या व्युत्पादिते च " प्रकुपिताश्च वातपित्तश्चेष्माण " इत्युक्तया वा मल-रूपस्य तस्य-

> " पकाशयं तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वन्हिना । परिपिण्डितपकास्य वायुःस्यात् कदुभावतः " ॥

इति चरकसिद्धांतादाहारपरिणामजन्यावस्थायां स्थूलत्वं स्यादित्यपि नाराङ्कर्नायम्, वायुपदेनात्रान्तपरिपाकजनितस्य बाष्पस्यैव उक्तत्वात्, न चैवंतद्वाष्पमेव वातमलम्, तेनापि वायोः कार्यानुमेयतापुष्टेः, यच शारीरस्य वायोर्विकृतस्य वातजादिरोगेषु मलमूत्रादिषु कृष्णारुणवर्णकारित्वं दृश्यते तदपि— " एकः प्रकुपितोदोषः सर्वान् दोषान् प्रकोपयेत् "।

इति दोषान्तरसाहाय्याद् दोषद्ष्यसंमूर्छनाद्वा सहायककृतमेव मन्त-व्यम् । अतएव च " लोहितोद्वारदर्शी च म्नियते रक्तपैत्तिकः" इस्त्रत्र लोहि-तमुद्गारं पश्यतीति टीकाकृदर्थीऽपि दोषद्ष्यसम्पर्कात्संगच्छते इति सर्वथैव मल्लपस्यापि वायोरतीन्द्रियत्वापरपर्यायं सूक्ष्मत्वमेवेति महर्षिभियोगजदृष्ट्या विलोकितस्य चर्मचक्षुषामगम्यस्याचिन्त्याद्भुतशक्तिकर्मत्वं कार्यानुमेयत्वञ्च वायोः प्रस्पादि यथामति ।

ित्तस्य तु प्रसादरूपस्य स्थूल्यं सूद्भावञ्चोपलभ्यते शरीरे वर्तमानस्य, तद्यथाऽविकृते पञ्चात्मके पित्ते " पाचकं विहाय चतुर्विधस्य रञ्जकसाधकालोचकभाजकाभिधस्यातीन्द्रियत्वात् सौद्भम्यमेव । स्थूलं पाचकपित्तं प्रायिक्षविधं भवति ।

'' आमाशये ह्यम्लरसं ग्रहण्यां कटुतिक्तकम् । अग्न्याशयानिस्नुतं तत्कटुत्वं भजते पुनः ''॥

दृश्बीतद्भवति जीवतः पुरुषस्य इतिस्युदरिवपाटने, वमतश्च पुंसी विकृतं मुखादितो निर्गतं प्रत्यक्षतामुपैति, तदेव च रोषाणां चतुर्णां पित्तस्था-नानामनुप्राहकं भवतीत्यतः " राक्तिकेन्द्रं " तदेव यदुक्तमाचार्यः—

" तत्रस्थमेव रोष।णां पित्तानामप्यनुप्रहम् । करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्समृतम् " ॥

"अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति।" " तत्रस्थमेव चात्मशक्तवा शेषाणां पित्तस्थानानां शरीरस्य चाग्नि-कर्मणाऽनुग्रहङ्करोति "।

" जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः । सौक्ष्म्याद्रसानाददानो विवेक्तुं नैव शक्यते"॥

एवं च रञ्जकादिरूपेण रसरक्तादिधातुविपरिणामिनी, पोषकाणा-माहारद्यशानामादानिक्रया, सन्तापशोषणादिकृत्यञ्च सूक्ष्मिपत्तस्यैव कार्यम् । रसरागकर्तृणो रजकस्य वातसाहाय्येन क्रियाशील्य्वात्सूक्ष्मत्वम्, हृद्गतस्य साधकस्याभिष्रेतार्थसाधनत्वेनैव सूक्ष्मत्वम्, एवं दक्ष्यस्य पित्तस्यान्नेचक-त्वमुक्तं तस्याप्याधारस्यातीन्द्रियत्वेनातीन्द्रियत्वम्, यतो हि स्वीण्यपीन्द्रियाण्य-तीन्द्रियाणि अतश्चक्षुषोऽपि सुतरामतीन्द्रियत्वं सिद्धम्, एवं त्वक्ष्यस्य भाजकिपत्तस्याप्यतीन्द्रियत्वमवसेयम्, तथा च प्रसादक्तप् पंचात्मके पित्तं मुख्यं पाचकमेव खस्थानस्यं स्थूलम्, रागादिकियामूक्तं रंजकादिनामकं चतुर्विधं तदतीन्द्रियमेवत्युभयविधत्वम्, मलदशायान्तु तत् " वमनेऽम्लिपत्तादिविकारे च मुखानिर्गतं कदुरसमम्लरसं वा समेषामक्षिलक्षी भवस्येव, रक्तान्मांसार्थं पच्यमानं किदं पित्तमृत्यद्यते प्रसादश्च मांस भवतीत्युक्तं " पित्तं मांसस्य च मलो, मलः खंदस्तु मेदस " इति चरकीयवचनेन, एवंच पित्तस्य मलस्यता स्पष्टेव, विकृतपित्तखरूपं तु—

" पित्तं तिक्ष्णं दवं पूति नीलं पीतं तथैव च । उष्णं कटुरसं चैव विदम्धश्चाम्लमेव च ॥ "

इति वचसोक्तं भवति, एवंच मल्रूपस्य पित्तस्य सर्वथा स्थूल्यन् मेवेति, न चैतस्यापि "पित्तमाग्नेय" मिति सिद्धान्तादग्निरेव दारीरे पित्तान्तर्गत इत्यादिचरकवचसा पित्तमात्रस्य सृक्ष्मत्वोक्ताम्लपित्तादिविकारेषु निर्गच्छता द्रवस्य द्रव्यान्तरकल्पनया सृक्ष्मत्वम्, " सर्वं खलु पांचमोतिकमिति " चरकसिद्धान्तादग्नेदिहनित्रयायाः प्रदामनार्थं तत्र प्रचुरस्य जलीयमागस्यावश्य-कत्वेन प्तित्वेन भूतत्या च तस्यैव स्थूल्येन द्रव्यान्तरकल्पनाया अन्याया-त्वादनोचित्याच्च ।

पंचप्रकारो बलासस्तु मूर्तयोः पृथिवीजलयोराधिक्येन कारणानुरूप-त्वात्कार्यस्य प्रसादरूपोऽपि स्थूलप्रायः, आमाशयेयः खलु क्वेदकः प्रधानरूपः श्लेष्मा विद्यते तस्य खस्थाने स्थूलत्विमतरश्लेष्मसाहाय्येत्वस्यापि सूक्ष्मो भाग-एवाधिकृतो यदुक्तं धन्वन्तरिणा सुश्रुते—

" माधुर्यात्पिन्छिल्त्वाच प्रक्रेदित्वात्तायैव च । आमाराये सम्भवति श्लेष्मा मधुरशीतलः ॥ "

" स तत्रस्थ एव खशक्त्या शेषाणां श्लेष्मस्थानानां शरीरस्य चौदक-कर्मणानुप्रहं करोति "। " सोम एव शरीर श्रेष्मान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति" इति चरकीयवचनस्यापि सुश्रुतगद्यार्थपोषकत्वेन " द्विबद्धं सुबद्धं भवतीति" न्यायादितरपोषकस्य प्रकृतस्य श्रेष्मणः सूक्ष्मत्वमेव निश्चीयतेऽत एव च " सर्वशरीरचरा वातपित्तश्रेष्माण " इति वचोऽपि पित्तश्रेष्मणोः सूक्ष्म-भागानामेव शरीर यथास्थानं समुन्नयनात्सङ्गच्छते ।

द्वितीयस्यावलम्बकनाम्नः कपस्य श्वासपथादावार्द्रतासम्पादनात् प्रत्यक्षविषयत्वेन स्थूलत्वम्, बोधकापरपर्यायस्य रसकाभिधानस्य तृतीयस्यापि " लाला " रूपत्वेन प्रत्यक्षं सर्वसिद्धमेवेति तस्यापि स्थूलत्वम्, सान्धसं छे-पकस्य संश्लेषणकर्मणः " श्लेषका " ख्यस्यापि पिन्छिलपदार्थत्वेन प्रत्यक्षं दारीरतत्त्वज्ञेः सुवेदमिति सोऽपि स्थूल एव—

यदुक्तम्-'' स्नेहान्यक्ते यथा त्वक्षे चत्रं साधु प्रवर्तते । सन्धयः साधु वर्तन्ते संश्लिष्टाः श्लेष्मणा तथेति ॥ ''

'' तर्पकाभिधस्त पञ्चमः शिरस्यः स्नेहसन्तर्पणाधिकृतस्यादिन्द्रियाणा-मात्मवीर्येणानुग्रहङ्करोत्यतीन्द्रियाणामनुग्राहकत्वात् सूक्ष्मप्राय एव । नासाचक्षु-रादीनामार्द्रताप्रदत्वादयमपि स्थूल इत्यपि केषाञ्चिन्मतमिति प्रसादरूपस्या-विकृतस्य श्लेष्मणो दैविष्यं स्थूलसूक्ष्मभेदेन प्रतिपादितं शास्त्रसरण्येति ।

मलरूपस्य तु कफस्य सर्वेदा सर्वथा स्थूलस्वमेव स खलु " रसाद्-रक्तार्थं पच्यमानं किष्टमेव " यदुक्तम्--

" किद्दमन्नस्यविण्मूत्रं रसस्य च कफोऽसूजः।"

एवञ्चेतत्पद्यप्रतिपादितरूपः कपः प्रतिश्यायादौ नासिकादिमार्गानिः-सरन् स्थूल एवेति नात्र कस्यापि विवादः, तदीयं खरूपन्तु—

'' श्लेष्मा शीतो गुरुः स्त्रिग्धः पिच्छलः शीत एव च।

मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्विदग्धो छवणो भवेत् ॥ "

इति पद्यप्रतिपादितार्थमिति मल्रूपस्य श्लेष्मणोऽपि स्थूलत्वमेव वर्णितं यथामित शास्त्रमनुसरतेति ।

एवन्न वातादीनां त्रयाणामपि प्रसादमलभेदाद् द्वैविध्येन प्रसादेषु



प्रत्येकं पंचात्मतया च न्यवस्थितानां मध्ये वातस्य सर्वावस्थासु विद्युच्छाक्तिवद-चिन्त्याभ्द्रतशक्तित्वात्मुक्ष्मत्वमेव, अतएव चैतद्विषये—

> '' पित्तं पङ्गु कफः पङ्गुः पङ्गवो मल्धातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥ '' इति दोषादिनेतृत्वेनोक्तं वचश्चारितार्थ्यमुपैति ।

पित्त श्रेष्माणौ तु प्राकृतावस्थायां स्थूळसूक्ष्मभेदेन पंचात्मत्या यथा निर्देशमुभयात्मकौ, मळावस्थायाञ्च द्वाविप स्थूळावेवेति निष्कर्षः ।

ते चेमेऽविकृता यथावसरमावश्यकेन स्थौल्येन सौक्ष्म्येण चावश्यकं शारीरिकं कर्म निष्पादयन्तो देहधरा भवन्तीति साधूक्तं महर्षिणा सुश्तेन—

> " विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा। धारयन्ति जगेद्देहं कफपित्तानिलास्तथा॥"

संक्षेपतः शास्त्रं पुरस्कृत्य दोषाणां दुरूहं स्थूलसूक्ष्मभदं यथामति प्रतिपाद्य विरमति ।

७ प्रश्नः-कि वातादीनामुपादानम् ? उपादानात्तेषामुत्पत्तिक्रमश्च कोदृशः १।

उत्तरं:-दृश्यते खळु लोके प्राणिनां प्रवृत्तिस्त्रिवर्गमयी धर्मार्थकामानन्तरा सर्वमिष कार्यमकार्यमिति:- 'त्रिवर्गशून्यं नारम्भं भजेत् तंचाविरोधयन् ',। इति शास्त्रोपदेशेनापि लभ्यते। वेदोपदिष्टं धर्माचरणं स्वस्थैरनामयैवी नरेरायुष्मदिभरेव साध्यम्-

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् । रोगास्तस्यापहत्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥ आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

इत्युभाभ्यामातवचोभ्यामनुमोदितोभवत्यर्थः । आयुर्वेदोपदिष्टं स्वास्थ्य-मायूरक्षा वा शारीरधातुज्ञानादते न सम्भवतीति षड्धातुसमुदायस्य (पृथिन्यापस्तेजोवायुराकाशब्रह्मचान्यक्तमित्येते षड्धातवः समुदिताः पुरुष-इति शद्धं लभन्ते) पुरुषस्य शारीरधातुनां समीकरणं विहाय चिकित्सा- शास्त्रस्य प्रयोजनान्तरमेव नानुपश्यामि इत्येष चार्थः—
तस्योपयोगोऽभिहितश्चिकित्सां प्रति सर्वदा ।
भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते
धातुसाम्याकियाचोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम् ॥
इति सुश्रुतचरकवाक्याभ्यां स्पष्टतामुपैति ।

के खु शारीरा धातवा येषां शरीरधारणक्रियया धातुत्वं भवति च यत्साम्यसम्पादनेन नैरोग्यमिति विचारे तु 'दोषधातुमल्रमूलं हि शरीरम्' ' दोषधातुमलामूलं सदा देहस्य ' इस्राद्याप्तवचोनुसन्धानाद् ' वातिपत्तकफाः' रसासङ्मांसमेदो।स्थमजाशुक्राणिम्त्रशकृत्स्वेदादयः एव भवन्तीति सर्वेषामेषां धारणसाग्यात् धातुत्वेऽपि विशेषज्ञानाय त्रिधा व्यवहारोऽप्युचित ९व ' प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्तीति ' न्यायात् । अथ त्रिष्वप्येतेषु दृषणस्वभावात् , रागोत्पादने प्रधानत्वात् , यावच्छरीरावस्थानत्वेन निल्यवात्, पाश्चभौतिकशरीरभूमिकायां शुक्रशोणितयोरवस्थानेन प्रकृति-सम्पादकत्वाच, मुख्यत्वं वातपित्तकफानामतएव चायुर्वेदप्राणिरूपत्वनैव वातिपत्तिश्चेष्मणा एव देहसम्भव हेतवः तेरेवाव्यापन्नेरघोमध्योध्वसिन्निविष्टैः शरीरिमदं धार्थतेऽगारिमव स्थूणाभिस्तिसृभिरतश्च त्रिस्थूणमाहुरेक इति सुंश्रुताचार्या आमनान्त, अतएव चैषां त्रेविध्यमपि ' वातपित्तकफा दोषाः धातवश्च मला मताः " इत्युक्तिसूक्तं संगच्छते। तदेषां प्रशस्तिचर्चा-मपास्य देहमूलानां मूलविचारं कर्तुकामोऽहमीश्वरजीवौ प्रकृतां जगजननीं सत्वर जस्तमसां साम्यमयीं त्रयीं प्रकृतिं विहाय सर्वमपि स्क्मं स्थूछंच जगत् सादिहेतुकश्च पर्यामीति वातिपत्तकफानामप्यादिना हेतुना चौपादान-रूपेणावस्यं भाविना भाव्यभिति प्रश्नः खाभाविकः समुदेति तदत्र कदा केने।पादानविशेषेण किमात्मका ह्येते समुत्पद्यन्त इति विचार एव यथामत्या आप्तानां विदुषांचोक्तीः पुरस्कृत्य प्रस्तूयते संयुक्तिकम्

न हि सांख्यसमं ज्ञानमिति सदुत्त्या सूक्ष्मस्थूळभेदेन द्वण्या-स्सृष्टेस्वतरणे तन्मतमेवादितः प्रदर्श्यते । तच प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारो-



ऽहंकारात् पंचतन्मात्राणि इति सूक्ष्मं जगत्, तन्मात्रेभ्यः पञ्चमहाभूतानि अहंकाराचैकादशेन्द्रियाणीति स्थूलं जगत्। सुश्रुते त्वयमर्थः प्रसारिवशेषेणोप-लभ्यते तद्यथाः—तस्मादन्यक्तान्महानुत्पद्यते, तिल्किङ्ग एव, तिल्ङ्गाच महतस्ति लिङ्ग एवाहंकार उत्पद्यते, सच त्रिविधो वैकारिकस्तेजसो भूतादिरिति तत्र वैकारिकादहंकारात् तैजससहायात् तल्लक्षणान्यवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यंते, तद्यथा श्रोत्रत्वक् च्यू जिन्हा प्राणवाग्धस्तोपस्थपायुपादमनांसीति, तत्र पूर्वाणि पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि इतराणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, उभयात्मकं मनः भूतादेरिप तैजससहायात् तल्लक्षणान्येव पञ्चतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते तद्यथा, शद्धतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्रं, रसतन्मात्रं, गन्धतन्मात्रमिति, तेषां विशेषाः शद्धसपर्शरूपसगन्थाः तभ्यो मृतानि व्योमानिलानलजलोर्ब्यः, एवमेषा तत्वचतुर्विशतिवर्यात्या।। इति

तन्मात्रेभ्यो भृतोत्पत्तौ—॥ तन्मात्रेभ्यो वियद्वायुवन्हिवारिवसुन्धराः एतानि पश्च नायन्ते महाभुतानि तत् क्रमात् ॥ इति प्रमाणमुपलभ्यते राद्वा-दयश्च तदाश्रया इति । तैरेव चेतेर्महाभूतेः सर्वमिपस्थावरजंगमात्मकं जगत् प्रादुर्भूतं इति, "तैश्च तल्लक्षणः कृत्सनो भूतप्रामो व्यजन्यत " इति सुश्रुतोत्त्त्या स्पष्टी भवति । सर्गारम्भे तन्मात्रेभ्यश्चेषां समुद्भवे पूर्वपूर्व-सूक्ष्मभूतस्योत्तरोत्तरभूते गुणाधानं दृश्यते, तष्यथा—राद्धतन्मात्राच्छद्धगुणमा-कारां जायते, तस्य च स्पर्शमात्रागुणे वातेऽनुप्रवेशाच्छद्धस्पर्शगुणो वायु-रूत्यवेते, द्विगुणस्य तस्य रूपतन्मात्रे तेजस्यनुप्रवेशात् तेजः त्रिगुणं जायते, राद्धस्पर्शरूपगुणं तेजो रसतन्मात्रं विश्वतीत्यापश्चतर्गुणाः सम्पद्यन्ते, चतुर्गुणाश्च ताः गन्धतन्मात्रं विश्वत्तीति भूः राद्धस्पर्शरूपरसगन्धैः पञ्च-भिर्गुणैरुपेता भवतीत्युक्तोर्थश्चरकाचार्यैः—

तेषामेकगुणः पूर्वी गुणवृद्धिः परे परे ।
पूर्वः पूर्वगुणश्चैव ऋभशो गुणिषु स्मृतः ॥
अतएवच—पृथ्वीपंचगुणा तोयं चतुर्गुणमथानलः ।
त्रिगुणो द्विगुणो वायुर्वियदेकगुणा भवेत् ॥

इति केचिद् वदन्ति भूतादीनामुद्गमक्रमश्चेष प्रतिपादितस्तैत्तिरीयोप-निषद्यपि—" तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽक्रम्, अन्नात् पुरुषः, स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।" तदेवं वैदिके क्रमेप्यन्तिमभूतस्य पञ्चगुणस्य भूरूपस्याविभीवानन्तरं तत एवौषधीनामुत्पत्तिदर्शनात् वनस्पती-नांच सभेषामपि——

> क्ष्माम्भोग्निक्ष्माम्बुतेजःखवाय्वग्न्यनिलगोऽनिलैः । द्वयोल्बणैः ऋमाद्भूतैर्मधुरादिरसोद्भवः ॥

इति वाग्भटोक्तया भूतेभ्यः षड्रसोत्पत्या 'जगत्येवमनौषधम्, न किंचिद् विद्यते द्रव्यं वशानानार्थयोगयोरिति 'तदुक्तयैव औषधत्वाद् रसमयत्वेन, रसतत्वस्य च सजलस्य रसतन्मात्राज्ञातत्वेन तसिमंश्वीत्पत्ति-क्रमानुसारतः शद्धस्पर्शरूपाणामनुप्रवेशाद् बी जरूपरसस्यापिवातादिकारण-त्वादोषध्युत्पत्तिसमकालावच्छेदंनैव वातादीनामुत्पत्तिः सिद्धान्तपथमवतरति । तदेवं सर्वमिप स्थूलं जगत् पञ्चतन्मात्रेभ्य एव जातिमिति सिद्धान्तमवलम्बय वाय्वग्निसोमपर्याया वातिपत्तकका अपि तत एव समुत्पनाः कारणगुणपूर्विका हि कार्यश्रुतिः इति सिद्धान्तात्तद्गुणज्ञानानन्तरमेव सर्वेषां स्थूलद्रव्याणां रसगुणवीर्यविपाकप्रभावाणां ज्ञानं सम्पत्स्यत इति । कारणभूतानां तन्मात्राणां सूक्ष्मत्वेन रसगुणपाकेषु यत् किंचिदंशेन सम्भवद् वि वीर्यप्रमावयोस्तिनत-रामसभ्मवभिति तद्भेदानन्स्योपसंहारेण रूक्षाण्णरनेहप्रधानेगुणैरेव तत्रास्यसूक्ष्म-तत्वानां ज्ञानदिशा सर्वमिप वस्तुजातं परिचयपथमेतीति एतत्प्रधानैगुणैरेव जगद्धारणकारणानामानिलसूर्यचन्द्रमसां प्रादुर्भावो जातः रागचिकित्साप्रधान आयुर्वेदशास्त्रे तत्र व्याधयोऽपरिसंत्व्येयाः भवन्स्यतिबहु-त्वात् दोषास्तु खल्च परिसंख्येया भवन्त्यनितबहुत्वादिति । तथा सर्वे विकारा निजा नान्यत्र वातापत्तकफेभ्यो निर्वर्तन्ते इत्यादि प्रमाणाद् व्यवहारसौकर्याय वातिपत्तिकफाख्याः सम्मताः । तदुक्तं चरके विमाने 'अतिस्निविधविकल्पाः व्याधयः प्रादुर्भवन्त्याम्रेयसौम्यवायव्या ' इति, सूत्रे च चरके ' अमिरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः कुपिताऽकुपितः शुभाशुभानि करोति, सोम एव शरीरे श्रिष्मान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति, वातस्य वार्ता तु तत्राध्याये प्राधान्येन चर्चितैव । तदेवमुक्तप्रामाण्यादग्निसे।मवायूनां पित्तकफ-वातानां साम्यं समायास्मतएव च दर्शितं कर्मसाम्यमपि सुश्रुते

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा।

इति सूक्ष्मारच्यत्वात् परमसूक्ष्मेषु शरीरावयवेषु विद्यमानत्वादिमेऽपि सूक्ष्मा एवेति ।

प्राणरूपेणापि परिगणनमेषां दृश्यते—"अग्निः सोमो वायुः सत्वं रजस्तमः पञ्चेन्द्रियाणि भृतात्मेति प्राणाः" तदेवं बीजरूपेण व्यवस्थितानामेषामेवायुर्वेदिकं जगत् त्रिधाकर्तुं वातिपत्तकका इति नामोक्तामित्येको दोषोत्पत्तिमार्गः । सर्वं खलु पाञ्चमौतिकमिति स्थूलविषयके चरकीयिसिद्धान्ते तु वाय्वाकाशभूताभ्यां वायो-रुत्पत्तिः अत्ववच प्रकृतिः स्पर्शशद्धयो इति सङ्गतं भवति, पित्तं तु पाञ्चमौतिकनेमव, एवं खलु पित्तमाग्नेयमिति सुश्रुतवाक्यस्य प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्तीतिन्यायात् अग्न्याधिके तात्पर्यम् । तदीयदाह्दकत्वनाशाय प्रचुरो जलीयभावोऽ प्रावश्यकस्तत्र एविमताराण्यपि भृतानि यथाभागमावश्यकानीति पाञ्चमौतिकता सौम्यस्य कफ्तस्य कारणत्वे प्राधान्यं पृथिवीजलयोरेव तद् भागस्यैव तत्राधिक्यात् इतरद्भूतत्रयंचानुषाङ्गिकिमित्यत एव च क्षणा स्थूलप्रायो निगद्यते ।

एवंच सुश्रुतस्त्रीया ''तंत्र वायोरात्मैवात्मा पित्तमाग्नेयं श्रेष्मा सौम्यः '' इत्युक्तिः सामञ्जस्यमुपैति । तदिभेऽपि वातपित्तकका अग्निसोमवायुत्वेन लोकं व्यवस्थितानां तत्वानां लोकपुरुषयोः साम्यं निर्वाहयन्ति । तदुक्तं चरके शारीरे '' पुरुषोऽयं लोकसिम्मत इत्युपक्रम्य तस्य पुरुषस्य पृथिवी मूर्तिरापः क्रेद्रस्तेजोऽभिसन्तापो वायुः प्राणो वियच्छुशिराणी ब्रह्मान्तरात्मा '' इत्यादिना । एवं बाजरुपाणां द्वितीयोऽयमुत्पत्तिपथः ।

केचित्तु प्रकाशः सत्वस्य गुणः, क्रिया च रजोधर्मः, स्थूलता परिपूर्णत्वं च तमसो गुणाविति कफवातिपत्तानामपि कफः सात्विको, रजोबहुलत्वाद्- बायू राजसस्तमोबहुळत्वाच पित्तं तामसमिति सत्वरजस्तमोरूपतां कल्पयन्ति । पित्तप्रकृतौ पुरुषे कोधादयस्तमसो गुणा विद्यन्ते । स्ठैष्मिके च क्षमादयः इति । 'रक्तान्तनेत्रः सुविमक्तगात्रः । स्निग्धच्छिविः सत्वगुणोपपत्रः । क्षेत्रक्षमो मानियता गुरुणां । ज्ञेयो बळासप्रकृतिर्मनुष्यः इति समर्थनात् पुष्टं चैतत् प्रतियते, इति चेत्र । मेधाप्रतिमादियुक्तस्य तेजिखनः पैत्तिकस्य सत्वप्रधानत्वेन तमः प्रधानत्वासम्मवात् । अत ९व " पित्तमुष्णं द्रवं पृति नीळं सत्वगुणोत्तरम् " इति शार्क्रघरोक्ताः पित्तगुणाः संगता भवति । तत्प्रकृतिकोपस्तु तमः सम्पर्कात् समुन्नेय इति । स्रेष्मा च तामसप्रायो भवति । यदुक्तं "स्रेष्मा शीतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिळः शीतळस्तथा । तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो ळवणो भवत् ॥ " एवं च सत्वगुणोपपन्न इति पदस्यार्थस्तु " शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगोधारां जीवितम् । शरीरं सत्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मत इत्यादि चरकप्रमाणान्मा-नसिकैः राजसैस्तामसैरच गुणैर्युक्तो गम्भीरो भवतीति कार्यः ।

अथ च चरकिवमानेऽष्टमे श्लीष्मकगुणिनरुपणे "मन्द्रवस्तैमिल्य-गुरुत्वानि " तामसिचिन्हानि प्रतिमान्ति [श्लीष्मके] ओजिखित्वबळवत्वायु-ष्मत्वैः सात्विकत्वं प्रतीयते इति श्लेष्मणस्तमिस सत्वे वा कुत्र आन्तर्मावः कार्य इति संदेहात् गुणानां वैषम्याच न सम्भवित साम्यं सत्वरजस्तमसां कप्तवात-पित्तैः। भवित च प्रकृतिगुणानां साम्ये प्रत्यः यदुक्तं " सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः " इति विकृतावेव च लोकरचना, दोषेषु च तद् वैपरीलं, भवित खल्वेषां साम्ये नैरोग्यमानन्दो लोकिस्थितिरिति। वैषम्ये च रोगोत्पत्तिस्थास्त्रार् इति, यदुक्तं " रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगितिति। अपरं च सर्वेषामिप शारीरिकदोषाणां कोपे रोगकर्तृत्वमुक्तं प्रकृतिगुणप्रधानस्य सत्वस्य च सर्वदा सर्वथा अविकारित्वमेव, तदुक्तं भगवता गीतोपनिषदि " तत्र सत्वं निर्मल्त्वात् प्रकाशकमनामयमिति "। एवंच बीजरूपाणां दोषाणां सत्वरजस्तमोरूपत्वकलपनमनुचितमप्रामाणिकं चेति।

तदेवं स्क्ष्मरूपाणां दोषाणां द्विधोपादानत्वदर्शनेन तन्मात्रपक्षे सूक्ष्म-त्वेनायुर्वेदिकयोः पित्तकप्तयोर्दरयमानानां पार्धिवगुणानां निर्वाहानुपपत्या प्रकृन तद्दोषिवषये पाञ्चमातिकश्चरकीयसिद्धान्त एव गरीयानिति तत्र [चरके] ते शारीराः प्रसादमळरूपेण द्विधा दिशताः शारीरे षष्ठेऽध्याये तयोः प्रसादभूता एव च प्रकृतिभूता उच्यन्ते। तेषां गर्भावतरणे मूळोपादानं तु ग्रुक्तशोणिते एव पित्रोरियुक्तम्। " ग्रुक्तशोणितसंयोगे यो भन्नेद् दोष उत्कटः। प्रकृतिर्जायते तेन " इति एवं पित्रोः ग्रुक्तशोणितयोदीं वोत्कटता [दोषप्राधान्यं दोषव्यव-स्थितिश्च] शिशोश्च गर्भस्थस्य दोषपुष्टिराहाररसादेवेति प्रसादरूपाणां नैरोग्य-प्रदानां दोषाणामुपादानं हिताहारिवहारावेव। दश्यते रसमूळा चैषामुत्पात्तिर्वनाशश्च रसम्यो देनिकः समुद्भवो दोषाणां दिशितश्चरकेण यथा—

" तत्र दोषमेकैकं त्रयस्त्रयो रसा जनयन्ति त्रयस्त्रयश्चोपशमयन्ति । तद्यथा कटुतिक्तकषाया वातं जनयन्ति, मधुराम्ळळवणास्त्वेनं शमयन्ति । कटुका-म्ळळवणाः पित्तं जनयन्ति, मधुरितक्तकषायास्त्वेनं शमयन्ति । मधुराम्ळळवणाः श्रेष्माणं जनयन्ति, कटुतिक्तकषायास्त्वेनं शमयन्ति " इति उक्तश्चायमेवार्थो-वाग्भटेन—

तत्राद्या मारुतं व्रन्ति त्रयस्तिकादयः कफम् । कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्येतु कुर्वते ॥ इतिपद्येन

शिशुरिप "मातुश्वाहाररसजैः ऋमात्कुक्षौ विवर्धते " इत्युक्तया आहाररसादेव सर्वभावानां शारीराणां वृद्धिं प्राप्नोतीति । "कट्टम्लल्लवणं पित्तं खाद्दम्लल्लवणः कपः । कषायितक्तकटुकोवायुर्दछोऽनुमानत—इति । कपिलबलस्तु द्रव्याश्रितरस्क्रपतामेव दोषाणामुक्तवान् । अतस्तन्मतेऽपि प्रसादक्रपाणां देषाणां रसा एवोपादानतामुपयान्तीति ।

यत्तुकेचित्-'तन्मयान्येव भूतानि तर्गुणान्येव चादिशेत् । तैश्व तस्रक्षणः कृत्सनो भूतप्रामो व्यजन्यत ॥

इति सुश्रुताधारमवलम्ब्य शुक्रशोणितसंयोगे पुरुषव्यक्तिं, तयोश्वसम्पादनाय [परम्परया] अनस्यावश्यकत्वम्, तत्परिपाकार्थं च वातिपत्तकपानामन्नेनेव-समुद्भवं ततश्च धातृत्पत्तिम् मलसमुद्भवं च मत्वा "देहे अन्नमया एव सर्वे-भावाः" "दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्" इति वाक्यार्थं सङ्गमय्योक्तप्रका-रामेव दोषोत्पत्तिं मन्यन्ते । तेषां पक्षेऽपि शारीरदोषोत्पत्तावेव स्वारस्यं प्रती-यते । मलक्रपाणां च तेषामृत्पत्तिक्रमः ।

दर्शितश्चरकेणैव—अन्नस्य भुक्तमात्रस्य षड्रसस्य प्रपाकतः ।

मधुरात् प्राक्कफोद्भावात्फेनभूतं उदीर्यते ।

परं तु पच्यमानस्य विद्ग्धस्याम्छभावतः ।

आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छमुदीर्यते ।

पक्काशयं तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वन्हिना ।

परिपिण्डितपकस्य वायुः स्यात् कटुभावतः ।

इति चरकेचिकित्सिते १५ अध्याये । अन्यच्च तत्रैवः—

किष्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्य च कफोऽसृजः ।

पित्तं मांसस्य च मलो मलः खेदस्तु मेदसः। रसस्य कफः रक्तस्य पित्तमित्यादिकमः—

> कफः पित्तं मलाः खेषु प्रखेदो नखरोमच । स्नेहोऽक्षित्वग्विशामोजो धातूनां क्रमशो मलाः ।

वाग्भटेनापि दर्शितः । एवञ्चान्नरसरक्तान्येव मलक्रपाणां दोषाणा-मुपादानानीति । स एव दर्शितो विकासक्रमः स्थूलानामेव मलक्रपाणां दोषा-णाम् । नैतेन सूक्ष्माणां शारीराणां पुष्टिर्भवति तत्वानामिति, तत्परिपोषायाहार-परिपाकश्च पञ्चभूतानामग्निभिरेव भवतीति सिद्धान्तः—

> भौमाप्याग्नेयवायन्या पञ्चोष्माणः सनाभसाः । पञ्चाहारगुणान्खान्खान् यथास्वं विपचन्त्यन् ॥

पद्येनानेन दर्शितः शास्त्रे।

एवं यथाविचारं स्वशक्तया स्क्ष्माणां, शारीराणां प्रसादमलभेदेन द्विविधानाञ्चोपादानानि यथाऋमं तेषां तेभ्य उत्पत्तयः सक्षेपेण दर्शितानि । अतः परं विस्तरं वा सुधिय एव विभावयन्तु इति शम् ॥

वैद्यशास्त्री नारायणशंकरो देवशंकरात्मजः प्राणाचार्यः अहमदाबाद इत्येषांमतम् ।

(१) पश्चमहाभूताविचारप्रयोजनम्।

तस्योत्तरम्:-चरक-शारीरस्थाने प्रथमाध्याये कथितं।

खादयश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः।

चेतना धातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः ॥ श्लो. १४ ॥

सुश्रुतसूत्रस्थाने प्रथमाध्याये चोक्तं । अस्मिन्शास्त्रं पञ्चमहाभूतशर्रारि-समवायः पुरुष इत्युच्यते (१६) तथा च सृष्टौ द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेष-समवायाभावाः सप्तपदार्थाः । सप्तपदार्थेभ्यश्चोत्पत्तिर्विनाशश्च भवतः । ते पञ्चभूतानां समवायिकारणम् । उक्तं च । चरकाचार्येण सूत्रस्थानाध्याये २६ " सर्वे द्रव्यं पाञ्चमौतिकमस्मिन्नेवार्थे तचेतनावदचेतनञ्च"

(२) भूतलक्षणम्। किनामभूतत्वम् ?

तस्योत्तरम्:-भूतपदवाच्याः पश्चभूताः । न्यायशास्त्रं चेाक्तम् । पृथिव्यप्तेजे।वाय्वाकाशभूतपदवाच्याः । आयुर्वेदेप्येवं चरकसुश्रुतादिग्रन्थेषु भूतशद्धेनव्यवहारः कृतः ।

(३) भ्तानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रियित्वम्, अनेकेन्द्रियार्थाश्रियित्वं वाः।
तस्योत्तरं:—चरकशारीरस्थाने प्रथमाध्याये चोक्तं।
एकैकाधिकयुक्तानि खादीनामिन्द्रियाणि तु।
हस्तौ पादौ गुदोपस्थे जिन्हेन्द्रियमथापिवा।
कर्मेद्रियाणि पंचैव पादौ गमनकर्माणि॥ २३॥
पायूपस्थौ विसर्गार्थौ हस्तौ प्रहणधारणे।
जिन्हा वागिन्द्रियं, वाक् च सस्याज्योतिस्तमोऽनृता॥ २४॥
महाभूतानि, खं वायुरिप्रस्यः क्षितिस्तया।

शद्धः स्पर्शश्चरूपञ्च रसोगन्धश्च तद्गुणाः । ''

इत्यादि सुश्रुतशारीरस्थाने प्रथमाध्यायेऽपि पूर्वोक्तरीत्या प्रतिपादितं। तत्र बुद्धीन्द्रियाणां शद्वादयोविषयाः कर्मेन्द्रियाणां यथासंख्यं वचनादानानन्द-विस्गीविहरणानि इत्यादि । एवंरीत्या न्यायवैदेषिके, न्यायसूत्रे, वात्स्यायन-भाष्येऽपि चोक्तं।

(४) भूतस्वरूपगुणधर्मादीनां विवेचनम् ।

तस्योनारं:-चरकसूत्रस्थानेऽध्याये २६ तमे सर्वे कथितम् । " तावद्-द्रव्यभेदमभिष्रेत्य किंचिदभिधास्यामः । सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकं । तस्मिनेवार्थे तचेतनावदचेतनञ्च । तस्य गुणाः राद्वादयो गुर्वादयश्च द्रवान्ताः । इत्यादि" । विशेषश्च तृतीयद्वितीयप्रश्नस्योत्तरे समागतएव ।

(५) भूतसंख्याविमर्शः।

तस्योत्तरं:-आयुर्वेदशास्त्रं पश्चभूतानामेव प्राधान्यं। प्रतिपत्रं तेषामेवो-ल्लेखः कृतः । पश्चभूतिसिद्धान्तिविचारमन्तरा त्रिदोषसिद्धान्तस्य विचारो न भवति ।

(६) भूतानां सादित्वम्, अनादित्वम्, उभयत्वम् वा ? सादित्वं चेत् तदुत्पत्तिः सक्रमा, अक्रमा वा ?।

तस्योत्तरं:-यथा सांख्यवेदोपनिषदि भूतानां सादित्वम् तथैवायुर्वेदशास्रेऽपि चरकशारीरस्थाने प्रथमाध्याये [१-६६] तथा च सुश्रुत शा. अ. १-४ द्रष्टव्यं।

- (७) गुणेभ्यः कारणान्तरेभ्यो वा भूतानामुद्भवः प्रकारः कः। तस्योत्तरः-षष्ठमप्रश्नस्योत्तरे समावेशः ।
- (८) भूतानामितरेतरव्यवकीर्णत्वं कथं संपद्यते १। तस्योत्तरः-महाभूतानामन्योन्याश्रायत्वम् ।
- (९) भूतानां सृष्टिकारणत्वं कीदक् ?।

तस्योत्तरः-पूर्वमेवोक्तं " सर्वं द्रव्यं पांचभौतिकमस्मिन्नेवार्थे तचेतना-बदचेतनं च ''। प्रथमप्रश्नोत्तरे समावेशः । तथाऽपि चरकसूत्रस्थाने तथा च। चरके शा. अ. १२ तमे द्रष्टव्यम्।

(१०) परिणामारम्भक्रिययोर्विशेषः। तस्योत्तरं: - यथा सांख्यमिमांसादिशास्त्राणां सिद्धान्तस्तथैत्र, आयुर्वेदशास्त्रस्याऽपि । सुश्रुतशारीरस्थाने प्रथमाध्याये कथितं । " सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमाखिलस्य जगतः संभवहेतुरन्यक्तं नाम । तदेकं बहूनामधिष्ठानं समुद्र इवौदकानां भावानां !" । ३ । प्रथमाध्याये परिणामवाद एव वर्णितः । अतस्सांख्यशास्त्रस्य यथा परिणामवादो मान्यस्त-थेवायुर्वेदस्याऽपि ।

(११) दश्यानां पृथिव्यादीनां भूतस्यं न वा ?।

तस्योत्तरं:-आयुर्वेदशास्त्रसंमतं पृथिव्यादीनां भूतत्वं । दार्शानिकाद-योऽपि मन्यन्ते । गुणवत्वेन क्रियावत्वेनाऽपि भृतत्वं ।

(१२) एिनेन्टसंज्ञकानां द्विनवित्तसंख्यकानां प्रतीच्यरासायनि-कैर्म्लतत्वतयाऽङ्गीकृतानां भृतत्वं नवा १।

तस्योत्तरं:--प्रतीच्यरासायानिकानां मते तु भूतत्वमेव । आयुर्वेदीय-मतेऽपि भूतत्वमेव । कथिमिति चेत् । पूर्वोक्तपंचमहाभूतानां विचारत एव हेद्रोजनऑक्सिजनादिष्वपि भूतत्वमेव । एतद्विषये प्रतीच्यरासायनिका विचारं करिष्यन्ति । -

(१३) इलेक्ट्रॉन प्रोटॉनसंज्ञकयोर्भृतत्वं न वा ? तस्योत्तरं:-पदार्थविज्ञानशास्त्रानुसारेण एतयोरिप भूतत्वमेव

तथाऽपि निर्णयं रासायनिकाः करिष्यन्ति ।

(१४) परमाणुतन्मात्रयोर्विवेचनं, तयोभेदो वा १ अभेदो वा १ । तस्योत्तरं:—तन्मात्राविषये सुश्रुताचार्येण सुश्रुतशारीरस्थाने प्रथमाध्याये कथितं । "भूतादेरिप तैजससहायात्तस्थणान्येव पञ्चतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते तद्यथा शद्धतन्मात्रं, रपर्शतन्मात्रं, रूपर्शतन्मात्रं, रूपर्शतन्मात्रं, रूपर्शतन्मात्रं, रूपर्शतन्मात्रं, रूपर्तन्मात्रं, रूपर्तान्मात्रं, त्रियो भूतानि व्योमानिलानलजलोव्यः; एवमेषा तत्वचतुर्विषतिव्याख्याता । परमाणुविषये चरकाचार्येण शारीरस्थाने सप्तमाध्याये कथितं । "शरीरावयवास्तु परमाणुभेदेनापरिसंख्वया भवन्ति " अत्र शरीरावयवाः इति कथितं तथाऽपि "पार्थिवशरीरं " इति न्यायेन पृथिव्यादीनां परिमेयपरमाणवस्सन्ति इति गणितं । एतेन परमाणुतन्मात्रयोरिक्यं नास्तीति प्रतिपादितं । सांख्यतत्वसमासस्त्रेऽपि पूर्वोक्तप्रमाणेन कथितम् ।

(१५) द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वेन गुणाद्भेदो वा, गुणसमुदायेन तदभेदो वा?।

तस्योत्तरं: - एतद्विषये सुश्रुतस्त्रस्थाने ४१ " द्रव्यविशेषविज्ञानीय " अध्याये कथितं । द्रव्याश्रिता गुणास्सन्ति । तत्सर्वशास्त्रसंमतं । द्रव्याद् गुणस्य खातंत्रयं कदाऽपि न संभवति । द्रव्ये गुणाधिक्यमस्ति । अतश्च द्रव्याश्रिता गुणाः । गुणसमुदायत्वेनाऽपि तदभेदो नास्ति ।

(१६) तेजसो द्रव्यत्वं न वा ?।

तस्योत्तरं:--द्रव्यक्षमेव । उपरिष्टात्प्रतिपादितमेव । आधुनिकवैज्ञा-निकानामेतद्विषये भिन्नविचार एव ।

(१७) आकाशस्वरूपविमर्शः स भावरूपोऽभावात्मको वा १ भावत्वेऽपि तस्य सावयवत्वं निर्वयवत्वं वा १ सावयवत्वं चेत् के नाम तदवयवाः १ किमाकाशिङ्कः १ शद्धः अवकाशो वा १।

तस्योत्तरं:—" आत्मन आकाशः संभूतः (तै. २-१) इत्यादि श्रुतिभ्य आकाशस्य वस्तुत्वप्रसिद्धिः । एतद्विषये श्रुतिवेदोपनिषदादि-सिद्धान्ताः पूर्वमेव कथिताः । आयुर्वेदशास्त्रेऽपि तथैव । शद्वगुणकमाकाश-मिति नैयायिकाः वदन्ति । सांख्यशास्त्रे वेदे च भावरूपत्वं । विषयेऽस्मिन् भिन्नभिन्नमतानि सन्ति । तथाऽपि सावयवत्वं, भावरूपत्वं, शद्वगुणकमाका-शमिति सिद्धं ।

(१८) पञ्चमूलभृतेभ्य एकैकमहाभूतानामुद्भवः कीद्दराः !।

तस्योत्तरं:--द्वितीयप्रश्नस्योत्तरे समावेशः । पञ्चीकरणवेदान्तादिग्रन्थेष्विप भिन्नभिन्नमतानि सन्ति । तथाऽपि वैद्यकशास्त्रे यत्कथितं तत् द्वितीयप्रश्नस्योत्तरे समागतं ।

(१९) ईथराख्यस्याऽस्तित्वं चेत् तस्य कुत्रान्तर्भावः ? आकाशे, तेजसि, वायौ वा ? कथं च सः ?।

तस्योत्तरं: —पाश्चास्यपंडितास्तस्य निर्णयं करिष्यन्ति । यावत्पर्यन्तं " ईथराख्यस्याऽस्तित्वं "एतत्प्रश्चस्य निर्णयो न जातस्तावत्पर्यन्तं मौनमेववरं ।

(२०) मनुष्यादिशरीरेषु चैतन्यं आत्मजन्यं पञ्चभूतादिसंयोग-विशेषजन्यं वा ?।

तस्योत्तरं:—पूज्यचरकाचार्याणां तु—मनुष्यादिशरीरेषु चैतन्यं आत्म-जन्यं इति सम्मतं । एतद्विषये किमीप कथनीयं न । यथामति संक्षेपेण प्रश्लोत्तराणि लिखिला प्रेषितानि ।

श्रुतिस्मृतिवेदोपनिषदादिशास्त्रासिद्धान्तानुसारेण प्रश्लोत्तराणि ।

१ प्रथम प्रश्न:-पंचमहाभूतविचारप्रयोजनम् ?

उत्तरम्—-निखिलब्रह्माण्डसर्गाद्यकालेऽपरिमितानन्तशक्तिविशेषविशिष्ट-मायासिहतः परमेश्वरः " तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय " इति " सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय " इत्यादि श्रुतेः । "हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातःपतिरेक आसीत् " इत्यादि श्रुतेश्व ततईक्षणसंकल्पप्रयत्नानंतरमाकाशादीनि पञ्चमहा-भूतानि प्रादुर्भवन्ति । तथा च श्रुतिः " तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुर्वायोरप्रिरप्रेरापः अद्भयः पृथिवी '' इति । अन्या-कृतमेव प्रकृतिरिष्यते, तस्य च मृष्ट्युन्मुखत्वमृष्ट्याद्यकालयोगरूपं तदेव महत्तत्वं तत आकाशादिपंचभूतस्क्ष्माणि क्रमेणोत्पन्नानि पंचतन्मात्राणि ततस्तेभ्य एव स्थृलाम्युत्पनानि पंचमहाभूतानि । सूक्ष्मस्थूलक्रमेणैव कार्योदयदर्शनात् । परमात्मनः सकाशादेव सृष्ठयुत्पत्तिरुत च महादादिक्रमेण सृष्टयुत्पत्तिरिति वेदान्तसांख्यमतयोर्न विरोधः अत आह भगवान् मनुरपि '' मनःसृष्टि विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया । आकाशं जायते तस्मात्तस्य शद्धं गुणं विदुः " आका-शालु विकुर्वाणासर्वगंधवहः शुचिः । बलवान् जायते वायुः स वे स्पर्शगुणो मतः वायोरपिविकुर्वाणादिरोचिष्णु तमोनुदम् । ज्योतिरुत्पद्यते भाखत्तदूपगुण-मुच्यते ज्योतिषश्चविकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः । अद्भवो गंधगुणा भूमि-रित्येषा सृष्टिरादितः। एवं यः सर्वभूतेषु पर्यत्यात्मानमात्मना। स सर्वसमतामेत्य ब्रम्हाम्येति परं पदम् '' इत्यादि श्रुतिसमृतिसिद्धाप्तवाक्यार्थपर्यालोचनया मुमुक्षुभिः सर्वथा तत्वविचारः कर्तव्य एव एतेन प्रयजनं व्याख्यातम् ।

२ द्वितीय प्रश्नः —'' किन्नामभूतत्वम् '' भूतळक्षणम् ?। उत्तरं:—बहिरिन्द्रियप्राह्मविशेषगुणवत्वम् भूतत्वम् ।

३ तृतीय प्रश्नः - ' भूतानामेकैकेन्द्रियार्थाश्रयित्वम् अनेकेन्द्रियार्था- श्रयित्वं न वा ? ''।

उत्तरं:—प्रागुत्पद्यमाना पृथिवी गन्धमात्रा प्रकृतेरुत्पद्यते । पूर्वमस्या आपो रसमात्राः । ताभ्यः पूर्वं तेजो रूपमात्रम् । ततोऽप्यवीग् वायुः स्पर्श-मात्रः । पूर्वं चास्मात् राद्वमात्रमाकाराम् । त इमे गंधादयो गुणाः पृथिव्यादिनां नेताः । कारणगुणक्रमात्तु राद्वादयो वाय्वादौ । अथाप्येतदुक्तम् "आद्याद्यस्यगुणं तेषामवाप्नोति परः परः । यो यो यावतिथश्चेवां ससतावद्गुणः स्मृतः " इति । अभिभवानुद्भवौत्वमीषां यथाविषयं वेदितव्यौ ' गंधरसरूपस्पर्शराद्वानां स्पर्शपर्यन्ताः पृथिव्याः, आप्तेजोवायूनां पूर्वपूर्वमपोद्याकारास्योत्तरः" इति तंत्रान्तरे चोद्भवानभिभववतामेवगुणानामुपसंख्यानभित्युभयमपिशास्त्रसम्मतं।

४ चतुर्थं प्रश्नः -भूतस्ररूपगुणधर्मादीनां विवेचनिमिति ! उत्तरंः - गंधसमवायिकारणतावच्छेदकतया पृथिवीत्वजातिः सिध्यति, पृथिवी रूप रस गंध स्पर्श संख्या परिमिति पृथक्त्वसंयोग विभाग परत्वापरत्व गुरुत्व द्रवत्व वेगस्थितिस्थापकगुणवती । तत्र नील्झुक्रपीतरक्तहरितकपिश-चित्रात्मकानि सप्त रूपाणि वर्तन्ते । कषाय--मधुर--लवण--कटु--तिक्ताम्लभेदेन षड्विधो रसः पृथिव्याम् । गन्धस्तु सौरभासौरभभेदेन द्विविधः । पाषाणेऽप्यनु-त्कटोगन्धोऽस्स्येव, तद्भस्मिन गन्धोपलब्धेस्तदुपादान्नापादेयत्वेन पाषाणस्य पृथिवीत्वं तेन च गन्धानुमानात् । स्पर्शोप्यनुष्णाशीतः कचित्पाकजः कचित् कारणगुणजनितश्च । पृथिवी द्विविधा नित्यानित्सभेदात् तत्र परमाणुरूपानित्या, तदन्याऽवयवयोगिन्यनित्या, सापि त्रिविधा शरीरेन्द्रियविषयभेदात् तत्र शरीरं जरायुजांडजस्वेदजोद्विजभेदाचतुर्विधम् जरायुजा मनुष्याद्याः । अंडजाः । पक्षिसर्पाद्याः । स्वेदजादेशमशकाद्याः । उद्विजास्तरगुल्माद्याः । प्राणेन्द्रियम्

पार्थिवम् । विषयास्तु इणुकादिब्रह्माणुपर्यन्ताः । तत्र द्वाभ्यां परमाणुभ्यां इणुकं त्रिभिर्द्यणुकैस्रसरेणुरित्यादिक्रमेणावयवानामुत्पत्तिः ।

जन्यस्नेहसमवायिकारणतावच्छेदकतया जल्लवजातिसिद्धिः । रूपरस-संख्यापीरिमितिपृथक्ल्वसंयोगिवमागपरत्वगुरुत्वद्भवत्वस्नेहवेगाः जल्लस्य गुणाः । तत्र रूपं शुक्रमेव, रसो मधुरएव, स्पर्शः शीतएव, द्रवत्वं सांसिद्धिकम् । परमाणुरूपं बणुकादिरूपिमिति निल्मानित्यभेदेन द्विविधम् । अथनित्यं वरुणलोके इन्द्रियं रसनम्, हिमकरकादयो विषयाः ।

जन्योष्णस्पर्शसमवायिकारणतावच्छेदकतया तेजस्वजातिसिद्धिः तेजसि स्द्रपर्ध्यश्चितिषुथक्त्वसंयोगिवभागपरत्वापरत्वद्रवत्ववेगा गुणाः सन्ति । तत्र भाखरे शुक्ररूपभेव तेजिस, द्रवत्वं नैमित्तिकं सुवर्णादौ तेजिस, परमाणुरूपं नित्यं द्यणुकादिरूपमनित्यम् अनित्यं त्रिविधम् शरीरेन्द्रियविषय-भेदात् तैजसं शरीरमयोनिजं सूर्यलोकादौ प्रसिद्धम्, तेजसिमिन्द्रियं नयनम् विषयो वन्द्दिसुवर्णादिः।

जन्यविजातीयरपर्शसमवायिकारणतावच्छेदकं वायुत्वं जातिविशेषः। स्पर्शसंख्यापिरिमितिपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्ववेगा नव गुणा वायोर्वतन्ते। वायोरनुष्णाशीतपाकजस्पर्शेन, विलक्षणशद्धेन, तृणतुलादीनां भृत्या, शाखा-दीनां कंपनेन च वायोरनुमानं भवति, उद्भूतरूपस्य चाक्षुषं प्रस्थेव हेतुत्वात् वायोः स्पर्शनप्रसक्षं भवस्येव तत्रोद्भूतस्पर्शस्य हेतुत्वादित्याद्वः। वायुद्धिविधो निस्योऽनित्यश्च परमाणुरूपोनिस्योऽनित्यस्तु तदन्यः। शरीरेन्द्रियभेदादिन-त्यिश्चविधः। वायवीयं शरीरमयोनिजं पिशाचादीनाम्, शरीरव्यापकं वायवीय-मिन्द्रियं त्वक्, वायवीयो विषयस्तु प्राणादिमहावायुपर्यन्तः। प्राणस्त्वेक एव हदादिनानास्थानवशान्मुखनिर्गमादिनानाक्रियावशाच नानासंज्ञां लभते।

राद्वाश्रयत्वमाकाशत्वम् । आकाशस्य पङ्गुणाः संख्याद्याः पंचशद्वश्रुति, आकाशएकोऽपि उपाधेः कर्णशष्कुल्या भेदाद्भित्रं श्रोत्रात्मकमिन्द्रियं भवति । श्रथमं तावच्छद्वो विशेषगुणः चक्षुर्प्रहणायोग्यबाहिरिन्द्रियप्राह्यजातिमत्वात् स्पर्शवदित्यनुमानम् । ततः शद्वो द्रव्यसमवेतो गुणत्वात् संयोगवदित्यनुमानेन शह्नस्य द्रव्यसमवेतत्वे सिद्धे शह्नो न स्पर्शविद्धिशेषगुणः । अपाकजत्वे सित अकारणगुणपूर्वकप्रसक्षत्वात् सुखवत्, पाकजरूपादौ व्यभिचारवारणाय सस्यन्तम्, पीछपाकवादिमतेतु सस्यन्तं न देयमेव, पटरूपादौ व्यभिचार-वारणाय कारणगुणपूर्वकेति, जलपरमाणुरूपादौव्यभिचारवारणाय प्रसक्षेति । शहः न दिक्कालमनसां गुणः विशेषगुणत्वात्, नात्मविशेषगुणः बिहि-शिन्द्रियप्राह्मत्वात् रूपवत् इत्यं च शद्धाधिकरणं द्रव्यं गगननामकं सिध्यति । न च वाय्ववयवेषु स्कृमशद्धक्रमेण वायौ कारणगुणपूर्वकः शद्ध उत्पद्यतामिति वाच्यम्, अयावद्द्रव्यमावित्वेन वायुविशेषगुणत्वाभावासिद्धेः । अयावद् द्रव्यमावित्वे च स्वाश्रयनाश्रजन्यनाशप्रतियोगि यद्यत्तद्भित्रत्वम्, तच्चाश्च विनाशिनि शद्धे निरावाधमेव, अत्र व्यतिरेकेण वायुस्पर्शो दृष्टान्ते। ज्ञेयः ।

एतेन भूतसंख्या विमर्शः, भूतानां सादित्वश्च सिध्वति, भूतानामुत्पत्ति-प्रकारोऽपि " तस्माद्वा एतस्मा " दिल्यादि श्रुतिसिद्धान्तेन प्रकाशितः । एवं भूतानामितरेतरञ्यवकार्णत्वं भूतानां सृष्टिकारणत्वं च प्रदर्शितया दिशा विज्ञा-यत एव । इति नवानां प्रश्नानामुत्तराणि ।

१० परिणामारंभाक्रिययोर्विशेषः ।

पटादानि हि लोके सावयवानि द्रव्याणि खानुगतैरेव संगेनसिचैनस्तन्त्वादिभिर्द्रव्येरारभ्यमाणानि दृष्टानि । तत्सामान्येन याविकिचित् सावयवं
तत्सवं खानुगतैरेव संयोगसिचवैस्तैस्तैर्द्रव्येरारब्धमिति गम्यते । सचायमवयबिभागो यतो निवर्तते सोऽपकर्षः पर्यन्तः परमाणुः । सर्वचेदं जगद् गिरिसमुद्रादिकं सावयवं, सावयवं चाचन्तवत् । न चाकारणेन कार्येण भवितव्यमित्यतः परमाणवो जगत्कारणमिति कणभुगिमप्रायः । तानीमानि चत्वारि भूतिनि
भूम्युदकतेजःपवनाख्यानि सावयवान्युपलभ्य चतुर्विधाः परमाणवः परिकत्यन्ते तेषां चापकर्षपर्यन्तगतत्वेन परतो विभागाः संभवाद्विनश्यतां पृथिव्यादीनां परमाणुपर्यन्तो विभागो भवति स प्रलयकालः । ततः सर्गकाले च
वापवीयेष्वणुष्वदृष्टापेक्षं कमोत्यवते । तत्कर्म खाश्रयमण्यन्तरेण संयुनक्ति । ततो
द्यणुकादिक्रमेण वायुरुत्पद्यते । एवमग्निरेवमापः, एवं पृथिवी, एवमव श्रिरं,

सेंद्रियमिति । एवं सर्वमिदं जगदणुभ्यः संभवति । अणुगतभ्यश्च रूपादिभ्यो चणुकादिगतानि रूपादीनि संभवन्ति, तन्तुपटन्यायेनेति काणादा मन्यन्ते । इत्यारंभः । परिणामः सांख्यानाम् ते चेत्यं मन्यन्ते यथा घटशरावादयो भेदा-मृदात्मनान्वीयमाना मृदात्मकसामान्यपूर्वका छोके दृष्टाः, तथा सर्व एव बाह्याध्यात्मिका भेदाः सुखदुःखमोहात्मतयान्वीयमानाः सुखदुःखमोहात्मकसामान्यपूर्वका भवितुमर्हन्ति । यत्तत्मुखदुःखमोहात्मकं सामान्यं तत्तिगुणं प्रधानं मृद्धदचेतनं, चेतनस्य पुरुषस्यार्थं साधियतु खभावनेव विचित्रेण विकारात्मना विवर्तत इति । तथा परिणामादिभिरिप छिङ्गैस्तदेव प्रधानमनुभीयते । इतिपरिणामवादः ।

११ दर्यानां पृथिव्यादीनां भृतत्वं न वा इति प्रश्नः ।
तत्रोत्तरम्-गुणवत्वेन क्रियावत्वेन च तेषां भूतत्वमेव ।
१२-१३ प्रश्नौ उपेक्षितौ उक्तेरेवकार्यनिर्वाहात् तेष्वन्तर्भावाच ।
१४ परमाणुतन्मात्रयोर्विवेचनम् तयोर्भेदो वाऽअभेदो वा ।
उत्तरम्-अभेद एव ।

१५ द्रव्यस्य गुणाश्रयत्वेन गुणाद्भेदोवा गुणसमुदायत्वेन तदभेदो वा।
उत्तरम्-ब्रह्मसूत्र अ. २ पाद २ अपरिप्रहाचात्यन्तमनपेक्षा १७।
प्रधानकारणवादो वेदविद्भिरिप कैचिन्मन्वादिभिः सत्कार्यत्वाद्यंशोप-जीवनाभिष्रायेणोपनिबद्धः। अयंतु परमाणुकारणवादो न कैश्चिदपि शिष्टैः केनचिद्यंशेन परिगृहीत इत्यत्यन्तमेवानादरणीयो वेदवादिभिः।

अपिच वैशेषिकास्तन्त्रार्थभूतान् षट्पदार्थान्द्रव्यगुणकमसामान्य-विशेषसमवायाख्यानस्यन्तभिन्नान्भिन्नलक्षणानभ्युपगच्छन्ति । यथा मनुष्योऽश्वः शश इति । तथात्वं चाभ्युपगम्य तिद्वरुद्धं द्रव्याधीनत्वं शेषाणामभ्युप-गच्छन्ति । तन्नोपपद्यते । कथम् । यथाहि लोके शशकुशपलाशप्रभृतीना-मस्यन्तभिन्नानां सतां नेतरेतराधीनत्वं भवति, एवं द्रव्यादीनामस्यन्तभिन्नत्वा-नेव द्रव्याधीनत्वं गुणादीनां भवितुमर्हति । अथ भवति द्रव्याधीनत्वं गुणादीनां ततो द्रव्यभावे भावाद्दव्याभावेऽभावाद्द्व्यमेव संस्थानादिभेदादनेकशद्ध- प्रत्ययभाग् भवति । यथा देवदत्त एकएवं सम्नवस्थान्तरयोगादनेकशद्भप्रत्ययभाग् भवति तद्वत् । द्रव्यगुणयोस्तादात्म्यमेव । विस्तरस्तु तत्र भगवत्-पूज्यपादैर्निरूपितः ।

१६ तेजसो द्रव्यत्वं न वा ?

उत्तरं:-इन्यत्वमेवेति-उपरिष्ठात्प्रतिपादितमेव।

१७ आकाशस्त्ररूपविमिर्श इत्यादिप्रश्ने —

उत्तरं:—आत्मन आकाशः संभूतः (तै० रा० १) इत्यादिश्रुतिभ्य आकाशस्य च वस्तुत्वप्रसिद्धिः । विप्रतिपन्नान्प्रति तु शद्वगुणानुमेयत्वं वक्तव्यं, गंधादीनां गुणानां पृथिव्यादिवस्त्वाश्रयत्वदर्शनात । अपि चावरणा-भावमात्रमाकाशमिच्छतामेकास्मिन्सुपर्णे पतत्यावरणस्य विद्यमानत्वात् सुपर्णा-न्तरस्योत्पित्सतोरनवकाशत्वप्रसंगः, यत्रावरणाभावस्तत्र पतिष्यतीति चेत्, येना-वरणाभावो विशेष्यते तत्तिर्द्धं वस्तुभूतमेवाकाशं स्यानावरणाभावमात्रम् । अपिचावरणाभावमात्रमाकाशं मन्यमानस्य सौगतस्य स्वाभ्युपगमिवरोधः प्रस-उयेत । सौगतिहि समये " पृथिवभिगवः किं संनिश्रयः " इत्यस्मिन्प्रतिवचन-प्रवाहे पृथिव्यादीनामन्ते " वायुः किं संनिश्रयः " इत्यस्य प्रश्नस्य प्रतिवचनं भवति " वायुराकाशसंनिश्रयः " इति । तदाकाशस्य वस्तुत्वेन समञ्जसं-स्यात् । तस्मादप्युक्तमाकाशस्य वस्तुत्वम् । शद्विङ्गक्रमाकाशं निरवयवञ्चेति सर्वसिद्धान्तसम्मतम् ।

> १८ प्रश्नस्योत्तरं दत्तप्रायमेवं । १९ पदार्थवाद्येव प्रष्टव्यः । २० मनुष्यादिशरीरेष्विति प्रश्ने । उत्तरं-न केनापिजन्यं, किन्तु स्वाभाविकमेवात्मनि संबद्धम् ।

श्री काइयां त्रिदोषादि चर्चापरिषदि विचाराही विषयाः

तेषामुत्तराणि ।

१ प्रश्नः-त्रिदोषविचारप्रयोजनम् १।

तस्योत्तरं:-आयुर्वेदशास्त्रे पञ्चभूतस्य त्रिदोषस्यच "अन्योन्याश्रयित्वं"। उक्तञ्च दोषत्रयत्रिषये सुश्रुताचार्येण सूत्रस्थानाध्याय २१ तमे " वातिपत्तस्त्रे-ध्माण एव देहसम्भवहेतवः "। तैरेवाव्यापत्रेरधोमध्योध्वंसिन्निविष्टैः शरीरिमिदं धार्यते, आगारिमवस्थूणाभिस्तिसृमिस्तश्च त्रिस्थूणमाहुरेके । भवतिचात्र । " नर्तेदेहः कफादित्त न पित्तान्नच मारुतात् । निस्यं देहएतैस्तुधार्यते " । तथैव वाग्भटेन सूत्रस्थाने प्रथमाध्याये कथितं " वायुः पित्तंकपश्चिति त्रयो-दोषाः समासतः । विकृताऽविकृता देहं प्रंति ते वर्तयन्ति च "।

२ प्रश्नः-वातादीनां दोषत्वं, धातुत्वं, मलत्वं वा ! त्रिविधं चेत्तद् विरुद्धमविरुद्धं वा !।

तस्योत्तरं:—वातिपत्तकपास्तु त्रयो धाततः । तेरेव सकलानि लघुतमानि वा गुरुतमानि वा शारीरावयवानि निर्मितानि सन्ति । अतएव ते धातवाः
शारीराणामाधारभूतामन्यन्ते । एतेषां त्रयाणामभावः शारीरस्यैवाभावेन
समः । तेषां वैषम्यं दोषो भवित व्याधि चोत्पादयित । केचिद्धातुं दोषं
कथयन्ति केचिच्च दोषं धातुं कथयन्ति । एतौ द्वौशद्धावितरेतरपर्यायावेव ।
आरोग्यमनारोग्यं वा धात्नां बलाऽवल एवावलम्बेते । इत्यायुर्वेदस्य खयं
सिद्धप्रमाणं स्वीत्रियते । अतएव धातुदोषयोः पर्यायवाचित्वमुपर्यङ्गीकृतमेव ।
यदा धातवो नियमिताऽवस्थायां वर्तन्ते तदा तेषां प्रसादस्थितिरित्युच्यते । यदा
तेषां स्थितिरनियमितता वर्तते तदा तेषां मलस्थितिरित्युच्यते । कार्यकारणसम्बंधेन वयं धात्निविधस्वरूपैः प्रत्याभिजानीमः । धातुर्वा दोषोवा प्रसादभूतधातोर्र्य, उपयुज्यते कीटभूतो वा मलस्यार्थे । विज्ञानदृष्ट्या शरीराणां
किया वातिपत्तकपारूपं धातुत्रयमेवावलम्बते । अत एवोक्तं । " धातवश्च

मलाश्चाऽपिदूष्यन्त्येभिर्यतस्ततः । वातिपत्तकमा एतं त्रयो दोषा इति स्मृताः । शरीरदूषणादोषा धातवो मलधारणात् । वातिपत्तकमा ज्ञेया मलीनीकरणान्मलाः । अष्टाङ्गसंप्रह० सू. अ. २० वेदादिमन्त्रेषु—त्रिधातुरितिशद्धः त्रिदोष स्यार्थे प्रचलति । नासिक सम्मेलनेऽपि " त्रिधातु सर्वस्वं " एतिन्नबंधस्य योजना प्रकटीकृता । आयुर्वेदशास्त्रे " वायुः पित्तंकमश्चेतित्रयो दोषास्समासतः । रसामृङ्मांसमेदोऽस्थिमजाश्चकाणि धातवः । मलाः-मूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपिच ।

३ प्रश्नः-दोषसंज्ञायां हेतुः ?।

तस्योत्तरं:-द्वितीयप्रश्नस्योत्तरे समागतं तथाऽपि सुश्रुतसूत्रस्थाने अ. २४-८-" सर्वेषां च व्याधीनां वातिपत्तिश्चेष्माण एव मूछं " इत्यादि ।

४ प्रश्न:--कथं त्रय एव दोषाः ?।

तस्योत्तरं:-सुश्रुताचार्येण कथितं। ''यथा कृत्सनं विकारजातं विश्वरूपेण, अवस्थितं सत्वरजस्तमांसि न व्यतिरिच्यते एवमेव कृत्सनं विकारजातं विश्वरूपेण अवस्थितमव्यतिरिच्य वातिपित्तश्चेष्माणो वर्तन्ते। तथैव सु. सू. अ. २१ श्लो. ८ – विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा। धारयन्ति जगदेहं कफिपत्तानिलास्तथा इति "।

५ प्रश्न:-वातादीनां द्रव्यरूपत्वं राक्तिरूपत्वं वा ?।

तस्योत्तरं:-द्रव्यरूपत्वमस्ति । शक्तिखरूपे भिन्नमतानि सन्ति । द्रव्यरूपे विवरणं । द्रव्यखरूपा वातादिदोषाः । लोके तावच्छरीरं पार्थिव-मिति व्यवाहियते । श्रुतितः पञ्चीकरणजन्यमिति प्रतीयते । पञ्चीकरणं तु पृथिवीजलतेजोवाय्वाकाशादीनामेव । तेन पञ्चानामपि द्रव्यखरूपत्वं निश्चितं । एतेन शरीरं द्रव्यस्वरूपमिति सिद्धं दोषधातुमलम्लमिदं शरीरं इत्यायुर्वेदी-यवचनेन त्रिदोषाणां कायस्योपादानकारणत्वं ज्ञायते द्रव्यमेव द्युपादानकारणं भवितुमर्हति । समवायिकारणं द्रव्यमिति लक्षणात् । अत्र शक्तिशद्धः किमुदिश्य लिखित इति न ज्ञायते । आयुर्वेदेषु ओषाधिद्रव्याणां प्रभाव इति कथितं । शरीरे त्रिदोषाः (वायुपित्तकपाः) कार्यं कुर्वन्ति । शक्तिमन्तरा कार्यं कथं जायते । अतः " आयुर्वेदशास्त्रं शक्तिशद्धस्य पृथक् व्यवहारो न कृतः



कथिमितिचेत् " द्रव्यस्येव गुणत्वात् " । तथाच शक्तिपदार्थस्तु पृथक्त्वेन् आयुर्वेदानुक् लेषु न्यायसांख्यादिशास्त्रेष्विप न परिगणितः । यतः " अस्मा-त्पदाद् अयमर्थोबोद्धच्यः " इति ईश्वरसंकेतः शक्तिः इति । काणादीयेन वचसा, इच्छायामेवशक्तेरन्तर्भावः । तथा काचित् गुणे, काचिद्द्रव्ये शक्तेरन्त-भावः । यथा अग्नौ दाहानुकू ला शक्तिः दश्यते । पनवेलित्रदोषचर्चापरिषदि एतस्प्रश्नविषये भिन्नभिन्नमतानि जातानि । इतिवृत्तपुस्तके सर्वे मुद्दितमेव ।

६ प्रश्न:--वातादीनां स्थूलस्वं सूक्ष्मत्वमुभयत्वं वा ?।

तस्योत्तरं:—स्थूलत्वं सृक्ष्मत्वं च महर्षिभिः प्रतिपादितं । प्रसाद भूत-स्थितौ स्क्ष्मत्वं, मलभूतस्थितौ च तेषां स्थूलत्वं। सिद्धान्तिनदानग्रंथे श्रीमहा-महोपाध्याय श्री गणनाथसेनमहाशयेश्वापि प्रतिपादितं । सुश्रुताचार्येण सूत्र-स्थानेपि प्रतिपादितं । [अ. १५ श्लो. ४४--४५]।

७ प्रश्नः--िकं वातादीनामुपादानम् ! उपादानात्तेषामुरपत्तिक्रमश्च-कीटशः !।

तस्योत्तरं:-रसरक्तादिधातवः पंचभूतिवकार एव। एवं वातादिदोषा अपि पंचभूतिवकार एव। अतएवांक्तं सुश्रुते सू. अ. ४२-५-" तत्र मधुरा-म्छलवणा वातन्नाः। मधुरितक्तकषायाः पित्तन्नाः। कदुतिक्तकषायाः श्रेष्मन्नाः। वायुरात्मनेवात्मा, पित्तमाग्नेयं, श्रेष्मा सौम्यइति "। विशेषश्च। चरकाचार्येण सूत्रस्थाने अध्याये २८ तमे सुन्दरतया प्रतिपादितं।

८ प्रश्न:--वातादीनां गुणाः कर्माणि च ?।

तस्योत्तरं: —तेषां प्राणोदानसमानव्यानापानानीति पंचनामानि । तेषां कार्यं हृदयकण्ठोदरत्वग्गुह्यादिस्थानेषु स्पष्टं दृश्यते । लघुनां गुरूणां वा सर्वासां क्रियाणां प्रवेतको वायुरिस्त । समानसीनां प्रवृत्तीनां नियन्ता चालकश्च । स सर्वेषामिन्द्रियाणां चैतन्यदाताऽस्ति । स शद्धरपर्शरूप-रसगन्धान् वहति । वायुर्दोषं शोषयति मलं बहिनिष्कासयति च ।

गुणाः । वातो रूक्षः शीतो छघुः स्क्ष्मश्रळोविशदः खरश्चेति । विप-रीतगुणैर्द्रव्यविधः प्रशाम्यति । कुपितावस्थायां वायुः शरीरे नानाविधान् विका- रानुत्पादयति बलवर्णसुखायृंषि कुपितो वायुरुपहन्ति । मनोविकृति विद्धाति । सर्वेन्द्रियशक्तिनाशश्च करोति ।

पित्तम्-तापस्य म्लभूतमतीन्द्रियं शरीरे वर्तमानं सूक्ष्मं वस्तु पित्तं । शरीरे तेजसः कार्यं पित्तेन क्रियते । शरीरस्य समानोष्णत्वात्त्वचः शोषणंशक्ति-मेनसस्तेजिस्तिता रुधिरस्यारुणवर्णतेति । तेजोगुणस्य प्रधानकार्याणि । अनेनैव हेतुना ।पित्तं आजकं, पाचकं, साधकमालोचकं, रंजकं चोच्यते । अग्नेः प्रभावेण शरीरस्य सर्वधात्नां क्षयो भवति । इमं क्षयं प्रतिकर्तुं निरन्तरमाहारुष्टिन्धनानि तस्मै वन्हये दातव्यानि । अत्रवोक्तं ।

" पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्वगुणोत्तरम् । सरं कटुल्घुस्तिग्धं तीक्ष्णमम्लं तु पाकतः॥ "

विपरीतगुणैई व्यैः पित्तमुपशाम्यति । पित्तस्य कुपितावस्थायां विस्फोट-कोष्मादयो रोगा आविर्भवन्ति ।

कफः-कफः सौम्यगुणात्मकोऽस्ति । पित्तवत् कफोप्यतीन्द्रियः । पित्त-मिक्रिक्षपमिति । कफस्तु जलक्षपोऽस्ति । श्रेष्मणा शरीरसन्धयः स्नेहसदृशेन पदार्थेन स्निग्धा भवन्ति । श्रेष्मा कण्ठिजिन्हादीनि स्थानानि क्रेदयित । अनस्य-क्रेदने धातनां पोषणे च कफो जलस्य कार्यं करोति । श्रेष्मणोऽभावे शरीरं स्नल्पैरेवाहां मिर्भस्मीभूतं भूयात् । "कफस्यैतानि नामानि क्रेदनश्चावलम्बनः । रसनः स्नेहनश्चाऽपिश्लेष्मणः स्थानभेदतः " अन्यच

> " श्लेष्मा खेतो गुरुः खिग्धः पिच्छलः शीतलस्तथा। तमोगुणाधिकः खादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥"

इत्यादि । एवं वातादीनां गुणाः कर्माणि संक्षेपेण द्शितानि ॥ विशेषश्च । सु. स्. अ. २१ (१५) चरक सू. अ. १८- सु. स्. अ. १५--पंच-धाप्रभक्तेषु सु. नि. अ. १ (२१) वृद्धवाग्भट सू. अ. २० । विकृतवा-तादिकर्माणि च सू. अ. २०-[२१-३६] इत्यादिस्थ छेषु दृष्टव्यं ।

९ प्रश्नः-वातादीनां खरूपं, तेषां प्रत्येकशः पंचिवधित्वं वास्तविकं काल्पनिकं वा ? । तथा तत् स्थानकार्यभेदोत्पन्नं वा । तत्स्वरूपभेदोत्पन्नं वा ? तस्योत्तरं:--अष्टमप्रश्नस्योत्तरे नवमप्रश्नस्योत्तरमागतं । तत्र वातादीनां खरूपं, पंचिष्धितं च दिशतं । अष्टमप्रश्नस्योत्तरे यानि यानि प्रन्थस्थप्रमाणानि निदर्शितानि तेभ्यो ज्ञातन्यानि । तत्र चरकसुश्रुतवाग्भटादीनां स्थानाध्याया दिशिता । तेभ्यश्चावलोकनीयमेव ।

१० प्रश्नः-वातादीनां रागकारणस्वं कीदृशम् ? तेषामेवरागकारणस्व-मुतान्येषामपि कीटादीनाम् ?।

तस्योत्तरं:--(१) कालबुद्धिन्द्रियार्थानां यथोचितकार्याच्छरीरादि क्रिया यथायोग्यकार्यं क्रियते । तदवस्थायाः खस्थताऽरुग्णतेति नाम । उक्तञ्च चरकाचार्येण सूत्रस्थाने प्रथमाऽध्याये १:- "कालबुद्धीन्द्रियार्थानां योगोमिथ्या (१) न (२) चातिच (३) । द्वयाश्रयाणां व्याधीनां त्रिविधो हेतुसंग्रहः । शरीरं सस्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः । तथा त्रयाणां योगस्तु सुखानां कारणं समः "।

भाविमश्रेणाप्युक्तं । "समदोषस्समाग्निश्च समधातुमलित्रयः । प्रसन्नारमे-न्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते "। यावरपर्यन्तं भूतपञ्चकशरीरेऽस्वाभाविका स्वरादयो विकारा न प्रविशन्ति तावरपर्यन्तं स्वस्थ इति संज्ञा । यदा भूतपंचक शरीरस्वरूपे गुणे क्रियायां च परिवर्तनं भवति तदा पृथक्पृथग् व्याधयः प्रविशन्ति । उक्तंच चरकाचार्येण सूत्रस्थानाऽध्याये २५ ।

" येषामेबहि भावानां संपत्संजनयेन्नरं । तेषामेव विपद् व्यार्थान् विविधान समुदीरयेत् ।

पंचभूतानां न्यूनाधिकमिश्रणतया सृष्टौ सर्वपदार्थसंभवः। पार्थिवं शरीरं। ऐतेनाऽन्येषां तत्वानां शरीरंऽशो नास्तीति न । अन्येषां तत्वानामप्यं-शो भवति । शरीरपार्थिवांशत्वमप्तेजोवाय्वादित्रयाणामाधिष्ठानरूपत्वं । अप्तेजो-वाय्वादितत्वत्रयाणां समविषमस्थितियोगेन शरीरस्य स्वस्थताऽस्वस्थतयोः। प्रधानत्वम् ।

तद्यया । यावस्पर्यन्तमप्तस्वं, तेजस्तस्वं, वायुतस्वं चेति तस्वत्रयाणां सुब्य-वस्था जायते तावस्पर्यन्तं स्वस्था इति कथ्यन्ते । यदा तेषु तस्वेषु अब्यवस्थायाः प्रवेशो भवति तदा रोगोद्भूतिर्जायते । संदर्भस्वेवम् तत्वत्रयाणां यावत्पर्यन्तं समिस्थितित्वं तावत्पर्यन्तं शरीरस्य सुस्थितित्वात् " त्रिधातु " रिति कथ्यते । तथा च यदा तत्वत्रयाणां विषमस्थितित्वं जायते तदा शरीरद्षितत्वात्तत्व-त्रयाणां दोष इति संज्ञा । एवंरीत्या आयुर्वेदशास्त्रे वातादीनां रोगकारणत्वं सुप्रसिद्ध-मेत्र । कृम्यादीनां रोगोत्पितिकारणत्वं वातादय एव कारणं । यद्यपि प्रतिरोगं भिनाकाराः कृमयः कारणिमिति प्रत्यक्षमुपल्यत्यत् इस्तः कृमीणामेव कारणत्वं स्यादिति विचार्यते, तथाऽपि तत्तदाकारकृमिव्यक्तीनां केषुचिदेव कुष्टादिष्य रोगिवेशेषेषु उत्पादकत्वं तदन्यत्र तु संक्रामकत्वमेवः उत्पादकत्वं तु तत्तत्कृमिविशेषश्च उत्पादकत्वं तदन्यत्र तु संक्रामकत्वमेवः उत्पादकत्वं तु तत्तत्कृमिविशेषश्च उत्पादकत्वं तदन्यत्र तु संक्रामकाणां वायुजलदेशकालानामेव । यतो वायुविशेषो जलविशेषश्च आहारत्वेन, देशविशेषश्च विहारत्वेन । इस्यतस्तदनुक्लवायुजलादय एव कारणानि, ते च तत्वतो विविच्यमाना लोके सोमाग्निवायवः, शरीरान्तश्च विविच्यमाना वातिपत्तकपाः । आगन्तुकरोगाः " आयुर्वेदशास्त्रसंमताः " अतश्च कीटाण्जन्यरोगा अपि भवन्ति ।

(१) नवाविर्भूतानां रोगाणामायुर्वेदे संग्रहप्रजोनविचारः ?।

तस्योत्तरंः — आयुर्वेदशास्त्रं त्रिदोषसिद्धान्तानुसारेण तथाच 'नास्ति रोगो विनादोषर्यस्मात्तस्माद्धिचक्षणः। अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गेर्न्योधिमुपाचरेत्' इति वचनानुसारेण दोषानुसारेणी चिकित्साऽस्ति । तथाच चरकाचार्येण जनपदोध्वंसनीयाऽध्याये विमानस्थाने कथितं तद्यथा "वायुरुदकं देशः काल" इति । " वाताज्जलं जलाद्देशं देशात्कालं स्वभावतः। विद्यादुष्परिहार्यत्वाद्वरी-यस्तरमर्थवित् । वाय्वादिषु यथोक्तानां दोषाणान्तु विशेषवित् । प्रतीकारस्तु सौकर्ये विद्याल्लाध्वलक्षणम् । चतुर्ष्वपि हि दुष्टेषु कालान्तेषु यदा नराः। भषजेनोपपाद्यन्ते न भवन्त्यातुरास्तदा " इति आयुर्वेदीयशास्त्रेषु रोगानीकविषये-सम्यक्रीस्या प्रतिपादितं । अत एतदिषयं किमपि कथनीयं करणीयश्व नास्ति।

(२) नवाविष्कृतानामुपयोगिनां भेषजद्रव्याणामायुर्वेदे संप्रहप्रयोजन-विचारः !।

तस्योत्तरंः — निघन्दु [वनस्पति] शास्त्रे "आयुर्वेदीयभेषजद्रव्याणि बहूनि सन्ति । तेषां संशोधने प्रयासस्याचेत्समीचीनं, पूर्वं तु एतद्द्रव्याणां संशोधने प्रयोजने च विचारः कर्तव्यः, पश्चान्नवाविष्कृतानां भेषजद्रव्याणां संग्रहप्रयोजने विचारः । यत्सारभूतं तदुपासनीयमिति न्यायेन, तथा च पूज्यमहर्षिचरकाचार्याणामाज्ञां शिरसि कृत्वा तेषां वचनं पाळनीयमेव

"तदेव युक्तं भैषज्यं यदाऽरोग्याय कल्पते । स चैव भिषजां श्रेष्टो रोगभ्यो यः प्रमोचयेत् " । तथाच चरकविमानस्थाने ८ अध्याये काथितं । " विविधानि- शास्त्राणि भिषजां प्रचरन्ति लोके तत्र यन्मन्येत सुमहद्यशस्त्रि धीरपुरुषसेवितमर्थ- बहुल्साप्तजनपूजितं त्रिविधिशाष्यबुद्धिहतमपगतपुनरुक्तदोषमार्षं सुप्रणीत- सूत्रमाष्यसंग्रहक्रमं स्वाधारमनवपतितशद्भमकष्टशद्धं पुष्कलाभिधानं क्रमाग- तार्थतत्वानिश्चयप्रधानं संगतार्थमसंकुल्प्रकरणमाशुप्रबोधकं लक्षणवचोदाह- रणवच्चतदभिप्रपद्येत शास्त्रम् " ॥ इत्यादि ।

(३) आयुर्वेदीयशारीरानिदानादिप्रतिसंस्कारप्रयोजनविचारः १। तस्योत्तरंः—शारीरनिदानादिप्रकरणे यत्र यत्र संस्कारप्रयोजन-स्यावश्यकता चेत् कर्तव्यमेव।

(४) सभापतीनां यथाऽज्ञा स्यात्तथैव कर्तव्यमितिप्रार्थना तथाऽपि शास्त्रसूत्राण्यभिलक्ष्य निर्णयः कर्तव्य इति विज्ञतिः ।

मण्डनपक्षमाधिकृत्य सर्वं लिखितं । लेखनविषये मुद्रापणविषये च प्रमादो जातश्चेत् "प्रमादो मानुषोभावः " इति न्यायेन क्षन्तव्य इति राम् ।

पं. हरिप्रसाद सी. भट्ट, (बडोदा) इत्येषां मतम्। [आयुर्वेदाऽध्यापक, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय]

विषय १०:—वातादीनां रोगकारणत्वं कीदृशम् शतिषामेव रोगका-रणत्वमृताऽन्येषामपि कीटादीनाम् १।

उत्तरमः—माधवकारेण स्पष्टमेव लिखितम्:—

' सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः । तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाऽहितसेवनम् ॥ "

प्रकुपिता दोष्मस्सर्वेषां रोगाणां कारणम् । रोगोत्पत्तौ त एव मुख्यं कारणम् । यावत् न दोषाः प्रकुप्यंति न तावत् रोगोत्पत्तिः ।

दोषास्तावत् प्रतिमानुषशरीरे सततं वर्तंत एव । प्राकृतावस्थायां ते शरीरधारणं कुर्वेति । प्रकुपितास्तु रोगोत्पादका जायंते । सुश्रुते—" सर्वेषां च व्याधीनां वातिपत्तिश्रेष्माण एव मूलम्, तिल्यात्वाद्दृष्टफल्लवादागमाच । यथा हि कृत्स्तं विकारजातं विश्वरूपेणाऽवस्थितं सत्वर्जस्तमांसि न व्यतिरिच्यन्ते, एवमेव कृत्स्तं विकारजातं विश्वरूपेणाऽवस्थितमव्यतिरिच्य वातिपत्तिश्रेष्माणो वर्तते । दोषधातुमलसंसर्गादायतनविशेषानिमत्तत्रश्रेषां विकल्पः । दोषदृषितेषु

अलर्थं धातुषु संज्ञा क्रियते रसजोऽयं, शोणितजोऽयं, शुक्रजोऽयं, व्याधिरिति" चरकेऽपि—" सर्वे एव विकारा निजा नान्यत्र वातिपत्तकफेभ्यो निर्वर्तते, यथा हि शकुनिः सर्वं दिवसमिप परिपतन् खां छायां नातिवर्तते, तथा खधातुवैषम्य-निमित्ताः सर्वविकाराः वातिपत्तकफानातिवर्तते । " रवधातुवैषम्यनिमित्तजा ये । विकारसंघा बहवः शरीरे । न ते पृथक् पित्तकफानिलेभ्यः ॥" केचन रोगा शोणितप्रकीपात्प्रादुर्भवंतीति यद्यपि यत्र कुत्राऽपि भणितं तथापि तत्प्रकोपे-ऽपि दोषा एव कारणमिति स्पष्टतया गृहीतमेव । यथा—सु.स्.अ.२१ श्ली.२६

" यस्मादक्तंविना दोषैर्न कदापि प्रकुप्यति । तस्मात्तस्य यथा दोषं काळ्लं विद्यात्प्रकोपणे ॥ " चरके रोगाणां व्याख्या-" विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते । सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ॥ "

एवं कृता वर्तते । दोषाणां विषमता नाम वृद्धिरूपा वा हीनरूपा अयमेव रोगः । शरीरे पित्तकप्तवायवस्त्रयो दोषा यथा बाह्ये जगति सूर्यचंद्रवायवः । सु. स्. अ. २१ श्लो. ८-विसगीदानविक्षेपैस्सोमसूर्यानिला यथा । धारयंति जगदेहं कप्पपित्तानिलास्तथा ॥

दोषप्रकोपाणां इमानि त्रीणि कारणानि निर्दिष्टानि—''त्रीण्यायतनानि अर्थानां, कर्मणः कालस्य, चातियोगायोगिनिध्यायोगाः । असात्म्योदियार्थसंयोगः, प्रज्ञापराधः, परिणामश्चेति त्रयस्त्रिविधविकल्पाः कारणं विकाराणाम् । चरक सूत्र अ. ११ ग. ४२ । सर्वाण्येव कारणानि एतेश्वेवान्तर्भवंति ''।

रोगोत्पत्तिक्रमस्त्वायुर्वेदे एवमिव वर्तते—

- १. दोषस्थानेषु प्वींक्तसंचयहेतुना संचीयंते दोषाः तेषां संचितानां खलु दोषाणां लिङ्गानि दिशतानि ।
- २. दोषप्रकोपणात् दोषप्रकोपो भवति । प्रकोपिंछगानि ।
- ३. अतऊर्घं प्रस्रं। प्रकुपितानां प्रसरतां हिंगानि।
- अतऊर्वं स्थानसंश्रयं एवं प्रकुपिता दोषाः तान् तान् शरीर प्रदेशानागम्य तान्स्तान् व्याधीन् जनयंति ।
- अतऊर्घं द्याघेर्श्नम्-ज्यरातीसारप्रभृतीनां प्रव्यक्तलक्षणता ।
- ६. अतऊर्ध्वं ज्वरातीसारप्रभृतीनां दीर्घकालानुबंधः तत्राऽप्रतिक्रिय-माणेऽसाध्यतामुपयान्ति । चरक सूत्र.
 - " संचयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम् ।---

व्यक्तिं भेदं च यो बेत्ति दोषाणां स भवेद्भिषक् ''.। सु. सू. अ.२१ एतेषु वातादिदोषा रोगोत्पत्तौ कथं कारणभूता वर्तन्ते तत् स्पष्टतया व्यक्तीभवति।

विभिन्नप्रकारका *टीका भिन्नभिन्नरोगोत्पादका भवंति। शरारस्य प्राकृतावस्थायां कश्चिदपि कीटाणुर्ग हि जीवितुं शक्नोति। अतः कीटाणुर्ग मुख्यं केवलमेकमेव कारणं रोगस्येति नैव भवति सिद्धान्तः, परंतु देाषप्रकोपो रोगाणां विप्रकृष्टं कारणं, कीटाणवस्तु सिन्नकृष्टं कारणं, भिवतुमईति। क्षयं प्रांथिक-सिन्नपतं एवमवान्येश्वपि सदशविकारेषु केवलं दोषनाशकचिकित्सा न फलाई भवति। एतेम्य एव कीटाणुम्या रोगिशरीरानिष्कासितेभ्यो निरोगिशरीर प्रवेशितेभ्यो रोगोत्पत्तिस्खुकरा कर्तुं शक्यते। तथेव 'टेटनस् रोगस्य पूर्वावस्थायां तत्कीटाणुष्ट्रतरसस्य सूचिकाभरणेन "(ॲन्टी टेटनस् सीरम्)" रोगोपरोधो भवत्यवेति साक्षात्कार एव। एवमव प्रथिसिन्नपातेऽपि तत्कीटाणू-ष्ट्रतरसस् चिकाभरणनि प्रथिसिन्नपातमुपरोधयतीतिस्पष्टमेव। शस्त्रक्रियाममिप निर्जेतुकरणविधिप्रथापूर्वं (डिस्इन्फेक्शन् तथा ॲन्टिसेप्टिक् क्रिया) बह्नो हि रुग्णाः शस्त्रकर्मवेलायां 'टेटनस्, गाँप्रीन् ' इत्यादिरोगप्रादुर्भावा-चदानीमेव विनष्टा बभृवः। अधुना तु निर्जन्तुकरणविधिना नैव तद्दोगप्रादुर्भावो वा तदुत्पन्ननाशो भवति।

आकाशे अस्थितिमंतोऽपि वर्षाऋतौ वर्षासहचरा भूत्वा कदा, कदा, मत्स्या, उपलादयो विकृतपदार्था वातावरणाविकृत्या अधःपतिन्त यथा— "नीहारिनिहीदपांसुसिकतामस्यभेकोरगक्षाररुधिराष्माशिनिविस्गः । प्रकुपितस्य खल्वस्य वातस्यानेकेषु चरतः कर्माणि इमानि भवन्ति ॥ चरक सू. अ. ११ ग. ८ ॥ एवमेव शरीर दोषप्रकोपणात् प्रादुर्भवन्ति सूक्ष्माः कीटाणवः । निरोगावस्थायां तु न ते किचिद्विकारकरा भवन्ति अपि तु रोगक्षमताशक्त्या (इम्युनिटी) तथा शरीरीजसा (व्हाय्टालिटी) ते कीटाणवो भवन्ति नष्टाः । अतः कीटाणवानां पार्थक्येन प्राधान्येन रोगकारणत्वं संज्ञितुं नैव युक्तं । किन्तु गौणं कारणमवश्यमेव भवतीति प्राक् प्रदर्शितमेव । दोषप्रकोपण शरीरिकृत्वा भवति प्रादुर्भावः कीटाणूनां । ते च दोषप्रकोपात् वृद्धारसन्तो खीयं विषं शरीरेऽभिसारयन्ति, तेन भवति विकारप्रादुर्भावो विकारसौकर्यं । कीटाणूनां शरीरे खारथ्यप्रादुर्भावे वा सत्वे वा न भवति निष्पत्तिनैव वा भवति रोगप्रादुर्भावः अतस्ते न मुख्यं कारणं रोगाणां किन्तु गौणं कारणमेव ।

[%] टीका-(व्हॉक्सिनेशन्).

आधुनिकं त्रिदोषविषयकं वाड्ययम्.



यथावत् परिज्ञातमिसमन् विषये यत् निबन्धादिकं वा पुस्तकादिकं खतंत्रतया मुद्रितम् वाड्ययम् तस्य संप्रहोऽत्र दीयते । अपरिज्ञातम् वा यदन्यद्भवेदेतद्विषयकं वाड्ययम् तस्याऽत्र संप्रहोऽशक्य एव ।

| | नाम | कर्ता | कालः |
|-------------|---------------------------------------|-----------------------------------|------|
| ₹. | त्रिदोष विचारः | संप्रहकर्ता पं. शं. दा. पदे | १९०२ |
| ₹. | 99 |) | १९०३ |
| ₹. | ,, | 10 m | 1608 |
| 8. | त्रिदोषपद्धतिः | | 2906 |
| <i>ن</i> ې. | वातिपत्तकफानां तत्वम् | पं. दोरास्वामी आयंगार | १९१७ |
| ξ. | त्रिदोष विज्ञानम् | कै. पं. दत्तात्रेयशास्त्री गाडगीळ | १९१७ |
| ७. | त्रिदोषतत्वम् | पं. वामनशास्त्री दातार | १९१७ |
| ۷. | त्रिदोष | पं. पुरुषोत्तमशास्त्री हेर्छेकर | १९२५ |
| ۹. | दोषदर्पणम् | पं. दुर्गादत्तपंत | १९२९ |
| १0. | वातांकः | आयुर्वेद संदेश | १९३१ |
| ११. | पित्तांक: | 95 | १९३२ |
| १२. | श्लेष्मांकः | 39 | १९३३ |
| १३. | १३. पनवेल त्रिदोषचर्चापरिषदितिवृत्तम् | | |
| १४. | त्रिधातु मीमांसा | खामी हरिशरणानन्द | १९३४ |
| १५. | शास्त्रतत्वमंडनम् | पं. वजविहारी चतुर्वेदी | १९३५ |
| ۶٤. | त्रिदोषविमर्शः | पंडित धर्मदत्त | १९३५ |
| १७. | त्रिदोषवादः | पं. भानुशंकरिनभेयराम त्रिवाडी | १९३५ |
| | | 그 3일입니다 하나 사람들이 되었다. | |

आधुनिक त्रिदोषविषयकं वाङमयम्.

| १८. | त्रिदोषविमर्शम् (अपूर्ण) | पं. वामनशास्त्री दातार | १९३५ |
|-----|--|-------------------------------------|---------|
| १९. | दोषसिद्धान्तः | पं. द्वारकानाथक्षेन | |
| २०. | पंचभूतविज्ञानम् | पं. उपेन्द्रनाथदास | १९३६ |
| २१. | त्रिदोषविज्ञानम् | पं. उपेन्द्रनाथदास | १९३६ |
| २२. | पंचभूत विशेषांकः | पं. उपेद्रनाथदास | १९३६ |
| २३. | त्रिधातुबादः | पं. शाळिग्रामशास्त्री | |
| 28. | त्रिदोषस्टर्पम् | पं. अनंत भास्कर कर्डिले शके | १८५८ |
| २५. | प्रिन्सिपल् ऑफ त्रिदोष) इन् आयुर्वेद | - पं. धीरेन्द्रनाथराय | १९३७ |
| २६. | त्रिधातुसर्वस्व विशेषांकः | अनुभूतयोगमाला | १९३९ |
| २७. | त्रिधातु त्रिदोषचर्चा | प्रो. ग. स. दीक्षित | १९३९ |
| २८. | वातिपत्तश्लेष्मा [बंगाली] व | क. अमृतलाल गुप्त बंगाली शक | १३३४ |
| २९. | आयुर्वेददर्शनम् | पं. मह।देव चंद्रशेखर पाठक [| इंदोर] |
| ₹0. | वाराणसी पं. त्रि. परिषि | रितिवृत्तम्. पं. वामनशास्त्री दातार | १९४० |

त्रिदोषचर्चा परिषद् (रद्दीहळ्ळी) कर्नाटक.



इयं परिषद् अखिल कर्नाटक प्रान्तीयाऽयुर्वेदमहामण्डलतो 'रद्दीहळ्ळी' प्रामे ' डॉ. एम्. आर. स्वामी इत्येतेषां सभापितत्वे ऐशवीय सन ५।९।३६ तमे दिनें संजाता, तस्यां परिषदि—पंडितवरा विद्यावाचस्पतिनः परममान्या नागेशशास्त्री उप्पनबेटिगिरी, [धारवाड] आयुर्वेदतीर्थ नैकशास्त्रपारंगत अनंताचार्य आद्य, [विजापूर] वैद्यवरा न. नी. जोशी, पं. पार्थ नारायण, पं. डी. के. भारद्वाज, पं. एच्. एन्. शास्त्री इत्याद्यनेकवैद्यविद्वांसस्तथा-चान्ये नैकविधा दार्शानिका, नैय्यायिकाः, पौराणिकाः, कार्तान्तिका, वेद्यान्तिनो, वैय्याकरणाः, साहित्यनिपुणाः समागळन्। तस्यां परिषदि त्रिदोषविषयको यः प्रस्तावरसमतो दिनांके ६।९।३९ समभवत् स श्रीमिद्धभित्रवरैर्वेद्यराज दा. अ. हळशीकरमहाभागस्तत्वरमेव दिनांके ७।९।३६ पत्रद्वारेण सारांशरूपतया मदांतिके प्रेषित आसीत् सभापतिमहोदयानुज्ञया, सोऽप्यत्र दीयते—

" अस्याः परिषदो त्रिदोषविषयके संजाते वादिववादे अत्र समा-गतानां महनीयानां भावना इयं, त्रिदोषास्तु द्रव्यस्वरूपा वर्तन्ते न तु पाश्चा-त्यानां मॅटर इतितत्वम् "।

ता. ७।९।३६. दा. अ. हळशीकर (रहीहळ्ळी)

श्रीमाद्भिः दा. अ. हळशीकरमहाभागैः प्रेषितस्य पत्रस्यैव संस्कृतं रूपांतरिमदम्, पत्रं तु महाराष्ट्रभाषायां लिखितं विद्यते ।

वामनशास्त्री दातारः

जनस्थाने संजातस्य एकोनविंशतितमस्य नि. मा. आ. वैद्य सम्मेलनस्य स्वागतसमित्या अंगीकृतस्य कार्यमारस्य कृते १९२८ कालतो १९४० पर्यन्तम् द्रव्यनिधः संजातस्य आयव्ययस्य पत्रकम्। एप्रील १९२८ कालतो १५ डिसेंबर १९२९ पर्यन्तम्।

• ययः

आयः

रु. आ. पे. Sugg--4--6

यश्च सम्मेळनस्य इतिवृत्ते महाराष्ट्रभाषायां मुद्रिते १५५-१५६ तमे घृष्टे सिवस्तरं प्रकाशितः। तदनन्तरम् उर्वारतरुष्यकाः 6304-3-6

र. २४८७-२-० पे.

ता. १६-१२-२९ काळतः ३१-१२-१९३४ पर्यन्तम् संजातो आयन्ययो महाराष्ट्र भाषया प्रसिद्धिम् नीते पत्रके प्रदत्तो यक्ष पत्रकं ता. २६-१२-३४ तमे दिने निष्कासितं प्रेषितंच महाराष्ट्रीयवैषवरेभ्यः खा. स. सभासद्भ्यक्ष । २४८७-२-० उनिरितं इन्यम्.

३८-०-० प्राप्तद्व्यम्

११९१- ७--६ उनिरित इन्यम् 2424-2-0

११९-०-० तस्य बृद्धः 3-0-0328

११९१ — ७-६ उनितं दन्यम् १३३३-१०-६ ब्ययः

2424-2-0

तारीख १-१-१९३५ कालतो तारीख ३१-१२-१९३५ पर्यन्तम् संजातो आयच्ययः

१११--९-० श्री. जादवजी त्रिक्मजी आचार्य १००--०- श्री. गंगाधर बिष्णु पुराणीक १३१०-७-६ उनिरितं इन्यम्

२५-०-० श्री. गंगाघरशास्त्री गुणे

५०-०-० श्री. कृष्णशास्त्री देवधर

२५--०-- श्री. पुरुषोत्तमशान्नी नानळ

२ ५--०--० श्री. गंगाधरशास्त्री जोशी

२५--०--० श्री. हरीशास्त्री पराडकर

२५-०-० श्री. विष्णुशास्त्री केळकर

२'५--०--० श्री. वामनशास्त्री दातार

२०-०-० श्री. गोपाळशास्त्री गोडबोले ५-०-० श्री. विदर्भदेशीयवैद्याः

२-०--० श्री. वैच रामकृष्ण (सोलापूर)

५०--०- त्रिधातुत्रिद्रोषमीमांसाग्रंथस्य प्रतिहिपिकरणार्थं ठेखकाय बृत्तिदानम् (वे. पं. गंगाघरशास्त्री ८६--६--० पंचभूतप्रिष्धे कृतः पत्रन्यब्हारादिन्ययः गुणेद्वाराः)

२९--९-० श्री.जादवजी आचार्यकृतः परिषद्ये पत्रब्यवहारः १२--०--० पारिषदः पूर्वम् निष्कासितानाम् पत्रकाणां

१३३७-५-१ बाराणस्यां संजातयोः परिषदोः क्रते ता. २४-१०-३५ तो १३-११-३५ पर्यन्तं संजातः मुद्रणन्ययः (श्री. जादवजी आचार्यकृतः)

तस्यच विभागशो विवरणं दीयते स्थानिको ब्ययः

88७--१--९, परिषान्नीमत्तम् सभासदां कार्य-कत्रणां गमनाऽगमनार्थं अग्नि-रथाऽश्वरथस्वयंगत्री—(मोटार)

निमित्तो ब्ययः

³⁻⁰⁻⁶⁸⁰⁸

१०० --- कागवेद विद्याख्याय दत्तानि २ २ ७ — ७ – ६ परिचारकेभ्यो वृतिदानम् ९--१०--९ पज्ञछेबनसाहित्यादिज्ययः ९----४--९ खयंसेवककृतो ज्ययः २६--०-० छायाचित्रप्रहणन्ययः ४--०-० पुष्पाणां माह्याः ५-१२-३ सर्वसामान्यव्ययः ७—५--९ समागृहशोभा १ ४--१०-६ पत्रव्यवहारः ५-३-९ दीपक व्ययः ४३०-१०-१ मोजनव्ययः ५०--१-० मुद्रणन्ययः

8330-4-8

8-8--- 5648

२१३--१२--५ उनीरतं द्व्यम्

3-0-680

तारीख १।१।१९३६ कालतो तारीख ३१।७।१९४० पर्यन्तम् आयब्ययपत्रकम्.

१८--७--० ता. १।१।१९३६ कालतः ता. ३१।१२-

१९३६ पर्यतम् पत्रन्यवहार्न्ययः

२१---० ता. १।१।३७ कालतः ३१।७।४० पर्यंतम्

8०३--- ४--० पं. त्रि. इतिवृत्तमुद्रणार्थं दातन्यस्य द्रन्यस्य

द्तामागः

२५---० लेखनसामग्यर्थे न्ययः

पत्रव्यवहार्व्यय:

२१३-१२-५ उनिर्तं इन्यम्

५०१---०-० प्राणाचार्य कृष्णशास्त्री देवधर इस्वेतैः

५००--०-० प्राणाचार्य कृष्णशास्त्री देवधर इस्येतै: प्रदत्तानि १।१।१९३६.

प्रदत्तानि ३०।८।१९३६

७४७--१--५ उविस्तं द्वम 860-88-038

8-18-83-8

4-68-63-8

्र प्राणाचार्य कृष्णशास्त्री देवधरै: प्रदत्तानि एकाधिकहृष्यक्षह्नसाणि ' त्रिधातुत्रिदोषमीमांसा ' प्रथस्य मुद्रणार्थमेव प्रतानि विबन्ते । प्राणाचार्याणाम् तन्छिष्यवृदैः संमील्य कृतस्य सत्कारसमारंभस्य समये शिष्यवृदैगुरुदक्षिणानिमित्तं समपितानि एकाधिक-पंचरातरुण्यकाणि श्री गुरुचरणैद्विगुणीकृत्य तास्मिनेव समारंभे एतत्कायांथंमेव समापैतानीति उद्घोषितं । दत्तानिच तानि रूप्यकाणि केवछं त्रियातुत्रिदोषमीमांसाप्रथमुद्रणे व्ययीमवितुमहेन्ति । सांप्रतं तःसंचयात् संजातः संजायमानश्च व्ययो ऋणमेव वतंते



अतःषरं संमाच्यो व्ययो अधो दीयते.

५३२-१२- • पंचभूतित्रदोषहतिवृत्तमुद्रणे मुद्रापकाय देय द्रव्यम् ९१-- ०-० पुस्तकनिवंधनव्ययः (बार्शेंडेग)

५० — ० - ० पुस्तकप्रष्पात्वध्यः

७५— ०–० त्रिधातुत्रिद्रोषमीमांसाप्रथेलखनव्यथः. १५००— ०-० त्रिधातुत्रिद्रोषमीमांसाप्रथमुद्रणब्ययः

२००—०-० प्रथनिबन्धनन्ययः (बाहुदिग) ८०-—०-० प्रथप्रषणन्ययः ५०--० अन्यक्ष प्रासंगिको संजायमाने व्ययः

२५७८-१२-० इति मिलिस्वा अनुमानेन संभाव्यो व्ययः ७४७--१-५ स्वाधीनं द्रव्यम्

१८३१--१०-७ आवस्यकं द्व्यम्

एतावत् सर्वे आयन्ययपत्रकं अवयावत्पर्यन्तम् विदुषामग्रे स्थापितम् । तत् सवै समाछोन्य अस्मिन् कार्ये येषां येषां हदयमाकृष्येत, तैस्तै खसामध्येतो खेच्छया च यत्साहाय्यं दातुमिष्टं भवेत् तन्मदीये मुखविलासे प्रेषणीयमिति प्राध्येते

यदा च वाराणसीक्षेत्रे पंचमहाभूतत्रिदोषपरिषक्तरणविचारः खागतसामिस्राऽनुमस्रा कृतस्तदा कैर्महानुभावेः कुतोद्यापि खागत-समितिवंतिते, परिषद्भे क्रीयमाणस्य द्रव्यव्ययस्यापि कोऽधिकार इत्यादि वृत्तपत्रादिषु मासिकपत्रेषु व्याख्यानेषु च वारंवारं प्रसिद्धितम्

नितिस्यः पत्रकेस्यो वाक्यजातानि उद्धरामः – एकोनविद्यतितमस्य समेहनस्य इतिवृत्ते (३१।१२।२८ दिने महाराष्ट्रमाषायां प्रक-टिते) घृष्टे १५२-१५३ ''आयन्ययस्य स्पष्टीकरणम् " नामके शार्षके ' त्रिघातुसर्वस्न निबंधस्य परीक्षणेतिवृत्तं प्रसिद्धि यास्यति, अतस्तिषांकृते इदं सर्वमिष कार्यजातं खागतसामितिद्रारेषाऽबापि स्वागतसमित्यनुमत्या संचलताति ज्ञापितुं कानिचित्ततकाले प्रसिद्धि त्रिधातुसवेखनिवंधस्य परीक्षणं, पारितोषक्तदानं, निवंधस्य मुद्रणं, सहाय्यकस्त्रागतसभासदानुमस्या भविष्यति, तावस्कालं संमेलन-तथाच न्यायालयेऽपि [सिब्हिलकोर, मॅजिस्टेटकोर्ट | ममेऽपि अस्मिन्वषये यदि किमपि कार्यजातं स्यान्नवेति विचारोऽपिकृतः । कायोल्यं कायंकारिमंडलं च खींय अधिकारे स्थास्यतीति संमानितुं योग्यम् ' इति वर्तते । राक १८५५ वैशाखशुक्रपक्षे त्रितायायां गुरुवासरे ' त्रिधातुसर्वस्त्रिमंबधपरीक्षणफलम् ' नाम्नि पत्रके निबंधपरीक्षके: खींये परीक्षणफल्यूने ' वयमिदानीं जनस्थायीयस्वागतमंडलाय सादरमित्यं संसूचयाम:-यदयं आयुर्वेदस्य प्राणभूतो विषयः तस्यच निश्चितस्बरूपस्य गुस्थापनार्थं विचारार्थं च अचिरादेव महाराष्ट्रीयतज्ज्ञवैद्यानां एका परिषद् विधेया तया सोऽयं प्रश्नोऽवर्यमेव तथा विचारणीयो यथा अस्य गंभीरस्य विषयस्य सर्वेभ्यः सम्यक्ज्ञानं भवेत् ' इति विज्ञापितम् । (त्रिदोषचचोपस्षिदितिवृत्तम् पृष्ठ २) तदन्नुसारेण तिसम्पत्रके ' इयं परिषद् यद्यीप पनवेलनगरे मिविष्यति तथापि सा वैद्यसंमेलनखागतसमित्रधिष्ठतैव वर्तते ' (त्रिदोषचचिषिद्धि बृत्तम् - पृष्ठ ४-५ दिनांके १।९।३४ प्रकाशितम्)। पनबेल्यामे संजातायां त्रिदोषचचापिषिदि प्रथनिर्माणसमितिः स्थापिताऽमृत् , तस्या-स्वागतसामात-समासदरसहाय्यकसमासदश्च याचिता तेषामसुमतिः पत्रकप्रेषणेन, अनुमतिलाभेनैव परिषत्करणोद्योगः प्रारब्धः संषुणै पारितश्च अतो-मपि द्वितांचे श्रस्तावे तरयां समितौ सभासदत्वे मम नियुक्तिस्तु संमेळनखागतमंडळमंत्रीत्यधिकारेणैव संजाता (ग्रुष्ठ १०५ इतिवृत्तम्) मया पनवेळत्रिदोषचचिपिरिषक्तरणाथै त्रितीयं पत्रक्स संमेळनमंत्रीति अधिकारात्रिष्कासितस्, गृहाता च परिषक्तरणार्थमनुज्ञा तद्तु मया दिनांके २६।१२।३४ तमे निष्कासित पत्रके वाराणस्यां पंचमहाभूतत्रिदोषपरिषक्तरणार्थं विज्ञापिताः मया केवछं खीयेनैव मतेन नाबाऽपि किमप्याचरितमितोपि नैवाचरणं तथाविधं भविष्यति इति संप्राध्येते ।

ामन्यास्त्री दातार